अध्याय २२ (पृष्ठ ६८३—७०७)

अध्याय २३ (पृष्ठ ७०८—७२१)

सुन्दरता कैसे प्राप्त हो सकती है—आभूपण—घूंघट, बुर्क़ा और परदा।

अध्याय २६ (पृष्ठ ७८०—८०३)

मस्तिष्क सम्बन्धी कुछ आवश्यक ज्ञान—मस्तिष्क के केन्द्र—स्वस्थ मनुष्य का मस्तिष्क—ललाट खंड—पार्श्विक खंड—शंख खंड—पश्चात् खंड—खोपड़ी की बनावट का मस्तिष्क की रचना से सम्बन्ध—मस्तिष्क और खोपड़ी का परिमाण—मस्तिष्क और स्वभाव—शिक्षा, संगत, चोट और रोगों का मस्तिष्क पर प्रभाव—मस्तिष्क का ठीक वर्द्धन कैसे हो सकता है—मस्तिष्क और रोग—पक्षाघात और अंगाघात के कारण—मस्तिष्क, भ्रम, मज़हब—क्या मज़हब भी मस्तिष्क का एक रोग है—क्या हम पैदा होते समय मज़हब को अपने साथ लाते हैं—मज़हब रोग की चिकित्सा—मज़हब और स्वास्थ्य।

अध्याय २७ (पृष्ठ ८०४—८१५)

पागल कुत्ता—बिच्छू—कनखजूरा—बर, ततैया, शहद की मक्खी—मकड़ी—चींटी, चींटें, बरसाती कीड़े—सर्प—कोबरा और क्रेत सांपों के विष का असर—वाइपर जाति के सांपों के विष का असर—चिकित्सा—डंगर, ढोर—अल्पज्ञान और अज्ञान।

अध्याय २८ (पृष्ठ ८१६—८६४)

स्वजाति रक्षा—मैथुन—कम से कम किस आयु में मैथुन होना चाहिये—मैथुन का समय—मैथुन का मुख्य अभिप्राय—मैथुनों में अंतर—स्वस्थ मनुष्य मैथुन कितने कितने समय पीछे करे—स्त्री किन दिनों में मैथुन न करे—मैथुन में क्या होता है—वीर्य्य कब निकलना चाहिये—क्या पुरुष और स्त्री के वस में यह बात है कि वीर्य्य ठीक समय पर निकले—क्या स्त्री वीर्य्य निकलने से पहले भी प्रसन्न हो

चित्र सूची

चित्र नं०	पृष्ठ	विवरण
२०९	५००	आतशक
२१०	५०१	,,
२११	५०१	आतशकी चकत्ते
२१२	५०२	आतशकी नियांसा
२१३	५०३	आतशकी जख्म
२१४	५०४	पैर पर आतशकी जख्म
२१५	५०५	परंपरीण आतशक
२१६	५०६	परंपरीण आतशक
२१७	५०७	परंपरीण आतशक
२१८	५०८	परंपरीण आतशक
२१९	५१२	सोजाकाणु
२२०	५१३	लिंग पर वर्म
२२१	५१५	मूत्र मार्ग में फोड़ा
रंगीन : २२२ से ११	५२० के सम्मुख	मूत्र मार्ग
२२३	५२२	उपदंश
२२३ क	५२२	उपदंश
२२४	५२३	ग्रेन्युलोमा
२२५	५२४	ग्रेन्युलोमा
२२६	५२७	वेश्या
२२७	५५३	शुक्राणु
२२८	५५४	सेल विभाजन
२२९	५५६	बहुसन्तान
२३०	५५७	६ बच्चे एक दम पैदा हुए
२३१	५५८	जोड़िया बच्चे

चित्र नं०	पृष्ठ	विवरण
३३२	६८१	प्रकाश
३३३	६८४	बैठने की ठीक स्थिति
३३४	६९०	कन मैलिया
३३५	६९५	स्वस्थ व्यक्ति का हलक़
३३६	६९५	बढ़े हुए टॉन्सिल और ऐडिनॉयड्स
३३७	६९८	दूध के दांत
३३८	६९८	स्थायी दांत
३३९	७०३	दतौन
३४०	७०३	दतौन
३४१	७२८	जलोदर
३४२	७४४	कबड्डी
३४३	७४६	कूच
३४४	७४८	मांसल व्यक्ति
३४५	७४९	पेशियां
३४६	७५०	स्थिति नं० १
३४७	७५१	ऊर्ध्व शाखा की कसरत
३४८	७५१	
३४९	७५२	ऊर्ध्व शाखा की कसरत
३५०	७५२	
३५१	७५४	ऊर्ध्व शाखा की कसरत
३५२	७५५	ऊर्ध्व शाखा की कसरत
३५३	७५६	धड़ और रीढ़ की कसरत
३५४	७५७	कंधे और छाती की कसरत
३५५	७५८	धड़ और ऊर्ध्व शाखा की कसरत

स्वास्थ्य और रोग

अध्याय १

मनुष्य क्या है

मनुष्य एक जानवर है जिस के चार शाखाएँ होती हैं। इन में से दो शाखाएँ चीज़ों को पकड़ने, लड़ने और लिखने इत्यादि के काम में आती हैं और दो शाखाएँ चलने फिरने, भागने, दौड़ने के काम में आती हैं। अर्थात् मनुष्य दोपाया जानवर है; बचपन में जब वह खड़ा होना नहीं जानता मनुष्य भी चौपाया होता है; इस समय अगली शाखाएँ भी पृथिवी पर फिरने और चलने फिरने में सहायता देती हैं।

मनुष्य की अन्य जानवरों से तुलना

अन्य जानवरों की भाँति मनुष्य खाता पीता है, देखता है, सुनता है, स्पर्श करता है, सूँघता है, मल मूत्र त्यागता है और मैथुन करके सन्तान उत्पन्न करता है। जैसे कौवा, कोयल, बकरी, मैना, तोता, कुत्ता, बिल्ली, शेर, गीदड़, गाय, बैल, चिल्लाते, चहचहाते,

चीखते, दहाड़ते और गाते हैं, करीब करीब वैसा ही मनुष्य भी बोलता गाता और चिल्लाता है।

सब जानवरों की भाषाएँ भिन्न भिन्न हैं। चिड़िया अपने बच्चे की आवाज़ पहचानती है और तुरंत समझ जाती है कि वह क्या माँगता है। बकरी का बच्चा अपनी माँ की आवाज़ तुरंत पहचान जाता है। यदि हम जानवरों की भाषाएँ न समझें तो यह कहना ठीक नहीं कि वे जानवर कोई भाषा रखते ही नहीं। यदि हम जर्मन भाषा न समझ सकें या कोई यूरोपनिवासी किसी कुपढ़ भारतवासी की बात न समझ सके तो यह कहना कि जर्मन लोग या भारतवासी कोई भाषा नहीं रखते ठीक नहीं है। भाषाएँ भाँति भाँति की होती हैं; जब एक देश का मनुष्य दूसरे देश की भाषा को नहीं समझ सकता तो किसी मनुष्य के लिये जानवरों की भाषाएँ समझना तो बहुत ही कठिन है। मनुष्य जाति ही में बहुत सी जंगली कौमें हैं जिनको हम असभ्य कहते हैं; इन की भाषाएँ कुत्ते, गीदड़ इत्यादि की भाषाओं के तुल्य हैं।

मनुष्य में सोचने विचारने की शक्ति है, ग़ौर से देखने से मालूम होता है कि अन्य जानवरों में भी यह शक्ति थोड़ी बहुत पाई जाती है। चिम्पानज़ी, गोरिल्ला, ऊराँगऊटाँग इत्यादि बनमानुषों में, बानर कुत्ता, हाथी इत्यादि जानवरों में तो यह शक्ति अच्छी मात्रा में पाई जाती है। मनुष्य में बुद्धि है तो अन्य जानवरों में भी है। ये सब जानवर अपनी परिस्थित को देख कर उसके अनुसार काम करते हैं। सत्य तो यह है कि मनुष्य में कोई गुण ऐसा नहीं है कि जो थोड़ा बहुत अन्य जानवरों में भी न पाया जाता हो—केवल भेद प्रकार और मात्रा का है। जो गुण एक जानवर में एक प्रकार का है वही गुण दूसरे जानवर में दूसरे प्रकार का है; किसी जानवर में कोई विशेष गुण कम है किसी में वह अधिक मात्रा में है।

चित्र १ मनुष्य और उसके प्राचीन पुर्खाओं के कंकाल
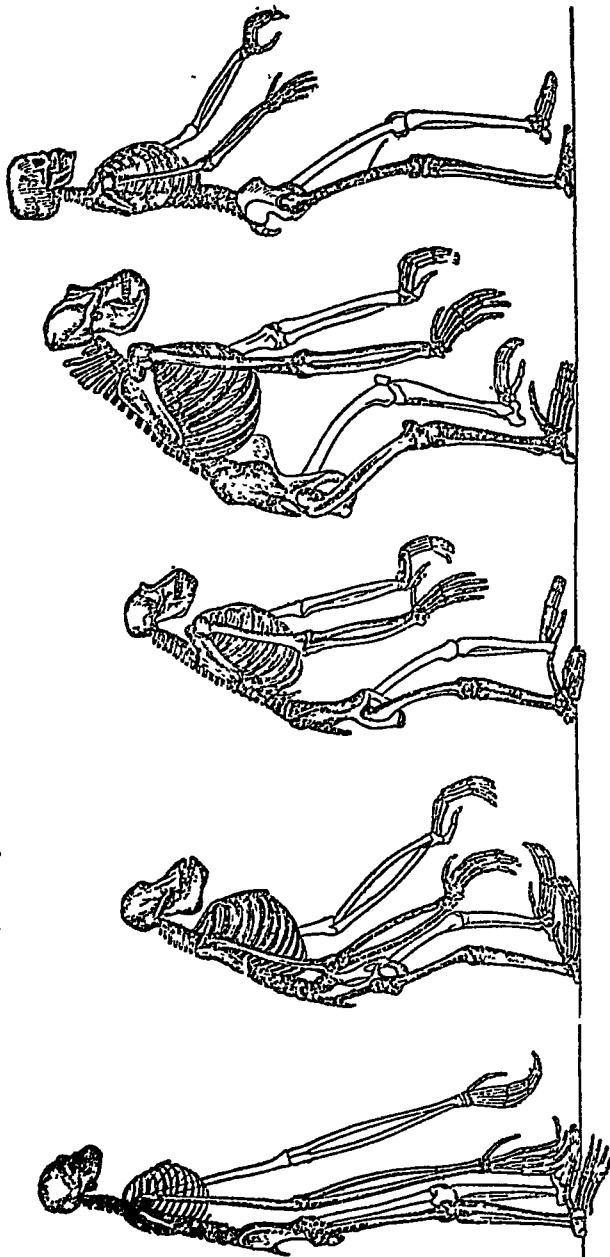
From Huxley's Man's place in Nature and other Anthropological essays, by kind permission

मनुष्य के मस्तिष्क की बनावट अन्य जानवरों के मस्तिष्कों की बनावट से अधिक विचित्र है; उसका भार भी कहीं ज़्यादा होता है;* देखो, चित्र (६, ७, ८, ९, १०) उसमें सोचने विचारने, पढ़ने लिखने इत्यादि के केन्द्र अन्य जानवरों की अपेक्षा बड़े और उत्तम प्रकार के होते हैं। मनुष्य में अन्य प्राणियों से अधिक बुद्धि होती है; जो काम और जानवर नहीं कर सकते वे काम वह कर सकता है। अन्य प्राणी किसी विषय पर अपने मन में वादविवाद करके उस विषय को निर्णय नहीं कर सकते, मनुष्य में इस प्रकार की शक्ति खूब है। इस बुद्धि के कारण मनुष्य अन्य प्राणियों पर हावी रहता है। वह अपनी बुद्धि से शेर को, जंगली हाथी को, ह्वेल को उन से कहीं बल-हीन होने पर भी सहज में पकड़ कर अपने क़ाबू में कर लेता है।

चित्र १, २, ३, ४ को देखने से स्पष्ट होता है कि मनुष्य के शरीर की बनावट अन्य प्राणियों के शरीर की बनावट की तरह है। उसकी चित्तवृत्तियाँ भी वैसी ही हैं। दूसरे को मारना, पीटना, चीज़ झपट लेना, खा जाना, चकमा देना, हमेशा स्त्री या पुरुष की खोज में रहना और मैथुन की इच्छा करना, क्रोद्ध करना। जहाँ मनुष्य में अन्य प्राणियों से बुद्धि अधिक है वहाँ छल और कपट भी अधिक है। कहना

---

* मनुष्य के मस्तिष्क का भार			१३८० माशे
गोरिल्ला	”	” ”	६०० ”
चिम्पानज़ी	”	”	४५० ”
घोड़ा	”	”	६५० ”
बैल	”	”	५०० ”
सुअर	”	”	१२५ ”
कुत्ता	”	”	७० ”

चित्र २ नारी गोरिल्ला नाम का वनमानुष मनुष्य की तरह चल फिर सकता है

From Haeckel's Evolution of Man, by kind permission
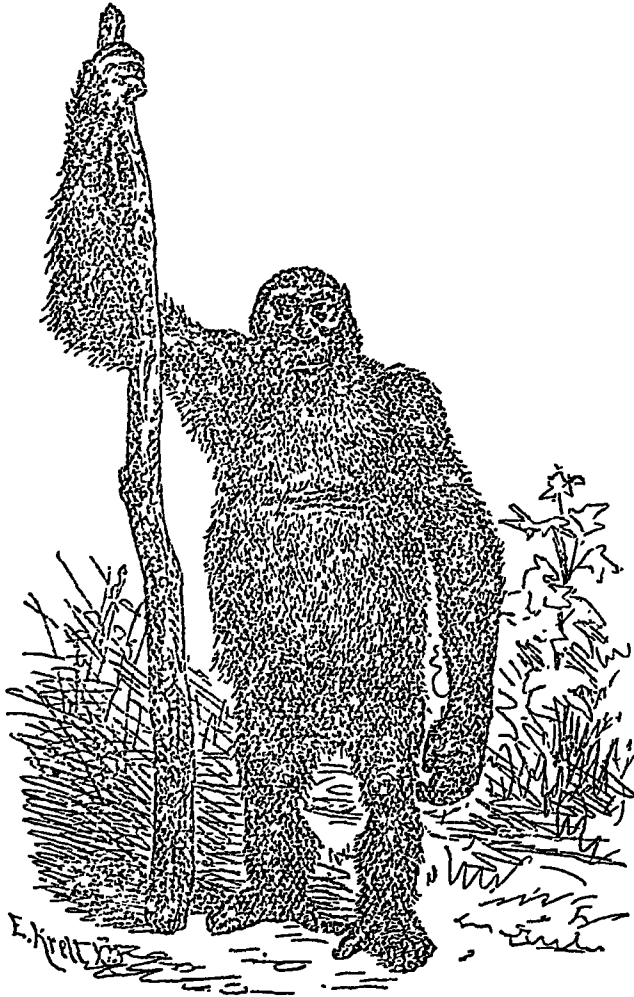
कुछ, करना कुछ। कहना कि मैं यह काम तुम्हारे फ़ायदे के लिए

चित्र ३

नारी चिम्पानजी नामक वनमानुष मनुष्य की तरह चल फिर सकता है

From Haeckel's Evolution of Man, by kind permission

चित्र ४ गंजा नारी चिम्पानजी—मनुष्य से मिलता-जुलता चेहरा
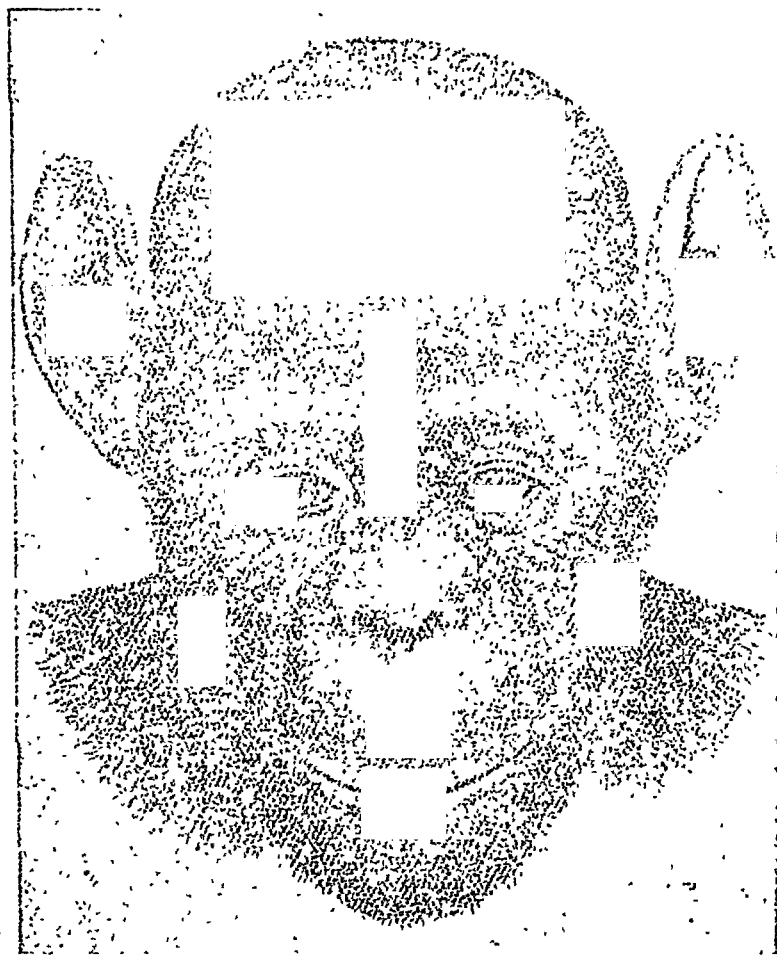
From Haeckel's Evolution of Man, by kind permission

करता हूँ चाहे वह काम वास्तव में अपने फ़ायदे के लिये ही क्यों न

चित्र ५ चिम्पानजी चम्मच से भोजन खा रहा है
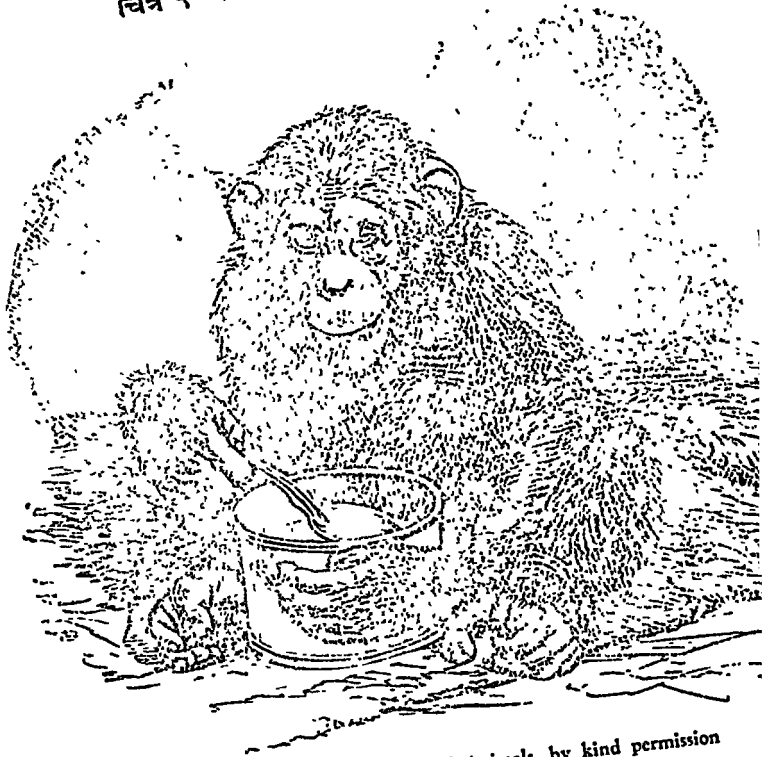
From Davis's Natural History of Animals, by kind permission

हो। यह बात राज्य शासन की व्यवस्था को देखने से खूब समझ में आती है।

जब एक क़ौम दूसरे पर राज्य करती है तो यदि गुलाम क़ौम भूखी भी मरी जाती हो तब भी राज्य करनेवाली क़ौम यही कहती है कि

चित्र ६ कुत्ते का मस्तिष्क
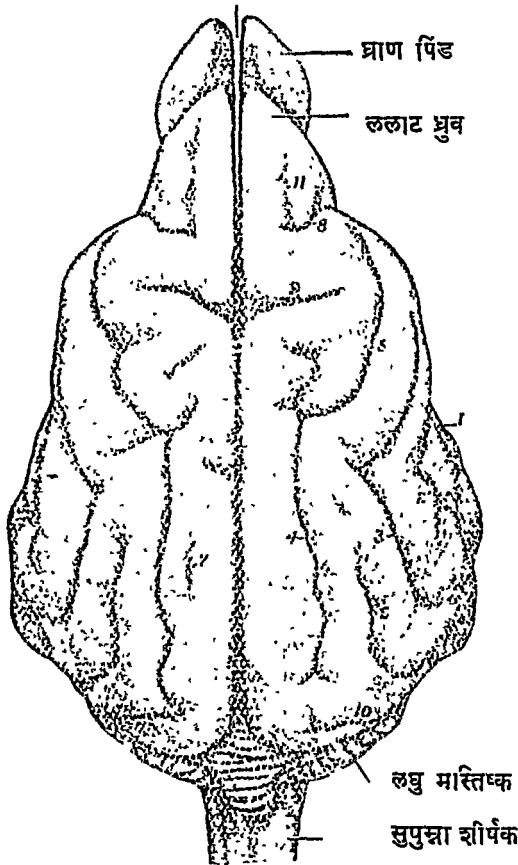
From Sisson's Anatomy of the Domestic Animals, by kind permission

सामान्य भार ६०—७० माशा

नर मनुष्य के मस्तिष्क का भार १३८० माशे

चित्र ३ कुत्ते का मस्तिष्क [illegible] हुआ
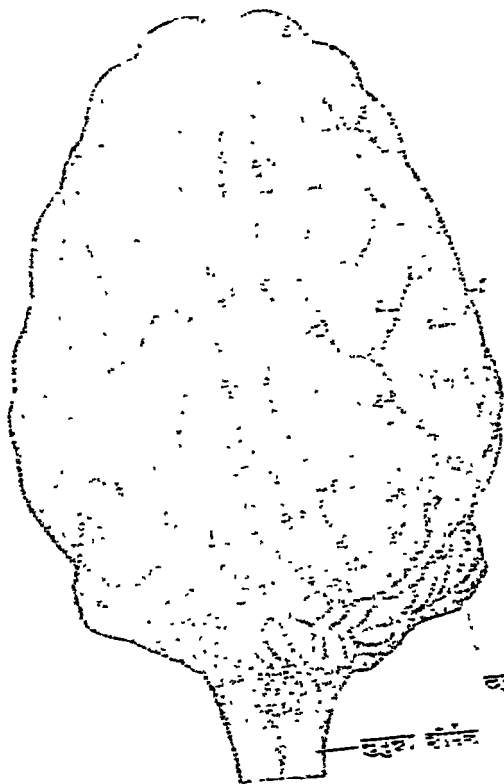
From Sisson's Anatomy of the Domestic Animals, by kind permission

मस्तिष्क भार=१२५ ग्राम

नर मनुष्य के मस्तिष्क का भार १३८० ग्राम

चित्र ८ बैल का मस्तिष्क
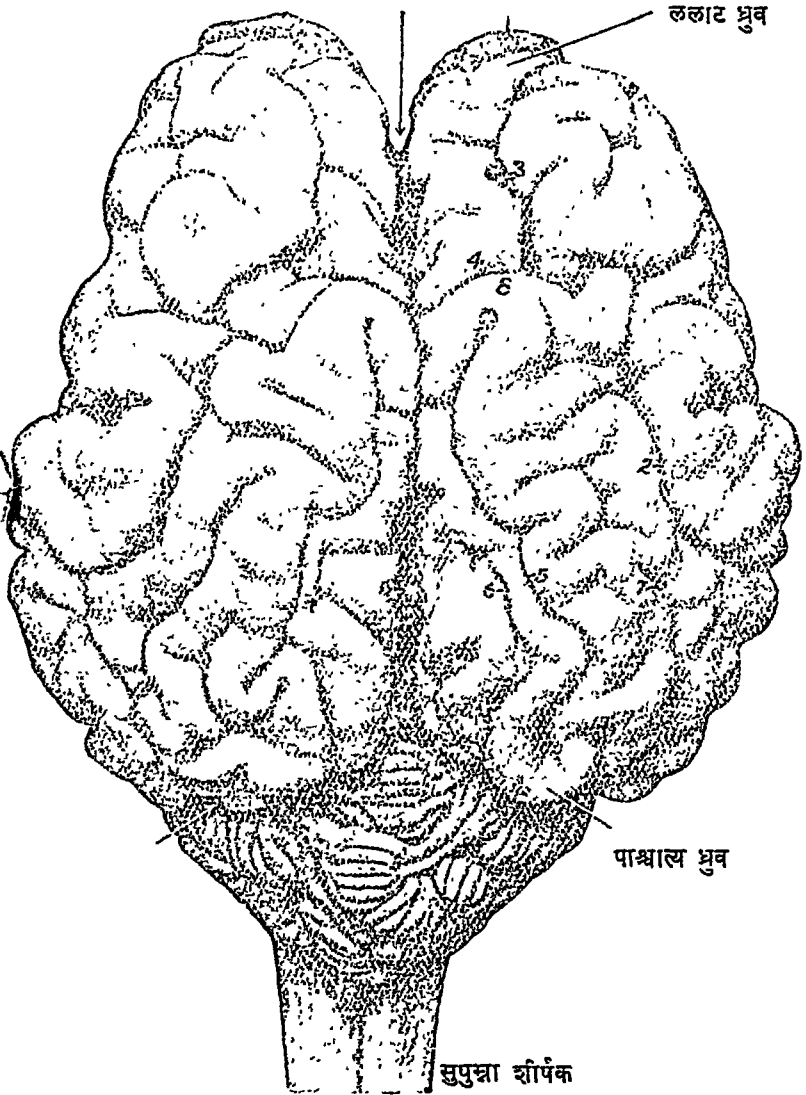
चित्र ९ घोड़े का मस्तिष्क
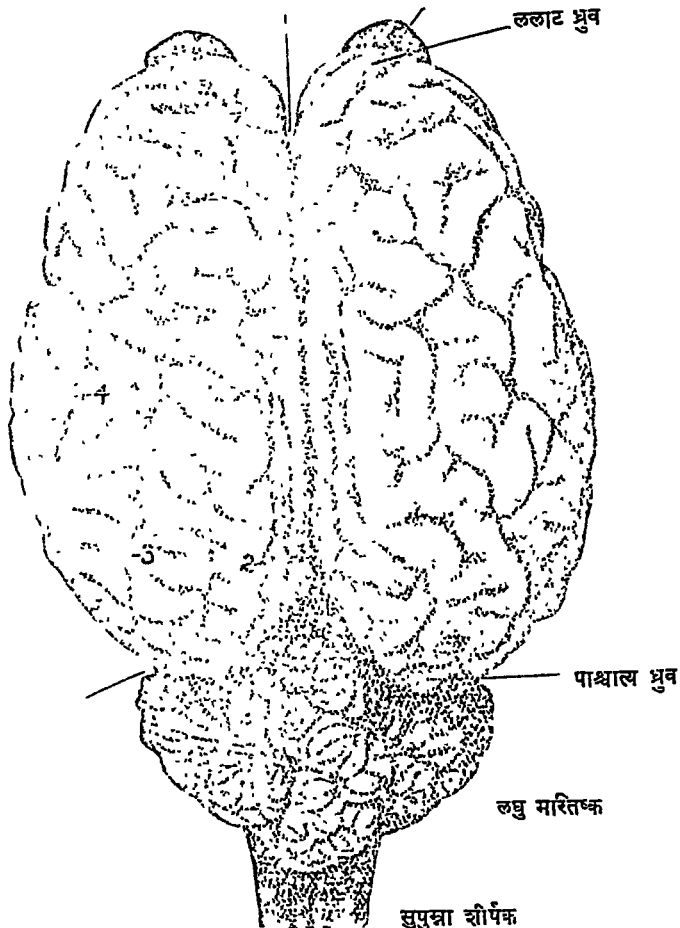
From Sisson's Anatomy of the Domestic Animals, by kind permission

सामान्य भार ६५० माशा

नर मनुष्य के मस्तिष्क का भार १३८० माशे

यह काम अर्थात् भूखा मारना उस क़ौम के फ़ायदे के लिये ही है।

चित्र ५ से विदित है कि चिम्पानज़ी भी चम्मच से खाना, चाय पीना सीख सकता है। सर्कस में चिम्पानज़ी कोट पतलून पहनना, हैट लगाना, कुर्सी पर बैठना, सिग्रेट पीना, छूरी काँटे और चम्मच से भोजन खाना, कम्मोड पर बैठ कर हगना, कपड़े उतार कर पलँग पर सो जाना इत्यादि काम दिखलाता है। बाँदर और रीछ नाचना, पैसा माँगना, खुशामद करना, अपनी स्त्री को प्यार करना, उस पर गुस्सा करना इत्यादि काम सीख जाते हैं। तोता और मैना बहुत से काम मनुष्य की तरह कर सकते हैं। उनमें सीखने, याद रखने और फिर सिखाई हुई बात को दुहराने या देखी हुई बात को कह देने की शक्ति है। बैय्या की बराबर मनुष्य घोंसला बना ही नहीं सकता। शहद की मक्खी की तरह मनुष्य घर नहीं बना सकता। चींटियों की तरह राज्य करना भी उसके लिये कठिन है। लोग कहते हैं कि इन जानवरों में बुद्धि नहीं होती, ये सब काम बिना बुद्धि के ही होते हैं। हमारे पास इस बात को जानने का कोई साधन ही नहीं है। हमारी राय में ये सब काम बुद्धि द्वारा ही होते हैं। अपने आपको और जानवरों से बड़ा कहने के लिये हम उन जानवरों की बुद्धि का जो कुछ चाहे नाम धर दें। इससे क्या होता है?

उपरोक्त से हमारा कहने का मतलब यह है कि मनुष्य के जीवन में जितने भी काम होते हैं वे अन्य जानवरों की तरह ही होते हैं। कोई बात कम है कोई ज़्यादा। मनुष्य की दृष्टि इतनी तेज़ नहीं जितनी कि उक़ाब, चील वा अन्य चिड़ियाओं की; मनुष्य की सुनने की शक्ति उतनी तेज़ नहीं जितनी जंगल में रहनेवाले खरगोश, शेर, बिल्ली, हिरन इत्यादि जानवरों की; मनुष्य की आवाज़ उतनी दूर नहीं पहुँच सकती जितनी शेर की दहाड़; उसकी स्पर्श शक्ति भी

चित्र १० मनुष्य का मस्तिष्कः भार १३८० माशे

चित्र ११ चिम्पांजी का मस्तिष्कः औसत भार ४७० माशे
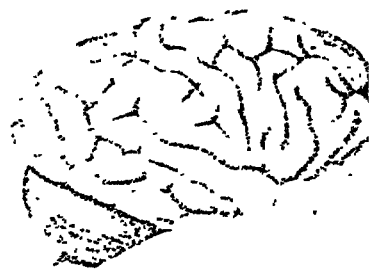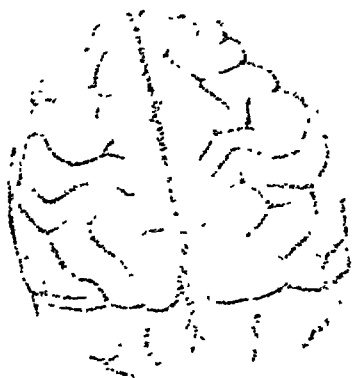
After William Leche

बहुत से जानवरों से कहीं कम है। उसमें शारीरिक बल भी घोड़े,

शेर, हाथी इत्यादि से कम है। उसकी पाचन-शक्ति भी कम है। जहाँ ये बातें कम हैं, वहाँ दूसरी ओर देखने से मालूम होता है कि उसमें बुद्धि और जानवरों से कहीं अधिक है; उसमें चीज़ों को बनाने, बिगाड़ने, पढ़ने-लिखने की शक्ति है। बुद्धि अधिक है तो उसमें कपट भी अधिक है। अपनी बुद्धि और कपट से वह अन्य जानवरों पर हावी रहता है।

सृष्टि के दो नियम

सब जानवरों के शरीर की बनावट एक ही जैसी है (चित्र १—११)। उनके अंगों के कार्य्य भी एक ही जैसे हैं। इसलिये वे सब एक ही प्रकार के नियमों से बँधे हुए हैं। चाहे बंदर हो चाहे चिड़िया; चाहे सर्प हो चाहे सुअर; चाहे मनुष्य हो चाहे गीदड़—नियम सब के लिये एक ही हैं और इन नियमों का पालन करना सब के लिये बराबर आवश्यक है। इन नियमों का उलंघन हुआ और आफत आई। ये नियम इस प्रकार हैं:—

(१) अपने शरीर की रक्षा के लिये अर्थात् अपना जीवन क़ायम रखने के लिये यत्न करना।

(२) अपनी तरह और व्यक्ति बनाने का यत्न करना और उनकी रक्षा का पूरा प्रबन्ध करना।

पहला आत्म रक्षा का नियम है; दूसरा स्वजाति रक्षा का। सभ्यता के आरम्भ से अब तक जितने क़ानून मनुष्य ने बनाये हैं वे सब इन्हीं दो नियमों पर निर्भर हैं।

आत्म रक्षा के साधन

ये हैं:—

भोजन प्राप्त करने का यत्न करना; उसको भली प्रकार पचाना जिस से शरीर का वर्धन हो। भली प्रकार शरीर से मल मूत्र त्यागना

और अनावश्यक और हानिकारक चीज़ों को शरीर से निकालना; काम करने से जो थकावट हो उसको आराम करके दूर करना; वस्त्र इत्यादि द्वारा शरीर को गर्मी सर्दी से बचाना। संसार में जितने काम मनुष्य करता है वह मुख्यतः आत्म रक्षा के लिये ही करता है। खेत जोतना, गाय बकरी पालना, मुर्गी पालना, मछली पकड़ना, शिकार खेलना। तरह तरह की सुखदायक चीज़ें बनाना और उनके

चित्र १२ आत्म रक्षा
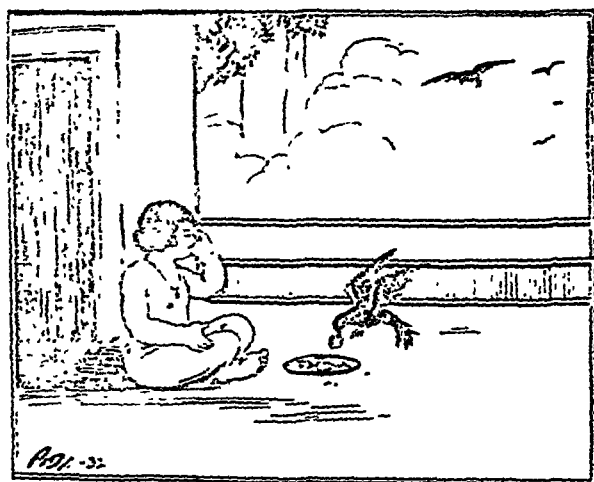
आत्म रक्षा के लिये कौवा बालक का भोजन उसके सामने से उठाये लिये जाता है

बदले उन लोगों से जो ये चीज़ें नहीं बना सकते भोजन व चीज़ें जैसे गेहूँ, गोश्त, फल प्राप्त करना। यदि दूसरे देश में भोज

का सामान मौजूद है और अपने देश में कम है तो दूसरे देश वालों से युद्ध करके उनका माल छीन लेना। यदि ध्यान से जांच की जावे तो मालूम होगा कि जितने युद्ध इस संसार में आदि सृष्टि से अब तक हुए हैं या होंगे उन सब का मूल कारण भोजन प्राप्ति ही है। भोजन को प्राप्त करना हर एक प्राणि के लिये परमावश्यक है; जो कुछ काम भी वह उसके प्राप्त करने के लिये करता है वह सब जायज़ है; उसमें ईमानदारी और बेईमानी का कोई प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता और न होना चाहिये। जो लोग इस प्रश्न को उठाते हैं वे या तो महा मूर्ख हैं या कपटी हैं। पाठक क्षमा कीजिये, यह वैज्ञानिक पुस्तक है और वैज्ञानिकों का धर्म है कि वे निडर होकर जिस बात को सत्य समझें उसको अवश्य लिखें।

भारतवर्ष पर जितने आक्रमण अब तक हुए हैं; पाश्चात्य लोगों के जितने हमले आज तक हुए हैं वे सब आत्म रक्षा अर्थात् भोजन प्राप्ति के लिये हुए। आप कह सकते हैं कि लोग हीरे जवाहरात सोना चाँदी लेने आये। पाठक याद रखिये कि इन चीज़ों की क़दर उसी हिसाब से है कि जिस हिसाब से ये भोजन प्राप्त करा सकें। एक रुपये का १० सेर गेहूँ मिलता है तो एक अशर्फ़ी का १६० सेर मिलेगा। इसीलिये सोना सब पसंद करते हैं—थोड़ी सी चीज़ परन्तु अधिक भोजन प्राप्त करावे। यदि सोने के बदले भोजन न मिल सके तो इसको कोई भी अपने पास न रखना चाहे।

सृष्टि का दूसरा नियम—स्वजाति रक्षा

इसका मुख्य साधन है सन्तान उत्पन्न करना। सबसे नीची सृष्टि को छोड़कर सन्तान मैथुन द्वारा अर्थात् नर और नारी के मेल से ही होती है। मैथुन या बिना मैथुन के सन्तान उत्पन्न करना और जो सन्तान उत्पन्न हो उसके जीवित रहने का उपाय करना अर्थात् नियम

नं० १ का पालन करना—इसी को स्वजाति रक्षा कहते हैं। इस नियम (स्वजाति रक्षा) के पालन के लिये सब स्वस्थ प्राणि मैथुन की इच्छा रखते हैं। नर नारी को और नारी नर को तलाश में रहती हैं। कुत्ता कुतियों के पीछे दौड़ता है; साँड़ गाय के पीछे। बकरा बकरी की खोज में फिरता है; पुरुष स्त्री की तलाश में। जिस प्रकार नर नारी की तलाश में रहता है उसी प्रकार नारी भी नर की तलाश में रहती है। यदि नारी एक है और नर एक से अधिक तो उस नारी को लेने के लिये अर्थात् उससे मैथुन करने के लिये नर आपस में युद्ध भी करते हैं और जो उनमें से सबसे बलवान होता है वही नारी के साथ सहवास कर सकता है और सन्तान उत्पन्न कर सकता है। जो बलहीन है उसको दूसरी नारी की खोज करनी पड़ती है या इन्तज़ार करना पड़ता है उस समय तक कि जब तक वही नारी बच्चा जनकर फिर मैथुन के योग्य न हो जावे। कुत्ते कुतिया, मुर्ग़ा मुर्ग़ी, साँड़ और गाय का दृश्य हर रोज़ सड़क पर दिखाई देता है। कुत्ते आपस में लड़ते हैं, साँड़ एक दूसरे से युद्ध करते हैं; एक मुर्ग़ा दूसरे से बड़े ज़ोर से युद्ध करता है—यह सब नारी को ग्रहण करने और उससे मैथुन करने के लिये। जहाँ कोर्टशिप* का रिवाज है वहाँ एक स्त्री के पीछे कई कई पुरुष फिरते नज़र आते हैं। जिन देशों में स्त्रियाँ और पुरुष बराबर आज़ाद हैं वहाँ स्त्रियाँ भी पुरुषों की खोज में फिरती दिखाई देती हैं।

नर या नारी को ग्रहण करने के लिये जो युद्ध होता है वह जहाँ तक मनुष्य जाति का सम्बन्ध है वह हमेशा हाथा पाई या शारीरिक

*अंग्रेज़ी शब्द Courtship=विवाह करने की इच्छा से कन्या और कुमार का मेलजोल

बल की आज़मायश से नहीं होता। युद्ध के साधन बहुत से हैं—बुद्धि-चतुराई, खूबसूरती, चाल ढाल, बोल चाल, रहन सहन, पोशाक, दूसरों को ललचाने लुभाने की शक्ति, बहादुरी, धन की शक्ति, मैथुन की शक्ति इत्यादि।

मोर मोरनी को अपने खूबसूरत परों से ललचाता और लुभाता है। स्त्री अपनी खूबसूरती, पोशाक, चाल ढाल, ज़ेवर, बोल चाल, गाना बजाना, सीना, काढ़ना, भोजन बनाने इत्यादि से लुभाती है। धनी पुरुष स्त्रियों को अपने धन से ललचाता है; बहादुर या खिलाड़ी पुरुष अपने खेल और बहादुरी से स्त्रियों को मोह लेता है। बहुत सी स्त्रियाँ अपनी विद्या से पुरुषों को ललचा लेती हैं; बहुत सी अपने गायन शक्ति द्वारा।

नर और नारी के प्रेम का मुख्य अभिप्राय नियम नं० २ का पालन करना ही है। और यह होता है सहवास अर्थात् मैथुन से। कपट के कारण पुरुष और स्त्री बहुधा अपने मुँह से यह बात नहीं कहते या कहना बुरा समझते हैं। 'प्रेम' के अपारदर्शक परदे से असली बात को छिपा देते हैं।

वैसे तो नर और नारी दोनों ही एक दूसरे की तलाश करते हैं, आम तौर से नर ही अधिक खोज करता है और चूंकि उसका काम शीघ्र ही ख़तम हो जाता है वह बहुधा एक बार एक नारी को गर्भित करके फिर दूसरी नारी की तलाश में रहता है। कुत्ता, साँड़, बकरा और बहुधा मनुष्य की भी आदतें सब ही जानते हैं। अकसर गर्भ-स्थिति के पश्चात् नर और नारी दोनों होने वाली सन्तान के पालन पोषण का बन्दोबस्त करते हैं और जब तक सन्तान न हो जावे और अपने भोजन का स्वयं बन्दोबस्त करने योग्य न हो जावे उस वक्त तक एक दूसरे के साथ रहते हैं (जैसे चिड़िया, मनुष्य)। नारी के

जीवन को देखकर उसको प्राप्त करने की इच्छा कभी कभी इतनी प्रबल होती है कि इस संसार में बड़े-बड़े युद्ध हो गये हैं। क्या मुसलमान बादशाहों की राजपूतों पर कई चढ़ाइयाँ इसी कारण नहीं हुईं। क्या रावण और राम का युद्ध नारी की बदौलत ही नहीं हुआ।

सांसारिक संग्राम

संसार में जितने युद्ध हुए हैं या हो रहे हैं या भविष्य में होंगे उनका मूल कारण उपरोक्त दो नियमों का पालन करना है। अपनी जान बचाने के लिये अर्थात् पेट भर कर अपने शरीर का पोषण करने के लिये सब लोगों को परिश्रम करना पड़ता है। मनुष्य खेत जोत कर, सींचकर नरा कर गल्ला पैदा करता है और मुर्गी, बकरी, गाय आदि जानवर पालकर उनसे अपने खाने के लिये अंडे, गोश्त, घी, दूध प्राप्त करता है। जो ज़्यादा परिश्रम कर सकता है वह अच्छा और ज़्यादा भोजन प्राप्त कर सकता है; जो लोग परिश्रम पसंद नहीं करते या जिनके पास साधन नहीं हैं वे होले, कपट, चोरी, डकैती से दूसरे का माल छीन लेने की फिक्र करते हैं। खाने की चीज़ें सब जगह बराबर पैदा नहीं होतीं। जैसे जानवर भोजन की तलाश में सैकड़ों मील चले जाते हैं वैसे मनुष्य भी भोजन की तलाश में सैकड़ों, हज़ारों मील जंगलों और रेगिस्तानों और समुद्रों को पारकर के निकल जाता है। युरोप के लोग अमरीका, भारतवर्ष, अफरीका, ऑस्ट्रेलिया इत्यादि देशों में पहुँचे—केवल भोजन प्राप्त करने के लिये। हिन्दुस्तानी भी अफरीका, अमरीका, इत्यादि देशों में केवल भोजन प्राप्ति के लिये फैले हुए हैं। मुसलमानों और ईसाइयों के आक्रमण जो भारतवर्ष पर हुए वे सब भोजन प्राप्ति के लिए।

खाने पीने की चीज़ें भी सब देशों में उतनी और उस प्रकार की और उस मात्रा में नहीं पैदा होतीं कि जितनी कि वहाँ के रहने वालों

को चाहियें। कुछ चीज़ें कहीं पैदा होती हैं कुछ कहीं। किसी देश में ज़रूरत की कोई चीज़ पैदा होती है जैसे पत्थर का कोयला, मिट्टी का तेल, पेट्रोल, लोहा; कहीं हीरे जवाहरात, सोना, चाँदी होते हैं; कहीं गेहूँ, चावल, फल इत्यादि व-कसरत पैदा होते हैं। एक देश वाले दूसरे देश वालों से चीज़ों का अदला बदला कर लेते हैं।

किसी देश की जलवायु अच्छी होती है; वहाँ पर उन देश के आदमी जहाँ जलवायु अच्छा नहीं, जा बसते हैं। जब एक देश में आदमी ज़्यादा होते हैं और उन लोगों को किसी दूसरे अच्छे देश का पता लगता है तो वे वहाँ जा बसते हैं और रहने लगते हैं; यदि वहाँ के रहने वालों को नागवार मालूम हुआ तो युद्ध करके ज़बरदस्ती उन की ज़मीन और माल अपने कबज़े में कर लेते हैं। यदि विजय न हुई तो फिर अपने देश को लौट आते हैं और फिर तैयारी करके दूसरे तीसरे चौथे आक्रमण में अपना कबज़ा जमाते हैं। जब एक देश में सब प्रकार के आराम मिलते हैं तो वहाँ के लोग आलसी हो जाते हैं; दूसरे देश के लोग जो कम आराम के कारण फुरतीले रहते हैं उन आलसी लोगों को तुरंत आ दबाते हैं। ऐशोअशरत (सुख) का अंतिम परिणाम गुलामी (परतंत्रता) ही है।

उपरोक्त से विदित है कि पेट भरने के लिये लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं। एक मुल्क का दूसरे मुल्क से सम्बन्ध मुख्यतः भोजन के लिये ही होता है। एक देश दूसरे देश पर आक्रमण भी पेट भरने के लिये ही करता है। हर शख़्स न केवल अपना पेट भरना चाहता है प्रत्युत यह भी चाहता है कि केवल आज ही पेट न भरे बलिक कुछ दिनों का सामान उस के पास जमा रहे ताकि जब ज़रूरत हो काम आवे। यही नहीं यह सामान जितना उत्तम हो उतना ही अच्छा है—ज़बान का ज़ायक़ा इस बात के लिये मजबूर करता है।

व्यक्तियों के समूह से ही एक जाति या क़ौम बनती है। जो प्रत्येक व्यक्ति चाहता है वही प्रत्येक क़ौम चाहती है। ये सब काम आत्म रक्षा के लिये हैं। जो कुछ व्यक्ति अपने लिये चाहता है वही अपने सन्तान के लिये भी चाहता है। इस प्रकार देश की आवश्यकताएँ बहुत अधिक हो जाती हैं। पेट भरने के लिये युरोपनिवासी ६ हज़ार मील से भारतवर्ष में आते हैं। पेट भरने के लिये ही हज़ारों भारतवासी अपनी जन्मभूमि छोड़कर अमरीका, अफरीका और आस्ट्रेलिया जाते हैं। प्राचीन काल में बहुत सी क़ौमों ने भारतवर्ष पर आक्रमण किये—पेट भरने के लिये ही। जितने युद्ध अब तक हुए या भविष्य में होंगे वे सब आत्मरक्षा और स्वजाति रक्षा ही के लिये। जब पेट पालन और सन्तान उत्पत्ति वा सन्तान पालन का प्रश्न सामने आता है उस समय ईमान्दारी और बेईमानी में कोई भेद नहीं रहता। अँग्रेज़ी भाषा में एक कहावत है "एवरीथिंग इज़ फेयर इन लव एंड वार"* इसका अर्थ है प्रेम और युद्ध में हर एक बात जायज़ है। भूख लगती है तो कुछ नहीं सूझता जहाँ से मिलता है भोजन लेकर पेट भरा जाता है। जब एक क़ौम को भूख लगती है तो वह दूसरी क़ौम का भोजन हड़प कर जाती है। किसी क़ौम ने दूसरी क़ौम पर आक्रमण करते समय ईमान्दारी या बेईमानी का प्रश्न नहीं उठाया। जब उसने दूसरी क़ौम को दबा लिया तो उस क़ौम से कहा कि देखो जो कुछ हमने किया ठीक किया—यदि तुम हम से न लड़ते अर्थात् तुम अपना तन मन धन हमारे अर्पण करते तो हम तुम को तनिक भर भी हानि न पहुँचाते। पाठक, इस सब बात का तात्पर्य यह है कि इस संसार में केवल दो ही नियम काम करते हैं:—

---

* Every thing is fair in love and war.

चाहे दूसरे की जान जावे परन्तु अपना पेट खाली न रहे। दूसरे की सन्तान नष्ट हो जावे अपनी सन्तान बनी रहनी चाहिये। इन अटल नियमों के सामने मनुष्य के बनाये हुए ईमान्दारी और बेईमानी के नियम नहीं चलते। इस संसार में "जिसकी लाठी उसीकी भैंस" का नियम ही चलता है। चाहे व्यक्ति हो चाहे व्यक्ति समूह जिसे क़ौम या जाति कहते हैं, बात सब एक ही है। चाहे काली क़ौम हो चाहे गोरी, चाहे पीली हो और चाहे साँवली सब लोग एक ही सा बरताव करते हैं।

बल ही सत्य है

मैं कहता हूँ कि जब पेट भरने का प्रश्न आता है तो ईमान्दारी, बेईमानी, हक़, नाहक़ का प्रश्न एक दम उन्क़ा हो जाता है। किसी विधि से हो, चाहे दूसरे को दुःख देकर चाहे बिना दुःख दिये अपने जीने के लिये और जहाँ तक हो सके अपने शरीर को सुख पहुँचाने के लिये यथाशक्ति प्रबन्ध सब ही लोग (यदि वे बुद्धि-हीन नहीं हैं) करते हैं। मज़े की बात तो यह है जो बलवान हैं वे दूसरों को दुःख भी पहुँचाते हैं, उन को भूखा भी मारते हैं, उन का माल भी छीनते हैं, ऐसा यत्न करते हैं कि वे और दुर्बल हो जावें, तिस पर भी खुल्लमखुल्ला यह कहते हैं कि हमने जो कुछ किया वह अपने लिये नहीं बल्कि तुम्हारे लिये। अन्य बलवान लोग इन बलवानों की प्रसंशा करते हैं और पराधीन को हिकारत की निगाह से देखते हैं।

प्रिय पाठक! ज़रा इतिहास पर नज़र डालिये और देखिये कि जो कुछ मैं कहता हूँ वह सोलह आने सत्य है कि नहीं। इस संसार में कमज़ोर की आपत्ति है। यदि आप प्राणिवर्ग पर नज़र डालें तो देखेंगे कि जब किसी को मौक़ा मिल जाता है तो बलवान या शस्त्र सहित प्राणि कमज़ोर शस्त्र-हीन प्राणि को दबा लेता है यही नहीं

बल्कि उस को खा भी जाता है। क्या आपने नहीं देखा कि छिपकली किस प्रकार सैकड़ों पतंगों को हड़प कर जाती है; साँप चूहे और मेंडक को निगल जाता है; बड़ा साँप छोटे साँप को; शेर बकरा इत्यादि और कभी कभी मनुष्य को भी मार खाता है। पानी में बड़ी मछली छोटी मछलियों को और अन्य छोटे जानवरों को हड़प कर जाती है। घड़ियाल और नाकू तो आदमी को भी नहीं छोड़ते। जब हम आदम शरीफ़ (मनुष्य) की ओर नज़र डालते हैं तो यह महाशय सब जानवरों के गुरु दिखाई देते हैं। कोई चीज़ इन से छूटी नहीं है। यदि जानवरों को ज़िन्दा ही खा जाने की शक्ति आजकल नहीं है फिर भी तीर कमान, गुलेल, तलवार, बन्दूक इत्यादि द्वारा यह अन्य जानवरों को मार कर अपना पेट भरता है। उन की खाल से अपना बदन ढाँकता है। उन के बालों से अपने ओढ़ने बिछाने के लिये कपड़े बनाता है। जानवरों के पर टोपों में लगाये जाते हैं; तकियों और लिहाफों और रज़ाइयों में भरे जाते हैं; स्त्रियाँ उन की बारीक बाल वाली खालों को जिस को 'फ़र'* कहते हैं गरदन में डालती हैं या जाड़े में उस से अपने हाथ ढँक कर अपनी शोभा बढ़ाने का यत्न करती हैं।

हज़रत आदम की औलाद और जानवरों को केवल अपना पेट भरने के लिए और अपने आप को मेंह और सरदी से बचाने के लिये ही नहीं मारती, वह कल्पित देवी देवताओं, अल्लामियाँ, परमेश्वर, खुदा को खुश करने के लिये उन की क़ुर्बानी भी करती है। किसी जानवर की जान जावे, मनुष्य अपना पेट भरे और कहे कि यह काम अल्लामियाँ को खुश करने के लिये किया गया। यह कितने

चित्र १३   जीवन के लिये संग्राम
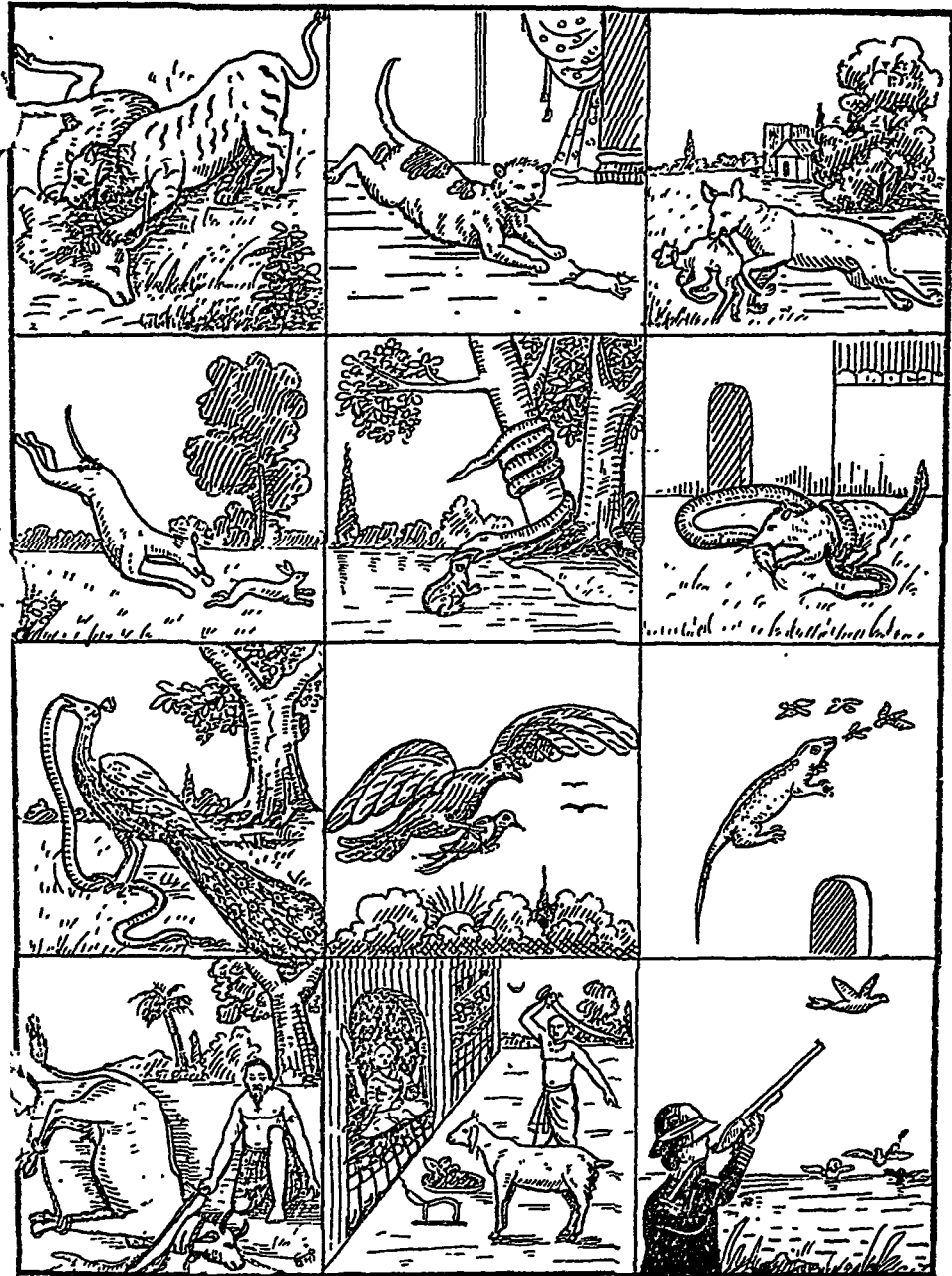
इस संसार में प्राणियों में आपस में हर समय युद्ध होता रहता है

कपट की बात है ! यदि मनुष्य कुर्बानी न करे तब भी उस को कोई नहीं कह सकता कि उस ने जानवर को क्यों मारा। वह क्यों देवी देवता, अल्ला और परमात्मा की शरण ढूँढता है। सत्य तो यह है कि वह आत्मा रक्षा और स्वजाति रक्षा के नियमों से जकड़ा हुआ है। जब तक उस में सोचने विचारने दलील करने की शक्ति कम थी अर्थात् जब तक वह पूरा वहशी था उस को किसी बात का डर न था; जब कुछ कुछ सभ्य हुआ, उस की चित्त वृत्तियाँ अन्य जानवरों की अपेक्षा अधिक बढ़ीं तब उस ने अपने कामों को जायज़ समझने के लिये कल्पित शक्तियों की शरण ढूँढी।

संसार एक रंगभूमि है

संसार एक रंगभूमि है। इस में सदा ही युद्ध हुआ करते हैं। क्षण भर को भी शान्ति नहीं। शान्ति कैसे हो। शान्ति तो मृत्यु का चिन्ह है। केवल मुर्दा ही शांत और चुपचाप पड़ा रहता है। शान्ति जीवन का लक्षण है ही नहीं। जीवन का मुख्य लक्षण है गति या अशान्ति। चाहे हम सोवें चाहे जागें हमारे शरीर में गति होती रहती है, हृदय धड़कता रहता है, फुप्फुस स्वांस लेते रहते हैं, आँतों में आकुंचन होता रहता है, शरीर की नन्हीं से नन्हीं सेल भी क्षण भर के लिये स्थिर नहीं रहती। परमाणुओं और अणुओं में एक विशेष प्रकार का आन्दोलन हर समय रहता है; तोड़ फोड़ और मरम्मत का काम हुआ करता है; पुरानी चीज़ों की जगह नई चीज़े बनती रहती हैं अर्थात् हमारे शरीर में एक प्रकार की अशान्ति या हल चल रहती है।

इस रंगभूमि में प्राणियों की लड़ाई रोज़मर्रा देखी जाती है। कुत्ते आपस में एक हड्डी के टुकड़े के पीछे लड़ते हैं; कुत्ता मुर्गी के पीछे झपटता है, बिल्ली चूहे की ताक में बैठी रहती है; चील और

बाज़ झट मौक़ा देख कर छोटी चिड़ियों या मछली या चूहे को उठा ले जाते हैं; मोर साँप को पकड़ लेता है; भेड़िये और शेर झट बकरी को उठा ले जाते हैं। मनुष्य हाथी, शेर, ह्वेल इत्यादि जानवरों का शिकार खेलता है। साहब लोग एक दिन में हज़ारों चिड़ियों को

चित्र १४ आत्मरक्षा
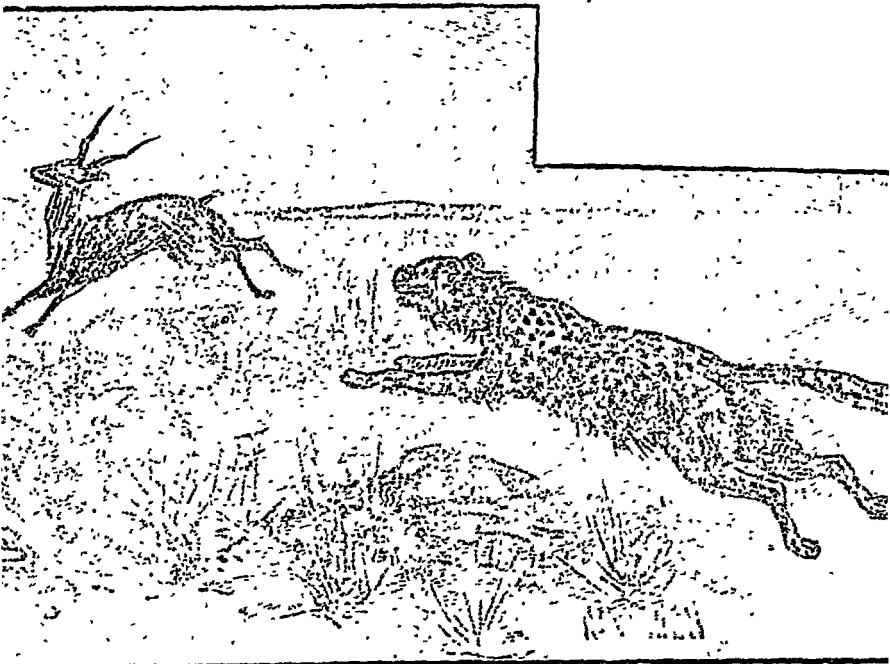
From Davis's History of Animals, by permission

आत्मरक्षा के लिये चीता हिरन के पीछे दौड़ रहा है ताकि उस को पकड़ कर खा जावे। इनसे उस का पेट भरेगा और फिर वह स्वजाति रक्षा का काम भी कर सकेगा। आत्मरक्षा के लिये ही हिरन अपनी जान बचा कर भाग रहा है ताकि वह भी फिर स्वजाति रक्षा कर सके

मार डालते हैं—ये और ऐसी ऐसी और बातें युद्ध नहीं हैं तो क्या हैं। युद्ध में केवल शारीरिक बल और बड़ा शरीर ही काम नहीं आता; अस्त्र, शस्त्र बुद्धि इत्यादि भी काम में आती हैं; मनुष्य शेर से बलहीन है परन्तु बुद्धि से काम लेता है और शस्त्रों की सहायता से न केवल शेर बल्कि हाथी और ह्वेल तक को मार डालता है। शेर के दाँत और उस के नाखून उस के शारीरिक बल की सहायता करते हैं; सर्प का विष उस को अपने से कहीं बड़े बड़े जानवरों पर हमला करने और विजय पाने में मदद देता है; हाथी अपने बोझ से शेर को दबा देता है। चतुराई और मक्कारी विजय पाने में बहुत सहायता देती हैं; आँख बचा कर चुपके से हमले किये जाते हैं; हमला करने वाला ऐसे समय की ताक में रहता है कि जब दूसरा व्यक्ति कम तैयार हो।

जो कुछ जानवर करते हैं वही मनुष्य और मनुष्यों के जत्थे जिन को [illegible] में कहते हैं करते हैं। असभ्य वहशी लोग अपने दुश्मन को न केवल मार ही डालते हैं बल्कि जानवरों की तरह उस को खा भी जाते हैं। एक जत्था दूसरे जत्थे को हराने और अपने आधीन रखने की कोशिश करता है। एक देश दूसरे देश निवासियों पर हमला करके उन का माल ताल छीनने का यत्न करते हैं। एक रंग के आदमी दूसरे रंग के आदमियों को नीचा समझते हैं और लड़ कर उन को अपना गुलाम बनाते हैं या उनका नाश करते हैं। जिस के पास अधिक बुद्धि है, जिसके पास अधिक शारीरिक बल है, जिस के पास भोजन की बहुतायत है, जिस के पास अस्त्र शस्त्र हैं; जिस के पास साहस है, जिन की संख्या अधिक है—वही कौम विजय पाती है और जब विजय पा लेती है तो दूसरी जाति का नाश का यथाशक्ति यत्न करती है। "अपना" और "पराया" यह स्वाभाविक है। बहुत से ऋषि, मुनि, साधु, सन्त, रसूल, नबी इस संसार में आये और चले

गये परन्तु इस युद्ध को कोई न मिटा सका। यह युद्ध प्राकृतिक और स्वाभाविक है। स्वाभाविक, प्राकृतिक नियमों को कौन मिटा सकता है।

जब से मनुष्य पैदा हुआ है वह हमेशा आपस में एक दूसरे से और अन्य प्राणियों से युद्ध करता चला आया है। युद्ध वहशी पन ही का गुण नहीं है। वहशी कौमें यदि लड़ती भिड़ती हैं तो सभ्य कौमें भी वैसा ही करती हैं। महाभारत के समय सभ्य भारतवासियों ने क्या किया; सभ्य यूनान वालों ने क्या किया; रोम वालों ने कैसे कैसे युद्ध किये। फ्रांसीसी और अंग्रेज़ों में; अंग्रेज़ों और अमरीकावालों में बहुत दिनों तक युद्ध हुए; फ्रेंच रिवोल्युशन की लड़ाइयाँ और १९१४-१८ का महा युद्ध अभी किसी को भूले नहीं। जिन कौमों ने इन लड़ाइयों में भाग लिया क्या ये कौमें अपने आप को सभ्य नहीं कहतीं! उपरोक्त से विदित है कि इसमें सन्देह नहीं कि यह संसार एक रंगभूमि है, यहाँ सब प्राणि एक दूसरे से लड़ते रहते हैं। लड़ाई का जहाँ तक सम्बन्ध है सभ्य और असभ्य सब ही बराबर हैं।

मनुष्य का अन्य प्राणियों से युद्ध (चित्र १५)

मनुष्य की जान हमेशा संकट में है। बड़े बड़े भयानक जीवों से उसका हमेशा सामना पड़ता रहता है। पृथिवी पर कहीं शेर है कहीं चीता है कहीं जंगली हाथी है; कहीं पागल कुत्ता, कहीं भेड़िया; कहीं साँप और कहीं बिच्छू, कहीं चूहा। बड़े बड़े जानवर ही उस की जान लेने को तैयार नहीं रहते, प्रत्युत छोटे छोटे प्राणियों से भी उस का हमेशा सामना रहता है। कहीं मच्छर काटने को तैयार है, कहीं मक्खी, कहीं चिंचली, कहीं फुदकु और कहीं पिस्सू। यही नहीं उसके शरीर में भी कीड़े घुस जाते हैं जैसे अंकुशा, केंचवा, चुमूना।

मनुष्य की जान हर समय संकट में है। गर्भ काल से मृत्यु तक उस को दुश्मन घेरे रहते हैं

बड़े जानवरों को तो वह देख सकता है और उन से बचने का उपाय कर सकता है, परन्तु असंख्य प्राणि इतने सूक्ष्म हैं कि वे साधारण आँखों से बिना यंत्रों की सहायता के दिखाई नहीं देते। ये भाँति भाँति के रोगाणु हैं—फोड़ा, फुन्सी, ज़ुखम, तपेदिक, हैज़ा इत्यादि रोग इन्हीं द्वारा होते हैं। इन मे भी अति सूक्ष्म रोगाणु हैं जो आज तक के बने यंत्रों से भी दिखाई नहीं देते—जैसे खसरा, रेचक इत्यादि के रोगाणु। प्राणिवर्ग को छोड़कर बहुत सी वनस्पतियाँ भी उसकी मृत्यु कर सकती हैं। प्राणियों और वनस्पतियों को छोड़कर धूप, जल, वायु भी उसकी जान ले लेने को तैयार रहते हैं। पानी में डूब जाना, पहाड़ों से गिर कर मर जाना, बरफ में दब जाना या अधिक शीत या लू लग कर मर जाना इत्यादि रोज़मर्रा देखा जाता है। अनेक प्रकार के यंत्र जो उस ने अपने आराम के लिये बनाये हैं अकसर उसकी मृत्यु का कारण होते हैं जैसे जहाज़, मोटर, रेल।

तात्पर्य्य यह है कि जिस दिन से गर्भ बनता है और वह जब तक माता के पेट में रहता है उस समय में भी उसकी जान जोखों में रहती है। (चित्र १५) जो रोग उसकी माता को होते हैं वह उसको भी हो सकते हैं। माता को चोट लगने से उसे हानि पहुँच सकती है। जब माता के शरीर से बाहर आता है तब बाहर आते समय उसको भाँति भाँति की हानियाँ पहुँच सकती हैं। कभी कभी उसकी मृत्यु भी हो जाती है। जन्म काल से मरते समय तक जब तक वह इस संसार में है उसका दुश्मनों से ही मुकाबला है ये दुश्मन जड़ हों चाहे चैतन्य (चित्र १५)।

राजा और प्रजा (चित्र १६)

समाज में या जन समूह में जो सब से बलवान होता है वह अन्य लोगों को अपने कबजे में रखता है या रखने की कोशिश करता है।
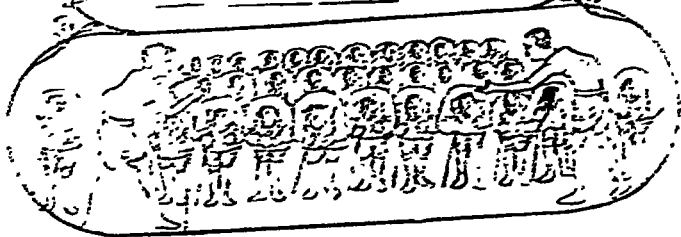
यह ज़रूरी नहीं है कि हमेशा बल शारीरिक बल ही हो। धन का बल हो सकता है, बुद्धि का बल हो सकता है, चतुराई का बल हो सकता है, कपट का बल हो सकता है। जैसी परिस्थिति हो उसके हिसाब से और उसके अनुसार बल होना चाहिये। सामान्यतः यदि बाहुबल के साथ साधारण चतुराई और मामूली धन इत्यादि सम्मिलित हैं तो बाहुबल वाला ही राज्य करता है। यह राजा या ज़बरदस्त अपने से कम बल वालों को दबा कर रखता है और ये कम बल वाले अपने से कम बलवालों को दबा कर रखते हैं। यहाँ तक कि सब से कम बलवाले मनुष्य बिलकुल दबे रहते हैं जैसा कि चित्र १६ से विदित है और जैसा कि हर शख्स जिसकी आँखों पर पट्टी नहीं बँधी है इस संसार में रोज़ देखता है।

बलवान पुरुष अपने तन, मन और धन की ताक़त से अपने को और जिनको वह अपना समझता है अच्छे से अच्छा भोजन और शरीर को सुख पहुँचाने वाले अच्छे से अच्छे साधन काम में लाता है। इस बलवान को इस बात की तनक भर भी परवाह नहीं कि उसके इन कामों से किसी व्यक्ति को कोई हानि पहुँचेगी या नहीं। जहाँ चाहे देख लो, इस संसार में पसीना बहा कर खेती करके फसल पैदा करने वाले व्यक्ति के पास सुख के सामान नहीं हैं; विपरीत इसके ज़मींदार, साहूकार, ताल्लुकेदार, लार्ड* इत्यादि के पास सुख के सब सामान हैं। कमज़ोर भूखे मरते हैं, बलवान और ज़बरदस्त मज़े उड़ाते हैं।

बलवान तरह तरह के क़ानून बनाता है और बलहीनों को आज्ञा देता है और उनसे कहता है कि यदि आज्ञा पालन न की जावेगी तो दंड मिलेगा। इन क़ानूनों को अपने आप पालन नहीं करता। ज़बर-

*Lord.

दस्त जिस को चाहे पीट दे; जिस को चाह नज़र बन्द कर दे; जिस को चाहे जेलखाने में बंद कर दे; जिस को चाहे ज़मीन में ज़िन्दा गड़वा दे; जिस को चाहे काला पानी कर दे; या सूली पर चढ़ा दे। जिस की चाहे आँख निकलवा दे; जिस के चाहे कान कटा दे, काला मुँह करके गधे पर चढ़ा दे। ये सब बातें जायज़ और नाजायज़ सदा से होती चली आई हैं और होती रहेंगी। बलवान केवल मामूली बातों में ही अपना ज़ोर नहीं चलाता। वह जितनी स्त्रियाँ चाहे रख ले, जिसकी स्त्री चाहे छीन ले। एक से अधिक स्त्रियाँ रख सकता है; यदि कोई स्त्री दूसरे से ब्याही हो तो उस से भी जबरदस्ती छीन कर अपने घर में डाल सकता है। भारतवर्ष का १००० ईसवी के बाद का इतिहास इस कथन का साक्षी है। आज कल भी बहुत से राजाओं के पास एक से अधिक रानियाँ रहती हैं। टर्की के सुलतान के हरम में न मालूम कितनी स्त्रियाँ थीं। कौंगो के महाराजा के पास १००० स्त्रियाँ हैं (चित्र १७) जिसकी लड़की पसंद आयी, जिसकी बहू पसंद आयी उस को घर में रख लिया।

बल ही सत्य है

इस संसार में नेकी बदी कोई चीज़ नहीं। ये चीजें ऐसी नहीं हैं कि जिनकी मुक़र्रर क़ीमत हो। किसी ज़माने में जो चीज़ अच्छी कही जाती है दूसरे ज़माने में वही चीज़ बुरी कही जाती है। यही नहीं जो बात एक देश वाले पसंद करते हैं उसको दूसरे देश वाले बुरा समझते हैं। जो रिवाज एक काल में अच्छा समझा जाता है वह दूसरे काल में बुरा समझा जाता है। १९१४-१८ के महायुद्ध से पहले युरोप की स्त्रियाँ लम्बे लम्बे बाल रखती थीं; आजकल वे बाल कटाती हैं और पट्ठे रखती हैं और बहुत सी तो मर्दों के से बाल रखती हैं। ये स्त्रियाँ पहले रिवाज को बुरा कहती हैं। ५० साल पहले युरोप के लोगों में नहाने
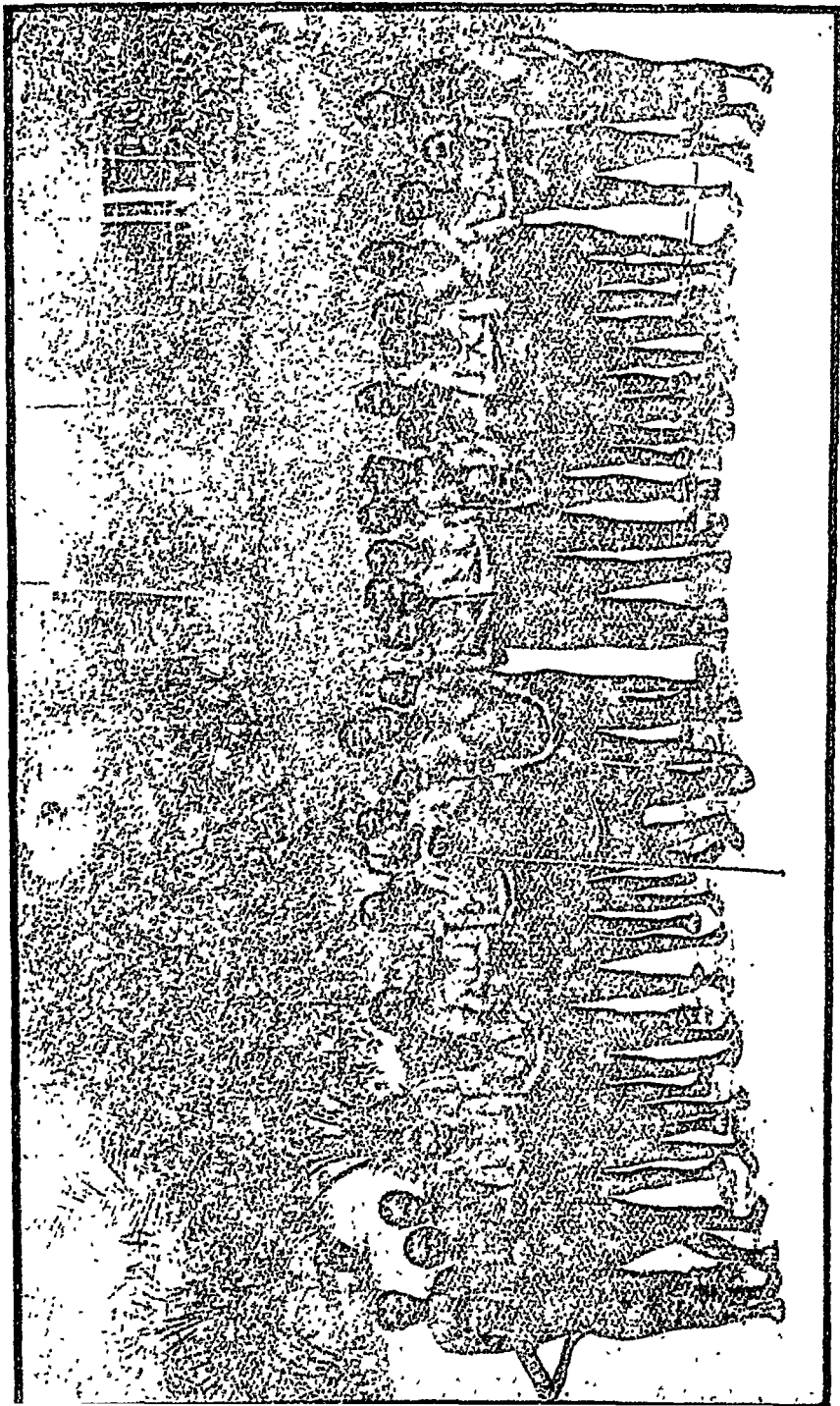
Photo by Mrs. Harris   From Peoples of all Nations, by permission

का रिवाज कम था, अब वे लोग रोज़ नहाने को अच्छा समझते हैं, यह दूसरी बात है कि आज कल भी पानी और कोयला महँगे होने के कारण अक्सर न नहा सकें; भारतवर्ष में हिन्दू रोज़ाना नहाना अत्यन्त आवश्यक समझते हैं। यूरोप में पाखाने जाने के बाद कागज़ से मलद्वार पोंछ लिया जाता है; भारतवासी इसको गंदी आदत समझते हैं और यह ज़रूरी और अच्छा समझते हैं कि मलद्वार को पानी से धो डाला जावे। मुसलमान गाय को मारना और उसको खा जाना अपना धर्म समझते हैं, हिन्दू गाय की रक्षा करना अपना धर्म समझते हैं। ईसाई लोग सुअर खाना अच्छा समझते हैं—मुसलमानों में सुअर हराम है। ईसाइयों में एक समय में एक से अधिक औरतों से ब्याह करना बुरा समझा जाता है, मुसलमानों में एक समय में चार ब्याह जायज़ हैं। यहूदी और मुसलमान बच्चे की अग्रत्वचा कटा देना (खतना करना) ज़रूरी समझते हैं अर्थात् ऐसा न करना पाप में शामिल है; हिन्दू और ईसाइयों में ऐसा करना ज़रूरी नहीं। मुसलमान अपने भाई की लड़की से ब्याह कर सकता है, हिन्दू कई पीढ़ियों को बचा कर ब्याह करता है। चोर जब चोरी करने जाता है तो देवताओं से कहता है कि हे देवता मेरी सहायता करना; और लोग अपने देवताओं से चोरी से बचने की सहायता माँगते हैं। महायुद्ध में दोनों तरफ़ के लोग अपने को अच्छा और दूसरे को बुरा कहते थे और अपने अपने गिर्जा में जा कर अपने खुदा से प्रार्थना करते थे कि हे खुदा हमको हमारे पापी, दुराचारी, राक्षसी शत्रुओं से जान बचाओ।

कौन बात बुरी है और कौन अच्छी इस का निर्णय भी बलवान ही करता है। जैसी टोपी बलवान लगाता है छोटे आदमी उसी को सब से अच्छा समझते हैं और नकल करने लगते हैं। जैसी मूँछे और डाढ़ी बलवान रखता है, छोटे लोग भी वैसी ही रखने लगते हैं (कर्नल

हैट; कर्ज़न फ़ैशन)। जिस प्रकार हाकिम भोजन खाता है, जैसे कपड़े वह पहनता है, जैसा जूता वह पहनता है, वैसा ही उस की देखा देखी उस की प्रजा खाने और पहनने लगती है (सलेम शाही जूता, शेरवानी, ऑक्सफोर्ड शू) इस से कोई मतलब नहीं कि वे बातें स्वास्थ्य को खराब करेंगी या नहीं (देखो जूता, कालर इत्यादि)। यहाँ तक कि महकूम अपने मज़हब को भी भूल जाता है (*नेकटाई का प्रयोग)। ईसाइयों का राज्य है तो ईसाई फैशन को प्रजा ग्रहण कर लेती है चाहे देश में उस फैशन से स्वास्थ्य को हानि ही पहुँचे। ईसाई यदि शराब पीते हैं तो हिन्दू और मुसलमान प्रजा भी इस बात को अच्छा समझ कर शराब पीने लगते हैं; यदि हाकिम जुआ खेलता है तो उसकी प्रजा भी जुआ खेलने लगती है; यदि हाकिम बंगले के अन्दर कमरे में सोता है तो नकलची प्रजा भी वैसा ही करने लगती है। इन सब बातों में अक्ल का दख़ल नहीं। विलायती ठंडे मुल्क का रहने वाला हाकिम यदि गर्मी से बचने के लिये फूल फुलवाड़ी और गमले अपने आस पास रखने लगता है तो गर्म मुल्क में रहने वाला काला आदमी भी उसकी नक़ल करने लगता है और अपने आस पास बहुत सब्ज़ी लगा कर मच्छर पैदा करता है। अक़ल का इन बातों में दख़ल ही नहीं। जो ज़बरदस्त करता है ठीक है; यदि कमज़ोर वैसा नहीं करते हैं तो ज़बरदस्त दुतकार कर कहता है कि "तुम काला आदमी क्या जाने किस तरह रहना चाहिये।"

विचार और इच्छा की आज़ादी

ज़बरदस्त जो चाहे कर सकता है। दूसरे की बेटी या बहू को अपनी

---

* हम नेकटाई को ईसाई मत का एक चिन्ह समझते हैं।

जोर बना सकता है (पुराना इतिहास साक्षी है)। कमज़ोरों की ज़बान बंद कर सकता है; उनसे कह सकता है कि जो बुराइयाँ इसमें (बलवान् में) हैं उनको भी भली बातें समझकर उसकी तारीफ करें; अपने तन को दुख देकर भी उसको सुख पहुँचावें। सोचने विचारने का मौक़ा ही नहीं। यदि आपके विचार में कोई बात ठीक नहीं मालूम होती तो मुँह से न कहने पाओगे वर्ना देश निकाले की सज़ा पाओगे। अपनी मर्ज़ी से कोई काम नहीं कर सकते, अपना ख्याल ज़ाहिर नहीं कर सकते। फिर कहाँ है आज़ाद राय, कहाँ है आज़ाद विचार, कहाँ है

चित्र १८ जबरदस्त के हुक्म से सुकरात ज़हर का प्याला पी रहा है

From the Book of Knowledge

चित्र १९ जहर का प्याला पीकर सुकरात मृत्यु शय्या पर लेटे हैं और उनके चेले रो रहे हैं
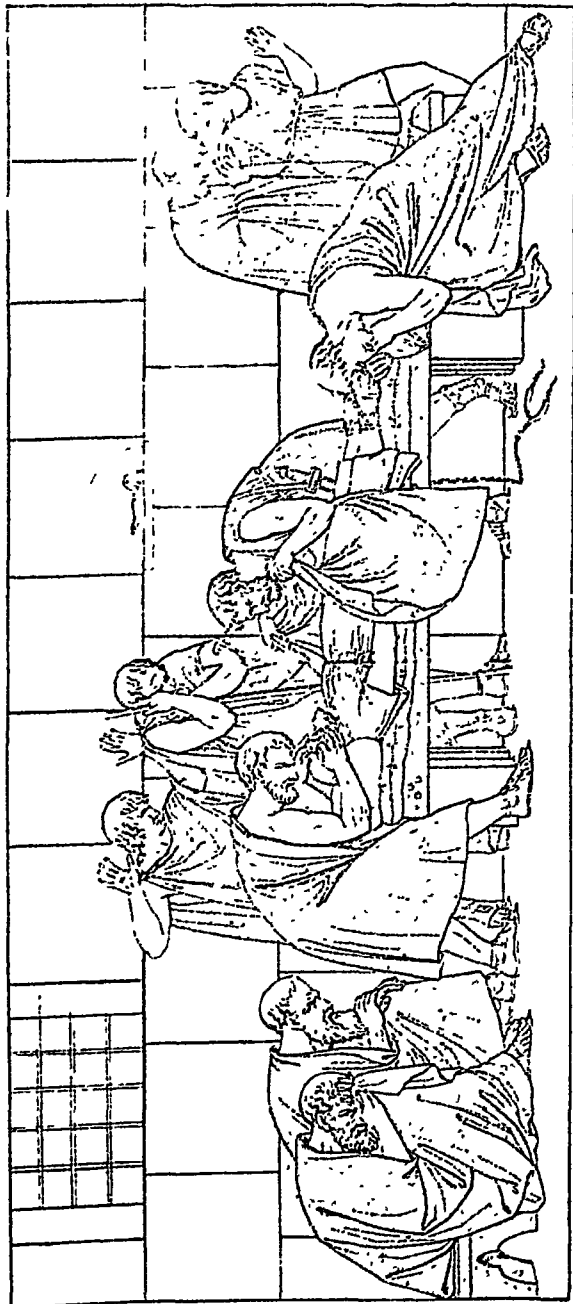
आज़ाद इच्छा। बलवान कहता है कि जैसा हम सोचते हैं और जिन को हम सच मानते हैं उसी को सच मानो। ऐसा ही करो नहीं तो तुम्हारे साथ सख़्ती से बर्ताव होगा। ईसाइयों के साथ शुरू में ग़ैरईसाइयों ने कैसी कैसी सख़्तियाँ नहीं कीं। रोमनकैथोलिक ईसाइयों ने प्रोटेस्टेंट ईसाइयों के साथ कौन कौन बुरे से बुरे बर्ताव नहीं किये; क्या लोग ज़िन्दा ही तख़्तों पर बाँध कर नहीं जला दिये गये? क्या मुसलमानों ने यहूदियों वा अन्य क़ौमों पर बुरे से बुरे सलूक नहीं किये? ये सब बातें ऐतिहासिक हैं। जब बलवान ऐसे ऐसे अत्याचार कर सकता है तो कहाँ है इच्छा की आज़ादी; कहाँ है स्वतन्त्रता। ज़बरदस्त की मार; ज़बरदस्त का जूता कमज़ोर का सिर। सिर्फ़ किसी ख़्याल को रोकने के लिए लाठी, घूँसा, बेंत, जूता, डंडा, जेलख़ाना, देश निकाला, काला पानी, गोली की मार, ज़हर इत्यादि, बलवान ये सभी बातें काम में लाता है और ला सकता है। सुकरात (Socrates) (चित्र १८), को ज़हर का प्याला क्यों पिलाया गया? उपरोक्त से हम पाठक के दिल में यह बिठाना चाहते हैं कि असली चीज़ है, बल—शारीरिक, मानसिक, धन इत्यादि चीज़ों का। नेकी बदी, बुराई भलाई कोई चीज़ ही नहीं।

भय

भी संसार में एक निराली चीज़ है। भय ने मनुष्य और मनुष्य समाज की काया पलट की है। भय हमेशा इस बात को बतलाता है कि हम किसी बात को अच्छी तरह समझते नहीं या हम बलहीन होने के कारण अपने शरीर को हानि पहुँच जाने की आशा करते हैं। भय भी आत्म रक्षा का एक साधन है। जब हम समझते हैं कि इस काम से आत्म रक्षा में कमी आजावेगी तब हम डरने लगते हैं। हम आग से डरते हैं क्योंकि हमको जलने का डर है; हम पानी से

डरते हैं क्योंकि हमको डूबने का डर है; हम बहुत ऊँचाई पर चढ़कर नीचे को देखते हुए डरते हैं क्योंकि हमको नीचे गिरकर मर जाने का डर है।

डर या भय को हम जन्म से अपने साथ नहीं लाते। जिस प्रकार और आदतें और विचार धीरे धीरे परिस्थिति के अनुसार ज्यों ज्यों हम बढ़ते हैं उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार भय भी परिस्थिति के अनुसार उत्पन्न होता है। बच्चा साँप और बिच्छू से नहीं डरता, उसको पकड़कर मुँह की ओर लेजाने को तैयार होता है; बड़ा आदमी सर्प से दूर भागता है। बच्चा गाय, बैल इत्यादि के पास चला जाता है, उसको कुचल जाने का डर ही नहीं; बड़ा आदमी बचकर चलता है। बच्चा जलते चिराग़ को पकड़ने की कोशिश करता है, बड़ा आदमी अपना हाथ बचाता है क्योंकि उसे जलने का डर है। ज्यों ज्यों बच्चे में समझ आती है उसमें भय भी बढ़ता जाता है। कुछ चीज़ों से उसका डरना उसकी आत्म रक्षा का सहायक है; कुछ चीज़ों से डरना स्वजाति रक्षा का सहायक है; कुछ चीज़ों से डरना केवल अज्ञानता के कारण है। बड़े आदमी उसको मिथ्या शिक्षा देते हैं; कहते हैं कि अँधेरी कोठरी में मत जावो वहाँ 'हव्वा' है; दोपहर में जंगल में मत जावो क्योंकि अमुक वृक्ष के नीचे भूत बैठा है। क्या बच्चों को अँधेरे में रस्सी डालकर उसको साँप बतलाकर नहीं डराया जाता?

जो भय आत्म रक्षा और स्वजाति रक्षा में सहायता देता है वह ठीक है; परन्तु जो अज्ञानता के कारण है वह भय अनुचित और इसलिये त्याज्य है। भारत का काला आदमी यूरोप के गोरे आदमी से डरता है; काला आदमी गोरे को देखकर झट झुककर सलाम करता है; जब फ़ौज आती है तो छोटे छोटे काले लड़के गोरों को देखकर दूर भाग जाते हैं। काबुली पठान जब रेलगाड़ी में बैठता है तो उसका

[illegible] स्वास्थ्य एक अमूल्य चीज़ है। जिसका स्वास्थ्य अच्छा है वह बल प्राप्त कर सकता है; जिसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं वह बलहीन हो जाता है। जितनी कौमों का नाश हुआ वह स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण। अच्छे स्वास्थ्य वाली क़ौम ने बुरे स्वास्थ्य वाली क़ौम को दबाया; जब क़ौम किसी दूसरी क़ौम के पराधीन होती है या डरा करती है तो वह कभी भी नहीं पनप पाती। क्या आपने शेर और बकरी की कहानी नहीं सुनी। शेर के सामने बँधी हुई बकरी को कितना ही खाना पानी दीजिये वह दिन ब दिन सूखती ही चली जाती है।

पराधीन होना तो बुरा है ही परन्तु कौमी पराधीनता स्वास्थ्य खराब रखने से ही आती है; जब एक बार पराधीनता हो गई तब वह दिन ब दिन बढ़ती ही जाती है।

स्वास्थ्य और पराधीनता

जिस मनुष्य का स्वास्थ्य खराब है वह हमेशा चिकित्सक का मोह-ताज रहता है; यदि आँखें खराब हैं तो डाक्टर का मोहताज, कान खराब हैं तो डाक्टर का मोहताज। जब उसकी जननेन्द्रियाँ खराब हो जाती हैं तब भी वह महा मुसीबत में आ जाता है। सोज़ाक, आतशक इत्यादि रोग पुरुष और स्त्री दोनों का जीवन खराब करते हैं। आतशक तो पारंपरिक रोग है। रोगों के कारण शरीर और मन दोनों ही कमज़ोर हो जाते हैं। मलेरिया इत्यादि रोग खून को सुखा देते हैं। तपेदिक़ और कोढ़ कैसे भयानक रोग हैं यह सभी जानते हैं। यदि किसी देश में लाखों आदमी तपेदिक़, मलेरिया, कोढ़, आतशक इत्यादि से ग्रस्त हों तो वे लोग हैज़ा, प्लेग, इन्फुलूएंज़ा न्युमोनिया इत्यादि आनन फानन में मारनेवाले रोगों का कैसे मुक़ाबला कर सकते हैं। जिस देश में ये सब रोग हों; जहाँ लाखों बालक जन्म के पश्चात् ही मर जाते हों उस देश की हालत बरसाती पतंगों की तरह हो जाती है; शाम को पैदा हुए, चिराग़ जले मर गये, या छिप-कली इत्यादि जानवरों के पेट में गये। शीघ्र पैदा होना शीघ्र मर जाना, देर में पैदा होना और देर तक जीना यही उत्तम प्रकार की सृष्टि होती है। जिस देश में इन्फुलूएंज़ा में एक साल में उतने आदमी मर जावें जितने युरोप के महायुद्ध में ४½ वर्ष में मरे तो उस देश के लोग बरसाती पतंगों की तरह ही हैं।

रोगी मनुष्य उतनी मेहनत नहीं कर सकता जितनी कि आरोग्य मनुष्य कर सकता है। रोगी मनुष्य उतना कष्ट भी नहीं उठा सकता जितना कि अरोग्य मनुष्य। युद्ध के मैदान में क्षुधा पीड़ित रोगी मनुष्य पेट भर कर खानेवाले हट्टे कट्टे स्वस्थ मनुष्य से कैसे लड़

करना—यह इस सृष्टि के आरम्भ से होता चला आया है और होता चला जावेगा, कब तक यह हम नहीं जानते। पुरानी बादशाहों की काया पलट हो गई। प्रत्येक बादशाहत के अधःपतन के एक से अधिक कारण होते हैं। परन्तु हमेशा एक मुख्य कारण होता है। शरीर को अधिक आराम देना, अर्थात् खूब खाना पीना परन्तु परिश्रम न करना, मैथुन के मज़े बहुत उड़ाना जिससे शरीर कमज़ोर हो जावे और अन्य ज़रूरी कामों के लिये समय ही न रहे, वबा का फैलना जिससे बहुत से विशेष कर जवान आदमी मर जावें। भारतवर्ष में मुसलमानों के ज़वाल के मुख्य कारण आराम तलबी और विषय भोग ही थे। अल्लामियाँ और पैग़म्बर के पैरोकारों में जब विषय भोग की आग लगी और शराब इत्यादि नशों से यह दिन प दिन दहकती

रही तब उनका ह्रास हुआ। यूनान के लिये कहा जाता है कि आरामतलबी और विषय भोग के अतिरिक्त मलेरिया ज्वर उस कौम के अधःपतन का मुख्य कारण था। रोम भी अधिक विषय भोग के कारण मारा गया।

जब विषयों में दिलचस्पी लग जाती है तो किसको फ़ौज या राज्य-प्रबन्ध का ख्याल रहता है (पढ़ो राजा पृथिवीराज और रानी संजोगिता का हाल) दूसरी क़ौम जो जफ़ाकश होती है इन विषयों के वस में पड़ी हुई क़ौम को दबा लेती है। जब विषय भोग ही जीवन का मुख्य उद्देश्य रह जाता है तो सन्तान निर्बल हो जाती है, आपस में अनबन रहने लगती है। जब घर में फूट हुई तो नाश के दिन निकट आये।

हिन्दुओं के अधःपतन का कारण

हिन्दुओं का पतन क्यों हुआ इस पर मैंने बहुत सोच विचार किया। यहाँ पर किसी वबा के फैलने का कोई सबूत नहीं; जिस जमाने में मुसलमानों ने हमला किया उस समय यहाँ तपेदिक, आतशक इत्यादि दुर्बल करने वाले रोग भी न थे; उस ज़माने में यहाँ छोटी उम्र में ब्याह भी न होते थे; शिक्षा (तालीम) भी अब से ज़्यादा थी, धन भी ज़्यादा था, आज़ादी तो थी ही। इस पर भी कम तालीम वाले यवनों ने यहाँ शीघ्र कब्ज़ा किया। इसका क्या कारण ? हिन्दुओं के मिथ्या विचार ! मस्तिष्क शरीर रूपी राज्य का राजा है। जब तक मस्तिष्क ठीक तौर से काम करता है सब ठीक है, ज्योंही उसका काम बिगड़ जाता है सब काम बिगड़ जाते हैं। पागल का दिमाग़ ही तो बिगड़ जाता है कि जब वह मिट्टी खाने लगता है; उसको पाखाने से भी घिन (घृणा) नहीं आती; उसको नींद भी नहीं आती; वह अपनी ही कहता है; दूसरों की बात सुनता ही नहीं। पागल को बाँध

चाहे कितने ही सालोसामान क्यों न हों हाथ ऊपर को नहीं उठता। जब हार होनी शुरू होती है तो हिम्मत दिन दिन गिरती जाती है। मूर्ति पूजन के अलावा और भी बहुत से मिथ्या विचार थेः— यह मानना कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से पैदा हुआ इस कारण सब से ऊँचा, क्षत्रिय उससे नीचा, वैश्य उससे नीचा, शूद्र सबसे नीचा और पाँव की जूती के तुल्य। इस मिथ्या विचार से ऊँचनीच के विचार का पैदा होना, एक दूसरे से मेल जोल न रहना, सब का एक जगह मिल कर न बैठना, आपस में तकरार रहना—समय पड़ने पर एक दूसरे की सहायता न करना—ऐसी ऐसी बातें पैदा हुईं। तीसरा मिथ्या विचार खान पान में ज़रूरत से ज्यादा छूत छात और अपने धर्म की शक्ति पर पूरा विश्वास न होना। चौके में किसी के घुस जाने से भोजन खराब हो जाना; कुएँ पर किसी यवन के चढ़ने से कुएँ का पानी खराब हो जाना; यदि किसी हिन्दू के कान में क़ुरान की आयत पढ़ दी गयी तो हिन्दू धर्म का नष्ट हो जाना; गाय का गोश्त हाथ से भी छू गया तो एक दम हिन्दू से मुसलमान बन जाना इत्यादि। अपनी कमज़ोरी को किसी दूसरे से बतला देना अत्यन्त बुज़दिली और बेवक़ूफ़ी की बात है हिन्दुओं के अधःपतन के उपरोक्त बतलाए हुए कारणों के अतिरिक्त एक और बड़ा कारण जीवन के विषय में असत्य विचार रखना भी था और है। एक दिन तो मरना ही है फिर यह काम क्यों करें, वह काम क्यों करें! जिसका जी चाहे राज्य करे हमें क्या सदा जीना है; हमको एक दिन इस संसार से विदा होना ही है फिर हम काहे को झगड़े में पड़ें। हम क्यों युद्ध करें; युद्ध करना बुरा, राम राम जपना (और पराया माल अपना) अच्छा। अपने जीवन की कुछ क़दर न करना, अपने स्वास्थ्य की कोई पर्वाह न करना; इतना भोजन खाना कि बस सांस चलता रहे

बहिश्त के नक्शे हमारे सामने पेश न किये जाते तो इस संसार में मज़हबी मार पीट पर्भ! न होती। सत्य तो यह है कि बहिश्त और दोज़ख इसी जगत में हैं। आप चाहें बहिश्त के सुख उठावें, चाहें दोज़ख की मुसीबत झेलें।

क्या कयामत भी कोई चीज़ है ? यह भी कोई चीज़ नहीं। क्या कयामत के दिन हम से हमारे कामों का जवाब लिया जावेगा—यह भी न होगा। जो कुछ होगा यहीं होगा और होता है। बुरे कामों का बुरा नतीजा यहीं मिल जाता है ; तुरंत नहीं तो कुछ समय पीछे। जो बोओगे वही उगेगा। चना बोने से गेहूँ कभी नहीं उपज सकता। अपने कामों का नतीजा क़यामत के रोज़ के लिये छोड़ने से अत्यंत हानि होती है। यह करने से सवाब और वह करने से अज़ाब; यह पुन्य और वह पाप; इस से परमात्मा खुश होता है और उस से नाराज़—ये सब धोखे की टट्टी हैं। सत्य यह है कि हम अमुक काम नहीं करते क्यों कि इससे हम को या हमारी सन्तान को हानि पहुँचती है। (आत्मरक्षा और स्वजाति रक्षा में बाधा पड़ती है)। हम वेश्यागमन नहीं करते क्योंकि हम को और हमारी स्त्री को और फिर हमारी सन्तान को आतशक होने की संभावना है। यह कहना तो सत्य और उचित है परन्तु यह कहना कि हम ये काम इस वास्ते नहीं करते कि अल्ला या परमात्मा नाराज़ हो जावेंगे या कयामत में दंड मिलेगा या बहिश्त की हूरें न पा सकेंगे सोलह आने ग़लत है। भारतवासी विशेष कर आजकल के हिन्दू भविष्य की अधिक पर्वाह करते हैं; वर्तमान का कोई फ़िक्र ही नहीं। भविष्य के लिये भूखे रहते हैं; अपना स्वास्थ्य खराब करते हैं; अनेक प्रकार के पाखंड रचते हैं; सोने की चिड़िया के पीछे जो न कभी किसी को मिली और न मिलेगी अपना जीवन ख़राब करते हैं। अज्ञानता के कारण ये लोग अपना कर्त्तव्य

है, रोती है, गाती है, या सुस्त पड़ जाती है; वेहोश हो जाती है। कभी उसके हाथ पैरों में विहिसी या कमज़ोरी आ जाती है। अज्ञानता के कारण वहुत से लोग इस को 'चुड़ेल' सिर आना कह देते हैं। 'चुड़ेल' भी एक कल्पित प्राणि है जिस के सर न पैर। अर्ध रात्रि के समय अँधेरे में किसी सुफेद कपड़े पहने हुए मनुष्य का दिखाई देना और उसको 'भूत' समझ कर उस से डरना—यह भी एक भ्रम है।

अज्ञानता की कोई हद नहीं। जव कोई वात मनुष्य की समझ में न आई तो उस को समझने के लिये वह एक 'वाद' या थियोरी* वनाता है। विज्ञान में किसी प्रश्न या विवाद को हल करने के लिये अनस्थाई तौर पर वहुत से सिद्धान्त या वाद होते हैं। जव तक इन वादों या सिद्धान्तों के द्वारा वे प्रश्न जिन के हल करने के लिये वे वाद निकाले गये हल होते जाते हैं, वे वाद या सिद्धान्त क़ायम रहते हैं; यदि सभी वातें हल हो जावें तो समझा जाता है कि वह वाद एक वास्तविक 'नियम' है। वहुत से वाद वहुधा असत्य सावित होते हैं।

सृष्टि के आरम्भ से मनुष्य ने अपनी समझ के अनुसार सृष्टि की वातों को हल करने की कोशिश की और वहुत से वाद चलाए। इन में से वहुत सी वातें तो 'कुदरत के क़ानून' या सृष्टि के नियम कहलाते हैं जैसे गरमी के प्रभाव से पानी का रूप वदल कर वाष्प वन जाना, या शीत के प्रभाव से पानी का रूप वदल कर वरफ वन जाना; पृथिवी के आकर्पण से चीज़ों का पृथिवी की ओर गिरना; पानी का निचाई की ओर वहना इत्यादि।

जव तक मनुष्य ने समझ से काम न लिया या विकास के समय उसमें सोच विचार करने की शक्ति न आई, उस समय तक वह हर एक वात

---

* Theory.

को विचित्र बात समझता था और इस सृष्टि के बहुत से आविष्कारों से डरता भी रहा। [illegible] में, [illegible] में, अग्नि में, बड़े बड़े दरियाओं में। आज के अनपढ़ [illegible] तो कभी अपने गाँव से बाहर न निकले [illegible]; कुछ लोग अब भी मोटर और [illegible] । असलियत को न समझ कर अज्ञानी मनुष्य ने आग, वर्षा, इत्यादि चीज़ों को जीवित समझ लिया और उन को [illegible]; [illegible] उन को देवता के नाम से पुकारा— अग्नि देवता, [illegible], सूर्य देवता इत्यादि। चाँद, सितारों को भी देवता समझा; जब ग्रहण पड़ा तो समझा कि देवताओं में युद्ध हुआ और एक दूसरे को [illegible] कर गया। जिस से फ़ायदा पहुँचा या फ़ायदा पहुँचने की उम्मेद हुई उसे देवता बनाया; जिस से डर लगा उस को देवता बनाया और फिर उस कल्पित देवता को प्रसन्न करने की कोशिश की। यह ख़ुदग़र्ज़ी है कि नहीं; यह अज्ञानता है या नहीं। जब कोई बात समझ में न आई तो झट पट कह दिया कि ईश्वर ने ऐसा किया।

भय एक बड़ी चीज़ है। जब मनुष्य पशुपन से ज़रा ही ऊँचा बढ़ा था और उस में कुछ सोचने समझने और वादविवाद करने की शक्ति आई तब वह जिस चीज़ को अपने से बड़ी और विशाल देखता था उस से डरने लगता था। अपने से बलवान से सभी डरते हैं; जो मार सकता है उस से कौन नहीं डरता। डर या भय "आत्म रक्षा" का एक साधन है; यदि डर न हो तो शरीर की रक्षा कैसे हो। यदि हिरन चीते से न डरे तो क्यों भागे; आदमी सर्प से न डरे तो क्यों कर उस से बचे। भय एक स्वाभाविक गुण है। अज्ञानता से भय बढ़ता है। जब शेर को मारने का सामान अपनी अक़ल दौड़ा कर मनुष्य इकट्ठा कर लेता है तो उस से न डर कर वह जंगल में उसे

मारने को जाता है। हाथ में बंदूक या लाठी ले कर मनुष्य बियावान जंगल में साँप, भालू, भेड़िये इत्यादि से न डर कर मीलों चला जाता है। चोरों और डाकुओं से बचने के लिए अर्थात् उस का डर कम करने के लिये बहुत से लोग बंदूक और तलवार अपने पास रख कर सोते हैं। डर थोड़ा बहुत हर एक जीव में है। गाँव का आदमी मोटर से, हवाई जहाज़ से, रेल गाड़ी से, बिजली से डरता है; शहर का आदमी इन से नहीं डरता। क्या कारण? एक अज्ञानी है दूसरा ज्ञानी।

ज्ञानी मनुष्य हमेशा अज्ञानी मनुष्य को अपना मतलब निकालने के लिये डराया करते हैं। जिस में शारीरिक या मानसिक बल होता है उस से सभी डरते हैं। अधिक बोलने वालों से कम बोलने वाले डरा करते हैं। जिस के हाथ में चाबुक है या लाठी या बन्दूक है व हथियार विहीन से जो चाहे काम करा सकता है।

अज्ञानता के कारण आदि मनुष्य ने पानी, पवन, सूर्य्य, चाँद इत्यादि से डरना शुरू किया। जिनसे डर लगता है उनको खुश करने की कोशिश भी की जाती है। हाकिम के पास उसके मातहत नज़र भेंट ले जाते हैं; उसके पास भोजन और धन पहुँचाते हैं। इसी कारण डरपोक अज्ञानी मनुष्य ने अग्नि को जिमाना आरंभ किया; सूर्य को जल चढ़ाना शुरू किया। आत्म रक्षा से भय और भय से पूजा उत्पन्न हुई।

पूजा (परस्तिश) की कोई हद न रही। जब दृश्य देवताओं से काम न चला तो अदृश्य देवताओं की पूजा होने लगी। दरिया में घुसे और डूबने लगे; हाथ पैर मारे पर कुछ बस न चला; अशक्त हो कर पुकारने लगे बचाओ बचाओ। दूसरे का सहारा ढूँढने लगे। जंगल में रास्ता भूल गये, पुकारने लगे कोई रास्ता बतलाओ। बीमार हुए,

पेट में शूल हुआ पुकारने लगे कोई जान बचाओ। ये सब बेबसी और बलहीनता की बातें हैं; इन दशाओं में अपने से बड़े और अधिक शक्ति वाले की शरण लेनी ही सूझी।

यही नहीं, बहुत से काम ऐसे हैं जिन्हें मनुष्य नहीं कर सकता। बहुत से काम ऐसे हैं जिन के कारण वह नहीं जानता; बहुत सी चीजें ऐसी हैं जिन्हें मनुष्य नहीं बना सकता, वह जानता भी नहीं कि ये कैसे बनती हैं। अपनी अज्ञानता को छिपाने के लिये उसने समझ लिया कि कोई और बनाने वाला है।

जब मनुष्य अपनी अल्प और तुच्छ बुद्धि से इस संसार की पेचीदा बातों को न समझ सका—अनाज कैसे पैदा होता है, जल क्योंकर बरसता है, बादल कहाँ से आते हैं; पहाड़ इतना ऊँचा क्यों है; कुएँ में जल कहाँ से आया; भूकंप क्यों आता है; सूर्य और चन्द्र ग्रहण क्यों पड़ते हैं; प्राणि क्यों मर जाते हैं—तो उसने बहुत सोच विचार कर एक सिद्धान्त निकाला कि मनुष्य से बड़ी कोई और शक्ति है जो शायद इन सब कामों को करती है। बीज बोने से क्यों पौदा उगा; मैथुन करने से क्यों बच्चा बना—ऐसे ऐसे सैकड़ों प्रश्नों का उत्तर उसके पास कुछ न था सिवाय इसके कि किसी और शक्ति ने ऐसा किया। आजकल अज्ञानी औरतें और आदमी मंदिरों के पुजारियों, महन्तों और साधुओं से बच्चा नहीं माँगते? यह नहीं समझते कि यदि मनुष्य में शुक्रकीट ही नहीं बनते या औरत की बच्चेदानी में सोज़ाक इत्यादि से कोई रोग हो गया है तो बच्चा कैसे होगा, या पुरुष नपुंसक है या स्त्री बाँझ है तो बच्चा कैसे होगा। कोई कोई महन्त और साधु ठीक कारण भाँप जाते हैं और अपने वीर्य द्वारा जिसमें शुक्राणु हैं ऐसी औरत को जिसके पति में पुरुषार्थ नहीं है चुपके से गर्भित कर देते हैं। इस काम से अज्ञानी पति और पत्नी दोनों ही

प्रसन्न होते हैं और कहते हैं कि बाबा बड़े करामाती हैं।

ऐसी शक्ति के जो मनुष्य से ऐसे काम करा दे जो वह खुद नहीं कर सकता लोगों ने खुदा, अल्ला, परमात्मा, ईश्वर इत्यादि नाम रक्खे हैं। हमारी राय में यह सब अज्ञानता को दर्शाते हैं। जब एक शक्ति को अपने से बड़ा मान लिया तो यह आवश्यक हो जाता है कि उसको खुश रक्खा जावे। वह शक्ति पुजने लगती है; बहुत लोग अपने खयाल के मुताबिक उस की मूर्तियाँ बनाते हैं। मूर्ति पूजन का आरंभ ऐसे ही हुआ। फिर इस शक्ति के घर बनाये जाते हैं। मंदिर, गिर्जा और मसजिदें बनाई जाती हैं और वहाँ उस शक्ति का पूजन होता है और उसकी उपासना की जाती है।

धीरे धीरे इस परमात्मा या अल्ला के गुण बतलाये जाते हैं सब लोगों में बुद्धि एक सी नहीं। किसी ने कुछ गुण बतलाए किसी ने कुछ। किसी ने यह कहा कि मैं इस परमात्मा के पास हो आया हूँ और इस लिये जो कुछ मैं कहता हूँ ठीक है। कोई बहादुर मनुष्य इस खुदा का बेटा बन बैठा; कोई उसका दूत और पैग़म्बर। इस प्रकार मूसाई, ईसाई, मुहमदी मत चले। ज्यों ज्यों मतों की संख्या बढ़ी अपने अपने मतों की सब तारीफ़ करने लगे; हर एक मतवाले अपने खुदा को दूसरे मत वालों के खुदा से ज़्यादा अच्छा और शक्तिमान समझने लगे। मेरा मत सच्चा तेरा झूठा। अब लगी होने इन मतानुयायियों में लड़ाई, आपस में जूता पैज़ार और युद्ध। मूसाई और ईसाइयों में तकरार और झगड़े हुए, ईसाई और मुसलमानों में; हिन्दुओं और मुसलमानों और ईसाइयों में। मानों एक का खुदा दूसरे से लड़ रहा है। कभी एक के खुदा ने हार मानी कभी दूसरे के खुदा ने (चित्र २०) सब खुदा चाहे हिन्दुओं के चाहे मुसलमानों के चाहे ईसाइयों के मनुष्य के खून के प्यासे हैं। न मालूम इन मज़हबों की बदौलत

उस को प्रसन्न करने के लिये अनेक तरीक़े सोचे गये और फिर ये तरीक़े काम में लाये गये। किसी ने उसको सगुण और किसी ने निर्गुण बतलाया; किसी ने साकार कहा किसी ने निराकार। किसी ने कहा कि वह अवतार बन कर इस सृष्टि में मनुष्य के रूप में कभी कभी आता है; किसी ने कहा कि नहीं वह केवल अपना दूत भेजता है जिस को पैग़म्बर कहते हैं; किसी ने कहा कि फलाँ शख्स उसका खास बेटा है। फिर क्या है—फिरश्ते भी पैदा हुए; बहिश्त, दोज़ख़, स्वर्ग और नरक, यमराज, जबराईल, इत्यादि सभी पैदा हुए।

परमात्मा को खुश करने की अनेक तरकीबें निकाली गयीं। किसी ने मंदिर, किसी ने गिर्जा, किसी ने मस्जिद उसके पूजने के स्थान बनाए। इन स्थानों में उसके गुण—सर्व शक्तिमान्, सर्वव्यापक, दयालु, कृपालु, गाये जाने लगे। किसी ने उसकी कल्पित मूर्ति बनवाई। मूर्तियाँ भी उस के गुणों के अनुसार बनवाई गयीं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश की मूर्तियाँ बनीं। मूर्तियों पर जल, दूध, फल, मिष्टान्न इत्यादि चढ़ाये जाने लगे।

बिना मतलब के इस संसार में कोई काम होता ही नहीं। मतलब बिना मैथुन नहीं, मैथुन बिना उत्पत्ति नहीं। ईश्वर भी पूजा जाता है मतलब से; ईश्वर पूजा जाता है भय से।

बेटा बीमार हुआ, ईश्वर की उपासना की गयी। बच्चा होने को हुआ ईश्वर और खुदा याद आये। रेल लड़ी और परमात्मा की याद आई। पेट में दर्द हुआ और राम राम चिल्लाने लगे। कचहरी में मुक़द्दमा हुआ और किसी देवता का पाठ बिठलाया गया—मतलब और खुदग़र्ज़ी नहीं तो क्या है? संसार में देखा जाता है कि सब खुशामद मतलब की होती है; हाकिम की इज़्ज़त मतलब से होती है; राजा की इज़्ज़त मतलब से। यदि मतलब और भय न हो यानी कुछ मिलने की

आशा न हो या दुःख पहुँचने का भय न हो तो कौन पूछे खुदा को और कौन परवाह करे भगवान जी की।

मतलब और भय ने खुदा को खुश करने की धुन लगी। किसी ने सुबह और शाम उस को भिन्न भिन्न विधियों से खुश करना चाहा; किसी ने दिन में पाँच बार उस के सामने सर झुकाया और ज़मीन पर माथा टेका; किसी ने उस के पूजने के लिये सप्ताह में एक विशेष दिन नियत किया। ईश्वर के नाम से जानवरों की कुर्बानी करनी शुरू की भेड़ा बकरे की, गाय गाय की। कभी कभी अपने बच्चे तक को कुरब किया। मूर्खता की भी दौड़ें हद हैं—ये सब खून बहाये गये एव कल्पित जीव को खुश करने के लिये। धिक्कार ऐसे ईश्वर को जो बेगु नाह, बेज़बान जानवरों के खून का प्यासा हो। सत्यानाश हो उस काली देवी का जो ऐसे खून की प्यासी हो।

कुर्बानी ईश्वर के नाम से और भरें पेट अपना। क्या कोई शख़ कह सकता है कि यह कत्ल किये जानवर ईश्वर के मुँह में कैसे जाते हैं। ये सब ढकोसले खुदग़र्ज़ लोगों के चलाये हुए हैं; अपनी ज़बान के मज़े के लिये खुदा को बदनाम करें।

जब परमात्मा सब संसार का खालिक, मालिक, करता धरत माना गया, तो यह भी माना गया कि उस के पास गुनहगारों व सज़ा देने के लिये एक स्थान जेलखाने की तरह है; इसका नाम दोज़ या नरक है। यह भी माना गया कि उस के पास एक दूसरा स्था भी है जहाँ अच्छा काम करने वाले रहते हैं उस स्थान का नाम स्व या बहिश्त है।

आज तक न किसी ने बहिश्त देखी न दोज़ख। देखे कैसे? बिन मरे न कोई दोज़ख में जा सकता है न बहिश्त में। और जो मरा फि लौट कर उसी शरीर में कभी न आया। नाक़िलों के मन घड़न्त किस

किसने नहीं पढ़े। कवियों की लम्बतरानियाँ किसने नहीं सुनीं। रावण के बहुत से सिरों का दृष्टान्त, भीम का बल, कुंभकर्ण की नींद, ऊँदा और मलखान के बल का हाल किसने नहीं सुना। सभी समझदार मनुष्य उन को गप मानते हैं।

इस कल्पित सर्व शक्तिमान्, सर्व व्यापक, परमात्मा और उस को दोज़ख़ और बहिश्त को मानते हुए भी करोड़ों मनुष्य इस संसार में बुरे से बुरे काम करते हैं। इस ख्याल से कि मिस्ल और हाकिमों के ज़रा से पूजन पाठ से या माला या तसबीह फेरने से यह परमात्मा ढीला पड़ जावेगा और इस रिशवत को कबूल कर के हमारे गुनाहों को क्षमा करेगा संसार को अत्यन्त हानि पहुँची है। एक मज़हब में तो गुनाह का इक़रार करने से (Confession) और थोड़ी सी फीस पुजारी को देने से इसी जन्म में गुनाहों की मुआफी मिल जाती है अर्थात् इस मज़हब वाले यदि चाहें तो हमेशा बहिश्त में ही पहुँचे। गुनाह कीजिये, जरा देर गिरजा में जा कर पादरी साहब के सामने कह दीजिये कि गुनाह किया है, और साथ साथ फीस भी दाखिल कीजिये, मुआफी का सर्टिफिकेट फौरन मिल जावेगा।

इस संसार को इन मिथ्या विचारों से हानि कैसे हुई यह हम आगे बतलावेंगे। बहिश्त या स्वर्ग में क्या है या क्या मिलेगा इस का उत्तर सब मज़हब वाले एक ही तरह से नहीं देते। हिन्दुओं को तो स्वर्ग तक पहुँचना बहुत कठिन है; इन को स्वर्ग प्राप्ति के लिये अच्छे कर्म करना आवश्यक है; कर्म एक कठिन चीज़ है। जब कर्म पर ही दारोमदार है तो हमारी बला से हम क्यों किसी परमात्मा को पूजें; जब हम को कर्मों का फल भुगतना है तो पूजन पाठ की कोई जगह ही नहीं रह जाती। पूजन पाठ में जो समय बरबाद होता है वह समय कर्म कांड में क्यों न लगावें। हिन्दुओं की दोज़ख भी बुरी है।

मुसलमानों और ईसाइयों की बहिश्त आसानी से मिल सकती है और यही कारण है कि ये मज़हब संसार में इतनी जल्दी फैल गये। आसान काम कौन पसन्द नहीं करता। इन मज़हबों में ईमान एक खास चीज़ है। कहा जाता है कि मुसलमानों की बहिश्त में बहुत सी हूरें और ऐशो अशरत के अनेक सामान मिलते हैं; वहाँ शराब भी मिलती है। हमारी राय में यह सब लालचाहट दी गयी इस वास्ते कि मनुष्य इस संसार में बुरे कामों से बचा रहे। परन्तु याद रखिये कि जो काम लालच से किया जाता है वह हमेशा कच्चा होता है। ईसाइयों की बहिश्त में क्या होता है ये ईसाई जानें। ईसाइयों की दोज़ख खराब है। इटली देश के एक महाकवि डांटी साहब स्वप्न में दोज़ख गये थे। म० वर्जिल* ने दोज़ख की सैर करायी। वहाँ उन्होंने बड़े बड़े भयानक दृश्य देखे। डांटी महाशय ने जो कुछ देखा वह अपनी पुस्तक (Dante's Inferno) 'डान्टीज़ इनफर्नो' में उन्होंने लिख दिया। उन के मरने के बहुत दिनों बाद म० डोरे ने यह सब वृत्तान्त चित्रों द्वारा समझाया।

डांटी साहब की पुस्तक से दोज़ख के दो चित्र हम इस पुस्तक में दे रहे हैं (चित्र २१, २२)। पाठक डरिये और कुकर्मों से बचने का यत्न कीजिये। यदि दोज़ख का हाल सुन कर और इन चित्रों को देख कर भी लोग ठीक हो जावें तो भी मैं इस खुदा पर विश्वास लाऊँ परन्तु ऐसा हो ही नहीं सकता। परमात्मा और उसकी दोज़ख और बहिश्त और फरिश्तों और शैतान, उसके बेटे और पैग़म्बर और अवतारों के सिद्धान्त हज़ारों वर्षों से प्रचलित हैं। अब तक संसार को फायदा नहीं पहुँचा तो अब क्या उम्मेद है।

---

* Virgil.

Inferno illustrated by M. Gustave Dore

हमारी राय में ईश्वर जैसी शक्ति को मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। ईश्वर ही नहीं तो कहाँ उस की बहिश्त और कहाँ उस की दोज़ख; कहाँ उस का भय; क्या आवश्यकता मंदिरों की, क्या ज़रूरत मस्जिदों और गिरजाओं की। जब मतभेद ही नहीं रहा तो क्या ज़रूरत ईसाइयों की आपस की लड़ाई की, क्या ज़रूरत हिन्दू मुसलमानों की लड़ाई की। मेरा विश्वास है कि जो कुछ मुसीबत इस संसार में है वह सब इन मज़हबों द्वारा। आज लोग सीधे रास्ते पर चलने लगें सब कष्ट मिट जावें। केवल दो नियम ही इस संसार में काम करते हैं। मनुष्य के बनाये मत और मतांतर झूठे हैं; उन से हानि के सिवाय लाभ कोई नहीं।

क्या आरंभ में ईसाई लोगों को रोम वालों ने तंग नहीं किया। क्या ईसाइयों के एक फ़िर्के वालों ने दूसरे फ़िर्के वालों को तख़्ते पर बाँध कर ज़िन्दा ही नहीं जला दिया। क्या यहूदियों ने खुद ईसामसीह (खुदा के बेटे) को क्रोस पर बाँध कर ज़िन्दा ही नहीं मार डाला। क्या मुसलमानों ने अमुसलमानों पर अत्यन्त अत्याचार नहीं किये। क्या हिन्दुओं ने बौद्धों के साथ बुरा सलूक नहीं किया। क्या इन मजहब वालों ने असंख्य छोटे और बड़े जानवरों को क़तल कर के (कुर्बानी) उन को दुःख नहीं पहुँचाया। यदि ये लोग कहें कि कुर्बानी की जाती है अपना पेट भरने के लिये तो मैं इस बात को स्वरक्षा का साधन समझता। परन्तु पेट भरें अपना और नाम करें बदनाम अल्ला या ईश्वर का, तो यह कपट की बात नहीं है तो क्या है? साँप जब मेंढक को खा जाता है तब वह भी तो कुर्बानी ही करता है; शेर जब मनुष्य को खा जाता है तो वह भी कुर्बानी करता है। आप क़ुरान की आयत पढ़ कर यदि किसी जानवर का गला काटते हैं तो शेर भी बड़े ज़ोर से दहाड़ कर आप पर झपटता है और आप

नष्ट होना कहते हैं वह वैज्ञानिकों की निगाह में केवल रूप बदल होना है। पानी गरम करने से उड़ जाता है; अलकोहल और ईथर गर्मी के प्रभाव से बोतल में से आप ही आप ग़ायब हो जाते हैं। तरल रूप से रूप बदल हो कर ये चीज़ें (जल, अलकोहल, ईथर) वायव्य रूप में चली गईं। जादूगर आप के हाथ में से रुपया ग़ायब कर देता है; वह आनन फानन में ज़मीन में से आम का वृक्ष उगा देता है; ताश के खेल दिखाता है; हलक में छुरी घुसेड़ देता है; सन्दूक में से बंद किया गया आदमी ग़ायब हो जाता है; आप की अंगूठी को ग़ायब कर के डबल रोटी के अंदर से निकाल देता है। जिस को हम समझ नहीं पाते उस को हम जादू कहते हैं; जिस चीज़ को आज हम जादू कहते हैं वही कल हमारे समझ जाने पर मामूली बात हो जाती है। जब गरमी (सूर्य्य) के प्रभाव से समुद्र का जल वाष्प बनकर ऊपर चढ़ जाता है और फिर शीत के प्रभाव से बादलों के रूप में आकर वर्षा द्वारा नीचे आता है तो अज्ञानी लोग कहते हैं कि इन्द्र देवता बरस रहे हैं। अभिमानी और कपटी मनुष्य यह नहीं कहता कि मुझे मालूम नहीं कि यह क्योंकर होता है। अपनी अज्ञानता को छिपाने के लिये कुछ न कुछ कह देता है चाहे झूठ हो चाहे सच। वैज्ञानिक लोग अपनी विद्या, प्रयोग और परिश्रम से इस कल्पित इन्द्र देवता का पता लगाते हैं और वर्षा का ठीक कारण बतला कर अज्ञानियों के पाखंड को तोड़ते हैं।

सृष्टि में किसी चीज़ का नाश नहीं होता। मैटर (Matter) या माद्दा या मात्रा एक चीज़ है जिसके अनेक रूप हैं सब चीज़ें मात्रा की बनी हैं। सोना, चाँदी, ताँबा, मिट्टी, पत्थर, जल, वायु, कीटाणु, जीवाणु, वनस्पति, विद्युत, गर्मी, रोशनी, हाथी, घोड़ा, मनुष्य, पशु, पक्षियें सब मात्रा से बने हैं। छिन्न भिन्न करने से मालूम होता है

कि मात्रा मौलिकों से बना है। हर एक मौलिक के विशेष गुण हैं। मौलिक ऐसे होते हैं जैसे तांबा, चाँदी, लोहा, कर्बन, ओषजन। ये मौलिक अणुओं और परमाणुओं के समूह होते हैं। परमाणु के छिन्न भिन्न होने से शक्तिकण या शक्त्यणु (Electron) निकलते हैं जिस से विदित है कि परमाणु वास्तव में शक्तिसमूह है। इस प्रकार पता लगता है कि शक्ति और मात्रा में केवल रूप का भेद है, वैसे दोनों चीज़ें एक ही हैं। दो चीज़ों की रगड़ से गर्मी उत्पन्न हुई, जितनी वे चीज़ें घिसीं उतना ही मात्रा गरमी के रूप में प्रगट हुआ। कोयला या मिट्टी का तेल जला कर लोग विद्युत बनाते हैं और उस के आविष्कार दिखाते हैं; कोयले के जलने से जो शक्ति उत्पन्न हुई वह रूप बदल करके विद्युत के रूप में उपस्थित हुई। कोयला, कर्बन, मिट्टी का तेल, लकड़ी, अलकोहल, पेट्रोल इत्यादि दहनशील चीज़ों को शक्ति समूह समझना चाहिये। उनके रूप बदल से चाहे गरमी ले लो, चाहे प्रकाश ले लो, चाहे इस शक्ति से रेल का इंजन चलाओ चाहे जहाज़, चाहे हवाई जहाज़। गति भी शक्ति का एक रूप है। कोयला जल गया, इससे यह बोध न होना चाहिये कि कोयले का नाश हो गया; सच तो यह है कि उसका रूप बदल हो गया।

पौधा सूख जाता है, मृत्यु को प्राप्त होता है। क्या उसका नाश हो गया, नहीं। उसका केवल रूप बदल हो गया। वह मात्रा से बना है। पृथिवी भी मात्रा से बनी है। छिन्न भिन्न होकर उसके मौलिक और यौगिक पृथिवी में मिल जाते हैं और इनसे फिर दूसरा पौधा पैदा होता है। पौधा न पैदा हो तो प्राणि बनते हैं। क्योंकि पृथिवी ही से हमको जल मिलता है, पृथिवी ही से अनाज, साग, घास पैदा होते हैं और इन्हीं को खाकर हम पलते हैं।

मनुष्य जब मरता है तो क्या मात्रा का नाश हो जाता है?

नहीं। मृत शरीर का छिन्न भिन्न हो जाता है; उसके मौलिक और योगिक पृथिवी, वायु, जल में मिल जाते हैं और दूसरे प्राणियों और वनस्पतियों के काम में आते हैं। हर एक काम करने में शक्ति का व्यय होता है, हम चलते हैं, बोलते हैं, हँसते हैं, मल मूत्र त्यागते हैं, सांस लेते हैं—ये सब गतियाँ हैं और गति शक्ति व्यय का एक चिह्न है। हमारे शरीर में जो मात्रा है उसके छिन्न भिन्न से अर्थात् रूप बदल से ये गतियाँ उत्पन्न होती हैं।

मौलिकों का भी रूप बदल हो सकता है। सभ्यता के आरम्भ से विद्वान लोग ताम्र से सोना बनाने की कोशिश करते चले आये हैं; अभी तक सफलता नहीं हुई परन्तु आशा है कि शायद कुछ काल पीछे वैज्ञानिक लोग अपनी प्रयोगशाला में तो अवश्य किसी सस्ती धातु से सोना बना सकेंगे। कुछ मौलिकों का रूप बदल प्रकृति में होता देखा गया है। यह असम्भव नहीं है कि ताम्र के रूप बदल से सोना बन जावे। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि कर्बन, कोयला और हीरा रसायन विद्यानुसार एक ही चीज़ हैं। कोयले से हाथ काले होने के कारण राजा महाराजा दूर भागते हैं, हीरे को बड़े चाव से गले में लटकाते हैं और अंगूठी में जड़ाकर पहन कर अपनी शोभा बढ़ाते हैं।

मात्रा (मैटर) के विविध रूप

तेल, (घृत) और शक्कर में एक ही तीन मौलिक पाए जाते हैं। इन तीन मौलिकों से बनी हुई चीज़ों के रूप अलग, गुण अलग। रस कपूर और कैलोमेल* दोनों में वही दो मौलिक हैं; परन्तु दोनों के रूप अलग, गुण अलग; जिस मात्रा में कैलोमेल डाक्टर लोग

* Calomel.

औषधि के तौर पर मिलते हैं वहीं मात्रा स्व कपूर की कई मनुष्यों को इस लोक से परलोक पहुँचा सकती है। मौलिकों की कमी और ज़्यादती से या उनके आपस के संयोग से उनसे बनी हुई चीज़ों में रूपांतर और गुणांतर हो जाते हैं।

सृष्टि की उत्पत्ति

हमारी राय में यह ब्रह्माण्ड शक्ति समूह है। शक्ति मात्रा का एक रूप है। मात्रा वायव्य, तरल, ठोस रूप धारण करता है। मात्रा मौलिकों में विभक्त है। मौलिकों के संयोग से यौगिक बनते हैं। यौगिकों के संयोग से शरीर बनते हैं जो पत्थर, पहाड़, टीले, चट्टान, दरिया, वृक्ष, प्राणि के रूप धारण करते हैं। मौलिकों के संयोग में और यौगिकों के छिन्न भिन्न से शक्ति निकलती है या लुप्त हो जाती है। इन्हीं बनने और बिगड़ने से जीवन के आविष्कार प्रगट होते हैं। बनना बिगड़ना अर्थात् रूप बदल करना इस सृष्टि का विचित्र खेल है। यह इस सृष्टि की लीला है। जब इनकी बातें समझ में आ जाती हैं हम उनको मामूली बातें समझते हैं; जब नहीं समझ में आतीं तो भय का आरम्भ होता है और फिर हम अन्धकार में एक कल्पित शक्ति की सहायता लेकर भ्रम जाल में पड़ जाते हैं जिससे निकलना कठिन हो जाता है।

सृष्टि का आदि और अंत, प्रलय (क़्यामत)

सृष्टि की आयु इस समय कितनी है इसके विषय में अनेक अनुमान हैं। ईसाइयों का अनुमान तो बिलकुल एक ढकोसला है; उनके हिसाब से तो सृष्टि की आयु कुछ हज़ार वर्षों की ही होती है। वेदों के मानने वाले सृष्टि की आयु दो अरब वर्ष के लगभग बतलाते हैं

और वर्तमान वैज्ञानिकों ने भी यही सिद्ध किया है। आदि में यह पृथिवी एक अत्यंत गर्म गोला था और इतना गर्म था कि हरएक चीज़ वायव्य रूप में थी। उस समय जिनको आजकल हम जीवित कहते हैं वे चीज़ें न थीं; न जल था, न वनस्पति थी न प्राणि थे। धीरे धीरे गोला ठंडा होने लगा, वायु बनी, जल बना और गोले के ऊपरी भाग में ठोस चीज़े बनीं, भीतरी भाग अभी गरम रहा। लगभग दो अरब वर्ष बीतने पर भी भूगर्भ गरम है और वहाँ चीज़ें तरल या वायव्य रूप में हैं—ज्वालामुखी पहाड़ इस बात के साक्षी हैं। जब पृथिवी के तल की दशा ऐसी हुई कि वहाँ जीवित चीज़ें रह सकें तो आदि वनस्पति और आदि प्राणि उत्पन्न हुए। आदि वनस्पति के विकास से पौधे, और विशाल वृक्ष बने; आदि प्राणियों के विकास से पहले जल में रहनेवाले, फिर जल और भूमि दोनों जगह रहनेवाले, फिर पृथिवी पर रहने वाले प्राणि बने। एक समय था कि मनुष्य था ही नहीं। मनुष्य या बाबा आदम को इस जगत में पधारे हुए शायद कुछ लाख वर्ष ही हुए हैं। इस सृष्टि का अन्त कब होगा यह कोई नहीं जानता। जो लोग अपने मुर्दों को बजाय जलाने के गाड़ते हैं उनका विचार है कि एक दिन आवेगा जब यह दुनिया खतम हो जावेगी; उस वक्त सब मुर्दे जग जावेंगे या जगाये जावेंगे। फिर इन सब के कामों की जाँच होगी और इस जाँच के अनुसार इन सब को सज़ा और जज़ा मिलेगी। ये सब मिथ्या विचार हैं। इस विचार के अनुसार पहले ज़माने में मुर्दे के साथ कुछ बर्तन और भोजन और हथियार भी दफन कर दिये जाते थे ताकि जब वह जगे उसके पास सब सामान मौजूद रहें। यह ऐसी ही बात है कि जैसे गाँव का आदमी अपने साथ कुछ रोटी और लुटिया डोर लेकर सफ़र करता है ताकि सफ़र में कुछ कठिनाई न हो। आजकल युरोप का सभ्य मनुष्य सिर्फ एक छोटा सा सूट केस या हैंड बेग ले कर

समस्त सभ्य संसार में बड़ी सुगमता से भ्रमण कर लेता है; जहाँ ठहरता है उसको सब सामान पल भर में मिल जाते हैं।

सत्य तो यह है कि कर्मों का फल यहीं मिल जाता है। क़यामत के दिन तक इन्तज़ार करने की आवश्यकता ही नहीं। क्या ख़ुदा के उपासकों का ख़ुदा आजकल के राजा, सम्राटों से भी गया गुज़रा है। यहाँ तो आज क़सूर किया कल सरकार ने जेल में डाला। एक ओर तो ख़ुदा सर्व शक्तिमान् कहा जाता है दूसरी ओर ढिल मिल मिज़ाज बनाया जाता है। आजकल यदि हवालाती कुछ समय से ज़्यादा बिना सज़ा के हवालात में रक्खे जाते हैं तो वाय वैला मच जाता है कहा जाता है कि सरकार बड़ी ज़ालिम और अन्यायी है, यहाँ ख़ुदा लाखों, करोड़ों वर्ष तक लोगों को बिना सज़ा का हुक्म सुनाये रखता है। अजब इन्साफ़ है।

पाठक! इतना तो हम जानते हैं कि सृष्टि के नियम इतने कड़े हैं कि जो शख़्स उनका उल्लंघन करता है उसको सज़ा फ़ौरन मिलती है—थोड़ी या बहुत। आतशक, सोज़ाक, प्लेग, हैज़ा, काला आज़ार, मलेरिया, चेचक, खसरा, पेचिश, पेट का शूल, इत्यादि ये सब सज़ाएँ हैं। जब सज़ा मिलती है और यहीं मिलती है तो हमारी बला से क़यामत आवे या न आवे। हमारा कर्त्तव्य है इस सृष्टि के नियमों को समझना और उनका पालन करना। भूत पूर्व को देख कर वर्तमान को ठीक रक्खो, भविष्य के लिए परेशान न होओ। वर्तमान ठीक है तो भविष्य के बिगड़ने की कोई संभावना नहीं।

बुरे कामों से परमात्मा का सम्बन्ध

जितने बुरे काम इस संसार में होते हैं वे सब परमात्मा की सहायता से किये जाते हैं। चोरी, डकैती, जालसाज़ी, रंडीबाज़ी। बहुत

से रोग जैसे सोज़ाक, आतशक, हैज़ा, पेचिश, प्लेग परमात्मा ही की वजह से इस संसार में आते हैं। असली कारण की ओर ध्यान न दे कर नकली कारण की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। बिना मच्छर के मलेरिया नहीं; बिना प्लेग के कीटाणु, चूहे और फुदकु के प्लेग नहीं; बिना हैजे के कीटाणु के हैज़ा नहीं। अज्ञानता को दूर करना ठीक नहीं समझते, बैठे हैं पूजने परमात्मा को और उम्मेद करते हैं कि सृष्टि के नियम जो अटल हैं टल जावेंगे। सब वेश्यायें खुदा या ईश्वर या ईसा मसीह को मानती हैं; रंडीबाज़ी करने वाले सुबह शाम संध्या करते हैं, मस्जिद में बाकायदा नमाज़ पढ़ते हैं और मन्दिर में घंटा बजा कर ईश्वर की उपासना करते हैं; खुदा के घर अर्थात् गिरजा में जाकर खुदा की स्तुति करते हैं। परमात्मा के मानने वाले ही मच्छर, मक्खी, जूँ, चूहे का मारना पाप समझते हैं। चोर जब चोरी करने जाता है तो अक्सर किसी देवी, देवता, या परमेश्वर की उपासना करता है। बनिया (साहूकार) जब झूठी दस्तावेज़ बना कर दूसरे का सत्यानाश करता है तब भी परमात्मा की पूजा करता है; वह अपने देवी, देवता से कहता है कि यदि मैं मुकदमा जीत गया तो इतने का प्रसाद या मिठाई तुझ पर चढ़ाऊँगा। राम राम जपने वाले बनियों ने सैकड़ों भोले-भाले ग़रीब आदमियों और शरीफ़ज़ादे सय्यदों को भूखा मारा; उनको फ़ाके नोदा कर दिया और क़र्ज़दार बना दिया। फिर भी ये बनिये पनपते हैं। क्यों? क्या ईश्वर उनका सहायक है। नहीं—कपट द्वारा। आत्म रक्षा के संग्राम में वही जीतता है जो चालाक है। दूसरे को धोखा देना, हीला करना ये पशु गुण बतलाये जाते हैं। यदि ये लोग परमात्मा को अपना सहायक न बनाते तो मैं उनकी तारीफ़ करता। हमने तो यह देखा है कि जितना लम्बा चौड़ा टीका और तिलक, उतना ही ठग विद्या में निपुण। शराब पीना,

जुआ खेलना, यह भी अकसर देवी देवताओं और परमात्मा ही की बदौलत होते हैं। एक खुदा के दूत इतने चालाक हैं कि थोड़ी सी फ़ीस से सब पाप दूर करा देते हैं; दूसरे मर्द या स्त्री से चोरी से मैथुन कर लो, फिर उस दूत के पास जाकर एकांत में कह दो कि मैंने ऐसा काम किया है और थोड़ी सी फ़ीस दे दो, बस माफ़ी मिल गयी। एक पाप दूर हुआ; आइन्दा फिर जो चाहे कर सकते हो।

हमारी राय में ये सब अज्ञानता की बातें हैं। हम कहते हैं कि बुरे काम की सज़ा अवश्य मिलती है। जो व्यक्ति इस सृष्टि के नियमों का उल्लंघन करता है उसे अवश्य दुःख भोगना पड़ेगा। यदि आप आतशकी पुरुष या स्त्री से असावधानी से मैथुन करेंगे तो आपको उसका परिणाम भुगतना पड़ेगा चाहे कितना ही बलवान आपका ईश्वर क्यों न हो और आप कितना ही ईमान किसी पुस्तक या नबी पर लावें। दोज़ख तो रही दूर, यही संसार आपको दोज़ख दिखावेगा। यदि आपको सोज़ाक है तो जिस स्त्री से आप मैथुन करेंगे उसका जीवन भी खराब हो जावेगा। यदि आप अपना स्वास्थ्य खराब करके अपनी ताक़त ज़ाया करेंगे और फिर इस कमज़ोर अवस्था में हैज़े, प्लेग इत्यादि के विष अपने शरीर में प्रवेश करावेंगे तो आपको उस ग़लती का नतीजा भुगतना पड़ेगा—चाहे आप किसी भी देवी, देवता का पूजन करें। जो ग़रीब आदमी अपना धन, ताड़ी, शराब, भंग, गाँजा में व्यतीत करेंगे उसको सूद खानेवाले बनिये की शरण लेनी होगी और फिर अपना रहा सहा धन भी लुटा देना होगा। यही इस ज़िन्दगी का कशमकश, यही जीवन का संग्राम है। जो अपनी पाँचों ज्ञानेंद्रियों से काम लेता है और अपनी बुद्धि से काम करता है वही जीतता है। जो कुछ एक व्यक्ति के सम्बन्ध में ठीक है वही व्यक्ति समूह या समाज के लिये ठीक है, वही कौम

और देश के लिये ठीक है। एक क़ौम दूसरी क़ौम पर हरगिज़ राज्य नहीं कर सकती जब तक उसमें ऐसे दोष न पाए जावें जिनके होने से वह सांसारिक महायुद्ध में लड़ने के अयोग्य हो जावे अर्थात् जिससे शारीरिक, मानसिक और आर्थिक बल कम हो जावें।

भारत की पराधीनता और दरिद्रता के कारण

१—अपनी हिम्मत हार कर अपने सब कामों को कल्पित देवी, देवता, अवतार, ईश्वर, खुदा, परमात्मा की सहायता पर छोड़ देना। क्षण भर के लिये मान लो कि ऐसी शक्ति है, तब भी जबतक आप अपना तन मन धन किसी काम में न लगा दोगे उस समय तक यह शक्ति आपको सहायता देना उचित न समझेगी। दूसरों के भरोसे कभी न रहना चाहिये। अपने बिरते पर काम करना ही बहादुरी है। अपनी इच्छा बल को मज़बूत करो और फिर देखो कि कामयाबी होती है कि नहीं। पाखंड को छोड़ो। मंदिरों वा अन्य पूजन के स्थानों की जगह अज्ञानता दूर करनेवाले स्कूल और पाठशाला बनाओ; जो धन निठल्लुओं की सेवा करने में व्यर्थ जाता है उसको अन्धकार दूर करने में खर्च करो और फिर देखो कि स्वतन्त्रता मिलती है कि नहीं।

२—भोजन का कम मिलना; जिस परिमाण में भोजन के अवयव मिलने चाहियें न मिलना; अनावश्यक चीज़ों का ज्यादा खाना और आवश्यक चीज़ों को कम खाना। इन बातों से स्वास्थ्य पर बड़ा असर पड़ता है। जिस देश में भूखे आदमी रहेंगे, वह देश आत्म रक्षा और स्वजाति रक्षा के नियमों का पालन न करके शीघ्र अधः-पतन को प्राप्त होगा।

३—स्वास्थ्य बिगाड़ने वाले कामों को करना या ऐसे काम करना

जिनसे स्वास्थ्य न सुधरे। मलेरिया, क्षय रोग, आतशक, सोज़ाक और कई और रोग ऐसे हैं जिनको फैलाना और रोकना हमारे वस में है। इन रोगों से कुल समाज का स्वास्थ्य विगड़ता है और शरीर ऐसे दुर्वल हो जाते हैं कि मनुष्य इस जीवन के संग्राम के योग्य नहीं रहता।

४—विवाह। निर्वल संतान उत्पन्न करना। आम तौर से जो संतान १६ वर्ष से कम आयु वाली स्त्री और २० वर्ष से कम आयु वाले पुरुष के मेल से उत्पन्न होती है वह निर्वल होती है। वृद्धपुरुष और जवान स्त्री, और जवान पुरुष और अधिक आयु वाली स्त्री के मेल से जो सन्तान होती है वह भी अच्छी नहीं होती। थोड़े थोड़े अंतर से (दो सन्तानों के बीच में २½ वर्ष का अंतर चाहिये) सन्तानों का होना भी उचित नहीं।

५—मदिरा, ताड़ी, भँग, गाँजा, अफीम, तम्बाकू ये सब स्वास्थ्य को विगाड़ने वाली चीज़ें हैं। जब देश धनी हो तो कौम को शीघ्र हानि नहीं पहुँचती अर्थात् उसके अधःपतन में कुछ समय लगता है; परन्तु जब कौम ग़रीब हो या पराधीन हो या उस में और कमजोरियाँ भी हों तो उसके अधःपतन में इन चीज़ों का प्रयोग खूब सहायता देता है। शराब और भंग पागलपन के मुख्य कारण भी हैं।

सृष्टि की चाल

भूगर्भ विद्या, इतिहास, विज्ञान से सिद्ध हुआ है कि इस सृष्टि की चाल सदा एक सी नहीं रही और न रहेगी। उस में तीन क्रियाएँ होती रहती हैं:—

१—विकास अर्थात् छोटी चीज़ से वड़ी वनना, कम विचित्र से अधिक विचित्र वनना, वलहीन से वलवान वनना, तुच्छ से विशाल

बनना इत्यादि। वैज्ञानिकों का मत है कि पहले पहल जैविक सृष्टि एक-सेलयुक्त थी; फिर बहुसेलयुक्त बनी। बहुसेलयुक्त सृष्टि में पहले कम विचित्र प्राणि थे फिर बड़े और विचित्र प्राणि बने। आदि मनुष्य किसी ज़माने में आजकल के चिम्पानज़ी, ऊरांगऊटांग बनमानुषों से कुछ कुछ मिलता जुलता था और आज कल के मनुष्य से भिन्न था। मनुष्य का शरीर वानरों से अधिक विचित्र क्रिया वाला है। उस का मस्तिष्क जिस पर बुद्धि निर्भर है अन्य प्राणियों के मस्तिष्क से अधिक विचित्र है। यह माना जाता है कि सृष्टि विकास द्वारा ही उत्पन्न हुई। यह नहीं कि खुदा ने कहा होजा और हो गयी। सृष्टि के बनने में समय लगा है और वह धीरे धीरे बनी है। कोई समय था (शायद कई लाख वर्ष पूर्व) कि जब आदम शरीफ तशरीफ ही न रखते थे। अनुमान है कि मनुष्य चंद लाख वर्षों से ही इस सृष्टि में आया है। विकास सम्बन्धी नियम जीव विद्या की पुस्तकों में मिलेंगे।

२—आन्दोलन। भूगर्भ विद्या से और इतिहास से पता लगता है कि विकास (जो एक सहज और मन्द चाल का रास्ता है) के अतिरिक्त कभी कभी इस सृष्टि में बड़ी तेज़ी से भी तब्दीलियाँ होती हैं। जहाँ आज पहाड़ है वहाँ किसी ज़माने में समुद्र था; जहाँ आज समुद्र है वहाँ किसी ज़माने में एक बड़ा मुल्क या टापू था। बड़े बड़े भूकम्पों से आनन फानन में बड़े बड़े शहर बरबाद हो गये, बड़ी बड़ी सलतनतों को धक्का लग गया।

जहाँ तक सामाजिक बातों का सम्बन्ध है, आन्दोलन अक्सर हुआ करते हैं। ७—८ हज़ार वर्ष पहले जो रिवाज थे वे अब नहीं हैं। प्राचीन काल की असीरिया, बबिलोन, सुमर, मिश्र, यूनान, रोम की सभ्यताओं का पता नहीं। यही पता नहीं कि भारत के प्राचीन हिन्दू अब से पाँच हज़ार वर्ष पहले कैसे रहते सहते थे। आन्दोलन द्वारा

राजाओं के राज क्षणः भर में चले जाते हैं। फ्रांस में क्या हुआ? अमरीका में क्या हुआ? गत ३५ वर्षों में गिने चुने बादशाह रह गये हैं। जो आज राज्य करता है कल वह अपना बोरिया बाँध कर अपनी जान बचा कर भागता नज़र आता है। कहाँ है चीन का शाहंशाह, कहाँ है रूस का ज़ार, कहाँ जर्मनी का कैसर, कहाँ टर्की का सुल्तान। आन्दोलनों से देशों की काया पलट बहुत शीघ्र हो जाती है।

समाज की उन्नति (और उसका अधःपतन भी) अधिकतर आन्दोलन द्वारा ही होती है। मुसल्मानी आन्दोलन से बहुत से देशों की काया पलट हो गयी। आर्यसमाज और ब्रह्म समाज के आन्दोलन से हिन्दुओं में अनेक तब्दीलियां हुईं। कॉंग्रेस के आन्दोलन से जो कुछ हो रहा है वह सब दुनिया जानती है।

आन्दोलन द्वारा सदियों की कुरीतियां पल भर में दूर हो जाती हैं। क्या टर्की की औरतों ने जो सदियों से मुँह ढांक कर चलती थीं आनन फ़ानन में पर्दा नहीं छोड़ दिया? जो औरत कल दूसरे मनुष्य को अपना मुँह दिखाना पाप समझती थी वह आज आप से आप कर आँखें मिला कर चलती है।

जब आन्दोलन होगा, भारतवर्ष में एक दम बाल विवाह, पर्दा, छूत छात, ऊँच नीच, हिन्दू मुसलमानों की लड़ाई, कम तालीम दूर हो जावेंगे।

उन्नति विकास से तो होती ही है परन्तु विकास के साथ आन्दोलन की भी आवश्यकता है। इतिहास बतलाता है कि आन्दोलन बिना किसी सभ्यता का काम ही नहीं चल सकता। जो बात इस समय कानूनी और जायज़ है वह मिन्टों बाद एक हुकम निकलते ही ग़ैर कानूनी और नाजायज़ क़रार हो जाती है, तो भारत की कुरीतियां का दूर करना कौन कठिन काम है। इन कामों के लिये ज़बरदस्त

हाकिम की ज़रूरत है। इटली के मुसोलिनी*, और टर्की के कमाल पाशा ने क्या क्या न कर दिखाया—कमालपाशा* ने मिन्टों में खिलाफत उड़ाई, मज़हब उड़ाया, परदा उड़ाया, भाषा उड़ायी, अज्ञानता उड़ाई, फेज़ उड़ाई और न मालूम क्या क्या उड़ावेगा।

३—प्रतीपगमन या विपरीतगति। जो क़ौम किसी ज़माने में बड़ी चतुर, विद्वान, सभ्य इमारत बनाने में होशियार, ईमान्दार, बहादुर थी वह कुछ समय पश्चात् कायर, झूठी, बेईमान, असभ्य, बेवकूफ, अनपढ़ हो जाती है। इतिहास इस बात का साक्षी है। पुरानी प्राचीन सभ्यताओं का हाल सभी जानते हैं। क्या आजकल के हिन्दू दो हज़ार वर्ष पहले के हिन्दुओं की तरह हैं? क्या आजकल के यूनानी, मिश्री, रोम वाले वैसे ही हैं जैसे कि प्राचीन सभ्यता वाले थे? सृष्टि में जहाँ एक ओर उन्नति होती है वहाँ अवनति भी होती है। कोई क़ौम गिरती है कोई उठती है। आजकल के हिन्दू मूर्ख, अर्ध सभ्य गिने जाते हैं, १½, २ हज़ार वर्ष पहले यही लोग सब से चतुर थे और दूसरे देशों पर राज करते थे। आजकल के मिश्र निवासी पराधीनता की हालत में हैं, तीन हज़ार वर्ष पहले वे बड़े चतुर थे और अपनी चतुराई का नमूना पिरेमिड बना कर छोड़ गये। ऐसी ऐसी सैकड़ों मिसालें हैं। सलतनतें बनती हैं, बिगड़ती हैं और फिर बनती हैं।

परंपरा

यदि माता पिता का धन सन्तान को पहुँचे तो साधारण बोलचाल में कहा जाता है कि यह पैतृक धन है या परंपरागत या परं-

* Kemal Pasha; Mussollini.

प्राप्त धन है। इसी प्रकार जब माता पिता के विशेष गुण या अवगुण सन्तान में पाये जावें तो कहा जाता है कि ये गुण परंप्राप्त है इसी प्रकार यदि कोई विशेपता जैसे कटे होंट का होना, नीली पुतली का होना, लम्बा कद या ठिगना कद, विशेप प्रकार का लहजा, या आँखों की बनावट या होठों की बनावट, नाक की बनावट तो कहते हैं कि ये विशेपताएँ या त्रुटियाँ परंप्राप्त हैं। कुछ रोगों के लिये भी विशेप रुझान पारंपरिक होती है। आतशकी माता पिता की सन्तान अक्सर आतशकी होती है; सन्तान ने आतशक अपने आप अपने कुकर्मों से प्राप्त नहीं की, बल्कि धन की भाँति अपने माँ, बाप या दोनों से प्राप्त की है! बहुत सी बीमारियों का रुझान भी सन्तान प्राप्त कर लेती है। बाप या माँ को दिक़ हुआ हो तो इस रोग के लिये रुझान उस सन्तान को परंपरा द्वारा मिल सकता है; मा बाप को गठिया हुआ हो तो इस रोग का रुझान भी उसको मिल सकता है; इसी प्रकार दमा, उकाँता, पगलापन, मिर्गी, चंचलपन, इत्यादि अन्य कई रोगों का रुझान हम पैदा होते अपने साथ लाते हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी सन्तान को अपने रोग दाय भाग के तौर पर न दें।

सारांश

१—इस संसार में केवल दो नियम काम करते नज़र आते हैं:—(१) आत्म रक्षा, (२) स्वजाति रक्षा। सब जीवों को इन नियमों का पालन करना पड़ता है। जहाँ और जब इन नियमों का उल्लंघन होता है, तुरंत आपत्ति का सामना करना पड़ता है।

२—नेकी, बदी, बुराई, भलाई। ये चीजें ऐसी नहीं कि जिनको कोई नियत मूल्य हो। ज़बरदस्त की हमेशा जीत होती चली आयी है और होती चली जावेगी। बल ही सत्य है वैसे तो अक्सर सत्य में भी

बल होता है। हर तरह से अपना बल बढ़ाना हर एक व्यक्ति का परम धर्म है क्योंकि बल आत्म रक्षा और जाति रक्षा का मुख्य साधन है।

३—कारण और कार्य्य—ये एक दूसरे से अटूट सम्बन्ध रखते हैं। कर्मों का फल अवश्य मिलता है। कर्म बुरे और भले परिस्थिति के अनुसार कहे जाते हैं। कुछ कर्मों में बुराई और भलाई का भेद होता ही नहीं। परिस्थिति चाहे कुछ हो हो आतशकी पुरुष या स्त्री से मैथुन में आतशक होने की संभावना है—यह काम चाहे साहुकार करे चाहे ग़रीब आदमी, चाहे राजा करे चाहे दरिद्र।

४—कर्मों का फल या दंड देनेवाला कोई नहीं। कम से कम इस संसार का काम चलाने के लिये और इस में रहने के लिये किसी ईश्वर, खुदा, अल्ला को मानने की आवश्यकता नहीं। हमारी राय में मानने से हानि हो होती है, लाभ अभी तक तो हुआ नहीं, भविष्य में होने की आशा नहीं। हमारी राय में ऐसा करना अज्ञानता को दर्शाता है। इस विश्वास से इच्छा बल घटता है, और पराधीनता बढ़ती है; मनुष्य को अपने कर्मों और इच्छा बल पर विश्वास ही नहीं रहता।

५—इस जगत में वही जीवित रह सकता है जो बलवान् है; इस कारण हर एक प्रकार से बल बढ़ाना, (शारीरिक, मानसिक, आर्थिक) हर एक समझदार मनुष्य का कर्त्तव्य है।

अध्याय २

शरीर की स्थूल और सूक्ष्म रचना हम ने "हमारे शरीर की
रचना" नामक पुस्तक में विस्तारपूर्वक लिखी है; पाठक कृपा कर के
उस को पढ़ें। हम इस पुस्तक में कुछ चित्रों द्वारा केवल यही बतला-
वेंगे कि कौन अंग कहाँ रहता है ताकि रोगों के सम्बन्ध में कोई
कठिनाई न हो।

मनुष्य का जीवन संग्राम

जब से शुक्राणु और डिम्ब के संयोग से गर्भ बनता है, सच
पूछिये तो उस से भी पहले से संग्राम आरंभ हो जाता है और यह संग्राम
जीवन भर अर्थात् जब तक कि मृत्यु द्वारा शरीर का अंत और रूप
बदल न हो जावे होता रहता है। सब बड़े जीव चाहे चूहा हो, चाहे
चिड़िया, चाहे मनुष्य हो शुक्रकीट (पुरुष भाग) और डिम्ब (नारी
भाग) के संयोग से उत्पन्न होते हैं। शुक्रकीटों में पुरुष के रोगों से
निर्बलता और रोग उत्पन्न हो सकते हैं; डिम्ब भी स्त्री के रोगों से
कमज़ोर और रुग्ण हो सकते हैं; पहला संग्राम माता पिता के शरीर
में ही आरंभ हुआ। वहाँ से बचे, शुक्रकीट गर्भाशय में पधारे, डिम्ब
डिम्ब प्रणाली में आया और दोनों के संयोग से गर्भ बना। यह गर्भ डिम्ब

प्रणाली से चल कर गर्भाशय में आता है और वहाँ उस की दीवार में चिपक जाता है और वहीं उस का वर्धन होता है। पुरुष का काम खतम हुआ। गर्भाशय भूमि के समान है। वह विकृत और अस्वस्थ हो सकता है। भूमि यदि खराब है और माता का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है तो गर्भ का वर्धन ठीक नहीं होता और जैसे ज़मीन खराब होने से या और कारणों से बीज उपजता नहीं या पौधा शीघ्र मुरझा जाता है उसी प्रकार यह गर्भ भी मुरझा जाता है और गिर पड़ता है। यह दूसरा संग्राम हुआ। जब तक गर्भ गर्भाशय में रहता है उस की जान संकट में रहती है; जो रोग गर्भावस्था में माँ को दिक़ करते हैं वे रक्त द्वारा (क्योंकि उस का पोषण रक्त द्वारा ही होता है) उस गर्भ की भी हानि पहुँचाते हैं (चित्र १५)। मानो १० मास या २८० दिन गुज़र गये, अब माता के शरीर से निकलने पर उस की जान संकट में पड़ती है। रास्ता तंग हो, या किसी प्रकार की असावधानी या ला-पर्वाही हो—यह तीसरा संग्राम हुआ। बहुत से बच्चे होते समय ही मर जाते हैं। अब इस संसार में आने के पश्चात् अनेक संग्रामों में युद्ध करना पड़ता है। बचपन में कई विशेष रोग उस के पीछे पड़ते हैं—कहीं चेचक है, कहीं खसरा, कहीं मोती झरा, कहीं खाँसी; दाँत निकलने में भी अकसर अत्यंत कष्ट होता है—कहीं दस्त आते हैं, कहीं खाँसी होती है, कहीं आँखें दुखती हैं; अधिक ठंड, अधिक धूप सभी उस को हानि पहुँचा सकती हैं; वह इस समय पराधीन है, माता पिता के आधीन उस की रक्षा है। ज्यों ज्यों वह इस संसार में रहता है रोगों पर विजय पाता जाता है और रोग-क्षमता प्राप्त करता जाता है। इस संसार में जिधर देखो उस के दुश्मन ही दुश्मन मौजूद हैं। न केवल अदृश्य और अति-अणुवीक्ष्य और अणुवीक्ष्य रोगाणुओं से उस को मुक़ाबला करना पड़ता है प्रत्युत इन से भी बड़े जीवों से उस को संग्राम करना

पड़ता है। कहीं पेचिश का अमीबा उस की जान लेने को तैयार है, कहीं
भाँति भाँति के कीड़े जैसे जून, पट्टिका, अंकुशा उसकी आँतों में परा-
श्रयी के रूप में रहकर उसका स्वास्थ्य बिगाड़ते हैं। कहीं मच्छर, कहीं
मक्खी, कहीं चिचली, कहीं फुदक्कु बड़े बड़े जानवर भी पीछा नहीं
छोड़ते; चूहा तक काट खाता है। साँप, बिच्छु का तो कहना ही क्या।
इन के अलावा अनेक प्रकार के अणुवीक्ष्य रोगाणु हैं जैसे इन्फ्लुएंज़ा,
ज़ुकाम, तपेदिक, कोढ़, फिरंग रोग के। इन से जान बची तो तरह
तरह की चोटों से जान संकट में है; केले या आम या खरबूजे के छिलके
पर से रपट कर गिरे और हड्डी टूटी; हिन्दू मुसलमानों में लड़ाई हुई
और छुरे या लाठी से घायल हुए या सीधा बहिश्त या दोज़ख का रास्ता
लिया। (चित्र २३) सीढ़ी पर चढ़े, डंडा टूटा, गिरे और हाथ टूटा;

चित्र २३ हिन्दू मुसलमान की लड़ाई

बैल ने सींग मारा और पेट फटा अधिक धूप में गये और लू लगी और यमराज सामने खड़े नज़र आये। गाय या बैल ने सींग मारा और पेट फटा। बावले कुत्ते या गीदड़ ने काटा और जान जोखू में आयी। और भी कुछ न हुआ तो खाना बनाते हाथ जल गया या कपड़ों में आग लग गयी। सारांश यह कि मनुष्य के लिये संग्राम ही संग्राम है। कोई कहे कि धन से या अधिक राज पाट से संग्राम से बच जाता है सो भी नहीं। चक्रवर्ती शाहन्शाह जार्ज पंजुम साल भर बीमार रहे और दुख भोगते रहे। लार्ड किचनर समुद्र में डुबा दिये गये। बड़े बड़े वज़ीर और बादशाहों के लड़के तमंचे से मार डाले गये। मनुष्य कितना ही अभिमान करे और कितना ही बड़ा बने उ..र की जान की और प्राणि उतनी ही क़दर करते हैं जितनी कि वह औरों की करता है। चिड़िया को कभी अपने घोंसले में वापिस आने की उम्मेद नहीं, मनुष्य जब चाहे गोली से उसे मारदे या पकड़ कर खा जावे। मनुष्य को भी अपने जीने का एक पल भर का भरोसा न रखना चाहिये। तुच्छ नाग डस को दम भर में यमराज के हवाले कर सकता है। पाठक! खबरदार! वह काम कर जिस से तेरी और तेरी सन्तान का स्वास्थ्य ठीक रहे और बल और आयु बढ़े और जीवन के सुख भोग कर इस संसार को बिना रंज और ग़म के छोड़ने को हर समय तैयार रहे।

स्वास्थ्य क्या चीज़ है

जब हमको किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक कष्ट न हो, किसी प्रकार की चिन्ता न हो; यदि कष्ट और चिन्ताएँ हों भी तो

यत्न करने से झटपट दूर हो जावें; भूख लगने पर भोजन खा जावें और फिर खबर न रहे कि खाया या नहीं; काम करने को जी चाहे और जब थक जावें तो थोड़ी देर आराम करके फिर तरो ताज़ा हो जावें, इस संसार के संग्राम में बहादुरी से लड़ते रहें और जीतें तो खुश रहें, परन्तु हारें तो फिर दूसरी बार तीसरी बार लड़ने को तैयार रहें, जो हमारे एक मारे हम उसको दो मारने को तैयार रहें। हमको इस बात का पता ही न रहे कि हृदय कहाँ है या फुप्फुस कहाँ है और उनका काम ठीक है कि नहीं; इसी प्रकार शरीर का कोई और अंग हमारा ध्यान खास तौर पर न बँटावे; रात्रि को गहरी नींद आवे; प्रातःकाल आँख खुल जावे; उठकर मलत्याग करने को जी चाहे; फ़ारिग़ होकर स्नान करके कुछ खा पीकर फिर काम करने में मन लगे। यदि इस प्रकार की बातें हम में हैं तो हम यह कह सकते हैं कि हम स्वस्थ्य हैं या यह कि हमारा स्वास्थ अच्छा है; या यह कहो कि हम आत्म रक्षा करने के योग्य हैं और जब आत्म रक्षा हुई तो स्वजाति रक्षा की आशा अपने आप बन जाती है।

जब ऊपर लिखी बातें न हों तो मुआमला गड़बड़ है। भूख न लगे; खाना खालें तो पेट फूलने लगे या शूल हो, शौच को जावें तो पाखाना न आवे या थोड़ा सा आकर रह जावे या दस्त आजावें या मड़ोड़ से बार बार मल त्याग करना पड़े। बार बार पेट पर हाथ धर कर पेट की याद की जावे। चलें तो दिल धक धक करने लगे और बिना सीने पर हाथ धरे एक क़दम न बढ़ाया जावे; ऊपर चढ़ें तो साँस फूल जावे। ज़रा से परिश्रम से मन घबराये; यदि कोई मुसीबत आ पड़े तो मानो मौत का सामना है; रात्रि को नींद न आवे; कोई रोग हो जावे तो उस से शीघ्र पीछा न छूटे, आज मरे कल मरे यही सुनाई

पड़े; पेट में गर्भ हो तो महा मुसीवत; गर्भ गिर जावे या पूरे दिन का बच्चा न जन पावें; यदि पूरे दिन का बच्चा हो भी तो होने में अत्यन्त कष्ट हो या कोई भारी रोग पीछे लग जावे। हर वक्त किसी न किसी प्रकार का रंज और फिक्र रहे; मन किसी बात पर स्थिर न रहे। बात बात पर शरीर के अंग याद आवें; कभी आँख कभी कान, कभी नाक। ऐसी ऐसी बातों का होना हमको अस्वस्थ बनाता है और यह कहा जाता है कि हमारा स्वास्थ्य बिगड़ गया है या हम रोगी हैं। रोग न होने की अवस्था को आरोग्यता या सुस्थता कहते हैं। कोई व्यक्ति स्वस्थ, सुस्थ, निरोग होता है कोई अस्वस्थ, या रोगी होता है।

रोग के कारण (चित्र १५)

चित्र १५ में रोगों के मुख्य कारण दिखाए गये हैं। हम यहाँ इस चित्र की व्याख्या करते हैं—

१—बहुत से रोग या रोगों के रुझान हम अपने साथ पैदा होते समय बतौर विरसे के लाते हैं। ये रोग पारंपरिक या परंपरीण कहलाते हैं; या यह कहा जाता है कि फलाँ व्यक्ति को फलाँ रोग का पैदायशी रुझान है क्योंकि उसके माता पिता या दादा पड़दादा को ये रोग हो चुके हैं—उदाहरणार्थः—पारंपरिक आतशक; गठिया और क्षय का रुझान; मोटापन का रुझान; कटे होठ का होना; (चित्र २४)

२—कभी कभी कुछ रोग गर्भावस्था में ही सन्तान को सताने लगते हैं और उनसे उसकी आकृति बदल जाती है। जब जन्म होता है तो अंगों की बिगड़ी दशा दिखाई देती है। जैसे पैरों का तिर्छा

या बिगड़ी आकृति का होना; हाथ पैरों की अंगुलियों का जुड़ा होना; कोई अस्थि का छोटा ही रह जाना या बिल्कुल न बनना; ५ की

चित्र २४ पारंपरिक आतशक। छोटी कन्या के भग पर जख्म

आतशकी जख्म
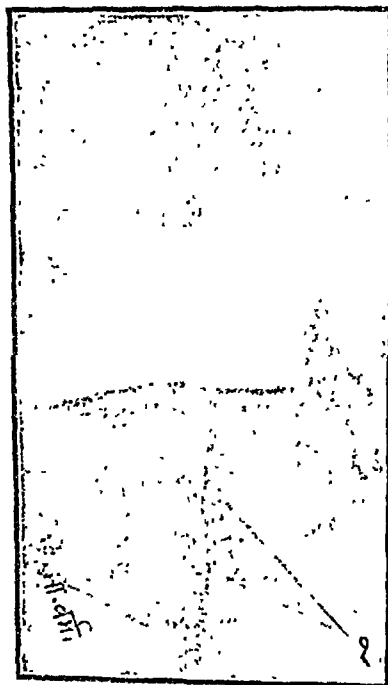
चित्र २५ पैदायशी टेढ़े पैर
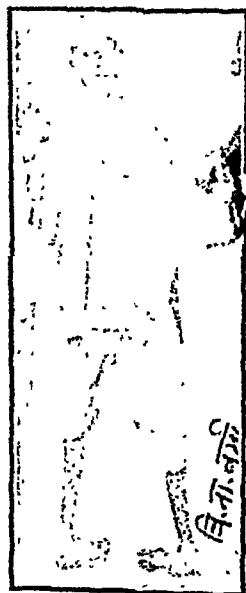
जगह ६ अंगुलियों का होना। कुछ रोग ऐसे होते हैं कि जो पैदा होने के समय नज़र नहीं आते परन्तु कुछ दिनों बाद ज्यों ज्यों बालक

बढ़ता है नमूदार होने लगते हैं। आँतों का वृषण में उतरना; भाँति भाँति की रसौलियाँ विशेषकर वे जो घातक नहीं हैं। (चित्र २५, २६)

चित्र २७ चेचक

चित्र २६ रसौली
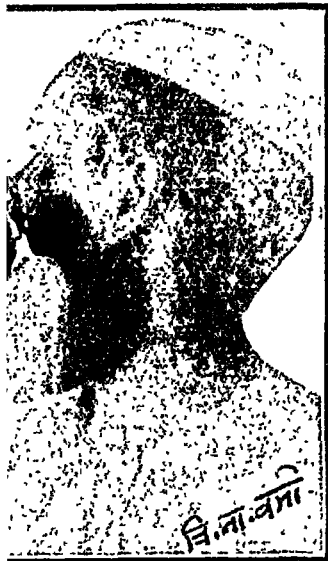
३—जन्म लेने के पश्चात् अनेक प्रकार के रोगाणुओं के आक्रमण से विविध प्रकार के रोग होते हैं। ये रोगाणु कई प्रकार के होते हैं—

(१) अति-अणुवीक्ष्य—अर्थात् इतने सूक्ष्म कि अणुवीक्षण

यंत्र से भी न दिखाई दें—जैसे चेचक, खसरा, हप्पु इत्यादि रोगों के रोगाणु। (चित्र २७)

(२) अणुवीक्ष्य—साधारण आँखों से अदृश्य परन्तु अणुवीक्षण द्वारा दिखाई देनेवाले। ये दो प्रकार के होते हैं।

(अ) कीटाणु या बकटीरिया जिनकी गिनती वनस्पति वर्ग में है—जैसे, फोड़े फुन्सी, ज़ुकाम, न्युमोनिया, तपेदिक (क्षय), कुष्ठ, इत्यादि के रोगाणु। अधिकत्तर रोगाणु इसी श्रेणि के होते हैं।

चित्र २८ श्लीपद चित्र २९, सीढ़ी पर से गिरे और हाथ की हड्डी टूटी
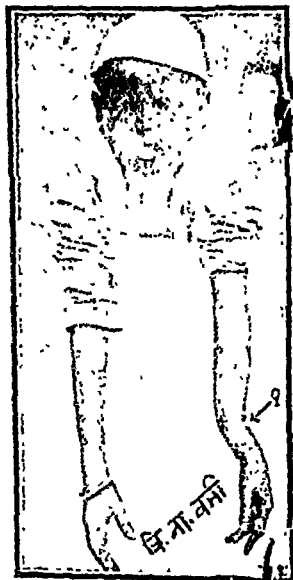
(आ) आदि प्राणि जैसे मलेरिया, काला अज़ार, बहुनिद्रा रोग, एक प्रकार की पेचिश के रोगाणु।

४—बहुत से रोग बहुसेलयुक्त जन्तुओं के शरीर में प्रवेश करने से होते हैं। जैसे भाँति भाँति के कृमि; फीलपा या श्लीपद। (चित्र २८)

५—अकस्मातिक घटनाओं द्वारा बहुत से रोग होते हैं—जैसे गिरने पड़ने से हाथ पैर टूट जाना, जोड़ों का उखड़ जाना। मनुष्य अपने बनाये यंत्रों से भी चोट खाता है; हवाई जहाज़ से ऊपर से गिर पड़े; मोटर और रेल लड़ जाने से या जहाज़ के डूब जाने से या उसमें आग लग जाने से।

६—गाय, बैल, सुअर, शेर, चीता द्वारा चोट लगना। गाय बैल के सींघ से पेट फट जाना और आँतों का बाहर निकल पड़ना।

चित्र ३० बैल के सींघ से पेट फट गया और आँतें बाहर निकलीं
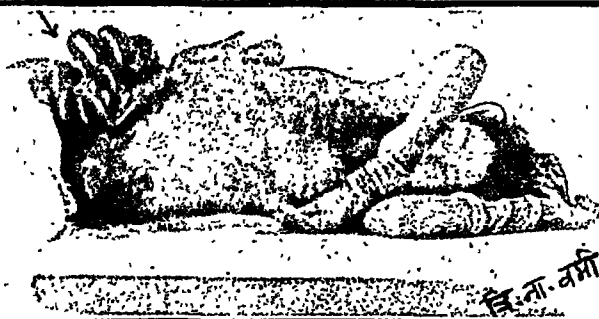
७—ज़हरीले जानवरों के काटने या डंक मारने से रोग होना—साँप, बिच्छू, बर, चींटी, शहद की मक्खी के द्वारा रोग और मृत्यु।

८—अधिक गर्मी से भी रोग होते हैं—शिर में दर्द होना; लू लग जाना; अधिक शीत से अँगुलियों का मुर्दा सा हो जाना या उन पर वर्म आ जाना और छाले पड़ जाना।

९—सूर्य्य के प्रकाश की कमी से बच्चों को रिकेट्स नामक रोग होना अधिक सूर्य्य प्रकाश के कारण गर्म देशों में मोतिया बिंद होना।

९—कुछ अंगों (विशेषकर नल की विहीन ग्रन्थियों) के विकारों से विशेष प्रकार के रोग हो जाते हैं। मधुमेह रोग; एक विशेष प्रकार की स्थूलता; नपुंसकता; एक प्रकार की सूजना; अधिक मात्रा में मूत्र आना; एक प्रकार का बौनापन।

१०—भोजन में खाद्योज नामक वस्तुओं की कमी से रोग हो जाते हैं—जैसे रिकेट्स, स्कर्वी, बेरीबेरी, पेलाग्रा।

११—शरीर में खनिज पदार्थों के आवश्यकतानुसार न पहुँचने से भी रोग हो जाते हैं—जैसे बच्चों को कमहेड़ा (चूने की कमी से); घेघा (आयोडीन की कमी से)।

१२—अलकोहल, भंग, गांजा, चरस पागलपन के खास कारण हैं क्योंकि इनसे मस्तिष्क को हानि पहुँचती है। कोकीन भी हानिकारक है। तम्बाकू द्वारा एक विशेष प्रकार का अंधापन होना; सीसे और संखिया और अलकोहल द्वारा नाड़ी रोगों का होना।

जीवाणु (Microbes)

जीवाणु के लक्षण

हमारी आँखें इस संसार की सब चीज़ों को नहीं देख सकतीं। बहुत-सी चीज़ें इतनी नन्हीं हैं कि हम उनको बिना ऐसे यंत्रों की सहायता के, जो उनका परिमाण वास्तविक परिमाण से कहीं ज़्यादा बढ़ाकर दिखावें, नहीं देख सकते। ऐसे गुणवाला साधारण यंत्र दोनों ओर से उभरा हुआ काँच का ताल होता है। पेचीदा यंत्र, जिसमें कई ताल और बहुत-से पुर्ज़े होते हैं, अणुवीक्षण-यंत्र कहलाता है। जो जीव इतने नन्हें होते हैं कि उनको देखने के लिये अणुवीक्षण से काम लिया जाता है, वे अणुवीक्ष्य जीव या जीवाणु कहलाते हैं। जीवित

सृष्टि के इस जीवाणु-विभाग में वनस्पति और प्राणी, दोनों ही वर्गों की सृष्टि अंतर्गत है। या यह समझना चाहिए कि दोनों वर्गों के सब से छोटे जीव अणुवीक्ष्य होते हैं। वनस्पति-वर्ग के जीवाणु बक्टीरिया या कीटाणु कहलाते हैं।

हिंदी में बक्टीरिया के लिये प्रचलित शब्द कीटाणु है। यद्यपि यह शब्द बहुत उचित नहीं है, परंतु व्यवहार में आ जाने के कारण हम इसी शब्द का प्रयोग करेंगे। प्राणिवर्ग के जीवाणु आदि-प्राणी कहलाते हैं।

जीवाणु कहाँ रहते है ?

जीवाणु एक प्रकार से सर्व-व्यापक हैं। जहाँ कहीं जीवित चीज़ें रह सकती हैं, वहाँ वे भी मौजूद हैं। मिट्टी में, भोजन की वस्तुओं में, दूध में, मुँह में, बालों पर, त्वचा में, आँतों में, आँखों में, कानों में, जल में, वायु में, सभी जगह वे मौजूद हैं। हाँ, कहीं कम हैं, कहीं ज़्यादा; कहीं एक प्रकार के हैं, कहीं दूसरे प्रकार के; कहीं हानि-कारक हैं, कहीं लाभ-दायक।

जीवाणु क्या करते हैं ?

कुछ जीवाणु रोगोत्पादक होते हैं, जैसे मलेरिया (तिजारी, चौथिया ज्वर), काला आज़ार, फिरंग-रोग, क्षय-रोग, इनफ़्लुएंज़ा, सोज़ाक, प्लेग, हैज़ा इत्यादि रोगों के। बहुत-से रोग जीवाणुओं ही के द्वारा होते हैं।

कुछ जीवाणु मनुष्य तथा अन्य जीवधारियों के लिये अत्यंत उपयोगी हैं। जीवाणुओं द्वारा होनेवाली अत्यंत आवश्यक क्रियाओं के उदाहरण ये हैं—

१. दूध से दही और फिर दही से मक्खन तथा घृत तैयार होना। पनीर बनना।

२. गन्ने के रस से सिरका और जौ, महुवा, अंगूर इत्यादि चीज़ों के सड़ाव से शराब का तैयार होना।

३. ख़मीर से डबल रोटी और जलेबी-जैसी मिठाई का बनना।

४. मैले और विष्ठा का सड़ना, और उस सड़ाव से खेत के लिये खाद का तैयार होना।

५. मृत शरीरों का सड़ना, और पदार्थों का अलग-अलग होकर फिर पृथ्वी में मिल जाना।

६. मृत जानवरों की खाल से काम के योग्य चमड़ा बनाया जाना।

७. सन बनाया जाना।

८. बढ़ने के लिये पौदों के वास्ते वायु से नत्रजन (नोषजन) को ग्रहण करना।

९. अन्य क्रियाएँ।

उक्त क्रियाएँ किसी-न-किसी प्रकार के जीवाणुओं ही द्वारा होती हैं। यदि सब जीवाणु नष्ट कर दिए जायँ, तो अन्य जीवित चीज़ों का जीवित रहना भी असंभव हो जाय। प्राणियों को भोजन अंततः वनस्पति-वर्ग से प्राप्त होता है। पौदों के लिये खाद जीवाणुओं द्वारा बनती है। न जीवाणु होंगे, और न खाद बनेगी। बिना खाद के पौदे नहीं उगेंगे, और न बिना पौदों के प्राणी ही जीवित रहेंगे।

जीवाणुओं का परिमाण

जीवाणुओं की सूक्ष्मता का अनुमान करना साधारण मनुष्यों के लिये एक कठिन काम है। जीवाणुओं का सामान्य परिमाण $\frac{१}{२५,०००}$ इंच होता है। यदि २५,००० जीवाणु एक लाइन में पास-पास रक्खे जायँ, तो वे एक इंच लंबा स्थान घेर लेंगे।

चित्र ३१ की सूची

१—मालाणु
२—गुच्छाणु
३—न्युमोनिया के युगल-शलाकाणु
४—मस्तिष्कवेष्ट प्रदाह के युग्लाणु
५—सोज़ाक के युग्लाणु
६—मालटाज्वर के बिन्द्वाणु
७—क्षयाणु (क्षय के शलाकाणु)
८—कुष्ठाणु (कुष्ठ के शलाकाणु)
९—धनुस्थंभ रोग के शलाकाणु
१०—डिफथीरिया रोग के शलाकाणु
११—टायफौयड के शलाकाणु; कुछ पुच्छल हैं
१२—विपूचिकाणु (चन्द्राणु)
१३—महामारियाणु (प्लेग के शलाकाणु)
१४—हेर फेर ज्वर के चक्राणु
१५—सूत्राणु (शाखी सूत्राणु)

जीवाणुओं का सामान्य भार $\frac{१}{१,००,००००,००,००,००,०००}$ माशा होता है अर्थात् एक पद्म जीवाणुओं का भार लगभग एक माशा होता है। ये जीवाणु इतने सूक्ष्म होने पर भी इकट्ठे होकर कितने बड़े-बड़े काम कर सकते हैं! मनुष्य जीवाणुओं को अपनी फूँक से उड़ाकर दूर फेंक सकता है; परंतु जब मौक़ा पाते हैं, ये ही तुच्छ अदृश्य जीवाणु उसकी मृत्यु का कारण होते हैं; हैज़ा, प्लेग (महामारी), क्षय-रोग, इनफ़्लुएंज़ा आदि रोगों के जीवाणु हर साल करोड़ों मनुष्यों को मार डालते हैं। कुष्ठ, रेचक, फिरंग आदि रोगों के जीवाणुओं ने सहस्रों मनुष्यों को

चित्र ३६ भाँति-भाँति के जीवाणु

अंधा, काना, लँगड़ा और लूला कर दिया है। 'जितना छोटा उतना ही खोटा'—यह कहावत जीवाणुओं पर खूब घटती है।

जीवाणुओं के आकार तथा उनकी जातियाँ

कीटाणु कई आकार के होते हैं। कुछ बिंदु-जैसे गोल-गोल होते हैं, जो बिंद्वाणु कहलाते हैं। कुछ शलाका-जैसे लंबे-लंबे होते हैं, जो शलाकाणु कहलाते हैं। कुछ द्वितीया के चंद्र या कौमा की भाँति मुड़े हुए होते हैं, जो चंद्राणु कहलाते हैं। इनके सिवा कुछ पेच की भाँति मुड़े हुए होते हैं, जो चक्राणु कहलाते हैं।

बिंद्वाणु कई तरह के होते हैं। कुछ बिंद्वाणु दो-दो इकट्ठे रहते हैं, जो युगलाणु कहलाते हैं। कुछ चार-चार इकट्ठे रहते हैं, जो चतुष्काणु कहलाते हैं। कुछ आठ-आठ इकट्ठे रहते हैं, जो अष्टकाणु कहलाते हैं। कुछ बहुत-से इकट्ठे रहते हैं, जो गुच्छाणु कहलाते हैं। कुछ बिंद्वाणु ऐसे होते हैं, जिनके पास-पास एक पंक्ति में रहने से छोटी या लंबी माला-सी बन जाती है, ये मालाणु कहलाते हैं।

कुछ कीटाणु सूत्र-जैसे लंबे-लंबे होते हैं, जो सूत्राणु कहलाते हैं। सूत्राणु दो प्रकार के होते हैं। एक वे, जिनमें शाखाएँ निकली रहती हैं। ये शाखी सूत्राणु कहलाते हैं। दूसरे वे, जिनमें शाखाएँ नहीं निकली रहतीं। ये शाखा-विहीन सूत्राणु कहे जाते हैं।

आदि-प्राणी भी कई प्रकार के होते हैं, कुछ अमीबा की भाँति गोल होते हैं, और उसी की तरह चलते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ कर्पण्याकार होते हैं, इत्यादि।

जो जीवाणु रोगोत्पादक हैं, उनको रोगाणु कहते हैं। सुबीते के लिये बहुधा रोगाणुओं का नाम उस रोग के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है, जो रोग उनके कारण उत्पन्न होता है। जैसे फिरंग-रोग के रोगाणु

चित्र ३१ भाँति-भाँति के जीवाणु
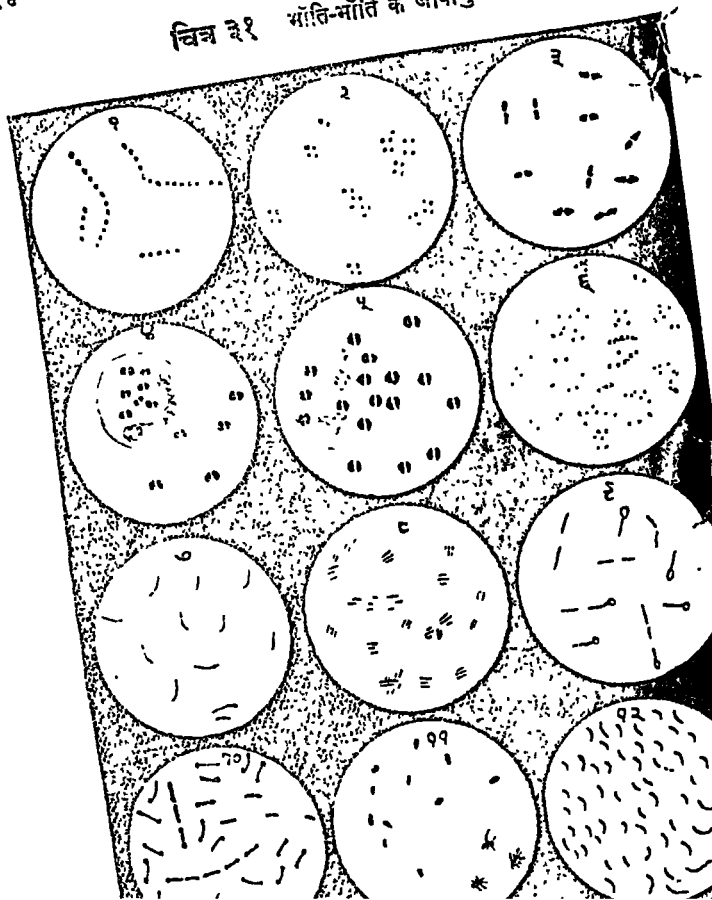
अंधा, काना, लँगड़ा और लूला कर दिया है। 'जितना छोटा उतना ही खोटा'—यह कहावत जीवाणुओं पर खूब घटती है।

जीवाणुओं के आकार तथा उनकी जातियाँ

कीटाणु कई आकार के होते हैं। कुछ विंदु-जैसे गोल-गोल होते हैं, जो विंद्वाणु कहलाते हैं। कुछ शलाका-जैसे लंबे-लंबे होते हैं, जो शलाकाणु कहलाते हैं। कुछ द्वितीया के चंद्र या कौमा की भाँति मुड़े हुए होते हैं, जो चंद्राणु कहलाते हैं। इनके सिवा कुछ पेच की भाँति मुड़े हुए होते हैं, जो चक्राणु कहलाते हैं।

विंद्वाणु कई तरह के होते हैं। कुछ विंद्वाणु दो-दो इकट्ठे रहते हैं, जो युगलाणु कहलाते हैं। कुछ चार-चार इकट्ठे रहते हैं, जो चतुष्काणु कहलाते हैं। कुछ आठ-आठ इकट्ठे रहते हैं, जो अष्टकाणु कहलाते हैं। कुछ बहुत-से इकट्ठे रहते हैं, जो गुच्छाणु कहलाते हैं। कुछ विंद्वाणु ऐसे होते हैं, जिनके पास-पास एक पंक्ति में रहने से छोटी या लंबी माला-सी बन जाती है, ये मालाणु कहलाते हैं।

कुछ कीटाणु सूत्र-जैसे लंबे-लंबे होते हैं, जो सूत्राणु कहलाते हैं। सूत्राणु दो प्रकार के होते हैं। एक वे, जिनमें शाखाएँ निकली रहती हैं। ये शाखी सूत्राणु कहलाते हैं। दूसरे वे, जिनमें शाखाएँ नहीं निकली रहतीं। ये शाखा-विहीन सूत्राणु कहे जाते हैं।

आदि-प्राणी भी कई प्रकार के होते हैं, कुछ अमीबा की भाँति गोल होते हैं, और उसी की तरह चलते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ कर्पण्याकार होते हैं, इत्यादि।

जो जीवाणु रोगोत्पादक हैं, उनको रोगाणु कहते हैं। सुबीते के लिये बहुधा रोगाणुओं का नाम उस रोग के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है, जो रोग उनके कारण उत्पन्न होता है। जैसे फिरंग-रोग के रोगाणु

फिरंगाणु, मालटा-ज्वर के रोगाणु मालटाणु, इत्यादि। ऐसे नाम उन जीवाणुओं की जाति के बोधक नहीं होते।

कुछ कीटाणु विशेष अवस्थाओं में एक विशेष स्थिति धारण करते हैं। उनके शरीर का जीवन-मूल सिकुड़कर एक छोटे-से स्थान में इकट्ठा हो जाता है, और फिर उसके चारों ओर एक मोटा कोष बन जाता है। इस दशा में यह कीटाणु बहुत समय तक (सप्ताहों और वर्षों तक) बिना भोजन और जल के जीवित रह सकता और इतनी गरमी-सरदी सह सकता है, जितनी वह अपनी साधारण दशा में नहीं सह सकता। यह कीटाणु की समाधि-अवस्था है, और इस दशा में वह स्पोर (Spore) कहलाता है।

सब कीटाणु स्पोर नहीं बनाते। टिटेनस, एंथ्रेक्स तथा कई और कीटाणु स्पोर बनाते हैं। स्पोर बनाने वाले कीटाणुओं को मारना स्पोर न बनाने वाले कीटाणुओं की अपेक्षा अधिक कठिन है; क्योंकि स्पोर शीघ्र नहीं मरते। चित्र ३१ के नं० ९ में टिटनेस के कुछ कीटाणुओं के एक सिरे पर स्पोर बन रहे हैं।

जीवाणुओं की रचना

आदि-प्राणी एक सेलवाले होते हैं। सेल के भीतर मींगी दिखाई देती है। कीटाणु भी एक सेलवाले होते हैं; परंतु वे इतने छोटे होते हैं कि सेल के भीतर मींगी जीवन-मूल से अलग नहीं दिखाई देती। मींगी और जीवन-मूल मिले रहते हैं; अर्थात् मींगी के नन्हें-नन्हें ज़र्रे समस्त सेल में फैले रहते हैं।

आदि-प्राणी सभी गति करते हैं, अर्थात् चल होते हैं। कीटाणु भी दो प्रकार के होते हैं। कुछ गति करते हैं। ये गतियाँ उस तरल में, जिसमें वे रहते हैं, देखी जा सकती हैं। ये चल कीटाणु कहलाते हैं।

कुछ गति नहीं करते। ये अचल कीटाणु हैं। कुछ कीटाणुओं में पूंछ-जैसा एक तथा एक-से अधिक तार निकले रहते हैं। ये पुच्छल कीटाणु कहलाते हैं।

जीवाणुओं की खेती

जिस प्रकार काश्तकार अपने खेतों में भाँति-भाँति की चीज़ें पैदा करते हैं, उसी प्रकार वैज्ञानिक लोग भाँति-भाँति के भोजनों पर अनेक प्रकार के जीवाणुओं को उपजाते हैं। बहुत-से अनुभवों और परीक्षाओं से यह मालूम कर लिया जाता है कि किस जाति के लिये कौन भोजन सबसे अच्छा है; अर्थात् किस भोजन पर उस जाति की वृद्धि सबसे अच्छी होती है। ये भोजन होते हैं मांस-रस, रक्त-रस, जेलाटीन, एगर ग्लिसरीन, आलू इत्यादि। ये भोजन, जिन पर जीवाणु उत्पन्न किए जाते हैं, कृपि-माध्यम कहलाते हैं।

उपजते समय कुछ कीटाणु एक विशेष प्रकार का रंग बनाते हैं। रंग कई प्रकार के होते हैं, जैसे लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, आसमानी इत्यादि। इस रंग से कृपि-माध्यम में भी रंग आ जाता है।

कुछ कीटाणुओं के उपजने के लिये ओपजन का होना आवश्यक है। कुछ बिना ओपजन के ही उपजते हैं। इस प्रकार कुछ कीटाणु ओपजन-ग्राही और कुछ ओपजन-त्यागी होते हैं। कुछ ओपजन में और उसके बिना, दोनों ही प्रकार से उपजते हैं।

कीटाणु कैसे बढ़ते हैं ?

कीटाणुओं में स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं होता। एक व्यक्ति के लंबाई या चौड़ाई के रूख फट जाने से दो बन जाते हैं। एक से दो, दो से चार, चार के आठ, यह सिलसिला तब तक जारी रहता है, जब तक भोजन तथा जीवन के लिये अन्य आवश्यक सामान प्राप्य रहते

है। सामान्यतः आध घंटे में दो बन जाते हैं। कभी-कभी इससे कम समय में भी। कभी घंटा भी लग जाता है। यदि आध घंटे में एक से दो बनें, तो हिसाब लगाने से मालूम होगा कि २४ घंटों में एक व्यक्ति से तीन पद्म (३, ००,००००,००,००,००,०००) के लगभग बन जायेंगे। परंतु वृद्धि से बढ़ने के लिये पूरे सामान हमेशा प्राप्त नहीं होते। कभी भोजन मिलता है, कभी नहीं। कभी उष्णता अधिक होती है, कभी शीत। कभी जल मिलता है, कभी खुश्की बहुत होती है। कीटाणुओं के वैरी भी बहुत होते हैं। एक जाति दूसरे को नष्ट कर डालती है। आदि-प्राणी इनमें से कुछ को खा जाते हैं। यद्यपि कीटाणुओं में अत्यंत शीघ्रता से बढ़ने की शक्ति मौजूद होती है, अर्थात् एक से एक दिन में ३ पद्म और इससे भी अधिक बन सकते हैं, तथापि साधारणतः वे इस तेज़ी से नहीं बढ़ने पाते; वर्ना समस्त संसार में ये-ही-ये दिखाई देते, अन्य जीवों के रहने के लिये स्थान ही न रहता।

गरमी और जीवाणु

जीवाणु एक विशेष ताप-परिमाण को पसंद किया करते हैं। जब गरमी उस ताप-परिमाण से बहुत कम या अधिक होती है, तो वे अच्छी तरह नहीं बढ़ते। जब गरमी उतने ही ताप-परिमाण की होती है, तो वे खूब तेज़ी से बढ़ते और हृष्ट-पुष्ट रहते हैं। वे जातियाँ, जो मनुष्य में रोग उत्पन्न करती हैं, मनुष्य के रक्त की गरमी को, जिसका परिमाण ३७ शतांश या १०० फहरनहाइट के लगभग होता है, अत्यंत पसंद करती हैं। जब ऐसे जीवाणु शरीर से बाहर उपजाए जाते हैं, तो कृषि-माध्यम इसी गरमी पर रक्खा जाता है। सड़ाव पैदा करनेवाली जातियाँ ग्रीष्म-ऋतु के ताप में ख़ूब उपजती हैं। यही कारण है कि शीत-ऋतु में ग्रीष्म-ऋतु की अपेक्षा चीज़ें देर में सड़ती हैं।

अधिक शीत—विशेषकर ऐसा शीत कि चीज़ें जम जायँ (0° तथा इससे भी कम दर्जे का)—उनकी वृद्धि को रोक देता है, उनको मारता नहीं। शीत के प्रभाव से जानवरों की लाशें, दूध तथा खाने के अन्य पदार्थ, अंडे और हरी तरकारियाँ बहुत दिनों तक, बिना सड़े-बुसे, अच्छी हालत में रक्खी जा सकती हैं।

तेज़ गरमी जीवाणुओं को मार डालती है। रोगोत्पादक कीटाणु साधारणतः ६० शतांश की गरमी से आध घंटे में मर जाते हैं। रोगोत्पादक कीटाणु तेज़ धूप के प्रभाव से भी मर जाते हैं। इसके अतिरिक्त बिजली की तेज़ रोशनी से भी जीवाणु मर जाते हैं।

जीवाणुओं के विष

जब जीवाणु बढ़ते हैं, तो वे बहुधा ऐसी वस्तुएँ बनाते हैं, जो ज़हरीली होती हैं। यदि ये जीवाणु किसी व्यक्ति के शरीर में हैं, तो उस व्यक्ति को हानि पहुँचाते हैं। विष दो प्रकार के होते हैं। एक वे, जो जीवाणुओं के शरीर में रहते, और उनके मरने पर उनके शरीर से बाहर हो जाते हैं। दूसरे वे जो उनके शरीर से बाहर ही रहते हैं।

जीवाणु और रोग

भयानक रोग, विशेषकर छूत के रोग, लगभग सभी जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होते हैं। कुछ जीवाणु इतने सूक्ष्म हैं कि अभी तक उनको दिखानेवाले अणुवीक्षणयंत्र नहीं बने। निम्न लिखित रोग जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होते हैं—

मुहासा तथा अनेक प्रकार के फोड़े-फुंसी।

टायफ़ॉयड, टायफ़स, चेचक, ख़सरा, मोतिया, सीतला; लाल ज्वर।

हप्पु, काली (कुक्कर) खाँसी। इनफ़्लुएंज़ा, हड्डी तोड़ ज्वर। मस्तिष्कावरण प्रदाह।

न्यूमोनिया, डिफ़्थीरिया, सुर्खबाद।
ज़हरवाद, प्रसूतरोग।
बाई-रोग।
हैज़ा, मोती ज्वर तथा प्लेग।
पेचिश (आमातिसार)।
माल्टा-ज्वर, ग्रंथेदन, जलसंत्रास (हड़क-बाई), हनुस्तंभ, ग्लैं-
डर्स (कनार रोग),
फिरंग-रोग।
मलेरिया-ज्वर, काला आज़ार, अतिनिद्रा-रोग, हेर-फेर का ज्वर।
चूहे, बिल्ली और गिलहरी के काटने से उत्पन्न होनेवाले ज्वर।
कुष्ठ-रोग (कोढ़)।
सोज़ाक।
क्षय-रोग।
भाँति-भाँति के प्रदाह।
ज़ुकाम (प्रतिश्याय), आँख दुखना इत्यादि।

बहुत से रोगों के कारण अभी मालूम नहीं हुए। ज्यों-ज्यों जाँच-पड़ताल की जाती है, त्यों-त्यों इन रोगों के जीवाणु मालूम होते जाते हैं।

बहुत से रोग ऐसे भी हैं, जो जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न नहीं होते।

जीवाणु या रोगाणु शरीर में कैसे प्रवेश करते हैं ?

मनुष्य-शरीर को एक नली समझना चाहिए (चित्र ३२)। इस नली के दो द्वार हैं। एक द्वार ऊपर है; यहाँ मुख है। यहीं पर श्वास लेने का रास्ता भी है। दूसरा द्वार नीचे है। यहाँ से मल निकलता है; इसी के पास मूत्र-द्वार तथा जननेंद्रिय होती है। साधारण बनावट यही

। और सब पेचीदगियाँ हैं, जिनसे हमको इस समय कोई सरोकार नहीं है। वे पाँचों काम, जो सब जीव-धारी करते हैं, इस नली-धारी हो सकते हैं। यह नली-रूपी शरीर बाहर त्वचा द्वारा सुरक्षित है, और भीतर श्लैष्मिक झिल्ली द्वारा। श्लैष्मिक झिल्ली श्वास-मार्ग और मूत्र-मार्गों के भीतरी पृष्ठों पर भी लगी रहती है। श्लैष्मिक झिल्ली और त्वचा के बीच में भाँति-भाँति के कार्य करनेवाले अंग रहते हैं। नली के भीतर (अर्थात् भोजन-मार्ग, श्वास-मार्ग, मूत्र-मार्ग इत्यादि में) जो चीज़ें रहती हैं, वे जब तक श्लैष्मिक झिल्ली से होकर अंगों में न पहुँच जायँ, तब तक उनको शरीर के बाहर ही समझना चाहिए; क्योंकि वे श्लैष्मिक झिल्ली पर वैसे ही रक्खी हुई हैं, जैसे शरीर के बाहर त्वचा पर।

त्वचा और श्लैष्मिक झिल्ली की बनावट इस प्रकार है कि जब तक इनमें किसी प्रकार की कमज़ोरी न आ जाय, तब तक रोगाणु इनसे होकर शरीर में नहीं पहुँच सकते। जिस प्रकार जब तक किसी मकान की छत के सीमेंट में दरार नहीं आ जाती, या वह कहीं से उखड़ नहीं जाता, तब तक पानी नहीं भरता, उसी प्रकार हमारे शरीर की त्वचा और श्लैष्मिक झिल्लियाँ भी उस समय तक रोगाणुओं को भीतर नहीं घुसने देतीं, जब तक वे मज़बूत हैं।

त्वचा, आँतों, तथा श्वास-मार्ग में थोड़े-बहुत कीटाणु हमेशा रहते हैं। जब तक दीवारें ठीक हैं, तब तक ये कीटाणु शरीर में प्रवेश नहीं करते, और हमको कोई रोग नहीं होता।

किसी कारण से ज्यों ही दीवारें कहीं से कमज़ोर हो जाती हैं, त्यों ही वे कीटाणु, जो पहले शरीर को कोई हानि नहीं पहुँचाते थे, शरीर में प्रवेश कर जाते और रोग उत्पन्न करते हैं। उदाहरण लीजिए—
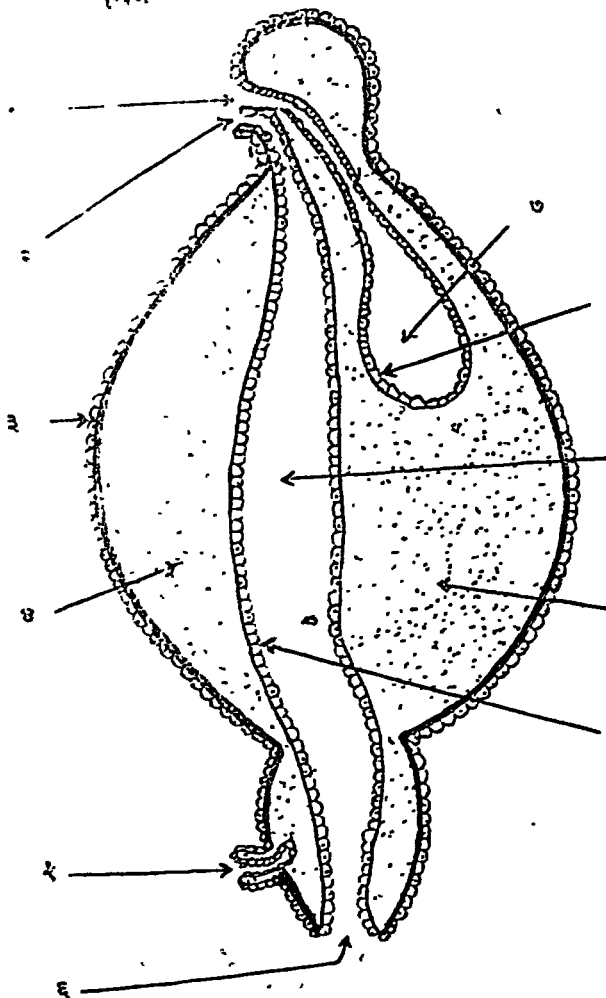
चित्र ३२ की व्याख्या—

१=श्वास-पथ का आरंभ (नासिका)

२=मुख

३=त्वचा, जो शरीर के बाहरी ओर मढ़ी हुई है

४-९=अंग

५=मूत्र तथा जननेंद्रिय

६=मल-द्वार

७=फुप्फुस

८=भोजन की नाली

१०-११=श्लैष्मिक झिल्ली, जो शरीर में रहनेवाली नालियों और मार्गों (भीतरी पृष्ठों पर त्वचा की भाँति लगी रहती और उनकी रक्षा करती है

१. वाल नुच जाने से वलतोड़ का वन जाना। फोड़ा वनानेवाले कीटाणु त्वचा पर मौजूद थे; खाल में चोट लगने से कीटाणुओं को त्वचा के भीतर प्रवेश करने का अवसर मिल गया।

२. ओस में सोने से ज़ुकाम हो जाना। नासिका की श्लैष्मिक झिल्ली ठंड लगने से कमज़ोर हो गई। ज़ुकाम पैदा करनेवाले कीटाणुओं को, जो पहले से मौजूद थे, वहाँ क़दम जमाने का मौक़ा मिला।

३. ओस में सोने और पेट को ठंड लगने से पेट में दर्द हो जाता है, और दस्त भी आने लगते हैं। वात यह है कि आँतों में कई प्रकार के कीटाणु हमेशा रहते हैं। जव ठंड लगने से आँतें कुछ कमज़ोर हो जाती हैं, तव वे अपना ज़ोर दिखाते हैं। सरदी खा जाने से न्युमोनिया भी हो जाता है, विशेषकर वच्चों और वृद्धों को।

४. प्रसवकाल में जव स्त्री वच्चा जनती है, तव उसके गर्भाशय तथा योनि आदि की श्लैष्मिक कला या झिल्ली कमज़ोर हो जाती

है। उसमें कभी-कभी दरार भी आ जाती है। यदि मैल लगे, तो स्त्री को प्रसूति-रोग हो जाता है।

दो आदमियों को एक ही प्रकार की चोट लगती है। एक के फोड़ा बन जाता है, दूसरे के नहीं। दो आदमी ठंड में सोते हैं। एक को ज़ुकाम हो जाता है, दूसरा चंगा रहता है। ऐसी ऐसी बातें हम प्रतिदिन देखते हैं। यदि कीटाणुओं से ही रोग होते हैं, तो क्या कारण है कि एक मनुष्य को रोग हो, और दूसरे को न हो? इसका उत्तर यह है कि हमारे शरीर में एक शक्ति होती है, जिसको रोग-नाशक शक्ति कहते हैं। यह स्वाभाविक शक्ति किसी मनुष्य में कम होती है, किसी में ज़्यादा। वह शक्ति जितनी कम होती है, उतनी ही रोग होने की संभावना अधिक होती है। यह रोग-नाशक शक्ति भिन्न-भिन्न रोगों के लिये भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न मात्राओं में पाई जाती है। थकान, अच्छा और पौष्टिक भोजन प्राप्त न होना, ख़राब जल-वायु, रंज और फ़िक्र, किसी रोग मे बहुत समय तक पीड़ित रहना तथा और ऐसे ही अन्य कारण रोग-नाशक शक्ति को कम करते हैं।

रोगाणुओं से रोग उत्पन्न होने के लिये दो बातों का होना आवश्यक है—

१. प्रबल रोगाणुओं का शरीर में प्रवेश करना।

२. किसी व्यक्ति में उस समय विशेष रोग-नाशक शक्ति का कम होना, या न होना।

जब ये दो बातें साथ-साथ मिलती हैं, तभी रोग उत्पन्न होता है।

अब हम यह बतलाते हैं कि रोगाणु शरीर में कैसे प्रवेश करते हैं—

१. जब किसी स्थान की त्वचा या श्लैष्मिक कला फट जाती है, अथवा किसी प्रकार अधिक गरमी, शीत या चोट लगने या रासायनिक

पदार्थों अथवा धूल, मिट्टी, धुआँ आदि हानि पहुँचाने वाली चीज़ों के प्रभाव से कमज़ोर हो जाती है, तो उस स्थान पर मौजूद रहने वाले रोगाणुओं को शरीर में प्रवेश करने का अवसर मिल जाता है। यदि ऐसे स्थान पर मैले हाथ, मैले कपड़े, धूल, मिट्टी इत्यादि चीज़ें लगें, तो इन वस्तुओं पर रहने वाले रोगाणु भी शीघ्र प्रवेश कर जाते हैं। जैसे गर्द-गुबार द्वारा दूषित दूध या अन्य दूषित भोज्य पदार्थों द्वारा क्षय-रोग के कीटाणुओं का मुख, श्वास-मार्ग और अन्न-मार्ग की श्लैष्मिक कला के द्वारा शरीर में प्रवेश कर जाना। जिन लोगों को क्षय-रोग होता है, वे पहले से ही कुछ-न-कुछ कमज़ोर होते हैं। उनको बहुधा जुकाम, खाँसी तथा बदहज़मी बनी रहती है। क्षय के रोगाणु मौक़ा पाकर अपना क़दम जमाते और रोग उत्पन्न करते हैं। चोट लगने के पश्चात् सड़क की धूल लगने से मवाद पड़ जाना, कभी-कभी हनुस्तंभ रोग का हो जाना, अस्थिभंग होने पर रगड़ खाई त्वचा में मवाद पैदा करने वाले कीटाणुओं का प्रवेश कर जाना, अस्थि को सड़ाना और शीघ्र न जुड़ने देना, अधिक धूप और धूल के प्रभाव से आँखों का दुखना तथा दुर्गंध से जुकाम हो जाना इत्यादि।

२. खून चूसने वाले जानवरों की सहायता से मलेरिया, तिजारी तथा चौथिया ज्वर एक विशेष जाति की नारीमच्छड़ों द्वारा उत्पन्न होता है। इस ज्वर के रोगाणु, जो आदि-प्राणी होते हैं, इन नारी-मच्छड़ों के मुख और आमाशय में रहते हैं। जब मच्छड़ी खून चूसती है, तब ये रोगाणु रक्त में प्रवेश करते हैं। न ज़हरीली मच्छड़ी काटें, न मलेरिया-ज्वर की उत्पत्ति हो।

पीला-ज्वर, जो एक अत्यंत भयानक रोग है, और विशेषकर आफ़्रिका तथा दक्षिण-अमेरिका में होता है, एक विशेष जाति के मच्छड़ों के काटने से होता है।

काला आज़ार-रोग, जो अधिकतर आसाम, बंगाल और मद्रास प्रांतों में और कुछ-कुछ संयुक्त-प्रांत में होता है, शायद एक पिस्सु के काटने से होता है।

प्लेग एक विशेष जाति के कुटकु द्वारा, जो चूहों पर रहते हैं, होता है।

अफ़्रिका-देश का अनिद्रा-रोग (स्लीपिंग-सिकनेस) एक खून चूसनेवाली मक्खी के द्वारा होता है। यह मक्खी भारतवर्ष में नहीं होती।

हेर-फेर का ज्वर, जिससे सन् १९१२-१५ में संयुक्त-प्रांत में सहस्रों मनुष्य मरे, जूँ और चीचड़ियों के काटने से होता है।

टाइफ़स-ज्वर और अन्य कई ज्वर जुएँ और चीचड़ियों के काटने से होते हैं। तीन दिन का ज्वर एक पिस्सू के काटने से होता है।

चूहे, बिल्ली और गिलहरी के काटने से भी ज्वर पैदा हो जाते हैं। इन रोगों के रोगाणु इन जानवरों के काटने से शरीर में प्रवेश करते हैं।

पागल कुत्ते, गीदड़ और भेड़िए के काटने से जलसंत्रास (हड़क-वाई) के जीवाणु शरीर में प्रवेश करते हैं।

२. बहुत से रोग ऐसे हैं, जो खून न चूसनेवाले जानवरों की सहायता से जानवरों द्वारा हमारे भोजन के दूषित हो जाने के कारण पैदा होते हैं। जैसे पेचिश, अतिसार, टायफ़ॉयड, क्षय-रोग, हैज़ा, ग्रीष्म-ऋतु में बालकों को दस्त आना इत्यादि। घरेलू मक्खी या अन्य मक्खियाँ जब किसी व्यक्ति के मल, थूक और बलग़म पर बैठती हैं, तो इन चीज़ों के अंश उनके मुँह और पैरों में लग जाते हैं। वहाँ से उड़कर वे फिर हमारे भोजन—दूध, मिठाई इत्यादि—पर जा बैठती हैं। यहाँ विष्ठा और बलग़म का कुछ अंश, जो उनके मुँह और पैरों में लगा हुआ होता है, भोजन की वस्तुओं पर रह जाता है। विष्ठा

में सहस्रों कीटाणु होते हैं। यदि वह विष्ठा किसी हैज़े के रोगी का है, तो उसमें हैज़े के सहस्रों कीटाणु होंगे। हैज़े के कीटाणु मक्खी द्वारा भोजन में मिल जाते हैं, और खाने वाले को हैज़ा हो सकता है। क्षय-रोगी के बलग़म में क्षय-रोग के कीटाणु होते हैं। मक्खी द्वारा ये कीटाणु भी भोजन में पहुँच सकते हैं। सच तो यह है कि जो लोग अपने भोजन पर मक्खियों को बैठने देते या हलवाइयों की दूकान की खुले बर्तनों में रक्खी हुई मिठाई खाते हैं, जिस पर दिन-भर अनेक मक्खियाँ भिनका करती हैं, वे ऐसा भोजन खाते हैं, जिसमें मक्खियों द्वारा लाए हुए दूसरे मनुष्यों के मल, मूत्र, बलग़म इत्यादि मिले हुए हैं।

हरे फल और बंद डिब्बों में रक्खे हुए भोजन के पदार्थ—पनीर, गोश्त आदि—जब सड़ जाते हैं, तो उनमें कभी-कभी अत्यंत तेज़ ज़हर पैदा करने वाले जीवाणु पैदा हो जाते हैं। रोगी गाय के दूध से क्षय-रोग और रोगी बकरी के दूध से मालटा-ज्वर के कीटाणु मनुष्य में पहुँचते हैं। ख़राब दूध से कई प्रकार के रोगों का होना संभव है। दूध बहुत ही आसानी से ख़राब हो जाने वाला भोजन का पदार्थ है। भारतवर्ष में गाएँ गंदी रहती हैं, और भोजन अच्छी तरह प्राप्त न होने के कारण कमज़ोर और रोगी भी। जहाँ गाएँ रक्खी जाती हैं, वह स्थान बड़ा गंदा रहता है। जो आदमी दूध दुहता है, वह अत्यंत गंदा होता है। ये लोग कभी-कभी तो शौच के बाद हाथ भी नहीं धोते। जिस बर्तन में दूध दुहा जाता है, वह भी मैला रहता है। गाय के थनों से निकलने के पीछे मक्खियाँ और धूल-मिट्टी उस दूध को और भी ख़राब कर देती हैं। जब सभी बातें गंदी हैं, तो दूध क्यों न ख़राब हो, और बजाय अमृत के क्यों न विष का काम करे?

भेड़ इत्यादि [illegible] नामक रोग होता है। जो मनुष्य इस [illegible] मरे हुए [illegible] की लाशों को छूते हैं—जैसे कसाई, [illegible]—उनको यह रोग हो जाया करता है। [illegible] बनाने के जापानी ब्रुशों द्वारा इंगलैंड [illegible] हो गया। जापानी चीज़ें बहुत [illegible]।

[illegible] ([illegible]) नामक रोग भी कभी-कभी मनुष्य को हो जाता है।

[illegible] खराब गोश्त खाने से लंबे-लंबे कीड़े, और [illegible] खराब पानी पीने से पेट में केंचुए और नन्हें-नन्हें कीड़े हो जाते हैं। यद्यपि ये कीड़े जीवाणु नहीं हैं, तथापि खराब भोजन से पैदा हो जाने के कारण हम इस स्थान में इस बात का [illegible] अनुचित नहीं समझते।

रोगाणुओं का छूत द्वारा आना

बहुत-से रोगों के रोगाणु छूत द्वारा हमारे शरीर में पहुँचते हैं, जैसे सोज़ाक, आतशक (फिरंग), उपदंश इत्यादि रोग। बहुत से आदमी अपनी पवित्रता प्रमाणित करने के लिये कहा करते हैं कि उनको स्वप्न देखने से अथवा गरम बालू पर पेशाब करने से सोज़ाक हो गया। परंतु वास्तव में उनका यह कथन बिलकुल झूठा होता है और उनकी [illegible] प्रगट करता है। सोज़ाक, आतशक या उपदंश-रोग, जो पहले जननेंद्रियों पर होते हैं, रोगी पुरुषों या स्त्रियों के साथ मैथुन करने ही से होते हैं। यह संभव है कि सोज़ाक का मवाद स्वस्थ मनुष्य की आँख में लग जाने से उसकी आँखें उठ आवें; परंतु ऐसा होता कम है। यह भी संभव है कि उँगली या होठ पर आतशक का मवाद

छूने से आतशकी ज़ख्म बन जाय; परंतु यह असंभव है कि आतशक का पहला ज़ख्म जननेंद्रियों पर बिना आतशकी स्त्री या पुरुष से मैथुन किए हो जाय।

चेचक, ख़सरा आदि रोगों के रोगाणु मवाद में और उस भूसी में मौजूद रहते हैं, जो दानों के सूख जाने पर गिरती है। छूने से यह भूसी हमारे हाथों और कपड़ों पर लग जाती और श्वास या भोजन द्वारा हमारे शरीर में पहुँचती है।

टायफ़ॉयड (मियादी ज्वर, जो ३-४ सप्ताह तथा इससे भी अधिक दिनों में उतरता है)—ज्वर के रोगाणु रोगी के पसीने, मूत्र और मल में रहते हैं। इन्हीं के छूने से रोग उत्पन्न हो सकता है। छूतवाले रोगियों के कपड़ों द्वारा भी रोग फैल जाया करते हैं। एक रोगी के कपड़े धोबी के घर जाकर दूसरे मनुष्यों के साफ़ कपड़ों से मिल जाते हैं, और उन कपड़ों द्वारा दूसरे घरों में रहनेवालों को रोग हो जाते हैं। धोबी के घर के कपड़ों को बिना एक दिन तेज़ धूप में रक्खे न पहनना चाहिए।

कुष्ठ (कोढ़) भी छूत का रोग है। यह रोग परंपरीण नहीं है, जैसा कि बहुत से लोगों का विचार है। कोढ़ी के बच्चों को कोढ़ अपने माता-पिता से, छूत द्वारा मिलता है।

माता-पिता के रज-वीर्य द्वारा भी कीटाणु संतान के शरीर में आ जाते हैं, जैसा कि आतशक-रोग में होता है। आतशकी माता-पिता की संतान भी आतशकी होती है। आतशक तीन पीढ़ी तक चलती है।

कुछ रोगों के कीटाणु वायु में रहते हैं

जब क्षय-रोगी खाँसता है, तो उसके बलग़म के नन्हें-नन्हें ज़र्रे वायु में मिल जाते हैं। यदि क्षय-रोगी ज़मीन पर थूकता है, तो बल-

[illegible], सब जीवधारियों में, जीवन के लिये सदा एक [illegible] रहता है। एक भाँति के प्राणी दूसरी भाँति के प्राणियों और प्राणि वनस्पतियों को एक क़ौम दूसरी क़ौम को, एक देश के निवासी दूसरे देश के निवासियों को, गोरी जातियाँ काली जातियों को, [illegible] जान-बूझकर और कभी बिना जाने, थोड़ी-बहुत हानि, [illegible] पहुँचाने के लिये, अवश्य पहुँचाते हैं। कभी यह हानि कम होती है, कभी अधिक। कभी इतनी कम कि ज़ाहिरा तौर से मालूम भी नहीं होती, और कभी इतनी अधिक कि एकदम पता चल जाता है। प्राणी वनस्पतियों को खा जाते हैं। बड़े-बड़े प्राणी छोटे-छोटे प्राणियों को खा जाते हैं। जब चिड़ियाँ घर के भीतर घुसती हैं, तो मकड़ियों को कोने-कोने से बीनकर खा जाती हैं। छिपकली छोटी-छोटी पंखियों को खा जाती है। साँप मेढक, चूहे और छछूँदर को खा जाता है। जब दो जातियाँ बराबर ज़ोरदार होती हैं, तो वे

दोनों उन्नति करती रहती हैं। जब एक ज़ोरदार होती है, और दूसरी कमज़ोर, तो ज़ोरदार कमज़ोर पर शासन करना चाहती है। इस संसार में जीवन का संग्राम इस ज़ोर का रहता है कि केवल वे ही जातियाँ और क़ौमें जीवित रह सकती हैं, जो इस संग्राम में विजयी होती हैं। शेष जातियाँ थोड़े-बहुत दिन जीवित रहकर नष्ट हो जाती हैं।

मनुष्य-जाति को भाँति-भाँति के प्राणियों और जीवाणुओं से संग्राम करना पड़ता है। कहीं शेर और चीता है, तो कहीं साँप और बिच्छू। कहीं ज़हरीले मच्छड़ और मक्खी हैं, तो कहीं भाँति-भाँति के रोगोत्पादक जीवाणु। यद्यपि अपनी चतुराई से मनुष्य इन सब पर विजय पाता है, तथापि हर साल सहस्रों मनुष्य साँप, शेर, चीते इत्यादि जानवरों द्वारा मारे जाते और करोड़ों मनुष्य रोगोत्पादक जीवाणुओं के आक्रमण से मरते हैं। अपनी चतुराई से मनुष्य रोगों के कारण जानता और उनको दूर करने की कोशिश करता है। जर्मनी में आजकल एक भी चेचक का रोगी नज़र नहीं आता। यूरोप के और देशों का भी हाल ऐसा ही है। ५० वर्ष पहले वहाँ चेचक का वैसा ही ज़ोर था, जैसा इन दिनों भारतवर्ष में है। यूरोप में पहले क्षय-रोग बहुत था, अब प्रतिदिन कम होता जाता है। प्लेग भी पहले योरप में हो चुका है, अब वहाँ नहीं होता। जब पनामा-नहर का निकलना आरंभ हुआ, तो मलेरिया और पीले-ज्वरों से सैकड़ों मज़दूर और अफ़सर बीमार होने लगे। ऐसा मालूम होता था कि इन रोगों के कारण काम जारी रखना असंभव है। बड़े-बड़े डाक्टरों ने दिमाग़ लड़ाए, मलेरिया तथा पीले-ज्वर फैलानेवाले मच्छड़ों को उस स्थान से कम कर देने की तजवीजें सोचीं सभी उपायों से काम लिया गया। निदान फ़िर मज़दूर इन रोगों से बीमार न हुए, और पनामा की

लहर पूरी बन गई। बिना मच्छड़ के ये रोग नहीं फैल सकते; और जब मच्छड़ नहीं होते, अथवा उन्हें मनुष्य को काटने का अवसर नहीं मिलता, तो ये रोग मनुष्य को लग ही नहीं सकते।

जब रोगाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, तो वहाँ शरीर के तंतुओं से उनका बड़ा भारी युद्ध होता है। हमारे शरीर में इन जीवाणुओं को मार डालने के लिये बहुत से प्रबंध हैं। हमारे शरीर में अनेक छोटे-छोटे कण होते हैं, जो 'श्वेताणु' कहलाते हैं। ये जीवाणुओं को मार डालते और उनको खा जाते हैं। जीवाणुओं को खा जाने के कारण ये भक्षकाणु भी कहलाते हैं। ये श्वेताणु विशेषकर रक्त और लसीका में रहते हैं और थोड़े-बहुत हर स्थान में पाए जाते हैं। ये शरीर के रक्षक और सैनिक हैं। जिस स्थान पर जीवाणु एकत्र रहते हैं, वहाँ इन श्वेताणुओं की फ़ौजें पहुँचती हैं। यदि ये विजयी हुए, तो शरीर नीरोग हो जाता है। यदि जीवाणु विजयी हुए, तो रोग बढ़ता जाता है। अंत को मृत्यु भी हो जाती है। जब कोई फुंसी या फोड़ा बनता है, तो उस स्थान पर अधिक रक्त के पहुँचने से सुर्ख़ी तथा गरमी मालूम होती है (रंगीन चित्र २३)। अधिक रक्त के दबाव से दर्द भी होता है, और वह भाग सूजकर कुछ मोटा हो जाता है (चित्र २३ में ख, ग, च)। जीवाणुओं को मार डालने के लिये वहाँ रक्त द्वारा श्वेताणुओं की बड़ी-बड़ी फ़ौजें आती और जीवाणुओं को चारों ओर से घेर लेती हैं। कुछ समय पश्चात् बीच में पीला मुँह बन जाता है (चित्र २३ मे ख, ग, च)। यह वह स्थान है, जहाँ सहस्रों जीवाणु और श्वेताणु मरे हैं, और शरीर का उतना भाग भी मुर्दा हो गया है। यह पीला स्थान फूट जाता और मवाद बहने लगता है (चित्र २३ में छ)। इस मवाद में जीवाणुओं, श्वेताणुओं और शरीर की स्थानीय सेलों की सहस्रों लाशें हैं। अब यदि श्वेताणु विजय पाते हैं,
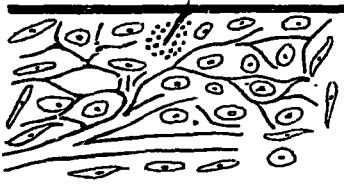
काँटा चुभा और कीटाणु त्वचा में पहुँचे ।
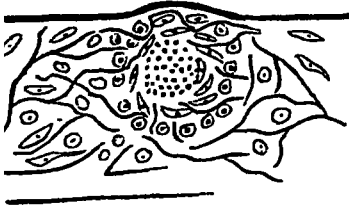
भक्षकाणुओं ने कीटाणुओं को घेर लिया; रक्तवाहिनियों के फैलने से अधिक रक्त आया और वह स्थान सूज गया और लाल हो गया ।
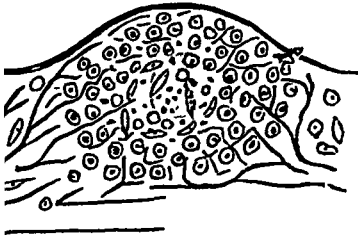
रक्तवाहिनियाँ अभी फैली हैं और कीटाणुओं और भक्षकाणुओं के मरने से मवाद वना जो पीला है ।
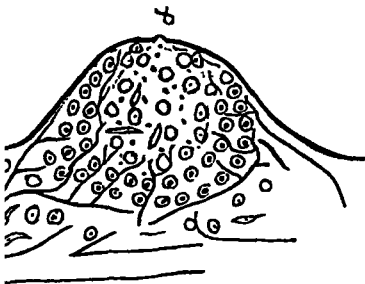
स्थान और उभर गया; वीच में पीला सा मुँह वना; स्थान कुछ पिलपिला हो गया ।
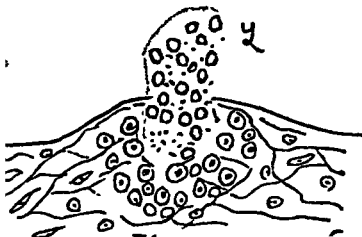
त्वचा के फूट जाने से मवाद निकल गया; सूजन पटक गई; रक्त-वाहिनियाँ अव सिकुड़ जाती हैं ।

और कुछ समय पीछे मवाद निकलना बंद हो जाता है। फिर उस भाग की जगह, जो संग्राम में मुर्दा होकर निकल गया, नया भाग बन जाता है। दर्द, सुर्ख़ी और सूजन शीघ्र जाती रहती है। यदि संग्राम में श्वेताणुओं की शीघ्र विजय नहीं होती, तो फोड़े का दल बढ़ता है; वह गहरा होता जाता है और इधर-उधर ख़ूब फैलता है। कभी-कभी ज़हर-बाद होता है और मनुष्य घुल-घुलकर मर जाता है। बात यह होती है कि उसका शरीर जीवाणुओं पर विजय नहीं प्राप्त कर पाता।

भक्षकाणुओं के अतिरिक्त हमारे शरीर में बहुत से ऐसे पदार्थ होते हैं, जिनका काम जीवाणुओं को मार डालना और उनके बनाए हुए ज़हरों को हर लेना होता है। इन भक्षकाणु और जीवाणु-नाशक तथा विपघ्न वस्तुओं से हमारे शरीर में रोगनाशक शक्ति उत्पन्न होती है। किसी व्यक्ति में यह शक्ति कम होती है, किसी में अधिक।

रोगों से बचने की थोड़ी-बहुत शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में होती ही है। यह शक्ति स्वाभाविक रोग क्षमता * कहलाती है। जब कोई रोग उत्पन्न होता है और व्यक्ति उस रोग से बच जाता है, तो यह विशेष-रोग-संबंधी रोग-क्षमता बढ़ जाती है, और इतनी बढ़ती है कि बहुधा बहुत समय तक वह रोग फिर उस व्यक्ति के नहीं होने पाता।

कुछ रोगों के लिये रोग-क्षमता मृत कीटाणुओं को शरीर के भीतर प्रवेश कराकर पैदा की जा सकती है। यह कृत्रिम रोग-क्षमता † कह-लाती है। चेचक के टीके से चेचक-संबंधी, प्लेग और टायफ़ॉयड और हैज़े के टीकों से इन रोगों के संबंध की कृत्रिम रोग-क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। फोड़ों, फुंसियों, मुहासों इत्यादि के लिये भी टीका लगाने की औषधियाँ तैयार की जाती हैं।

---

* Natural Immunity.
† Artificial Immunity.

[illegible] यह औषधि जादू का सा काम देती है। हैज़े और प्लेग के लिये भी औषधियाँ बनाने की कोशिश की गई; परंतु अभी बहुत कामयाबी नहीं हुई। जब टीके द्वारा चेचक, प्लेग, टाइफ़ॉयड, फोड़े इत्यादि में रोग-क्षमता उत्पन्न की जाती या बढ़ाई जाती है, तो इस प्रकार की रोग-क्षमता को सोद्योग रोग-क्षमता* कहते हैं; क्योंकि इसमें शरीर को उद्योग करना पड़ता है। जब बनी-बनाई चीज़ें शरीर में पहुँचाकर रोग-क्षमता उत्पन्न की जाती या मौजूदा रोग-क्षमता बढ़ाई जाती है, जैसा कि हनुस्तंभ, सुर्ख़बादा (एरीसिपेलस) और डिफ़्थीरिया रोगों में होता है, तब यह रोग-क्षमता असहयोग रोग-क्षमता† कहलाती है; क्योंकि इसमें रोगी शरीर को उद्योग नहीं करना पड़ता।

---

* Active Immunity.

† Passive Immunity.

मियादी या नियत-कालिक ज्वर

चेचक, ख़सरा, टायफ़ॉयड, तीन दिन और सात दिन के कुछ ज्वर ऐसे होते हैं कि वे अपना समय लेकर ही उतरते हैं। औषधि का उनकी मियाद पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, प्रत्युत अधिक औषधि हानि भी पहुँचाती है। जब रोग आरंभ होता है, तो शरीर में रोगाणुओं का शरीर के तंतुओं से युद्ध आरंभ होता है। रोग उस समय तक नहीं कम होता, जब तक रोगाणुओं पर शरीर की विजय नहीं होती। ज्यों ही विजय आरंभ होती है, त्योंही रोग कम होने लगता है, और जब विजय पूरी हो जाती है, तो रोग जाता रहता है, ज्वर उतर जाता है और केवल कमज़ोरी शेष रह जाती है। इन रोगों की अवधि वास्तव में वह समय है, जिसमें भक्षकाणुओं तथा विपघ्न और रोगाणु-नाशक वस्तुओं के द्वारा शरीर रोगाणुओं का नाश करता और उन पर विजयी होता है।

मियादी रोगों की मियाद के चार समय

१. वह समय, जब रोगाणु शरीर में प्रवेश करते और बढ़ते हैं। इस समय रोगी को कोई विशेष कष्ट नहीं मालूम होता। रोगाणु उस के शरीर में पहुँच जाते हैं; परंतु जब तक उनकी संख्या अधिक नहीं होती, और उनके विप यथेष्ट परिमाण में बनकर व्यक्ति को हानि नहीं पहुँचाते, तब तक रोग के लक्षण नहीं मालूम होते, यह प्रवेश काल है।*

२. वह समय, जब रोग के लक्षण प्रत्यक्ष हो जाते और दिन-पर दिन बढ़ते जाते हैं अर्थात् रोग बढ़ता है। यह वह समय समझना

* Incubation period.

चाहिए, जब रोगाणुओं का धावा जारी हो। यह आक्रमण काल है।†

३. वह समय, जब रोग न बढ़ता है, न घटता है। यह युद्ध काल है।‡

४. वह समय, जब शरीर की विजय होती है, या हार। यह विजय या हार काल कहलाता है।§

यदि विजय होती है, तो रोग के सब लक्षण घटने लगते और धीरे-धीरे जाते रहते हैं। रोगाणु मारे जाते हैं। यदि शरीर की हार होती है, तो रोग बढ़ता जाता है, और अंत में मृत्यु हो जाती है।

रोग-क्षमता मनुष्य के स्वास्थ्य पर निर्भर है। जो बातें उसके स्वास्थ्य को बिगाड़ती हैं, वे उसकी रोग-नाशक शक्ति को भी कम करती हैं। जैसे शरीर को मैला रखना, पौष्टिक भोजन और शुद्ध वायु प्राप्त न होना, अति परिश्रम करना, छोटी आयु में ब्याह करना, शीघ्रता-पूर्वक बच्चे जनना, मदिरा तथा अन्य नशीली चीज़ों का सेवन करना, रंज, फ़िक्र तथा भय-पूर्वक रहना इत्यादि।

रोगाणुओं के आक्रमण से बचने के साधन और स्वास्थ्य-संबंधी नियम

ये उपाय दो प्रकार हैं एक तो वे, जिन्हें मनुष्य अलग-अलग काम में ला सकते हैं। दूसरे वे, जिन्हें मनुष्य इकट्ठे होकर (पंचायतें, म्युनिसिपलिटियाँ, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड्स) काम में ला सकते हैं। हम दोनों प्रकार के साधन बतलाते हैं—

† Invasion.

‡ Struggle.

§ Victory (Recovery) or Defeat.

वे काम, जिन्हें मनुष्य पृथक् रहकर कर सकते हैं

शारीरिक स्वच्छता

१. प्रतिदिन स्नान करना; शरीर को अँगोछे से रगड़कर ख़ूब धोना; कभी-कभी साबुन भी लगाना; साफ़ रहना। गंदे तालाब में कभी स्नान न करना। हाँ, बहते हुए जल में स्नान करना अच्छा है। दाँतों को रोज़ माँजना; भोजन करके ख़ूब कुल्ली करना; मीठा खाने के पीछे मुँह ख़ूब साफ़ करना; पान कभी-कभी ही चबाना और चबाने के पीछे मुँह और दाँतों को ख़ूब धो डालना।

इन विधियों से आँख, नाक, कान, मुँह, दाँत, तथा त्वचा पर रहने वाले जीवाणुओं की संख्या कम होती है और शरीर में बल आता है। दाँतों के मज़बूत रहने से भोजन अच्छी तरह से चबाया जाता है और ख़ूब पचता है।

२. प्रतिदिन थोड़ा-बहुत व्यायाम तथा प्रातः-काल शुद्ध वायु में सैर करना अत्यंत लाभ-दायक है। व्यायाम से फुप्फुस और हृदय अच्छे रहते हैं, और उदर के अंग भी भली प्रकार काम करते हैं। शुद्ध वायु का सेवन करने से रोगोत्पादक जीवाणु श्वास-मार्ग में ठहरने नहीं पाते, और क्षय-रोग के होने की संभावना कम रहती है। इस विधि से हमारी रोग-नाशक शक्ति भी बढ़ती है।

३. सड़े हुए भोजन को कभी न खाना। भोजन की चीज़ों को मक्खियों या अन्य जानवरों से बचाकर रखना। भोजन ऐसे स्थान में बैठकर खाना, जहाँ किसी प्रकार का धुआँ और दुर्गंध न हो। जहाँ तक हो सके, ताज़ा ही भोजन खाना चाहिए।

गंदे हाथों से छुआ हुआ या गंदे बर्तनों या कपड़ों में रक्खा हुआ भोजन हानि-कारक होता है। भोजन हमेशा हाथ धोकर छूना और

खाना। गंदे पैरों से भोजनालय में न घुसना। साग आदि परोसने के लिये चमचों का प्रयोग करना।

हिंदुओं के यहाँ विवाह के अवसर पर भोजन महा गंदे तरीकों से परोसा जाता है; इस कुरीति का सुधार करना।

कुँजड़े की दूकान से मोल ली हुई तरकारियों को खूब धोना। हैज़े के मौसिम में अमरूद, ककड़ी, खीरा, फूट, खरबूज़ा, तरबूज़ इत्यादि चीज़ें, जो बिना उबाले कच्ची ही खाई जाती हैं, न खाना।

इन विधियों से आप उन रोगों से बचेंगे, जो भोजन द्वारा हुआ करते हैं जैसे हैज़ा, पेचिश, टायफॉयड, अतिसार इत्यादि।

४. पीने के लिये पवित्र जल का सेवन करना। तालाबों और छोटी-छोटी नदियों का पानी न पीना। यदि जल की पवित्रता में संदेह हो, तो उबालकर शुद्ध बर्तन में ठंढा करके पीना। जहाँ पेचिश और जल-दोष बहुत होते हैं, वहाँ पानी उबालकर ही पीना ठीक है।

हैज़े के दिनों में पानी को अवश्य उबालना चाहिए। यदि घर में कुआँ हो, तो महीने में एक बार उसमें पोटाश परमंगेनेट डालना आवश्यक है।

अपने जूठे बर्तन में दूसरे को पानी न पिलाना। जल द्वारा फैलनेवाले रोगों से बचने के यही साधन हैं।

५. शौच के पश्चात् हाथों को खूब साफ़ करना। जब किसी मनुष्य को टायफ़ॉयड या हैज़ा या पेचिश हो चुकते हैं, तो बहुत दिनों तक उसके मल में इन रोगों के रोगाणु निकला करते हैं। रोगी में, तो रोग-क्षमता आ जाती है, परंतु ये रोगाणु दूसरे मनुष्यों में रोग उत्पन्न कर सकते हैं। ऐसे मनुष्य रोगाणुवाहक * कहलाते हैं; अर्थात् उनके

* Carries of disease germs.

शरीर में इन रोगों के रोगाणु रहते हैं, और उनके द्वारा ये रोग फैल सकते हैं। हैज़ा और टायफ़ॉयड इत्यादि रोग ऐसे मनुष्यों की सहायता से अक्सर फैलते हैं।

यदि ये लोग शौच के पश्चात् अपने हाथों को विना अच्छी तरह साफ़ किए दूसरों के भोजन या जल को छुएँ, तो उस भोजन के दूषित हो जाने की संभावना रहती है।

६. अधिक परिश्रम न करना। परिश्रम करके आराम करना। रंज और फ़िक्र से बचना। अधिक परिश्रम करना, रंज और फ़िक्र करना रोग-नाशक शक्ति को बड़ी शीघ्रता से कम करते हैं।

७. हवादार मकान में रहना, जिसमें सूर्य का प्रकाश काफ़ी प्रवेश करे। मकान के आस-पास बहुत हरियाली न हो और न हवा को रोकने वाले ऊँचे वृक्ष ही निकट हों।

मुँह ढककर कभी न सोना। मच्छड़ों से बचने के लिये मसहरी लगाना। रात्रि के समय हवा के आने-जाने के लिये कमरे की खिड़कियाँ खुली रहनी चाहिए। शीत-ऋतु में हवा के झोंकों से बचना। हवा तो कमरे में आवे, परंतु झोंके न लगें।

दो व्यक्तियों का मिलकर एक शय्या पर सोना अनुचित है। जहाँ तक हो सके, दूध-पीते बच्चों को भी माता से अलग सुलाना चाहिए। पास-पास सोने से एक व्यक्ति के मुँह की हवा और शरीर से निकले हुए अबख़रात दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करते हैं।

जवानों के लिये ८ घंटे सोना आवश्यक है।

८. अपना मुँह दूसरे के अँगोछे से कभी न पोंछना चाहिए। पैर पोंछने वाले कपड़े से भी मुँह पोंछना अनुचित है। अपने मोज़ों को अपने तकिए या टोपी पर नहीं रखना चाहिए।

हमेशा नाक से साँस लेना चाहिए। बहुत-से रोगाणु नाक के बालों में फँसकर रह जाते हैं, और फेफड़ों में नहीं जाने पाते। मुँह से साँस लेनेवालों को अक्सर जुकाम-खाँसी रहा करती है। नाक से साँस लेने से ठंडी वायु भी भीतर गरम होकर पहुँचती है, और इस कारण कोमल श्लैष्मिक झिल्ली को हानि नहीं पहुँचने पाती।

जगह-जगह थूकना अनुचित है। घर की दीवारों तथा फ़र्श पर, भोजन-कक्ष में, [illegible], पढ़ने और सोने के कमरों में थूकना अत्यंत हानिकारक है। दूसरे के मुँह पर कभी न खाँसो। जब थूक या बलगम सूख जाता है, तो उसकी धूल में जो कीटाणु होते हैं, वे वायु द्वारा दूसरों के शरीर में प्रवेश करते हैं। घर में हर जगह थूकने से [illegible] [illegible] पड़ जाती हैं। नन्हें बच्चे जो चीज़ पाते हैं [illegible] इस प्रकार उनको बहुत से रोगों के होने का [illegible]।

५. रोगी को छूकर हमेशा हाथ धोना चाहिए। रोगी को, हो सके तो, अलग कमरे में रखना चाहिए। विशेषकर ऐसे रोगी को, जिसे चेचक, ख़सरा, हैज़ा, टायफ़ॉयड इत्यादि छूत के रोग हों। उसके कपड़ों को अलग रखना और धोबी के पास भेजने से पहले उबाल डालना या रोगाणु-नाशक औषधियों के घोलों में भिगो देना चाहिए। कम मूल्य की चीज़ों को जला देना चाहिए। थूकने के लिये एक ढकनेदार प्याला रखना चाहिए, जिसमें रोगाणु-नाशक औषधि रहे। हैज़े के रोगी के कपड़ों को जला देना चाहिए। उसके वमन और मल को जला देना ही सबसे अच्छा है।

जब तक चेचक इत्यादि रोगों के दाने सूख न जायँ, और धूल पूरे तौर से न अलग हो जाय, तब तक उस रोगी को अलग ही रखना चाहिए।

१०. मच्छड़ों, मक्खियों, जुँओं, खटमलों, चूहों, पिस्सुओं और चींचलियों को अपना दुश्मन समझना चाहिए, और उनको कम करने के साधनों को काम में लाना चाहिए।

११. अपने आचार ठीक रखना चाहिए। केवल एक स्त्री या पुरुष से संभोग करने से आतशक और सोज़ाक कभी नहीं होता।

अपना आत्मिक बल बढ़ाते रहना चाहिए।

वे काम, जिन्हें मनुष्य इकट्ठे होकर कर सकते हैं

रहने का घर

१. ये ऐसे होने चाहिएँ कि उनमें वायु और सूर्य का प्रकाश भली भाँति प्रवेश करे। प्रति व्यक्ति के लिये १००० घन-फ़ीट स्थान का बंदोबस्त रहना चाहिए। जहाँ तक हो सके, बड़ी-बड़ी सड़कों के पास रहने के घर न बनाए जायँ; क्योंकि ऐसे घरों में सड़कों की धूल खिच जाती और रहनेवालों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाती है।

मकान ऐसे हों कि वे ग्रीष्म-ऋतु में ठंडे रहें, और शीत-ऋतु में उनमें धूप भी आवे; वर्षा में सोने के लिये बरांडा हो; मकानों के निकट बड़े-बड़े कारख़ाने न हों।

छोटे-छोटे हवादार, परंतु कम किराएवाले, मकान ग़रीब आदमियों को प्राप्य होने चाहिएँ। ऐसे मकानों का बंदोबस्त करना प्रत्येक म्युनिसिपलिटी का कर्तव्य है।

सड़कें और गलियाँ

१. सड़कें और गलियाँ चौड़ी होनी चाहिए। सड़कों के दोनों ओर हरियाली की पगडंडी हो। सड़कों पर छिड़काव का पूरा बंदोबस्त होना चाहिए, जिससे धूल बहुत कम उड़े। उचित फ़ासले पर

मूत्र-घर और पाख़ाने भी बने होने चाहिएँ, और वे हरदम साफ़ रहने चाहिएँ। जगह-जगह पर थूकने के लिये भी बंदोबस्त होना चाहिए।

भोजन

३. कोई शख़्स मिठाई और अन्य खाने की वस्तुओं को खुले बरतनों में रखकर न बेचने पावे। ऐसा प्रबंध करना चाहिए कि, घी, दूध, आटा तथा अन्य भोज्य पदार्थों में कोई शख़्स कोई अन्य चीज़ मिलाकर न बेचने पावे। बिना पवित्र घी और शुद्ध दूध के व्यवहार के हिंदू जाति उन्नति नहीं कर सकती।

जहाँ खाने की चीज़ें बिकें, वहाँ सफ़ाई का पूरा बंदोबस्त होना चाहिए। नालियाँ हर समय साफ़ रहें; और घरों के पास किसी प्रकार का कूड़ा-करकट इकट्ठा न होने पावे।

जल

४. कुएँ समय-समय पर साफ़ कराए जायँ। कुओं की मेंड़ें ऊँची रहनी चाहिएँ, और ऊपर छतरी लगी रहनी चाहिए, जिससे न तो नीचे से कोई मैली चीज़ उनमें गिरे, और न ऊपर से वृक्षों के पत्ते ही गिरें। कुएँ ऐसी नाली के पास न होने चाहिएँ, जिसमें गोदा बहता हो। कुएँ पाख़ाने के पास कभी न बनवाए जाने चाहिएँ।

यदि पानी का बंदोबस्त नल द्वारा हो, तो पानी सब लोगों को सब कामों के लिये आसानी से और कम ख़र्च में प्राप्त होना चाहिए। आजकल जहाँ नल लगे हैं, वहाँ बहुधा, विशेषकर ग्रीष्म-ऋतु में, पानी की कमी की शिकायत रहती है।

जब हैज़ा शुरू हो, तब सब कुएँ पोटाश परमैंगनेट से साफ़ कराए जाने चाहिएँ।

कूड़ा और नालियाँ

५. कूड़ा बंद टबों में रहे, और वे टब प्रतिदिन ख़ाली किए जायँ। कूड़े के इकट्ठे रहने से मक्खियाँ पैदा होती हैं। मक्खियों की अधिकता म्युनिसिपलिटी की ग़फ़लत का पक्का सबूत है।

नालियों की ढाल ऐसी हो कि उनमें पानी रुकने न पावे। प्रतिदिन दो बार नाली धोई जानी चाहिए।

घरों के बाहर चौबच्चों का रिवाज अत्यंत हानि-कारक है।

६. रात्रि के समय सड़कों और गलियों में मकानों के आस-पास रोशनी का पूरा बंदोबस्त होना चाहिए।

पुरवासियों की जान-माल की पूरी हिफ़ाज़त का यथेष्ट बंदोबस्त होना चाहिए। जब तक जान-माल की हिफ़ाज़त न होगी, तब तक लोग अपने मकानों को हवादार न बनावेंगे, और रात्रि को कमरों की सब खिड़कियों को चोरों के डर से बंद करके सोवेंगे। जान-माल की पूरी रक्षा का बंदोबस्त न होना क्षय-रोग के बढ़ने का एक बड़ा भारी कारण है।

दूध

७. शुद्ध दूध न मिलने के कारण भारतवर्ष में लाखों बच्चे मरते हैं। दूध का बंदोबस्त म्युनिसिपलिटी को करना चाहिए। शहरों के पास गायों के चरने के लिये बड़े-बड़े मैदान रहने चाहिएँ। जहाँ गाएँ रक्खी जायँ, वहाँ खूब सफ़ाई रहे। पानी मिलाकर या अन्य क्रिया से दूध को दूषित करके बेचनेवालों को कड़ा दंड दिया जाय।

जहाँ तक संभव हो, म्युनिसिपलिटी कुछ दुग्ध-शालाओं (डेरी-फ़ार्मों) का खुद इंतज़ाम करे, और सस्ते मूल्य पर शुद्धदूध बेचे।

दाई

८. प्रतिवर्ष सैकड़ों स्त्रियाँ मूर्ख और अज्ञानी दाइयों के कारण मरती हैं। हर शहर में कुछ दाइयाँ, जो अपने काम को अच्छी तरह जानती हों, नौकर रक्खी जाएँ। उनको इतना वेतन मिले कि वे बिना फ़ीस लिए ग़रीब लोगों के घर जाकर बच्चा जनावें।

रोगों की सूचना

९. जब कोई शहर चेचक, इनफ्लुएंज़ा, हैज़ा और प्लेग आदि शीघ्र फैलनेवाले रोगों से बीमार हो, तो इस बात की सूचना डुग्गी द्वारा सब पुरवासियों को दी जाय, ताकि सब लोग सावधान हो जावें। नोटिसों या लेक्चरों के द्वारा ऐसे रोगों से बचने के साधन भी लोगों को बताने चाहिए।

स्वास्थ्य-संबंधी व्याख्यान

१०. जगह-जगह पर स्वास्थ्य-संबंधी व्याख्यानों का प्रबंध होना चाहिए।

११. ग़रीब लोगों के लिये आतशक, क्षय और कुष्ट-रोगों की बिना मूल्य, परंतु उत्तम श्रेणी की, चिकित्सा का पूरा प्रबंध प्रत्येक म्युनि-सिपलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को करना चाहिए। यदि वे रुपये के अभाव से न कर सकें, तो सरकार को करना चाहिए।

कोढ़ियों को बाज़ार में और घर-घर भीख माँगने की इजाज़त न दी जानी चाहिए। उनके लिये शहर से बाहर मकान बनाए जायँ, और उनके भोजन और चिकित्सा का प्रबंध किया जाय।

१२. वेश्यागमन को दूर करना चाहिए। घरों तथा पाठशालाओं के निकट और बाज़ारों में वेश्याओं को न बसाना चाहिए।

१३. अफ़ीम, भंग, गाँजा, चंडू, चरस, मदिरा तथा कोकीन इत्यादि नशीली वस्तुएँ स्वास्थ्य को विगाड़ने और मनुष्य को दुराचारी बनानेवाली हैं। मनुष्य को इन चीज़ों की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिये, हमारी राय में, इनका विकना (सिवा चिकित्सा के लिये) बिलकुल बंद कर देना चाहिए।

१४. जिस तरह भी हो सके, अज्ञान को दूर करना चाहिए।

रोगों की नाम-करण-विधि

(१) जब किसी अंग में वर्म आ जाता है तो कहते हैं कि उस अंग का प्रदाह हो गया है। संक्षिप्त रूप से इस बात को इस प्रकार बतलाते हैं। आह को प्रदाह का प्रत्यय मान कर उस विशेष अंग के नाम में आह जोड़ देते हैं; जो शब्द बनता है वह उस अंग के प्रदाह का बोधक बन जाता है। उदाहरणः—वृक्क के प्रदाह को बतलाने वाला शब्द वृक्क+आह=वृक्काह हुआ या यह कहो कि वृक्काह वृक्क के प्रदाह को कहते हैं। आह प्रत्यय अंग्रेज़ी के—"आइटिस" (itis) का तुल्यार्थ है। इस प्रकार कुछ रोगों के नाम यहाँ दिये जाते हैं—

मस्तिष्कवेष्टाह = Meningitis
फुप्फुसाह = Pneumonia
परिफुप्फुसयाह = Pleurisy, Pleuritis
आमाशयाह = Gastritis
क्लोमाह = Pancreatitis
अग्न्याशयाह = Duodenitis
क्षुद्रांत्राह = Ileitis
वृहदांत्राह = Colitis
उपांत्राह = Appendicitis
पेश्याह = Myositis

संध्याह = Arthritis
अस्थ्याह = Osteitis
अस्थ्यावरकाह = Periostitis
संहितंत्वाह = Fibrositis
परिहार्दिकाह = Pericarditis
मध्यहार्दिकाह = Myocarditis
अंतः हार्दिकाह = Endocarditis
शिराह = Phlebitis
परिशिराह = Periphlebitis
अक्षि श्लैष्मलाह = Conjunctivitis
कनीनिकाह = Keratitis
उपताराह = Iritis
नासाह = Rhinitis
अक्षि मध्य पटलाह = Choroiditis
अक्षि अंतः पटलाह = Retinitis
अक्षि बहिः पटलाह = Scleritis
कर्णाह = Otitis
बहिकर्णाह = Otitis externa
मध्य कर्णाह = Otitis media
अंतः कर्णाह = Otitis interna
गलाह = Pharyngitis
त्वचाह = Dermatitis
जिह्वाह = Glossitis
तालुग्रन्थ्याह = Tonsillitis
लसीकाग्रन्थ्याह = Lymphadenitis
मूत्राशयाह = Cystitis

चित्र ३४ शरीर के अंग (सामने से)

Bardelbein and Haeckel's Atlas, by permission

चित्र २९ शरीर के अंग (पीठ से)
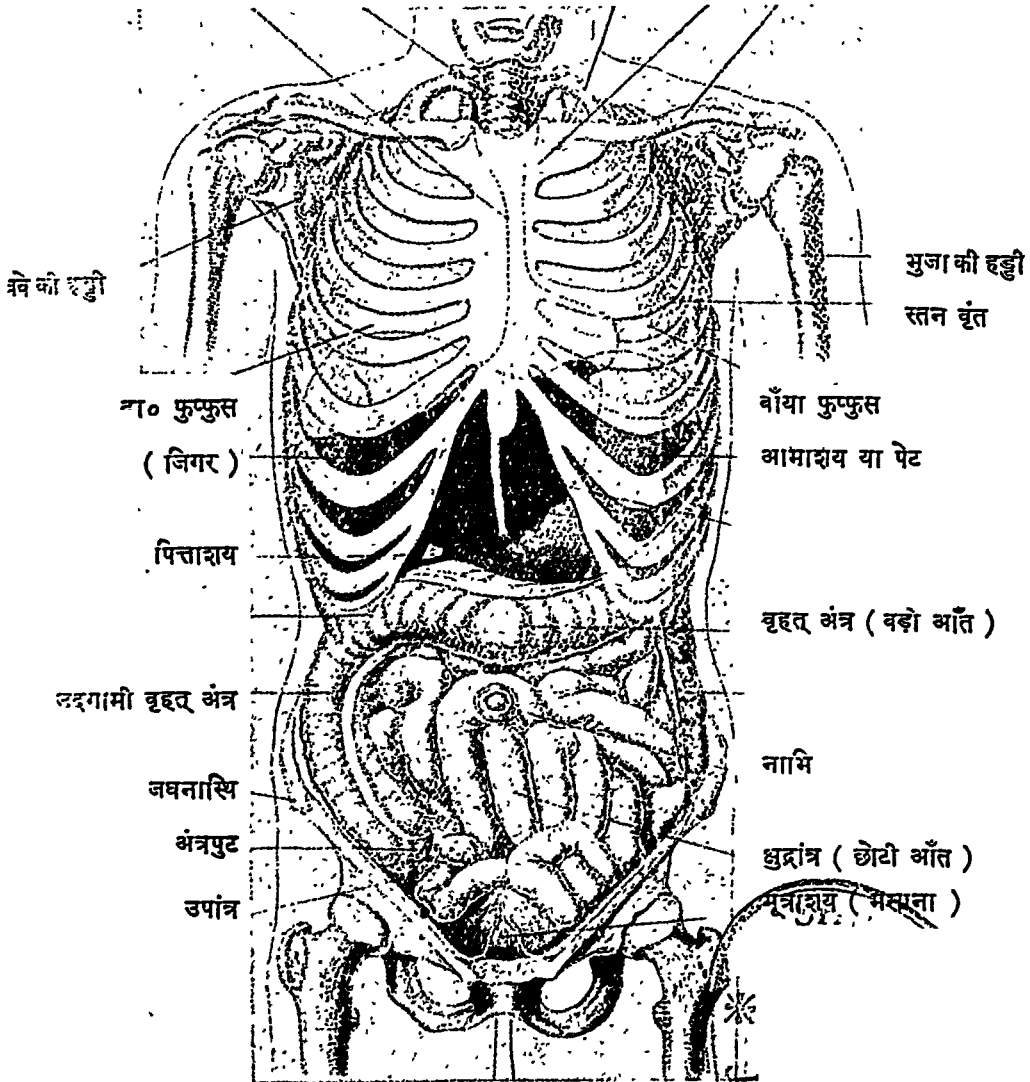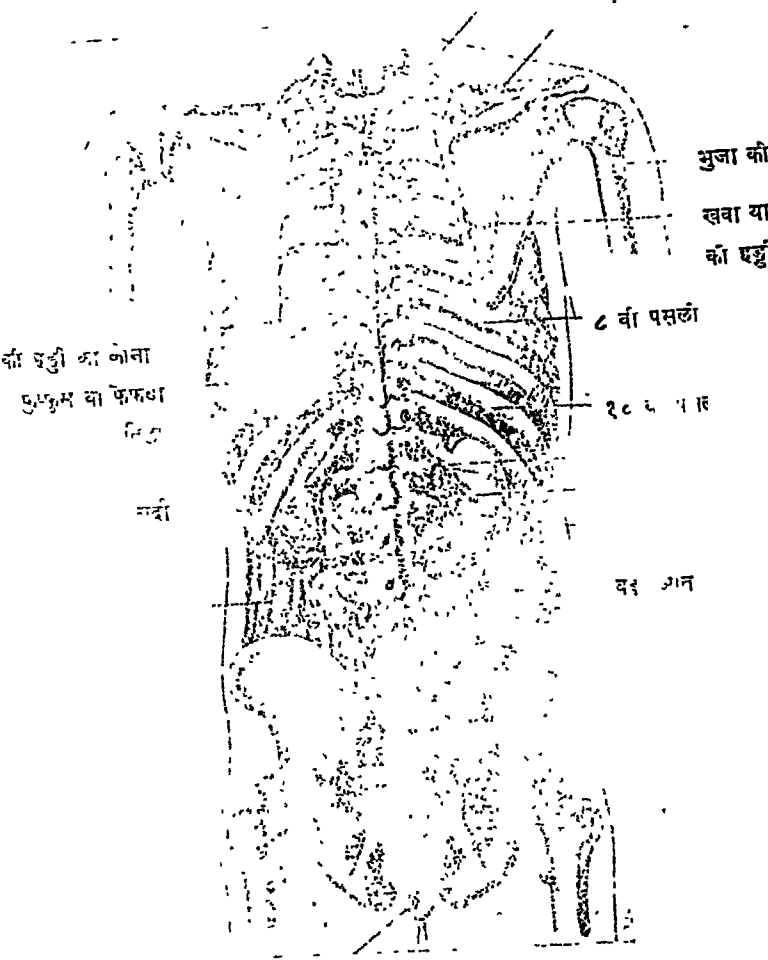
Bardelbein and Haeckel

(२)—"हा" दूसरा प्रत्यय है। जब किसी रास्ते से या अंग से कोई नयी चीज़ निकले या शरीर से मामूली तौर पर निकलने वाली चीज़ों में मिल कर कोई चीज़ निकले तो निकलने वाली चीज़ के पीछे—'हा' जोड़ देते हैं तो जो शब्द बना वह यह बतलावेगा कि कौन चीज़ निकल रही है ; यदि यह बतलाना हो कि यह चीज़ कहाँ से निकली या किस चीज़ में मिल कर निकली तो इस नये शब्द से पहले अंग का नाम जोड़ देते हैं। उदाहरण (१):—'पूय+हा =पूयहा इस का अर्थ हुआ पूय या मवाद का बहना। यदि पूय कान से बहता है तो कहेंगे कर्ण+पूयहा=कर्णपूयहा अर्थात् कान से मवाद का बहना ; और स्पष्ट करना हो तो कह सकते हैं मध्य कर्णपूयहा अर्थात् मध्य कर्ण से मवाद का बहना। उदाहरण (२) शुक्र+हा =शुक्रहा अर्थात् शुक्र का बहना ; मूत्र में मिलकर शुक्र के बहने को कहेंगे मूत्रशुक्रहा ; इसी प्रकार मूत्ररक्तहा; मूत्रपूयहा; मूत्रश्वेतजहा; मूत्रद्राक्षौजहा ; दंतोलूखलपूयहा ; नासिकाहा।

(३) जब किसी अंग में बहुत दर्द होता है तो उसे शूल कहते हैं। अंग के नाम में शूल जोड़ देने से जो शब्द बनता है वह उस के दर्द का बोधक होता है। उदाहरणः—दंतशूल ; नाड़ीशूल ; हृदयशूल ; परिफुप्फुसीयाशूल, अंत्रशूल ; पित्तशूल ; वृक्कशूल।

(४) किसी रोग के किसी मुख्य लक्षण से या रोग में कोई विचित्र बात होने से भी रोग का नाम पड़ जाता है जैसे शीतज्वर (जाड़ा या जूड़ी बुख़ार) अर्थात् ज्वर जिसमें सर्दी लगे; तिजारी या तृतीयक ज्वर (ज्वर जो तीसरे दिन आवे) ; काला अज़ार, रोग जिस से बदन काला सा हो जावे ; अतिनिद्रा रोग अर्थात् रोग जिस में नींद या सुस्ती बहुत आवे; हेरफेर का ज्वर, तीन दिन का ज्वर; सात दिन का

ज्वर। इसी प्रकार धनुष्टंकार या हनुस्तंभ (रोग जिस में शरीर धनुष के समान मुड़ जावे या जबड़ा बंद हो जावे।

(५) कोई कोई रोग किसी विशेष नगर में अधिकतर पाये जाते हैं या पहले पहले किसी एक नगर में पाये गये—उस नगर के नाम से वे रोग मशहूर हो जाते हैं जैसे माल्टा ज्वर (माल्टा टापू के नाम से); मदूरा पद (मदूरा नगर के नाम से)। इसी प्रकार कुछ रोग उन डाक्टरों के नाम से प्रसिद्ध हो जाते हैं जिन्होंने पहले पहले उनका वृत्तांत बतलाया।

(६) अन्य कारणों से भी नाम पड़ जाते हैं।

अध्याय ३

कर्नल मैककैरिसन साहब ने अंगरेज़ी में "फूड Food" नामक एक छोटी सी पुस्तक लिखी है; यह पुस्तक भोजन विषय पर जितनी पुस्तकें आज तक लिखी गयी हैं उन में सर्वोत्तम है और इसी कारण मैंने यह अध्याय अधिकतर उसी पुस्तक के आधार पर लिखा है। जो पाठक अगरेज़ी जानते हैं वह उस पुस्तक को अवश्य पढ़ें। (नाम :—Col. R. Mc Carrison's. Food पता :—Messrs Mc Millan & Co., Bombay Price -|12|-).

भोजन

भोजन आत्म रक्षा का मुख्य साधन है। हम को प्रतिदिन ऐसे भोजन की आवश्यकता है जिस से हमारे शरीर में मांस बने; जिस से हम को काम करने के लिये शक्ति प्राप्त हो और जिस से शरीर में थोड़ी सी वसा इकट्ठी हो। इन के अतिरिक्त हम को जल और भांति भांति के लवणों की भी आवश्यकता है और इन चीज़ों के प्राप्त करने की आवश्यकता है जिन को "खाद्योज" कहते हैं जिन के बिना हमारे शरीर का काम भली प्रकार नहीं चल सकता और हम रोगों का मुक़ाबला नहीं कर सकते। बस अच्छे भोजन के यही लक्षण हैं कि

जिसमें ऊपर बतलाई हुई सब वस्तुएँ मनुष्य की आयु और परिस्थिति, और अन्य आवश्यकताओं के अनुसार यथा परिमाण में हों।

हर एक आयु में हम को एक ही प्रकार के खाद्य पदार्थों की आवश्यकता नहीं होती ; बचपन में हमारे शरीर का वर्धन होता है, त्वचा, अस्थियाँ, मांस, मस्तिष्क सभी बढ़ते हैं ; इस समय आय व्यय से अधिक होना चाहिये। जवानी में आय व्यय बराबर से हो जाते हैं; बुढ़ापे में भूक घट जाती है, व्यय आय से बढ़ जाता है और शरीर में क्षीणता का आरंभ होता है। अब भोजन ऐसा होना चाहिये जिस से जब तक हो सके शरीर में क्षीणता न आवे।

भोजन (खाद्य) में कौन कौन चीज़ें होती हैं

भोजन में निम्न लिखित चीज़ें पाई जाती हैं—

१. वे वस्तुएँ जिनमें नोषजन (नत्रजन) होती है; उनको प्रोटीन कहते हैं। प्रोटीन शरीर की प्रत्येक सेल में पाई जाती है। प्रोटीन से मांस बनता है। प्रोटीन वाली चीज़ों के उदाहरण—दालें, गोश्त, अंडा।

२. खनिज पदार्थ अर्थात् भाँति भाँति के लवण—प्रत्येक सेल में किसी न किसी प्रकार के लवण पाए जाते हैं। इन्हीं से अस्थि बनती है। उदाहरण—भाँति भाँति के साग और फल, दूध इत्यादि में चूने, लोहे, फोस्फोरस, आयोडीन इत्यादि चीज़ें पाई जाती हैं।

३. खाद्योज—ये वे सूक्ष्म पदार्थ हैं जो भोजनीय पदार्थों में पाये जाते हैं और जिनका कार्य्य शरीर में पहुँच कर शरीर की समस्त क्रियाओं को उत्तेजित करना है। इसके बिना हमारा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता ; अस्थियाँ और दांत ठीक ठीक नहीं बनते; बढ़ोत ठीक नहीं होती और हमारा रक्त पवित्र नहीं रहता, इन्द्रियाँ अच्छी नहीं रहतीं।

इसके न होने से या कम होने से हमारी रोगनाशक शक्ति भी कम हो जाती है और कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

४. वसा—यह शक्ति उत्पन्न करने के काम आती है। चर्बी, घी, तेल, मावन उदाहरण हैं।

५. कर्बोज—ये पदार्थ शरीर में पहुँचकर शक्ति उत्पन्न करते हैं उदाहरण—शर्करा (शकर); श्वेतसार। चावल, गेहूँ, बाजरा, जौ, ईख, मीठे फलों में पाए जाते हैं।

६. जल—शरीर के हर एक भाग में पाया जाता है और शरीर का अधिकांश जल है। जल से अंगों में कोमलता और लचक और तरी आती है। उसके द्वारा शरीर रूपी मकान की नालियाँ धुलती हैं और मैल पसीने और मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकलता है। सभी खाने की चीज़ों में थोड़ा बहुत जल होता है और अलग भी पिया जाता है।

भोजन की चीज़ें कहाँ से प्राप्त होती हैं

भोजन की वस्तुएँ कुछ तो अन्य प्राणियों से और कुछ वनस्पतियों से प्राप्त होती हैं। जो चीज़ें प्राणियों से प्राप्त की जाती हैं उनमें से दूध और दूध से बनने वाली घी, माखन इत्यादि चीज़ों को छोड़ कर और सब चीज़ें प्राणियों को मार कर प्राप्त की जाती हैं जैसे गोश्त; जानवरों के अंग, चर्बी।

कर्बोज अधिकांश वनस्पति वर्ग से, वसा और प्रोटीन प्राणि वर्ग और वनस्पति वर्ग दोनों से, प्राप्त होती हैं। खनिज पदार्थ भी दोनों वर्गों से और जल से प्राप्त होते हैं।

१. प्रोटीन

जहाँ तक सुगमता से पचने का सम्बन्ध है प्रोटीनें उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तीन श्रेणियों में विभाज्य हैं। अर्थात् कुछ प्रोटीनें सहज में पच जाती हैं और उनसे शरीर का वर्धन अच्छा होता है कुछ देर में पचती हैं और वर्धन अच्छा नहीं होता।

उत्तम प्रोटीन वाले भोजन

दूध, दही, मठा, पनीर, अंडा, पशुओं के यकृत, गुर्दे, गोश्त, मछली, पत्ते वाले साग जैसे पालक; चोकर सहित आटा (अर्थात् बिना चोकर निकला)।

मध्यम श्रेणी की प्रोटीन वाले भोजन

गेहूँ का आटा, जौ, जई, बिना पॉलिश किया हुआ चावल, मटर, दालें, चना, आलू, गाजर, शलजम, मूली, चुकंदर, हाथीचक, सागूदाना, फल, हरे पत्ते वाले सागों को छोड़कर और तरकारियाँ।

निकृष्ट श्रेणी की प्रोटीन वाले भोजन

चमकाया हुआ चावल, मैदा, डबलरोटी, सूजी।

उत्तम प्रोटीन न मिलने से हानि

यथा परिमाण में अच्छी प्रोटीन आहार न होने से शरीर का वर्धन अच्छा नहीं होता, बालक कमज़ोर रहता है; पेशियाँ कमज़ोर रहती हैं। प्रोटीन की कमी से शक्ति हीनता उत्पन्न होती है; सहन शीलता कम होती है; मनुष्य बहुत देर तक काम नहीं कर सकता और बुढ़ापा जल्दी आता है; रोगों का मुकाबला करने की शक्ति कम हो जाती है विशेषकर क्षय, पेचिश, कॉलेरा, हैज़ा इत्यादि रोगों का।

२. खनिज लवण

शरीर का ४% भाग खनिज लवणों से बनता है। वैसे तो थोड़े बहुत लवण शरीर के सभी तंतुओं में पाए जाते हैं, उन की विशेष आवश्यकता अस्थि और दाँतों के बनाने के लिये होती है। इन के बिना हमारे अंग, हृदय इत्यादि ठीक काम नहीं कर सकते।

हमारे शरीर में २० मौलिक पाए जाते हैं उन में से ये १६ सब से आवश्यक हैं; कुछ क्षार बनाने वाले होते हैं, कुछ अम्ल बनाने वाले।

क्षार जनक मौलिक	अम्ल जनक मौलिक
कैलशियम	
पोटेशियम	फॉस्फोरस
सोडियम	गंधक
लोहा	क्लोरिन
मगनेसियम	आयोडीन
मंगेनिस	सिलिकोन
जस्ता	फ्लोरिन
ताम्र	
लिथियम	
बोरियम	

क्षार बनाने वालों में से चूना, पोटेशियम, सोडियम, लोहा और मगनेसियम सब से आवश्यक हैं और शरीर में अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। अम्ल बनाने वालों में फॉस्फोरस, गंधक और क्लोरिन सब से आवश्यक हैं।

भोजन में यह सब सांल्कि इस प्रकार रहने चाहिये कि न अधिक क्षार बने और न अधिक अम्ल। रक्त और तंतुरसों की प्रतिक्रिया न अधिक अम्ल होने पावे न अधिक क्षारीय।

इन चीज़ों में क्षार बनाने वाले सांल्कि अधिक और अम्ल बनाने वाले कम होते हैं—हरे पत्तों वाली तरकारियाँ, कंदें, मूलें, फल इन चीज़ों में अम्ल बनाने वाले सांल्कि अधिक और क्षार बनाने वाले कम होते हैं—गोश्त, दाल, अखरोट, अनाज।

इस लिये भोजन में मिली जुली चीज़ें होनी चाहिएँ। गोश्त और अनाज के साथ हरे पत्तों वाले साग और फल रहने चाहिएँ।

कैलशियम

यह अस्थि और दाँतों के लिये, हृदय के ठीक काम करने के लिये और रक्त को जमने की शक्ति प्रदान करने के लिये और कई और कामों के लिये अत्यंत आवश्यक सांल्कि है। उसकी कमी से शरीर में निर्बलता, अस्थियों में कोमलपन, दाँतों का गिर जाना और रिकेट्स नामक रोग उत्पन्न होते हैं।

इन चीज़ों में चूना (खटिक) खूब पाया जाता है—

दूध, मठा, पनीर, छाना जल, अंडे की ज़रदी, अखरोटादि गिरियाँ दाल, फल, पत्तेदार तरकारियाँ। दूध बहुत आवश्यक चीज़ है। यदि ½ सेर दूध प्रति दिन मिले तो बालक को जितना चूना चाहिये उतना बखूबी मिल सकेगा।

इन चीज़ों में चूना कम होता है—

१. अनाज, जैसे गेहूँ, चावल, मक्की।

२. कंदें और मूलें, जैसे आलू, मूली, शलजम, चुकंदर, गाजर

३. शकर, साबूदाना, ठपीयोका।

४. गोश्त।

फौस्फोरस या स्फुर

हर एक सेल का आवश्यक अवयव है। विना उसके वर्धन नहीं होता। अस्थि और दाँतों में वहुत पाया जाता है और उनके लिये वहुत ज़रूरी है।

इन चीज़ों में खूब पाया जाता है:—दूध, मठा, अंडे, सोया, सेम, दाल, अखरोटादि गिरियाँ, गेहूँ, जई, जो, चोलम, रगी, पालक, मूली, खीरा, गाजर, फूलगोभी, ब्रुसेल्स-स्प्राउट, (Brussels Sprouts) गोश्त, मछली।

इन चीज़ों में कम पाया जाता है—

सुफेद चावल, सुफेद आटा (मैदा), कंदें, मूलें। फौस्फोरस और [illegible]टिक साथ साथ चलते हैं। भोजन ऐसा हो कि जिसमें दोनों ही चीज़ें यथा परिमाण हों।

लोहा

रक्त के लिये अत्यावश्यक है। उसके विना रक्त का रंग फीका हो जाता है। विना लोहे के ओषजन भली प्रकार ग्रहण नहीं की जा सकती और विना ओषजन के शरीर की सब क्रियाएँ मंद हो जाती हैं। मनुष्य में रक्त हीनता आ जाती है, और वह दुर्बल हो जाता है और परिश्रम नहीं कर सकता। दूध पिलाने वाली औरतों को और बच्चों को विशेषकर वर्धनकाल में उसकी अधिक आवश्यकता है।

इन चीज़ों में लोहा खूब पाया जाता है—

यकृत, लाल गोश्त, अंडा, दाल, अनाज, पलाकी, प्याज़, मूली, स्ट्रावेरी, हाथीचक, तरबूज़, खीरा, शलजम के पत्ते, टोमाटो।

इन चीज़ों में लोहा कम पाया जाता है—

जान्तविक और वानस्पतिक वसा, शकर, सुफेद चावल, मैदा।

साधारण नमक

से रक्त का संवहन ठीक रहता है। तंतुओं में जल की मात्रा जितनी चाहिये उतनी रहती है और अंग अपने काम ठीक ठीक करते हैं।

वानस्पतिक भोजन करने वालों को थोड़ा सा नमक रोज़ खाने की आवश्यकता है; जो लोग वानस्पतिक और जान्तविक दोनों प्रकार का भोजन खाते हैं उनको केवल वानस्पतिक भोजन करने वालों से कम नमक की आवश्यकता है। अधिक नमक से गुर्दों और रक्त वाहिनियों को हानि पहुँचती है

क्लोरिन

आमाशयिक रस बनाने के लिये आवश्यक है; जो साधारण नमक हम खाते हैं उनसे क्लोरिन प्राप्त होती है। यह इन चीज़ों में खूब पाई जाती है :—

केला, सलारी,* खजूर, लेट्यूस,† पलावी, टोमाटो, अनन्नास, मूँगफली, तरकारियों के हरे पत्ते।

आयोडीन

जब शरीर में आयोडीन कम पहुँचती है तो घेघा हो जाता है। जिस ज़मीन में आयोडीन काफ़ी होती है वहाँ के पानी और उस ज़मीन में उपजी हुई चीज़ों में आयोडीन यथा परिमाण में रहती है। कहीं कहीं विशेष कर पहाड़ी भूमि में आयोडीन कम होती है इस कारण वहाँ के रहने वालों को यथा परिमाण में प्राप्त नहीं होती। समुद्री मछली और उनके यकृत से निकाले हुए तेलों में (कोई मछली

---

* Celery. † Lettuce.

(प्रकृत का तेल) यह मौलिक खूब पाया जाता है। हरे पत्तों वाली तरकारियों और फलों में भी आमतौर से बहुत रहता है।

उबालने का तरकारियों के लवणों पर असर

जब तरकारियाँ पानी में उबाली जाती हैं तो उनके लवण बहुत कुछ जल में घुल जाते हैं। यदि यह पानी फेंक दिया जावे तो लवण भी चले जावेंगे। इस लिये यह पानी हरगिज़ न फेंकना चाहिये और तरकारियाँ शोरवेदार ही खा लेनी चाहियें।

३ वसा

कुछ वसा तो शरीर में पहुँच कर शक्ति उत्पन्न करने के काम आती है। कुछ वहाँ बहुत से स्थानों में विशेष कर त्वचा के नीचे इकट्ठी रहती है। त्वचा के नीचे रहने वाली वसा गरमी सरदी से बचाती है; अंगों के आस पास रहने वाली वसा उनकी रक्षा करती है और उनके लिये गद्दी का काम देती है।

वैसे तो थोड़ी सी वसा सब अनाजों और दालों में होती है, साधारणतः हम उसको दूध, घी, माखन, वानस्पतिक तेलों से (सरसों, तिल, नारियल), गिरियों से (अखरोट, बादाम, चिलगोज़ा), जानवरों की चरबी से मछली के तेलों से, प्राप्त करते हैं।

जो वसा हम को प्राणियों से मिलती है वह वानस्पतिक वसा की अपेक्षा उत्तम होती है क्योंकि उस में खाद्योज १ रहती है। वानस्पतिक वसा में यह बहुत कम रहती है। जो लोग तेल इत्यादि ही द्वारा वसा ग्रहण करते हैं उन को खाद्योज १ प्राप्त करने के लिये हरे पत्ते वाली तरकारियाँ अवश्य खानी चहिएँ। दूध का मिलना अत्यंत आवश्यक है विशेष कर बच्चों के लिये; बहुत न मिले तो प्रत्येक बालक को ¼ सेर रोज़ अवश्य मिलना चाहिये।

४ कर्बोज

इस में तीन प्रकार की चीजें शामिल हैं—

१. शर्करा आदि जैसे भाँति भाँति की शकरें।

२. श्वेतसार जैसे मैदा, सागूदाना।

३. काष्ठोज जैसे फलों और तरकारियों के रेशे।

इन में से नं० ३ को मनुष्य नहीं पचा सकता, यह ज्यों का त्यों आँतों में से हो कर विष्टा द्वारा बाहर आ जाता है। इस का मुख्य काम भोजन की मात्रा और घन फल को बढ़ाना है जिस से आँतों का काम ठीक काम कर सके। काष्ठोज का भोजन में रहना आवश्यक है क्योंकि जब भोजन में काष्ठोज यथा परिमाण नहीं होता तो क़ब्ज़ पड़ जाता है। नं० १ और नं० २ से शरीर में शक्ति उत्पन्न होती है और उन से शरीर वसा भी बना लेता है।

कर्बोज कहाँ से प्राप्त होते हैं

जितने अनाज और दालें हैं उन सभों में श्वेतसार होता है; जितने फल हैं उन सभों में किसी न किसी प्रकार की शकर रहती है; जितनी तरकारियाँ हैं उन में काष्ठोज रहता है। गेहूँ का छिलका उतारने के बाद जो सुफेद चीज़ रहती है वह अधिकांश श्वेतसार ही है; चावल करीब करीब सब ही श्वेतसार होता है; दालों का भी अधिक भाग श्वेतसार होता है; सागूदाना, अरारूट, टेपियोका अधिकतर श्वेतसार से ही बने हैं। अंगूर, गन्ना, शकरकंद, आम, स्ट्राबेरी, अंजीर, आलू-बुखारे, मुनक्का, किशमिश, इत्यादि से हम को शर्करा प्राप्त होती है। दूध में भी एक प्रकार की शकर रहती है।

उपरोक्त से विदित है कि कर्बोज विशेष कर वनस्पति वर्ग से ही प्राप्त होते हैं।

५ खाद्योज

अभी तक ५ प्रकार की खाद्योजों का पता लगा है :—

खाद्योज १ के गुण

१. यह वसा में घुलनशील होती है। भोजनों को थोड़ी देर तक पकाने से नष्ट नहीं होती। परन्तु यदि भोजन बहुत देर तक हवा में पकाये जावें जैसे कड़ाई में तरकारियों का भूनना या कड़ाई में घंटों तक दूध को पकाना या इस से रबड़ी या मलाई बनाना, तो उस का नाश हो जाता है।

२. यह हमको रोगों का विशेषकर रोगाणुजनक (संक्रामक) रोगों का मुकाबला करने की शक्ति प्रदान करती है।

३. इस के कारण हमारी त्वचा और श्लैष्मिक कलाएं मज़बूत रहती हैं और रोगाणुओं के आक्रमण से बची रहती हैं।

४. इस की कमी से रात्रि के समय न दिखाई देने का रोग हो जाता है।

५. शरीर की बढ़ोत के लिये यह आवश्यक है।

यह खाद्योज कैसे प्राप्त होती है

प्राणियों को यह खाद्योज वनस्पतिवर्ग से प्राप्त करनी पड़ती है क्योंकि उन के शरीर में उस को बनाने की शक्ति नहीं है। सूर्य्य के प्रकाश के प्रभाव से यह खाद्योज हरे पत्तों में बन जाती है और जब प्राणि उन पत्तों को खाते हैं तो यह खाद्योज उन के शरीर में पहुँच कर उन की वसा में जमा हो जाती है और आवश्यकतानुसार काम आती रहती है। पत्तों और कोपलों की अपेक्षा पौधों के बीजों में यह खाद्योज कम पाई जाती है। सूर्य्य के प्रकाश से सम्बन्ध रखने

के कारण यह खाद्योज तरकारियों के उन भागों में जो भूमि के भीतर रहते हैं (अर्थात् मूलें और कंदें) कम मात्रा में पाई जाती हैं। गाजर, शकर कंद इत्यादि पीली चीजों में आलू, शलजम, चुकंदर, मूली इत्यादि श्वेत और लाल चीज़ों में अधिक मात्रा में पाई जाती है।

भोजन जिन में खा० १ खूब पाई जाती हैं

मछली के यकृत का तेल, अंडे की ज़र्दी, माखन, घृत, प्राणियों के यकृत, गुर्दे; बकरे की चर्बी; दूध; पलाकी, लेट्टूस, सिलेरी, करम कल्ला इत्यादि पत्तों वाली तरकारियाँ; शलजम के पत्ते, चुकंदर, मूली और घास के पत्ते। गाजर, शकरकंद, टोमाटो, मकी, कल्ले, फूटा हुआ चना।

भोजन जिन में वह कम पाई जाती है

माखन निकाला हुआ दूध; दाल, चना, मटर, सेम, गेहूँ, जई, जौ, नारियल का तेल, जान्तविक मारजरीन, नारंगी का रस; शहद, चावल; प्याज़, आलू, चुकंदर; वानस्पतिक तेल।

इन चीज़ों में बिल्कुल नहीं होती

मैदा, चमकाया हुआ चावल; सरसों का तेल, बादाम का तेल; वानस्पतिक मारजरीन; कोकोजम; वानस्पतिक घी।

खाद्योज २

के गुण—

१. यह जल में घुलनशील होती है।

२. मस्तिष्क और नाड़ियों को; हृदय, यकृत, पाचक ग्रन्थियों ऐच्छिक मांस, अंत्र के अनैच्छिक मांस को ताकत देती है।

२. इस के न मिलने से बेरी बेरी* नामक रोग जो बंगाल में अधिक होता है हो जाता है। इस रोग में हृदय कमज़ोर हो जाता है, शरीर पर वर्म आ जाता है और हाथ पाँव विशेष कर टाँगें वातग्रस्त हो जाती हैं जिस के कारण रोगी बिना लकड़ी के सहारे चल नहीं सकता।

यह खाद्योज कैसे प्राप्त होती है

इस को भी हम वनस्पति वर्ग से प्राप्त करते हैं। यह अनाजों के बाहरी भाग में पाई जाती है; मैदा में नहीं पाई जाती क्योंकि गेहूँ का छिलका (या चोकर) अलग होगया; सुफेद चमकीले चावल में भी नहीं पाई जाती क्योंकि भाप द्वारा पकाने और फिर मशीन से चमकाने में चावल का बाहरी भाग जिस में यह रहती है अलग हो जाता है; बग़ैर चमकाए हुए अर्थात् मैले रंग के चावल में पाई जाती है। यदि चावल को अधिक देर पानी में भिगो दें और उस पानी को फेंक कर चावल को पकावें तब भी यह चावल में न रहेगी क्योंकि वह फेंके हुए जल में घुल कर रह गयी। चावल उबाल कर मांड फेंक दिया जावे तो भी अधिक भाग मांड में निकल जावेगा। इस क्रिया से न केवल खाद्योज ही कम हो जाती है प्रत्युत चावल का श्वेतसार भी मांड द्वारा निकल जाता है और इस कारण उस की पोषक शक्ति कम हो जाती है।

भोजन जिन में यह खूब पाई जाती है

खमीर, अंडा टोमाटो, सिलेरी, अखरोट, पलाकी, शलजम और मूली के पत्ते, सालिम गेहूँ का आटा, जौ, मकी, बाजरा, जई, सेम, लोभिया, मटर, दाल, चना, अलसी, गिरियाँ।

* Beri beri.

भोजन जिन में कम या नाममात्र पाई जाती है

श्वेत डबल रोटी, श्वेत चावल, केला, पपीता, शंत्रा; नीबू; चाय, काफ़ी, श्वेत आटा (मैदा), श्वेतसार, वानस्पतिक तेल, शकर इत्यादि।

खाद्योज ३

चित्र ३७ स्कर्वी। मसूढ़े सूजे हैं
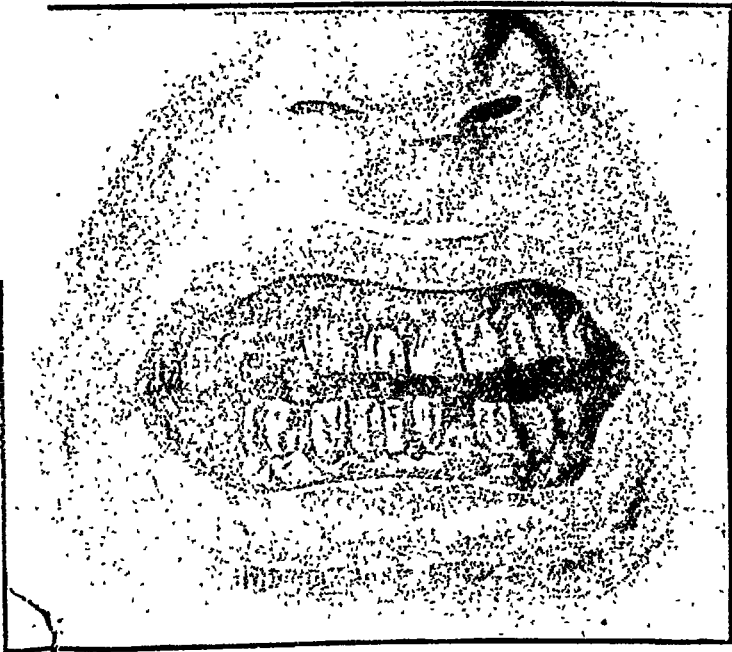
By courtesy of Welcome Bureau of Scientific Research

इस के गुण इस प्रकार हैं—

१. जल में घुलन शील है।

२. अधिक उष्णता के प्रभाव से नष्ट हो जाती है।

३. रक्त को शुद्ध रखती है और उसके संगठन को ठीक रखती है। उसकी न्यूनता या अभाव से रक्त शीघ्र रक्तवाहिनियों की दीवारों में से बहने लगता है, मसूड़े पिलपिले हो जाते हैं और सूज जाते हैं और उनमें से खून निकलने लगता है। त्वचा में जगह जगह खून के चकत्ते पड़ जाते हैं। ये स्कर्वी रोग के लक्षण हैं।

४. उसकी कमी से अस्थियाँ, दाँत मज़बूत नहीं रहते। आँतें ठीक काम नहीं करतीं और रोग नाशक शक्ति घट जाती है। शिशु का शरीर छूने से दर्द करने लगता है और जोड़ सूज जाते हैं।

यह खाद्योज कहाँ से प्राप्त होती है

यह खाद्योज लगभग सभी तरकारियों और फलों में पाई जाती है। साधारणतः चावल, गेहूँ, जौ, मकी इत्यादि बीजों में नहीं पाई जातीं। परन्तु यदि ये बीज पानी में भिगोये जायँ और उनसे कल्ले फूट निकलें तब यह खाद्योज उनमें बन जाती है।

खाद्योज ग इन चीज़ों में खूब पाई जाती है

करमकल्ला, शलजम, कल्ले फूटी हुई दालें, मटर और चना; नीबू और नारंगी के ताज़े रस में; टोमाटो, गाजर, लेटूस, शलजम के पत्ते, आलू, केला, लोबिया, शकरकंद, आड़ू, अनन्नास, शरीफ़ा।

इन चीज़ों में कम पाई जाती है

दूध, मक्खन निकला हुआ दूध, मठा, दही, जौ, जई, कच्ची मकी, चुकंदर, पकाई (उबाली) हुई करमकल्ला; कच्ची गाजर; उबली हुई गोभी; प्याज़, पकाया हुआ आलू; तरबूज़; शलजम, सेब, नाशपाती, केला।

इन चीज़ों में बहुत कम या बिलकुल नहीं होती

पतला (चर्बी रहित) गोश्त, अंडे, सोया, सेम, जई, आटा, मैदा, चोलम, रगी, मकी, बाजरा, सूखी मटर, सेम, दाल, चना, शक्कर, शहद, खमीर, वानस्पतिक तेल, जान्तविक वसा, सब प्रकार के सूखे फल, सब प्रकार की गिरियाँ; टीन में बिकनेवाले फल, डिब्बों का दूध; सुखाया हुआ दूध, शिशुओं के लिये डिब्बों में बिकनेवाले भोजन ।
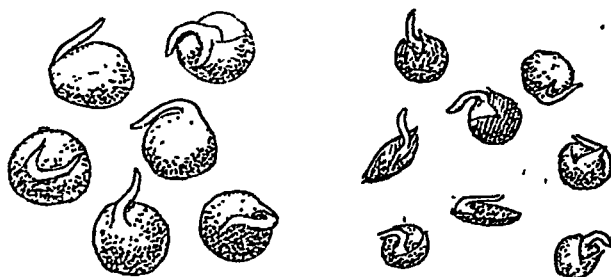
चित्र ३८ कल्ला फूटी हुई मटर और मसूर

By permission of His Majesty's Stationery office from Memoranda of Diseases of Tropical areas

खाद्योज ३ के बनाने की विधि

१. साबुत और बिना छिलका उतरी मटर, उड़द, मूँग, मसूर चना या गेहूँ को एक बरतन में पानी में भिगो दो । ५०°—६०° फहरनहाइट की उष्णता पर २४ घंटे और ९०° फहरनहाइट की उष्णता पर १२ घंटे भिगोना चाहिये । यदि आप चाहें तो थैले या बोरे में भिगो कर रख सकते हैं परन्तु थैला बड़ा रखना चाहिये ताकि ये चीज़ें फूलने पर बाहर न निकल आवें ।

चित्र ३९ रिकेट्स रोग
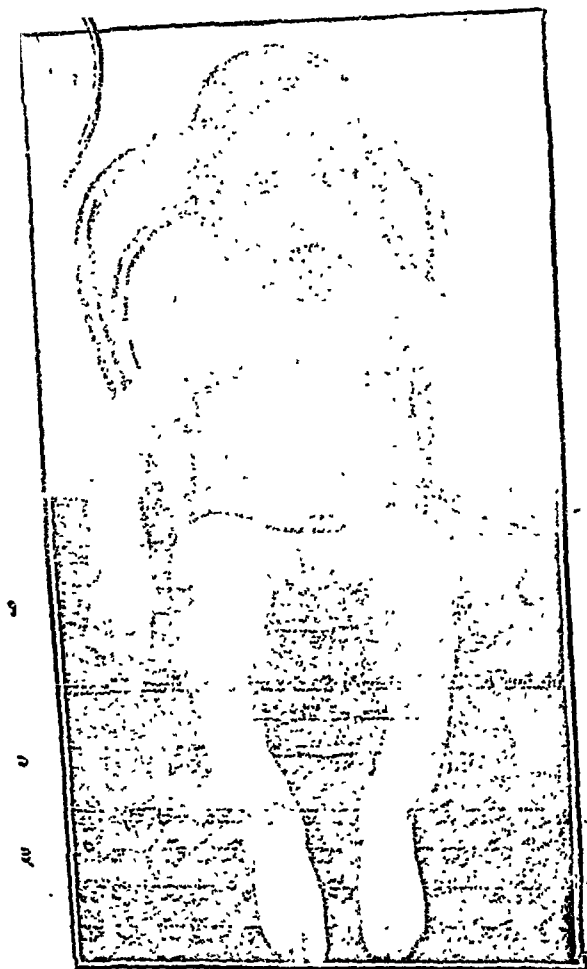
१, २, ३=अस्थियाँ टेढ़ी हो गई हैं

By courtesy of Dr. Hector Cameron from Paterson's Sick Children

२. २४ या १२ घंटे पीछे पानी को फेंक दो। फिर उस भीगे हुए अनाज या दाल को तर कपड़े पर फैला दो और उसको एक भीगे कपड़े या टाट से ढक दो। अब २४–४८ घंटों में छोटे छोटे कल्ले फूट निकलेंगे। जब तक कल्ले न फूटें कपड़े पर पानी छिड़कते रहना चाहिये।

३. जब कल्ले फूट जावें तो या तो कच्चा ही खा लो या २ मिनट पका कर खा लो। कल्ले फूटने के बाद बहुत देर न रख छोड़ना चाहिये क्योंकि फिर यह खाद्योज नष्ट हो जाती है।

खाद्योज ४

के गुण—

अस्थियों और दांतों की मज़बूत के लिये इसका होना आवश्यक है विशेष कर वर्धन काल में। इसके कम होने से शिशुओं को रिकेट्स और बड़ों को विशेषकर स्त्रियों को "ऑस्टियो मलेशिया"* रोग हो जाते हैं। दोनों रोगों में अस्थियाँ कोमल हो जाती हैं। रिकेट्स में शिशु चिड़चिड़ा हो जाता है; नींद कम आती है; बालक शीघ्र चलना फिरना नहीं सीखता; कब्ज़ रहता है, दाँत देर में निकलते हैं और पैरों की अस्थियाँ शरीर का बोझ न संभाल सकने के कारण टेढ़ी हो जाती हैं (चित्र ३९) चूने और स्फुर (फॉस्फोरस) की कमी या फॉस्फोरस की अधिकता जब कि चूने की कमी हो; खाद्योज ४ की कमी या अभाव—ये सब रिकेट्स के कारण हैं। भारतवर्ष में सूर्य्य प्रकाश की कमी नहीं है इस प्रकार रिकेट्स भी कम होता है।

यह खाद्योज कहाँ से प्राप्त होती है

दूध, घी, माखन और मछलियों के तेल में खूब पाई जाती है। सरसों, तिलादि वानस्पतिक तैलों में बिल्कुल नहीं पाई जाती। जब

* Osteo Malacia.

सूर्य्य का प्रकाश हमारी त्वचा पर पड़ता है तो उसकी अल्ट्रावायोलेट किरणों के प्रभाव से यह खाद्योज हमारी त्वचा में बन जाती है। यदि सरसों या तिलों के तेल को थोड़ी देर धूप में रखदें तो यह खाद्योज उसमें बन जाती है; इसी प्रकार तेलों को असनुई "अल्ट्रा-वायोलेट"† किरणों में रखकर यह खाद्योज बना ली जाती है। शरीर को थोड़ी देर नंगा रखकर धूप खाना अर्थात् सूर्य्य के प्रकाश में रखना अच्छा है। शिशुओं के शरीर पर तेल मलकर उनको थोड़ी देर धूप में लिटाना बहुत हितकारी है क्योंकि इस विधि से खाद्योज ४ उन के शरीर में बन जाती है।

खाद्योज ५

इसके अभाव से स्त्री और पुरुष दोनों में निष्फलता (गर्भ न रहना) उत्पन्न होती है।

कहाँ मिलती है—लेटूस, गोश्त, अंडे, जानवरों का गुर्दा; और यकृत; सालिम गेहूँ; गेहूँ का भ्रूण।

दूध में कम रहती है।

सारांश

१. सालिम गेहूँ का आटा मैदा की अपेक्षा हमारे स्वास्थ्य के लिये अधिक हितकारी है क्योंकि गेहूँ के छिलके में (चोकर) उत्तम श्रेणी की प्रोटीन, खनिज पदार्थ, और खाद्योज १ रहती हैं। मैदा में यह चीज़ें बहुत कम होती हैं, उसका अधिकांश श्वेतसार से बनता है जो केवल शक्ति उत्पादक पदार्थ है।

२. चावल वह उत्तम होता है जिस का बाहरी भाग अधिक भाप द्वारा या अधिक धोकर और मशीन द्वारा चमका कर अलग न कर लिया गया हो। श्वेत चावल में खाद्योज २ नहीं रहती। पकाते

†Ultra-Violet Rays.

समय चावल का माँड न फेंकना चाहिये ; इस में न केवल श्वेतसार हो रहता है प्रत्युत खाद्योज २ भी रहती है।

३. मक्खन (और नैनी घी)* से जब घी बनाया जावे तो उसे बंद बरतन में औटाना चाहिये। खुली हवा में देर तक गरम करने से खाद्योज १ नष्ट हो जाती है।

४. ज़्यादा पकाने से खद्योज ३ नष्ट हो जाती है। इस कारण फलों को बिना उबाले या पकाये ही खाना अच्छा है। प्रति दिन ताज़े फल और हरे पत्ते वाले साग, टोमाटो इत्यादि का प्रयोग होना चाहिये। यदि फल न मिलें तो कभी-कभी पीछे लिखी विधि से चना इत्यादि को भिगोकर खाना चाहिये। नारंगी, नीबू का सेवन बहुत हितकारी है। जो बालक किसी कारण से मा का दूध प्राप्त नहीं कर सकते और गाय या डिब्बे के दूध पर पाले जाते हैं उनको रोज़ नारंगी का रस देना चाहिये।

५. प्रतिदिन थोड़ी देर तक नंगे बदन धूप में बैठना विशेष कर बच्चों और स्त्रियों के लिये अत्यंत हितकारी है। जाड़े के दिनों में तेल मलकर बैठना या लेटना और भी अच्छा है।

६. उत्तम प्रकार के मछली के तेल में खाद्योज १, २, ४ अच्छी मात्रा में पाई जाती हैं। बच्चों और कमज़ोर मनुष्यों के लिये यह एक अत्यंत हितकारी वस्तु है।

७. तरकारियों के पत्ते अवश्य खाने चाहियें क्योंकि उनमें खाद्योज के अतिरिक्त फॉस्फोरस, लोहा, चूना और क्लोरिन होती हैं। तरकारियाँ उबालते समय उनका पानी फेंक देना ठीक नहीं क्योंकि इस

* मट्ठा बिलोने से जैसा घी निकलता है।

पानी में खाद्योज घुली रहती है। सोडा इत्यादि खार डालकर तरकारियाँ न पकानी चाहियें क्योंकि खाद्योज नष्ट हो जाती हैं।

चित्र ५० पत्तागोभी। खाद्योज १, २, ३, खूब रहती हैं
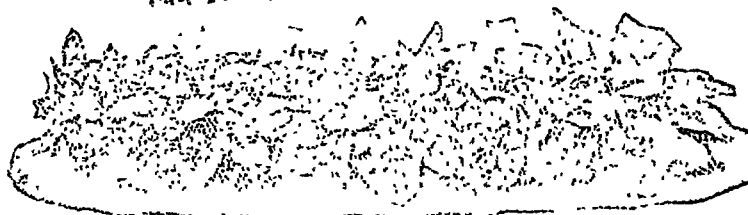
By courtesy of Messrs Suttons and Sons, Ltd.

८. खाद्योजों के अभाव से या यथा परिमाण न मिलने से कई रोग होते हैं—

१. भाँति-भाँति के कीटाणुजनक रोग, जुकाम, न्युमोनिया इत्यादि।

२. बेरीबेरी; झोला।

३. स्कर्वी।

४. रिकेट्स।

५. अंधापन (रतौंधी, निष्फलता)।

इसलिये भोजन में इन चीज़ों का रहना परमावश्यक है।

६ जल

शरीर का लगभग ३४% भाग जल से बनता है; कोई जगह नहीं जहाँ जल न रहता हो। जल कुओं, चश्मों, दरियाओं से प्राप्त होता है। थोड़ा सा जल भोजनीय पदार्थों से भी जो सूखे ही दिखाई दें प्राप्त हुआ करता है। जल द्वारा हमारे शरीर से मैल, पसीना, मूत्र और मल निकल जाता है। इसके बिना शरीर में पाचक रस भी नहीं बन सकते।

जल

By courtesy of Messrs Suttons & Sons Ltd., Reading

चित्र ४२ छोटा सेम (फ्रेंच बीन्स French Beans) खाद्योज १,२,३ रहती हैं

चित्र ४३ बन्द गोभी। खाद्योज १,२,३ खूब होती हैं
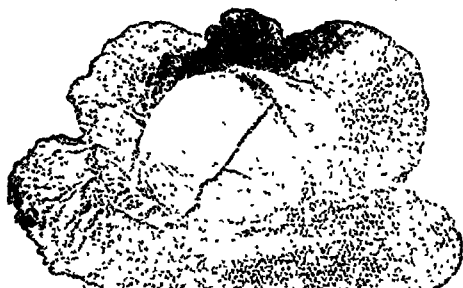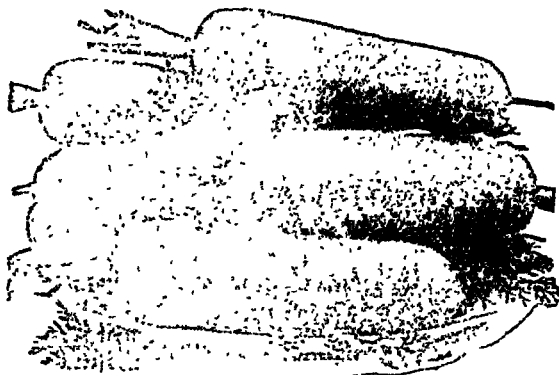
चित्र ४५ सलाद, काहू (Lettuce) खाधोज १,२,३ खूब होती हैं

चित्र ४६ सलाद, काहू (Lettuce) खाधोज १,२,३ खूब होती हैं

By courtesy of Messrs Suttons & Sons Ltd.

चित्र ४७ रुबर्ब (Rhubarb) केवल ज़रा सा श्वे० ३ रहता है

चित्र ४८ शलारी, कुरस (Celery) श्वेतोज ०,३ रहता है
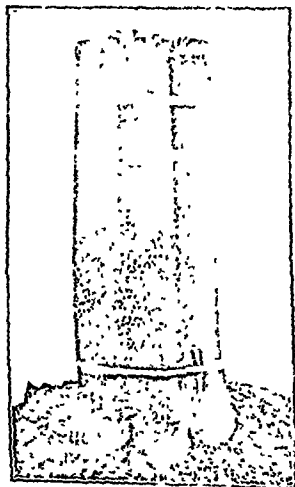
By courtesy of Messrs Suttons & Sons Ltd.

अच्छे भोजन में उपरोक्त वस्तुएँ कितनी कितनी होनी चाहियें

उत्तम भोजन वह है जिसमें उपरोक्त ६ प्रकार की चीज़ें यथो-परिमाण में व्यक्ति की आयु और कार्यानुसार सहज में पचनेवाले रूप

यें मिलें। शारीरिक परिश्रम करनेवाले को शक्ति उत्पन्न करनेवाले भोजन की अधिक आवश्यकता है। वर्धन काल में मांस बनानेवाली और शक्ति उत्पन्न करनेवाली दोनों ही प्रकार के भोजन की आवश्यकता है। अधिक श्वेतसारीय और शर्करा वाले भोजन से और अधिक वसा वाले भोजन से शरीर स्थूल हो जाता है और यकृत और क्लोम पर बहुत ज़ोर पड़ता है और मधुमेह रोग भी हो जाता है। अधिक प्रोटीन के सेवन से यकृत और वृक्क पर बहुत ज़ोर पड़ता है और पेशाब में अलब्युमेन या डिम्बज आने लगती है।

साधारण मानसिक और शारीरिक परिश्रम करने वाले को जिन का शरीर भार १½ मन के लगभग हो इन चीज़ों की आवश्यकता इस प्रकार होती है—

प्रोटीन ७०-८५ ग्राम (या माशे)
वसा ८५ " " "
कर्बोज ३००-३५० " "

लवण और खाद्योज की मात्रा नहीं लिखी जा सकती, ये चीजें उपरोक्त चीज़ों के साथ साथ रहती हैं। मनुष्य के स्वास्थ्य को देख कर पता चलता है कि उस को ये चीजें यथा परिमाण में मिलती हैं या नहीं। जल की भी मात्रा नहीं लिखी जा सकती। गरमी में अधिक और सर्दी में कम जल की आवश्यकता होती है।

जो मनुष्य खूब लम्बा चौड़ा है और वज़नी है और खूब परिश्रम करता है उस को अधिक भोजन की आवश्यकता होती है। ये सब चीज़ें जलने से उष्णता उत्पन्न करती हैं। जितनी ऊष्णता से १००० ग्राम (माशे) जल का ताप एक दर्जा शतांश बढ़ जावे वह उष्णता का एक अंक कहलाता है। प्रयोगों से प्रोटीन, वसा, कर्बोज के उष्णांक मालूम किये गये हैं। एक ग्राम वसा से ९ उष्णांक प्राप्त होते हैं; एक ग्राम (माशा) कर्बोज से ४ उष्णांक और एक ग्राम प्रोटीन से ४

उष्णांक प्राप्त होते हैं। शरीर में चर्बी और कर्बोज एक दूसरे का काम दे सकते हैं; यदि भोजन में चर्बी कम है तो उस की जगह कर्बोज खाने से भी काम चल सकता है; इसी प्रकार यदि कर्बोज कम है तो अधिक चर्बी खानी चाहिये। परन्तु बहुत दिनों तक ऐसा नहीं किया जा सकता क्योंकि चर्बी कर्बोज के मुकाबले में मुश्किल से पचती है। हम को उपरोक्त तीनों चीज़ों को इस प्रकार और इस मात्रा में खाना चाहिये कि नर को २५००-३५०० उष्णांक प्राप्त हो जावें; नारी को इसका ⅘ या २०००-२८०० तक।

वह भोजन सब से अच्छा होता है कि जिस में खाद्य पदार्थ जान्तविक और वानस्पतिक दोनों ही प्रकार के हों। ऐसे भोजन को मिश्रित भोजन कहते हैं। वानस्पतिक पदार्थ भी विविध प्रकार के होने चाहियें सदा एक ही चीज़ खाना हितकारी नहीं होता।

मिश्रित भोजन का नमूना (२४ घण्टे के लिये)

साबित गेहूं का आटा	६ छटांक		
दाल	१½ "		
दुग्ध	८ "	तंतोज=८५	उष्णांक
घृत	½ "	चर्बी=१००	२८४०
शक्कर	१ "	कर्बोज=३९०	१०%* कम
चावल	२ "	लवण=काफी	करके
शाक हरे पत्तों वाला	२-३ छटांक	खाद्योज=काफी	२५५६
फल	२-३ छटांक		
जल	यथा इच्छा		

*सब चीज़ों का आचूषण नहीं हो पाता; १०% आम तौर से फ़जूल ही जाती हैं।

उपरोक्त भोजन हलका, सहज पचनशील और सस्ता है। दिमाग़ी मेहनत करने वालों के लिये उत्तम है। जो अधिक शारीरिक परिश्रम करते हैं वह चावल या शर्करा बढ़ा सकते हैं; घी की जगह तेल हो सकता है परन्तु वह इतना अच्छा नहीं। यदि इस उत्तम भोजन को निकृष्ट बनाना चाहो तो आटे की जगह मैदा कर दो; मैले रंग के चावल की जगह वर्मा का सुफेद चमकाया हुआ चावल कर दो; घी की जगह तेल कर दो; हरे सागों की जगह कंद या मूल जैसे आलू रखो; फल बिलकुल निकाल दो। ऐसा करने से उष्णांक क़रीब क़रीब उतने ही रहेंगे परन्तु खाद्योज और लवण कम हो जावेंगे; गेहूँ के और चावल के बाहरी भाग में जो उत्तम श्रेणी की प्रोटीन रहती है वह भी नहीं मिलेगी; साग के पत्तों में जो काष्ठोज रहता है वह भी प्राप्त नहीं होगा और खाद्योज भी कम हो जावेगी।

जो लोग मांस खाते हैं या खाना चाहते हैं वे ऊपर के भोजन में चावल की जगह या कुछ आटे की जगह थोड़ा सा मांस शामिल कर सकते हैं।

पकाने की विधि से भी भोजन उत्तम या निकृष्ट बनाया जा सकता है। शाक को अधिक देर कढ़ाई में भूनने से उस की खाद्योज कम हो जाती है। दूध को देर तक कढ़ाई में पकाने से उस का सत्यानाश हो जाता है। चावल को बहुत देर तक पानी में भिगो दीजिये और इस पानी को फेंक दीजिये और फिर उबाल कर मांड फेक दीजिये, उस की आधी ताक़त जाती रहती है। बजाये ताजे फल खाने के डिब्बों में बंद किये हुए फल खाइये और आप को घाटा हुआ।

निकृष्ट भोजन का नमूना

सुफेद चमकदार (वर्मा का) चावल	१० छटाँक
दाल	३ छटाँक
तेल	½ छटाँक
आलू या घुइयाँ	२ छटाँक

इस भोजन में प्रोटीन और वसा कम हैं और कर्बोज अधिक है; गरीबों को ऐसा ही भोजन प्राप्त होता है; इस में खाद्योज बहुत कम होती है। यह भोजन दिमागी मेहनत करने वालों के लिये खराब है। यदि इस में आध सेर दूध मिल जावे और १० छटाँक चावल की जगह ५ छटाँक आटा और ५ छटाँक चावल हो जावें और आधे आलू की जगह पालक, मेथी बथुआ या टोमाटो हो जावें तो भोजन निकृष्ट से उत्तम बन सकता है।

खिचड़ी, कढ़ी, चावल और खीर, ये उमदा चीज़ें हैं

खिचड़ी

चावल	२ छटाँक	प्रोटीन	४५ माशा	उष्णांक
दाल	२ छटाँक	वसा	५५ ,,	१५२७
घृत	४ तोला	कर्बोज	२१८ ,,	
दही	२ छटाँक			

कढ़ी चावल

चावल	४ छटाँक	प्रोटीन	२६ माशा	उष्णांक
बेसन	१½ छटाँक	वसा	४८ ,,	२५३२
घृत	४ तोला	कर्बोज	२२९ ,,	
दही	१ छटाँक			

खीर

दूध	१६ छटाँक	प्रोटीन	३७ माशा	उष्णांक
चावल	१ छटाँक	वसा	,,	१६७५
शक्कर	२ छटाँक	कर्बोज	,,	

दूध सागूदाना (वीमारों के लिये)

दूध	१६ छटाँक	प्रोटीन	३० माशा	उष्णांक
सागूदाना	१ छटाँक	वसा	३२ माशा	११५०
शक्कर	२ छटाँक	कर्बोज	२२१ माशा	

संयुक्त प्रान्त के क़ैदियों का भोजन

गेहूँ (आटा)	८ छटाँक		
चना	६ छटाँक		
दाल	१ छटाँक	प्रोटीन १४२	उष्णांक
तरकारी (विशेप कर साग)		वसा २५	३५२२
	४ छटाँक	कर्वोज ५३६	१०% कम करके
तेल	२ माशा	खाद्योज काफी	=३१७०
मिर्च, मसाला, अमचूर नीवू			
	रोज़ थोड़ा थोड़ा		

दिन भर में कै बार खाना चाहिये

आमतौर से दिमागी काम करने वालों को दिन भर में तीन वार से अधिक खाना खाने की आवश्यकता नहीं है :—

प्रातःकाल ७-८ वजे

मध्यकाल १२-१ वजे

सायंकाल ६-७ बजे

काल के अनुसार घंटे आध घंटे की अबेर सबेर हो सकती है।

प्रातःकाल का भोजन

यह हलका परन्तु पौष्टिक होना चाहिये। इसमें शक्ति उत्पन्न करने वाली चीज़ें होनी चाहिये। अच्छे कलेवा का नमूना:—छोटी छोटी मठरियाँ या छोटी छोटी पूरियाँ; या नमक पारे; दूध; एक फल जैसे केला, या संतरा या सेब। जो लोग चाहें वह अंडा खा सकते हैं। दूध में पका हुआ दलिया भी अच्छा है।

आटा	$1\frac{1}{2}$ छटाँक	उष्णांक २१०
दूध	$\frac{1}{4}$ सेर	
शक्कर	$\frac{1}{2}$ छटाँक	
घी	$\frac{1}{2}$ छटाँक	

दोपहर का खाना भी बहुत भारी न होना चाहिये क्योंकि दोपहर के बाद भी लोगों को काम करना पड़ता है; यदि पेट बहुत भरा हो तो काम में तबियत नहीं लगती। नींद आने लगती है विशेष कर ग्रीष्म ऋतु में

आटा	२ छटाँक	उष्णांक १०६७
दाल	१ छटाँक	
घृत	$\frac{1}{2}$ छटाँक	
शाक	२ छटाँक	
फल	२ छटाँक	

सायंकाल का भोजन। सबसे भारी भोजन इसी समय होना चाहिये क्योंकि आराम करने के लिये अब काफ़ी समय है। पूरी-कचोरी

रोटी की अपेक्षा देर में पचती हैं इसलिये इन चीज़ों को शाम को ही खाना चाहिये।

हमने चाय, काफी, कोको इत्यादि का ज़िक्र नहीं किया कारण यह है कि इन चीज़ों की स्वास्थ्य के लिए आवश्यकता नहीं है। २५ वर्ष पहले भारतवर्ष में बहुत कम लोग चाय पीते थे; भारतवर्ष जैसे गर्म देश में चाय पीने की कोई ज़रूरत नहीं है। चाय, काफ़ी में कोई पौष्टिक पदार्थ नहीं हैं; ये चीज़ें केवल उत्तेजक हैं और उत्तेजक चीज़ों का प्रयोग बिना आवश्यकता के जायज़ नहीं है।

भोजन बनाने की ग़लतियाँ

१. जिस जल में सब्ज़ियाँ उबाली जावें उस जल को फेंकना न चाहिये; शोर्वेदार (जूसवाली) तरकारियाँ बना लेनी चाहियें। सब्ज़ियों को कढ़ाई में भून कर जला कर खाना ऐसा है जैसा कोयला खा लिया। चावल का माँड़ न फेंकना चाहिये। चावल पकाने की उत्तम विधि यह है कि चावल पक भी जावे और माँड़ भी न निकालना पड़े।

२. सालिम गेहूँ का आटा खाना चाहिये, मैदा खाना बुरा है। विवाहों, संस्कारों के अवसरों पर मैदा का प्रयोग बहुत बुरा है। जो चीज़ मैदा बिना न बन सके उसको स्वास्थ्य के लिये हानिकारक समझ कर त्याग देना चाहिये।

३. चावल—धान से चावल बनाने के वे तरीक़े जिन से न केवल भूसी ही अलग होती है प्रत्युत चावल का बाहरी भाग भी अलग हो जाता है स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होने के कारण काम में न लाने चाहियें। मैले रंग का चावल चिट्टे चमकदार चावल की अपेक्षा उत्तम और हितकारी होता है क्योंकि उसमें खा० २ जो नाड़ियों को पुष्टि-

कारक है रहती है। चावल को बहुत देर तक पानी में भिगोना और धोना भी हानिकारक है क्योंकि खा० २ पानी में घुलनशील होने के कारण अलग हो जाती है। अधिक चावल का प्रयोग शरीर को पुष्ट नहीं बनाता। जो लोग ज़्यादातर चावल ही खाते हैं वे मोटे और निर्बल और कायर होते हैं।

४. दाल—छिलके समेत खानी चाहिये। यदि दाल पीसकर फिर सामान बनाया जावे तो वह जल्दी हज़म होती है। चिल्ले, पकौड़ी, कढ़ी, मंगोची, बड़ियाँ इत्यादि दाल खाने के अच्छे तरीके हैं। दिन भर में दो छटाँक से अधिक दाल खाने की आवश्यकता नहीं—अधिक दाल हानि भी पहुँचाती है। कभी-कभी चना, मटर, मसूर इत्यादि को भिगो देना चाहिये और जब उन में कल्ले फूटें तब खाना चाहिये जैसा कि हिंदू स्त्रियाँ साल में एक दो बार करती हैं। दाल के लड्डू भी अच्छे होते हैं। तली हुई और भुनी हुई दालों को खूब चबाना चाहिये क्यों कि ये देर में हज़म होती हैं। मूँग और अरहर की दालें अच्छी दालें हैं। दालों में लोहा और स्फुर (फॉस्फोरस) खूब होते हैं परन्तु चूने, सोडियम और क्लोरिन की कमी होती है।

दूध (चित्र ८९)

१. दूध अकेला एक ऐसा खाद्य पदार्थ है कि जिसमें प्रोटीन, वसा, कर्बोज, लवण और जल और खाद्योज सभी चीज़ें यथा परिमाण में शीघ्र पचने वाले रूप में इकट्ठी पाई जाती हैं। वैसे तो सब के लिये परन्तु विशेषकर शिशुओं और बालकों के लिये स्वच्छ दूध पूर्ण खाद्य पदार्थ है।

२. दूध की अच्छाई और बुराई गाय के भोजन और रहन सहन पर बहुत कुछ निर्भर है। जो गाय जंगल में सूर्य के प्रकाश में हरी

चित्र ८९   गाय, दूध

३   २
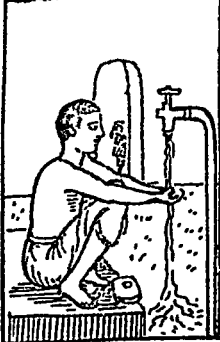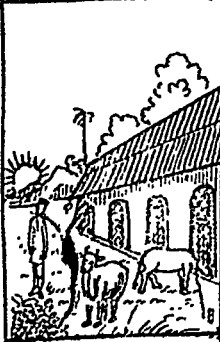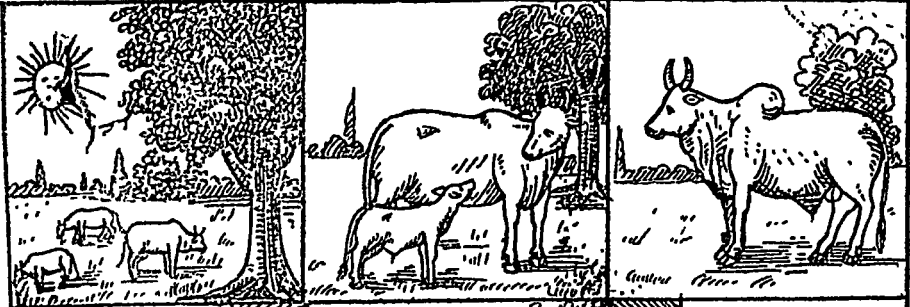
चित्र ४९ की व्याख्या

१. साँड अच्छी नसल का होना चाहिये ताकि अच्छी गाय (२) पैदा हो

३. गाय को जंगल में चरना चाहिये। सूर्य के प्रकाश के प्रभाव से हरी घास में खाद्योज बनती है। खुले मैदान में हरी घास चरने वाली गाय के दूध में घरों में सूखी घास खाने वाली गाय की अपेक्षा अधिक खाद्योज रहती है।

४. साफ जगह गाय को बाधो। गोबर को तुरंत उठाने का प्रबन्ध करो। हवादार मकान होना चाहिये। मूत्र इकट्ठा न हो। सूर्य का प्रकाश आवे।

५. हाथ अच्छी तरह धोकर दूध निकालो। थनों को भी धोलना चाहिये

६. दूध बंद बरतन में रक्खो जिस से मक्खियों और धूल से बचाव हो।

७. एक उबाल देकर दूध पियो।

८. स्वस्थ शिशु और (९) स्वस्थ बालक

१०. मरयल गाय और मुर्दा भुस भरा हुआ गाय का बच्चा

घास चरती है उसका दूध उस गाय के दूध की अपेक्षा जो घर में बँधी रहती है और सूखी घास खाती है कहीं अच्छा होता है। पहली गाय के दूध में खाद्योज १ खूब रहती है दूसरी में कम। (चित्र ४९)

३. दूध में खाद्योज १ खूब पाई जाती है; खा० २,३,४ थोड़ी मात्रा में रहती हैं। खाद्योज ३ उबालते समय नष्ट हो जाती है। दूध में चूना और फौस्फोरस यथा परिमाण में पाये जाते हैं।

४. आजकल भारतवर्ष में गाय की नसल खराब होगयी है। अच्छे साँड़ों द्वारा नसल को ठीक करना चाहिये। बड़ी-बड़ी चरागाहों

का प्रबन्ध होना चाहिये। गायों की चिकित्सा का भी बन्दोबस्त आवश्यक है। जो गाय रोगी हो या जिसके थनों में कोई रोग हो उस का दूध न पीना चाहिये।

५. दूध निकालने से पहले गाय को साफ कर लेना चाहिये। जिस जगह गाय बाँधी जावे वह जगह भी स्वच्छ रखनी चाहिये।

६. दूहने से पहले थन धो लेना चाहिये। दूध निकालने वाले को चाहिये कि वह अपने हाथ साबुन और गरम जल से धोकर खूब साफ़ करके थनों को छूवे। दूध दूहने वाले को कोई रोग भी न होना चाहिये विशेषकर क्षय रोग, पेचिश, इत्यादि। वह हाल में हैज़ा या टायफॉयड् रोग से अच्छा भी न हुआ हो। जिस बरतन में दूध निकाला जावे वह स्वच्छ होना चाहिये। (चित्र ४९)

चित्र ५०

शुद्ध दूध में कीटाणु नहीं हैं	थोड़ी देर हवा में रहने पर दूध में कीटाणु आ गये
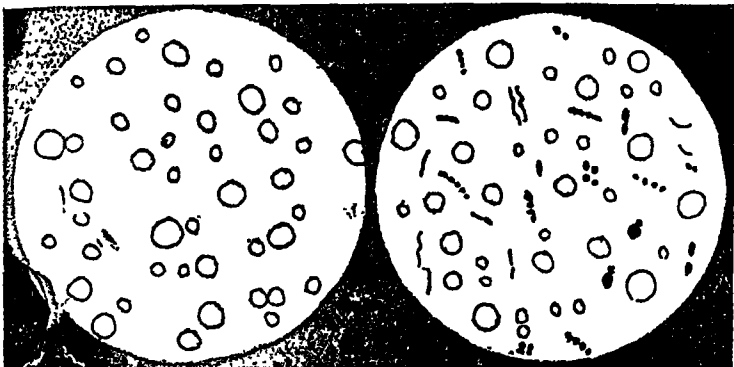
७. दूहने के बाद दूध को खुले बरतन में न रखना चाहिये

क्योंकि उस में वायु द्वारा और धूल द्वारा अनेक प्रकार के कीटाणु आजावेंगे।

८. पीने से पहले दूध में एक उबाल दे लेना चाहिये। सब से अच्छा तो यह है कि उसको विधि पूर्वक ६०° शतांश या १४० फहरनहाइट के ताप पर २० मिनट से ३० मिनट तक गरम रक्खा जावे। फिर शीघ्रता से उसको ठंडा कर लिया जावे। इस विधि से क्षय, टायफॉयड, पेचिश, डिफ्थीरिया, लाल ज्वर, ज़ुकाम, माल्टा ज्वर इत्यादि के रोगाणु मर जाते हैं।

९. गौशाला और दुग्धशाला (डैयरी) सम्बन्धी ऐसे क़ानून होने चाहियें कि जिस से जनसंख्या को स्वस्थ गायों ही का पवित्र दूध मिले।

१०. प्रत्येक छोटे विद्यार्थी को कम से कम चार छटाँक (८ छटाँक हो तो और भी अच्छा है) दूध प्रति दिन मिलना आवश्यक है। जो लोग अपना धन मन्दिरों, मस्जिदों और गिरजाओं द्वारा नष्ट करते हैं उनसे प्रार्थना है कि वे अपने नगर के प्रत्येक विद्यार्थी के लिये जिस के माँ बाप ग़रीब हैं ¼ सेर दूध रोज़ मिलने का प्रबन्ध कर दें।

११. बड़ों को भी यदि ८–१० छटाँक दूध रोज़ मिल सके तो अच्छा है।

दूध से बनी और चीज़ें

१. माखन—दूध को मथ कर बनाया जाता है। वसा का अधिक भाग अलग हो जाता है। (भारतवर्ष में नौनी घी दूध को औटाकर और जमाने के बाद मथकर निकाला जाता है) माखन का संगठन इस प्रकार होता है—

वसा	९०%	लगभग
जल	१०%	,,
दुग्ध शर्करा	०·५%	,,
दधिज (Casein)	०·५%	,,

माखन में खाद्योज १ खूब रहती है ज़रासी खा० ४ रहती है, खा० २, ३ नहीं होती।

२. माखन निकालने के बाद जो चीज़ बचती है उसको अंगरेज़ी में "बटर मिल्क", माखन निकाला हुआ दूध कहते हैं। हिंदुस्तानी तरीक़े से जो नैनी घी निकाला जाता है तो घी निकालने के बाद जो चीज़ रहती है उसे 'मठा' कहते हैं। मठा और "बटर मिल्क"† में कुछ भेद है।

३. उपराई* या क्रीम (Cream)

यदि दूध को कुछ देर के लिये एक बरतन में रख दिया जावे तो कुछ देर पीछे ऊपर का भाग नीचे के भाग से गाढ़ा हो जावेगा; कारण यह है कि वसा हलकी होने के कारण ऊपर चढ़ जाती है। यह ऊपर का वसापूर्ण भाग अलग कर लिया जाता है और 'क्रीम' या उपराई कहलाता है। जितना ऊपर का भाग होगा उसमें उतनी ही अधिक वसा होगी।

४. उपराई निकालने के पश्चात् जो दूध रहता है उसको "स्किम्ड*

† Butter milk

* हिन्दी में क्रीम के लिये कोई शब्द नहीं है। हमने उपराई रक्खा है।

*Skimmed milk

मिल्क" या माखन निकाला हुआ दूध कहते हैं। इस दूध का संगठन इस प्रकार होता है—

जल	८८·० %
प्रोटीन	४·० "
वसा	१·८ "
दुग्ध शर्करा	५·४ "
लवण	०·८ "

५. क्रीम से भी माखन बनता है। क्रीम या उपराई को पहले थोड़ी देर (१२–२४ घंटों) के लिये गर्म स्थान में रख देते हैं। फिर ६०° फहरनहाइट के ताप पर ३० मिनट तक मथते हैं; माखन निकल आता है।

६. दही—दूध को जमाने से बनता है। सालिम दही में वह सब चीज़ें होती हैं जो दूध में होती हैं; केवल उसकी प्रोटीन में कुछ तबदीली हो जाती है और उसमें "लैक्टिक अम्ल" बन जाता है जिसके कारण उसकी प्रति क्रिया अम्ल हो जाती है और स्वाद खट्टा हो जाता है।

७. छाना जल—गरम दूध को फिटकरी या नींबू के रस से या किसी और विधि से पहले फाड़ लेते हैं और फिर कपड़े में लटका कर छान लेते हैं। अब उस फटे दूध के दो भाग हो जाते हैं। एक सुफेद ठोस चीज़ दूसरे पीलाहट लिये जल। जल भाग को 'छाना जल' या "दही का तोड़" कहते हैं। तोड़ का संगठन इस प्रकार है—

प्रोटीन	०·९४ %
वसा	०·९६ ,,

शकर	५'४९ ,,
लवण	०'४८ ,,
जल	९२'१३ ,,

८. छाना जल या तोड़ निकालने के बाद जो सख़्त चीज़ रह जाती है वह छाना या पनीर है। अनेक विधियों से पनीर को स्वादिष्ट बनाया जाता है। पनीर में ये चीज़ें रहती हैं—

प्रोटीन	३१'०
वसा	२८'५
लवण	४'५
जल	३६'०

शिशुओं को पनीर न देना चाहिये क्योंकि वह दुपपच होता है।

९. डिब्बों का दूध—गाढ़ा किया हुआ दूध।

दूध को २१२° फहरनहाइट के ताप पर कुछ समय रखकर रोगाणु रहित कर लेते हैं और खला (Vacuum) में रखकर उसका जल भाग उड़ाकर कम कर दिया जाता है जिससे वह गाढ़ा हो जाता है। फिर उसमें शर्करा मिला देते हैं।

संगठन

	प्रोटीन	वसा	दुग्ध-शर्करा	मामूली शकर
फीका गाढ़ा किया गया दूध	१२	११	१६	०
मीठा ,, ,,	१२	११	१६	४०

जो बालक इन दूधों पर पाले जाते हैं वह मोटे, पिचपिचे होते हैं और उनमें रिकेट्स और स्कर्वी होने की संभावना रहती है और वे रोगों का मुक़ाबला भली प्रकार नहीं कर सकते।

खाद्य पदार्थों का संगठन

ये अवयव एक औंस में पाये जाते हैं

खाद्य पदार्थ	प्रोटीन ग्राम में	वसा ग्राम में	कर्बोज ग्राम में	ऊष्णांक प्रति औंस	खाद्योज श्रेणी १	श्रेणी २	श्रेणी ३	श्रेणी ४
दूध, दूध से बनी चीजें								
गाय का दूध	०·९४	१·०२	१·३६	१८	+++	+|	+	|
स्त्री का दूध	०·४२	१·५०	०·७५	१८	+,++	+	+	...
उपराई	०·७०	५·२४	१·२७	५५	++++	+	...	+
पनीर	७·३५	८·८८	०·५०	१११	++++	बहुत कम	...	...
मट्ठा	०·८५	०·१४	१·३६	१०	+	+	+	...
मक्खन निकला दूध	०·९६	०·०८	१·४४	१०	+	+	+	...
दही	१·४०	१·००	०·८०	१८	++	+	+	...
भेड़ का दूध	१·५०	२·००	१·४१	३०	++++	+	+	+

बकरी का दूध	१·२१	१·१३	१·२१	२०	+++	+	+	+
भैंस का दूध	१·३५	२·१८	१·२४	३०	+++	+	+	+
(मांस) गोश्त, अंडा								
गाय का मांस	६·२०	२·०६	...	४३	बहुत कम	+	बहुत कम	+
भेड़ का मांस	५·९७	१·९८	...	४२	बहुत कम	+	बहुत कम	+
बकरे का मांस	७·२०	०·७५	...	३६	०	+	बहुत कम	०
सुअर	६·०५	३·१४	...	५३	०	+	०	...
Bacon रक्खा हुआ सुअर का गोश्त	५·००	१५·००	...	१५५	०	...	...	...
यकृत (जिगर)	६·११	१·७०	०·७६	४३	+++	+++	+	+
वृक्क (गुर्दा)	४·५४	१·३६	०·०६	३१	++	++	...	...
मस्तिष्क (दिमाग़)	२·९०	२·७७	...	३७	+	++	...	...
जिह्वा (ज़बान)	४·४१	५·४३	......	६७	०	+	......	......
चरबीवाली मछली	५·३२	३·७०	......	५५	+++	+	......	......
बिना चरबी की मछली	५·१५	०·२०	......	२२	......	+	......	......

मीठे पानी की मछली	५·५०	१·१५	......	३२	......	+	......	......
मुर्गी	६·७४	०·३८	......	३०	+	+	......	......
बत्तख	५·८०	२·९४	......	५०	+	+	......	......
कबूतर	६·२५	१·८७	......	४२	+	+	......	......
अंडा	३·७९	२·९७	......	४२	+	+	......	+
जान्तविक वसा (जानवरों की चर्बी)								
गाय, भेड़ की चर्बी	०·३४	२६·४०	......	२३०	+ +	.. ...	......	......
सुअर की चर्बी	......	२६·८०	......	२४१	०, या बहुत कम	....	......	......
माखन, घी	......	२३·१०	......	२०८	+++	......	......	+
कौड मछली के जिगर का तेल	......	२८·००	......	२५२	+++	बहुत कम	......	+++
मछली के जिगर का तेल	......	२८·००	......	२५२	++++	बहुत कम	......	++

वानस्पतिक तैल								
नारियल का तैल	......	२८·००	......	२५२	+	०	०	बहुत कम
तिलों का तेल	......	२८·००	......	२५२	बहुत कम	०	०	०
अलसी ,, ,,	......	२८·००	......	२५२	बहुत कम	०	०	......
मूँग फली ,,	......	२८·००	......	२५२	बहुत कम	०	०	बहुत कम
जैतून ,, ,,	......	२८·००	......	२५२	बहुत कम	०	०	......
बिनौला ,,	......	२८·००	......	२५२	बहुत कम	०	०	......
सरसों ,, ,,	......	२८·००	......	२५२	०	०	०	......
कोकोजम	......	२८·००	......	२५२	०	०	०	......
मारजरीन	......	२८·००	......	२१४	०, +	०	०	......
शर्करा, श्वेतसार								
श्वेत शर्करा	......	......	२८·३०	११३	०	०	०	......
भूरी शर्करा	......	......	२६·८९	१०८	०	०	०	......
गुड़	०.०८	......	२५·००	१००	०	बहुत कम	०	......
शहद (मधु)	०.११	......	२०·२२	८५	बहुत कम	बहुत कम	०	......

टपिओका	०·०५	०·०१	२४·८३	१००	०	०	०	......
सागू	२·१८	०·०४	२२·००	९७	०	०	०	......
साबा	०·४२	०·१६	६·२०	२८	......	+	+	......
अनाज; रोटी								
गेहूँ का आटा	३·९०	०·५५	२०·३५	१०२	+	++	०	......
मैदा	३·१४	०·३७	२१·५४	१०२	०	बहुत कम	०	......
बिना चमकाया हुआ चावल	२·३०	०·०८५	२२·३०	९९	बहुत कम	+	०	......
धुला हुआ चावल	१·७२	०·१५	२६·३४	११३	०	०	०	......
चमकाया हुआ चावल	१·७९	०·१३	२६·०९	११३	०	बहुत कम	०	......
बाजरी	२·७८	०·४६	२३·३५	१०९	+;++	++	०	......
चोलम	२·९०	१·१७	१९·७०	१०१	+	++	०	......
जौ	२·९७	०·६२	२०·६०	१००	+	++	०	......
ओट मील (जई का आटा)	३·३७	२.४३	१९.८१	११५	+	++	०	......

मक्की	२·१२	०.४८	२०.८०	९६	++	++	०	......
सुफ़ेद डवल रोटी	२.००	०.३३	१४.८०	७०	०	+	०	......
सूजी	४·२०	०·६८	१४·२०	८०	+	+++	०	......
चावल का छिलका	......	......	......	......	+	++	०	......
दाल, मटर इत्यादि								
ताज़ा चौड़ा लोविया	२·६६	०·११	६·४५	३७	+	++	++	......
ताज़ा फ्रांसीसी								
लोविया	०·५४	०·०३	१·३६	८	+	++	++	......
सूखी मटर	१·८५	०·१७	४·७५	२८	+	++	०	......
दाल	६·५०	०·९९	१६·२०	१००	+	++	०	......
चना	५·७०	१·३०	१५·३०	९६	+	++	०	......
सोया वीन (एक								
प्रकार का लोविया)	९·६०	४·७०	९·५०	११९	+	++	०	......
सूखी मेवा, बीज								
बादाम	५·२६	१५·९६	४·३०	१८२	बहुत कम	++	०	......

[illegible]	१.६३	१४.३१	७.९०	१६७	+	++	०	......
मूँगफली	७.३०	१०.९२	६.००	३५२	बहुत कम	++	०	......
अखरोट	३.८५	१०.९२	३.९६	२११	बहुत कम	+++	०	......
अलसी	६.४०	९.५०	७.६०	१४२	+,++	++	०	......
कंद, मूलियाँ इत्यादि								
आलू	०.७०	०.०४	८.१५	३६	बहुत कम	+	+,++	......
चुकंदर	०.३४	०.०३	१.७५	९	बहुत कम	+	+	......
सिलेरी	०.१७	०.०३	१.०७	५	......	+++	++	......
प्याज़	०.३७	०.०३	२.०६	१४	बहुत कम	++	+	......
लसुन	१.०२	०.०३	७.९०	४०	+	+	+,++	......
गाजर	०.२५	०.०३	२.२६	१०	+,++	++	+,++	......
लीक्स* (विलायती प्याज़)	०.७१	०.०२	२.६२	१४	+	+	++	......
पार्स्निप्स,* इस्तुफोन (एक प्रकार की मूली)	०.४८	०.१४	५.९७	२७	बहुत कम	+	+,++	......

* अँगरेज़ी

मूली	०'२८	०'०३	०'९६	५	बहुत कम	+	+	......
शलजम	०'३४	००'३	१'२५	७	बहुत कम	++	+	......
हरे पत्तों वाले साग								
ब्रुसेल्स स्प्राउट*	०'९२	०'०६	१'६१	११	+	+	++	......
करम कल्ला	०'३९	०'०३	१'२७	७	+++	++	+++	......
लेट्टूस*	०'३१	०'०६	०'५४	४	++	+++	++	......
पलाकी	०'५१	०'०६	०'८२	६	+++	+++	+++	......
और साग								
टोमाटो	०'२०	०'०३	१'२७	६	++	+++	+++	......
रूबर्ब*	०'१७	०'०२	१'०३	५	......	+	+	......
खीरा	०'१७	०'०२	०'५७	३	......	++	++	......
मीठा कद्दू	०'२८	०'०३	१'४७	७	......	+	+	......
बैंगन	०'३४	०'०९	१'४४	८	......	+	+	......
फूल गोभी	०'५४	०'०६	१'६७	९	+	+	+	......
भिंडी	०'५७	०'३३	१'७०	१२	......	+	+	......

* अँगरेज़ी

तरबूज़	०·११	०.०६	१·९०	९	......	......	+	......
पपीता	०·१६	...	०·१०	१	+	+	++	......
लीची	०·८४	०·०७	१·९०	१२	+	+	++	......
आम	०·०४	०·२२	५·२०	२३	......	......	++	......
अमरूद	०·३७	०·२०	२·२७	१२	+	+	+	......
सूखे फल								
ज़र्द आलू	१·५६	०·०९	१४·०४	६३	......	......	०	......
मुनक्का	०·४८	०·०९	११·८९	५०	......	०	०	......
खजूर	०·४५	०·०३	१९·७३	८१	......	+	०	......
अंजीर	०·५६	०·१४	१५·९९	६७	......	+	०	......
आलूबुखारा	०·८५	०·०९	११·४३	५०	......	+	०	......
किशमिश	०·६२	०·०९	१७·३२	७३	......	+	०	......
इमली	०·३९	......	८·८९	३७	......	+	+	......
अन्य चीज़ें								
मुरब्बे (जैम्स)	०·०६	......	१९·८१	७९	०	०	०	......

अध्याय ४

जल

हमारे शरीर का लग भग ७०% भाग जल से बनता है। जल ही में घुल कर भोजन हमारे शरीर में प्रवेश करता है और जल ही में घुल कर मलिन पदार्थ हमारे शरीर से बाहर आते हैं। मामूली भोजन का $\frac{५}{६}$ भाग जल होता है। जल ही से हमारे अंगों में लचक आती है; जल ही द्वारा सब पोषक पदार्थ शरीर में एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचते हैं। जल द्वारा शरीर की गर्मी सब जगह बँट जाती है और इस प्रकार शरीर का ताप स्थिर रहता है। उस के द्वारा सब तल तर रहते हैं और अंगों में आपस में रगड़ नहीं लगने पाती।

प्रति दिन शरीर में कितना जल चाहिये

सामान्यतः प्रतिदिन हम को २ सेर के लग भग जल चाहिये। इस में से कुछ तो ठोस भोजनीय पदार्थों द्वारा प्राप्त होता है, कुछ तरल चीज़ों के रूप में या जल रूप में मिलता है। गर्मी की ऋतु में बरसात और सर्दी की ऋतु की अपेक्षा अधिक जल की आवश्यकता होती है।

जल कहाँ से प्राप्त होता है

भारत वर्ष में पहाड़ी स्थानों को छोड़कर जल झीलों, नदियों और कुओं में प्राप्त होता है। पहाड़ों पर वर्षा का पानी और बरफ के पिघलने से जो पानी बनता है उस को जमा कर लेते हैं और पीने नहाने इत्यादि कामों में लाते हैं; इस जल के अतिरिक्त झरनों का पानी काम में लाया जाता है। कुछ जल वर्षा द्वारा ही प्राप्त होता है और वर्षा का जल समुद्र से आता है। समुद्र का जल वाष्प द्वारा ऊपर आसमान को चला जाता है; वहाँ बादल का रूप धारण करता है; फिर वह वर्षा द्वारा पृथिवी पर लौटता है। इसी जल से झरने बनते हैं, इसी से दरिया, इसी से कुएं और झील और तालाब। इसी जल से ओले बनते हैं और इसी से बरफ़।

वर्षा जल

यदि पीने के लिये वर्षा जल इकट्ठा करना हो तो वर्षा आरंभ होने के थोड़े दिन बाद करना चाहिये कारण यह कि जो पहला पानी पड़ता है उस में वायु की धूल मिट्टी और गंदगी रहती है। पानी को सीसे के बरतन में कभी भी न रखना चाहिये। वह पत्थर और लकड़ी की टंकी में रक्खा जा सकता है। लोहे, जस्ते इत्यादि धातों पर भी पानी का असर होता है।

सतही जल

नदियों, चश्मों, झीलों और तालाबों का पानी पृथिवी के तल या सतह (ऊपरी भाग) पर रहने के कारण सतही जल कहलाता है। सतही जल में वायु द्वारा धूल मिट्टी और अनेक प्रकार की गंदगियाँ

पड़ जाती हैं। जहाँ तक हो सके इन का पानी बिना शुद्ध किये काम में न लाना चाहिये।

नदियों में आम तौर से उस स्थान का चोड़ा (मैला) पड़ता है जहाँ से हो कर वे बहती हैं। इस कारण नदियों के पानी द्वारा वह ज़हरीला माद्दा जो एक मनुष्य के मल मूत्र द्वारा निकलता है दूसरे मनुष्य के शरीर में जल द्वारा सहज में पहुँच सकता है (हैज़ा और टाइफ़ौयड अक्सर इस प्रकार फैले हैं)।

झीलों का पानी आम तौर से कोमल होता है और उस में गंदगी भी कम होती है। यूरोप, अमरीका के बड़े बड़े शहरों में अक्सर झीलों से पानी प्राप्त किया जाता है।

भूमि जल

वह जल है जो भूमि के भीतर से निकलता है जैसे कुएँ का। भारत वर्ष में आम तौर से कुओं से ही पानी निकाला जाता है, भूमि जल बिना कुआँ खोदे भी प्राप्त किया जाता है जैसे ज़मीन में नल गाड़ कर पंप द्वारा। भूमि जल बहुधा अच्छा होता है विशेषकर जब कि वह कुआँ गहरा हो और उस में ऊपर से गंदगी न जाती हो।

यह भूमि जल रेतीली या रेत और बजरी मिली हुई ज़मीन से, या बजरीली ज़मीन से या चूने की तह से निकलता है। रेतीली और रेत और बजरी मिली हुई तह से जो पानी प्राप्त होता है वह आम तौर से साफ़ होता है और उस में गंदगी भी नहीं होती; पथरीली या बजरीली ज़मीन का पानी भी अच्छा होता है। चूने की तह से जो पानी आता है वह हमेशा अच्छा नहीं होता क्योंकि वह रेतीली ज़मीन की भाँति छना हुआ नहीं होता। इस पानी में कभी कभी गंदगियाँ रहती हैं।

जल कहाँ से प्राप्त होता है

भारत वर्ष में पहाड़ी स्थानों को छोड़कर जल झीलों, नदियों और कुओं से प्राप्त होता है। पहाड़ों पर वर्षा का पानी और बरफ़ के पिघलने से जो पानी बनता है उस को जमा कर लेते हैं और पीने नहाने इत्यादि कामों में लाते हैं; इस जल के अतिरिक्त झरनों का पानी काम में लाया जाता है। कुल जल वर्षा द्वारा ही प्राप्त होता है और वर्षा का जल समुद्र से आता है। समुद्र का जल वाष्प द्वारा ऊपर आसमान को चला जाता है; वहाँ बादल का रूप धारण करता है; फिर यह वर्षा द्वारा पृथिवी पर लौटता है। इसी जल से झरने बनते हैं, इसी से दरिया, इसी से कुएं और झील और तालाब। इसी जल से ओले बनते हैं और इसी से बरफ़।

वर्षा जल

यदि पीने के लिये वर्षा जल इकट्ठा करना हो तो वर्षा आरंभ होने के थोड़े दिन बाद करना चाहिये कारण यह कि जो पहला पानी पड़ता है उस में वायु की धूल मिट्टी और गंदगी रहती है। पानी को सीसे के बरतन में कभी भी न रखना चाहिये। वह पत्थर और लकड़ी की टंकी में रक्खा जा सकता है। लोहे, जस्ते इत्यादि धातों पर भी पानी का असर होता है।

सतही जल

नदियों, चश्मों, झीलों और तालाबों का पानी पृथिवी के तल या सतह (ऊपरी भाग) पर रहने के कारण सतही जल कहलाता है। सतही जल में वायु द्वारा धूल मिट्टी और अनेक प्रकार की गंदगियाँ

पड़ जाती हैं। जहाँ तक हो सके इन का पानी विना शुद्ध किये काम में न लाना चाहिये।

नदियों में आम तौर से उस स्थान का चोड़ा (मैला) पड़ता है जहाँ से हो कर वे बहती हैं। इस कारण नदियों के पानी द्वारा वह ज़हरीला माद्दा जो एक मनुष्य के मल मूत्र द्वारा निकलता है दूसरे मनुष्य के शरीर में जल द्वारा सहज में पहुँच सकता है (हैज़ा और टायफ़ॉयड अक्सर इस प्रकार फैले हैं)।

झीलों का पानी आम तौर से कोमल होता है और उस में गंदगी भी कम होती है। यूरोप, अमरीका के बड़े बड़े शहरों में अकसर झीलों से पानी प्राप्त किया जाता है।

भूमि जल

वह जल है जो भूमि के भीतर से निकलता है जैसे कुएँ का। भारत वर्ष में आम तौर से कुओं से ही पानी निकाला जाता है, भूमि जल विना कुआँ खोदे भी प्राप्त किया जाता है जैसे ज़मीन में नल गाड़ कर पंप द्वारा। भूमि जल बहुधा अच्छा होता है विशेषकर जब कि वह कुआँ गहरा हो और उस में ऊपर से गंदगी न जाती हो।

यह भूमि जल रेतीली या रेत और बजरी मिली हुई ज़मीन से, या बजरीली ज़मीन से या चूने की तह से निकलता है। रेतीली और रेत और बजरी मिली हुई तह से जो पानी प्राप्त होता है वह आम तौर से साफ़ होता है और उस में गंदगी भी नहीं होती; पथरीली या बजरीली ज़मीन का पानी भी अच्छा होता है। चूने की तह से जो पानी आता है वह हमेशा अच्छा नहीं होता क्योंकि वह रेतीली ज़मीन की भाँति छना हुआ नहीं होता। इस पानी में कभी कभी गंदगियाँ रहती हैं।

जल की परीक्षा

१. गंध—अच्छे जल में किसी विशेप प्रकार की गंध न आनी चाहिये। सतही जलों में (उथले कुएँ, तालाब) गंध अकसर होती है; मुख्य कारण उस में अनेक प्रकार की छोटी छोटी वनस्पतियों का होना है। यदि गहरे कुओं के पानी में गंध आवे तो कुओं को साफ कराना चाहिये; शायद कोई पौधे पड़े हों या जानवर मर कर गिर गये हों।

२. स्वाद—अच्छे जल में कोई विशेप स्वाद भी नहीं होता। वर्पा-जल फीका होता है। स्वाद का कारण आम तौर से वह खनिज लवण होते हैं जो उस में घुले रहते हैं। कुछ समय एक जगह रहने के पश्चात् मनुष्य उस जगह के जल के ज़ायके का आदी हो जाता है और उस को वही जल पसंद आता है।

३. रंग—शुद्ध जल में कोई विशेप प्रकार का रंग भी नहीं होता कभी कभी जल का रंग हरा, भूरा, पीला सा होता है। सतही जल में सूखे पत्तों, छाल, जड़, इत्यादि का रंग होता है। कुओं का पानी आम तौर से निरंगा होता है। यदि पानी निकालने के पश्चात् रंगीला हो जावे अर्थात् कुछ पीलाहट लिये भूरे रंग का हो जावे तो समझना चाहिये उस में लोहा है।

४. मैलापन—पानी साफ और पारदर्शक होना चाहिये। मिट्टी होने से मैला और धुँधला हो जाता है। यदि थोड़ी देर रख दिया जावे तो बरतन की तली में मिट्टी बैठ जावेगी। नदियों का पानी आम तौर से गँदला होता है। यदि पानी में ३० ग्रेन (२ मासे) प्रति [illegible] (५ सेर) या इस से अधिक गाद हो तो वह पानी पीने योग्य नहीं रहता।

५. ठोस पदार्थ—पानी में कई प्रकार के लवण घुले रहते हैं। यदि पानी उबाला जावे यहाँ तक कि सब वाष्प बन कर उड़ जावे तो

बरतन की तली में कुल तलछट रहेगी। इस तलछट में कुछ खनिज पदार्थ होता है और कुछ जान्तविक। तलछट को जलाने से जान्तविक पदार्थ जल जावेगा, खनिज शेष रहेगा। ठोस पदार्थ किसी जल में कम होते हैं किसी में अधिक। यदि खनिज पदार्थ १०००००० भाग में ५०० भी हों तो भी अधिक हैं।

६. **कठोरपन और कोमलपन**—यदि जल में साबुन से शीघ्र झाग न उठें अर्थात् अधिक साबुन खर्च करना पड़े तो यह पानी कठोर कहा जाता है; जिस जल में झाग शीघ्र उठते हैं वह कोमल है। कठोर पानी में भोजन विशेष कर दालें शीघ्र नहीं पकतीं। त्वचा पर भी उस का प्रभाव अच्छा नहीं पड़ता। बरतनों में जिस में यह पानी उबाला जाता है (जैसे अस्पतालों के औज़ार उबालने वाले बरतन) मिट्टी की तहें जम जाती हैं। कठोरपन कैलशियम (खटिक) और मगनेशियम के लवणों के घुले रहने से उत्पन्न होती है। यदि पानी को उबालने से कठोरपन जाता रहे तो कहा जाता है कि कठोरपन अनस्थायी है; यदि न जावे तो वह स्थायी है। **अनस्थायी कठोरपन** का कारण उस जल में कर्बनद्विओपिद् (कओ$_2$) का होना है। कओ$_2$ और चूने (और मगनिशियम) के योग से चूने और मगनिशियम के घुलनशील लवण बन जाते हैं। जब उस पानी को जिस में इस प्रकार के घुलनशील लवण हैं उबालते हैं तो कुछ कओ$_2$ निकल जाती है; घुलनशील लवणों में से कओ$_2$ के पृथक हो जाने से चूने और मगनिशियम के अनघुल लवण बन जाते हैं; ये लवण पानी में नीचे बैठ जाते हैं; पानी कोमल हो जाता है।*

* कैलशियम बाइ कार्बोनेट घुलनशील लवण है। उस में से यदि कुछ कर्बन द्विओपिद् निकल जावे तो उस से कैलशियम कार्बोनेट बन

स्थायी कठोरपन कैलशियम और मगनिशियम के क्लोराइड्स और सलफेट्स के कारण होता है। उबालने से ये लवण ज्यों के त्यों रहते हैं। अनस्थायी कठोरपन जल में बुझा हुआ चूना मिलाने से भी कम हो जाता है। घुलनशील कैलशियम बाइकार्बोनेट में से थोड़ी कओ₂ बुझे हुए चूने से मिल जाती है और दोनों के योग से अनघुल कैलशियम कार्बोनेट बन जाता है; घुलनशील बाइकार्बोनेट में से कुछ कओ₂ के निकल जाने से अनघुल कैलशियम कार्बोनेट बन जाता है। स्थायी कठोरपन जो कैलशियम और मगनेशियम के सलफेट्स के कारण होती है पानी में सोडियम कार्बोनेट के मिलाने से कम हो जाती है।

७. प्रतिक्रिया—बहुत से जलों की प्रतिक्रिया कुछ क्षारीय होती है। जहाँ कोयले की खानें हैं वहाँ जल की प्रतिक्रिया अक्सर अम्ल होती है।

८. अन्य लवण—जल में सोडियम क्लोराइड (साधारण नमक) रहता है कैलशियम और मगनेशियम क्लोराइड्स भी अकसर रहते हैं। इनका अधिक होना पानी का दूषित होना बतलाता है; यह गंदगी ज्यादातर पेशाब द्वारा आती है। सभी जलों में थोड़ा सा लोहा होता है यदि १०००००० भाग मे ०·५ भाग से अधिक हो तो पानी अच्छा नहीं है। सीसे का पानी में होना ठीक नहीं; यदि १०००००० भाग में ०·१ भाग से अधिक हो तो पानी त्याज्य है।

जावेगा; यह अनघुल है और यह पानी में नीचे बैठ जाता है और बरतनों पर जम भी जाता है। कैलशियम कार्बोनेट के दस लाख भाग में १३ भाग और मगनेशियम कार्बोनेट के १०६ भाग ठंडे पाने में घुल सकते हैं।

९. जान्तविक माद्दा—यह पौधों और प्राणियों द्वारा पानी में मिलता है। इस प्रकार के पदार्थ में नत्रजन (नोपजन) अवश्य रहती है। परीक्षा से यदि जल में अधिक नत्रजन पाई जावे तो पानी अच्छा नहीं है। पानी में अमोनिया और नत्रजन वाले और लवण जैसे नोपित (नाइट्राइट्स) का होना भी ठीक नहीं क्योंकि वे इस बात को बतलाते हैं कि पानी में जान्तविक माद्दा—जैसे मल, मूत्र और कीटाणु मिले हैं।

१०. अणुवीक्षण द्वारा देखने से जल में भाँति भाँति के कीटाणु भी पाये जाते हैं। एक घन सेन्टी मीटर जल में (१५ बूंद) में १०० से अधिक न होने चाहिये। पानी में "कोलन बैसिलस" * (यह एक प्रकार के शलाकाणु हैं जो आँतों में पाये जाते हैं और मल में रहते हैं) का होना अत्यंत बुरा है; उन का न होना पानी की पवित्रता को दर्शाता है जहाँ तक कि कीटाणुओं का सम्बन्ध है। जब पानी में यह कीटाणु न हों तो उस में टायफोयड्, पेचिश इत्यादि के रोगाणुओं के होने की अधिक संभावना नहीं है।

जल शोधने की कुछ विधियाँ

१. गदलापन दूर करना। पानी को थोड़ी देर बरतन में रखने से गाद नीचे बैठ जाती है; फिर उस को निथारने से ऊपर का पानी साफ़ निकलता है। पानी को साफ कपड़े में छानने से भी गाद कम हो जाती है। मैले कपड़े (जैसे धोती) और नाक पोंछने वाले रूमाल और पसीने पोंछने वाले अंगोछे में पानी को छानने से वह और भी दूषित हो जाता है।

---

* Colon bacillus.

२. कई प्रकार के वरेलू छनने भी बने हैं। वैज्ञानिकों का न्याय है कि साधारण मनुष्य इन से ठीक काम नहीं ले सकते और धोखा होने का डर रहता है। इन छनों के साथ जो हिदायत आवें उन पर अमल करना चाहिये।

३. सब से सहल विधि पानी को शुद्ध करने को उस को उबाल कर पीना है। पहले निथार कर या कपड़े में छान कर धूल मिट्टी निकाल दो: फिर पानी को उबाल कर रख दो। गर्मियों में घड़ों में रख कर ठंढा करो। ऐसे जल में रोगाणु नहीं रहने पाते।

४. उबालना कठिन हो तो "क्लोरीन" * द्वारा पानी को शुद्ध करो। आज कल "ई-सी E.C", "क्लोरोडक Chlorodak" क्लोरोजन Chlorogen" नामक क्लोरीन पैदा करने की कई चीजें बिकती हैं। कुछ बूँदों के पानी में मिलाने से पानी रोगाणु रहित हो जाता है। ब्लीचिंग पौडर (Bleaching Powder) द्वारा पानी यों पवित्र किया जाता है:—

(१) ब्लीचिंग पौडर आध चम्मच चाय का (२ माशे)
जल १ पाइंट (१० छटांक)

(२) उपरोक्त घोल की २६ बूँद १ गैलन पानी में या ९ बूँद दो पाइंट (१½ सेर) पानी में डालो। १५ मिनट पश्चात् पानी शुद्ध हो जावेगा और पिया जा सकता है।

बड़े बड़े शहरों में जहाँ नल लगे हैं वहाँ पानी रेत और बजरी के बड़े बड़े छननों में छाना जाता है और फिर उस में क्लोरिन गैस बड़े वेग के साथ प्रवेश की जाती है। दस लाख गैलन पानी केवल ०.३ पौंड क्लोरिन से शोधा जा सकता है या यह कहो कि एक भाग क्लोरिन ३० लाख भाग जल के लिये काफ़ी है।

---

* Chlorine.

५. पोटाश पर मंगनेट भी पानी को शोधने के लिये अच्छी चीज़ है। ½ भाग से १ लाख भाग पानी के ९८% कीटाणु मर जाते हैं।

६. फिटकरी द्वारा भी पानी साफ़ हो जाता है। प्रति गैलन (५ सेर) १ से तीन ग्रेन फिटकरी काफ़ी है। पानी कुछ देर के लिये आम तौर से कुछ घन्टों के लिये रख दिया जाता है। सब कदूरत (गाद) जिस में कीटाणु भी रहते हैं नीचे बैठ जाती है। पानी को निथारने की आवश्यकता है।

कुआँ

कुएँ दो प्रकार के होते हैं—

१. जो खोदे जाते हैं और रस्सी द्वारा बरतनों से पानी ऊपर निकाला जाता है।

२. नल ज़मीन में गाड़ दिया जाता है और पम्प द्वारा पानी ऊपर खींचा जाता है।

खुदा हुआ कुआँ

१. जिस कुएँ से पानी पीने के लिये लिया जावे उस को पक्का अर्थात् ईंट, चूने, पत्थर और कंकरीट से बनवाना चाहिये। ऊपर का क़रीब ६ फुट का भाग हो सके तो कंकरीट का होना चाहिये ताकि ऊपर से सतही मैले की गंदगी उस में न पहुँचने पावे।

२. कुएँ के पास नाली और पाख़ाना न होना चाहिये। पेशाब, पाख़ाने की नाली कुएँ से ५० फुट से कम दूर न होनी चाहिये १०० फुट हो तो अच्छा है। यदि किसी कारण नाली कुएँ से दूर न बनायी जा सके तो उस को ईंट और सीमेंट और कंकरीट से बनाना चाहिये ताकि उस में से रिस कर ज़मीन में सोख कर पानी और गंदगी कुएँ में न पहुँचे।

३. कुएँ का प्लेटफार्म या चौकी ज़मीन से दो फुट ऊँची होनी चाहिये और फिर कुएँ की मेंढ कम से कम १ फुट ऊँची रहनी चाहिये ताकि ऊपर से पानी की छींटे उस के अन्दर न जा सकें।

चित्र ५१ ख़राब कुआँ
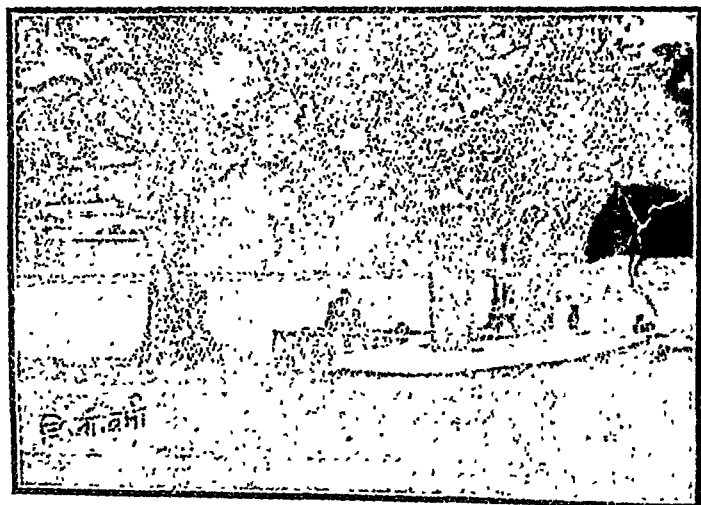
यह कुआँ सीतापुर में है; सड़क की धूल मिट्टी इस में गिरती है; पास ही एक नाला है; ऊपर छतरी नहीं; एक बड़ा वृक्ष उसके पास है

४. कुएँ के पास पीपल, बरगद, या और किसी प्रकार के वृक्ष न लगाने चाहियें। वृक्षों के पत्ते पानी में गिरते हैं और वहाँ सड़ कर पानी को ख़राब करते हैं। (चित्र ५१)

५. कुएँ के ऊपर सायबान या छत्री अवश्य होनी चाहिये जिस से ऊपर से गिरने वाली चीज़ों का बचाव रहे। (चित्र ५२)

चित्र ५२ उत्तम कुआँ

इस कुएँ में सभी बातें अच्छी हैं। ऊँची चौकी, मेंढ, ऊपर छतरी, पानी खींचने के लिए गरारी (घिड्डी); नहाने का बन्दोबस्त कुएँ के नीचे है; पानी की टंकी भी रक्खी है; इस में से नहाने के लिए पानी निकाला जा सकता है।

६. पानी खींचने के लिये लोहे या लकड़ी की घिड्डी होनी चाहिये। (चित्र ५१)

७. कुएँ के प्लेटफ़ार्म या चबूतरे पर कोई नहाने न पावे। नीचे उतर कर नहाना चाहिये या पानी एक नाँद या हौज़ या टंकी में भरा हो जिस में एक नल लगा हो। नल खोलने से नहाने के लिये पानी मिल सकेगा। (चित्र ५२)

८. मैले कपड़े या मिट्टी से माँजे हुए बरतनों को कुएँ में न फाँसना चाहिये।

९. कुएँ में मच्छर न पैदा होने पावें। मच्छर के लहरवों की शकल के लिये देखो अध्याय ११। यदि पैदा हो जावें तो पेट्रोल डाल कर उन को मारना चाहिये और फिर पानी निकलवा कर कुएँ को साफ़ करा देना चाहिये।

१०. यदि पानी में किसी प्रकार की गंध आवे तो उसको उंघवा देना चाहिये।

११. कम से कम साल में एक बार आधी छटाँक पोटाश परमैंग-नेट कुएँ में डाल देना चाहिये। गर्मी के मौसम में तो पंद्रहवें दिन डालना अच्छा है। इस के चौबीस घंटे बाद पानी पिया जा सकता है; हलका गुलाबी रंग होने से कोई हानि नहीं।

नल या पम्प वाला कुआँ

यह दो प्रकार का हो सकता है—

(१) नल ज़मीन में गाड़ा जाता है और पम्प द्वारा पानी ऊपर निकाला जाता है (चित्र ५३)

(२) पहले कुँआ खोदा जाता और उसमें नल लगा दिया जावे

और बजाय रस्सी डोल के पानी पम्प द्वारा निकाला जावे। पम्प द्वारा पानी आसानी से खिँचता है (चित्र ५४)

चित्र ५३ — गड़ा हुआ नल

चित्र ५४ — कुएँ में दो नल लगा दिये गये
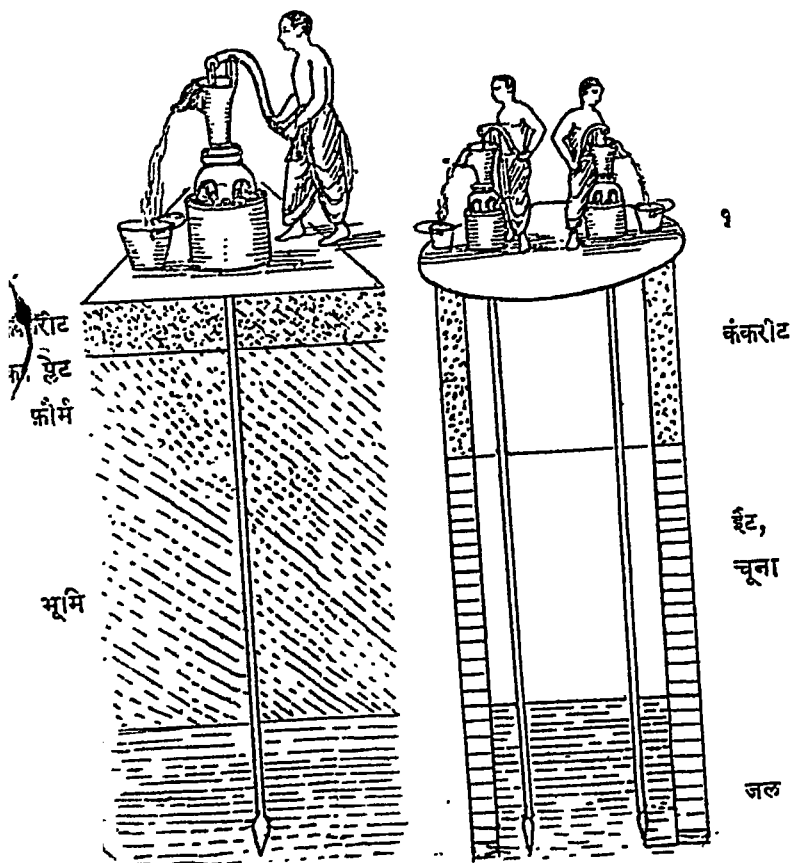
पहला तरीक़ा अर्थात् ज़मीन में नल गड़वाकर पानी निकालना

मामूली कुएँ की अपेक्षा बहुत सस्ता पड़ता है। पानी के दूषित होने का अन्देशा भी नहीं रहता। हर एक व्यक्ति अपने घर में नल गड़वा सकता है।

जब बहुत आदमियों को पानी चाहिये तो दूसरा तरीक़ा अच्छा है। कुँआ खुदाया जावे और पक्का बनाया जावे; फिर उसमें दो या तीन या चार नल लगा दिये जावें और कुँआ ऊपर से पाट दिया जावे। एक समय में कई आदमी पानी निकाल सकते हैं और ऊपर से पानी के खराब होने की कोई संभावना भी नहीं रहती। यदि आवश्यकता हो तो थोड़े से खर्च से कुँआ शीघ्र साफ़ हो सकता है। रस्सी और बरतनों के कुएँ में बार बार फांसने से जो गंदगी पानी में पड़ती है वह नहीं पड़ने पाती।

बम्बा या नल

बड़े बड़े नगरों में जन संख्या को घर बैठे नल द्वारा पानी पहुँचाने का बन्दोबस्त म्युनिसिपलटी की ओर से होता है; यह संस्था प्रति मास कुछ टेक्स पानी लेनेवालों से वसूल कर लेती है। पानी किसी दरिया से, या झील से या बड़े बड़े कुओं से लिया जाता है और बड़े बड़े हौज़ों में भरा जाता है और अनेक विधियों से साफ़ किया जाता है; जैसे बालू और बजरी के छन्नों में से छानकर उसमें क्लोरिन गैस प्रवेश करायी जाती है; फिर ऊँचे हौज़ों में चढ़ाया जाता है और वहाँ से बड़े बड़े नलों द्वारा आवश्यकतानुसार शहर में पहुँचाया जाता है। घर बैठे बिना कुएँ, और रस्सी डोल के जब चाहे पानी ले लीजिये। कुएँ से पानी खींचनेवाले की भी ज़रूरत नहीं।

नलों के दोष

१. पराधीनता। जब प्रबन्ध में गड़बड़ होती है तो बड़ी परेशानी उठानी पड़ती है। जिसके हाथ में प्रबन्ध है वह जब चाहे नगर निवासियों को नाकों चने चबा दे।

२. यदि असावधानी से हौज़ का पानी दूषित हो जावे जो एक कठिन या असंभव बात नहीं है तो टायफौयड इत्यादि रोग शहर में आसानी से फैल सकते हैं (और फैले हैं)।

३. नल से गरमियों में गरम और जाड़ों में ठंडा पानी निकलता है। लखनऊ, आगरा, अलाहाबाद इत्यादि शहरों में गरमियों में बिना बरफ डाले पानी पीना असंभव है। बरफ का प्रयोग अच्छी बात नहीं है; उसमें खर्च भी होता है। गरमियों में शाम के वक्त तो जलता हुआ पानी निकलता है, नहाने से न प्रातःकाल तबियत खुश होती है न सायंकाल। नहाने के लिये घड़ों या मटकों में भरकर पानी ठंडा करना एक बड़े कुटुम्ब वाले के लिये कठिन काम है। जाड़ों में जब गरम पानी की आवश्यकता होती है पानी ठंडा निकलता है, जिससे बहुत से मनुष्यों को नहाने में तकलीफ मालूम होती है। कुएँ का पानी ऐसा होता है कि नहाना बुरा नहीं मालूम होता। नल के पानी को गरम करने की आवश्यकता है। गरम पानी महँगा पड़ने के अतिरिक्त स्वास्थ्य के लिये भी अच्छा नहीं।

४. भारतवर्ष में विशेषकर संयुक्त प्रान्त में जहाँ जहाँ नल लगे हैं वहाँ पानी कम मिलने की शिकायतें अक्सर रहती हैं। जिस मौसम में (अर्थात् गरमियों में) पानी खूब मिलना चाहिये उसी मौसम में कम मिलता है। कम पानी मिलने से जन संख्या को बेहद कष्ट उठाना पड़ता है; कुएँ बंद कर दिये जाते हैं, इस कारण लोग

बेबसी की हालत में हो जाते हैं; कुछ बनाये नहीं बनता । नालियाँ और पाखाने गंदे रहते हैं जिस ओर देखिये गंदगी ही गंदगी दिखाई देती है । इसलिये नलों से बजाय लाभ के हानि होती है । गरमियों में ही आग भी ज़्यादा लगा करती है; आग बुझाने को भी कभी कभी पानी नहीं मिलता । लखनऊ में मेरे घर में १९३१ में आग लग गई; बम्बे में बूंद भर भी पानी न निकला; घर में कुँआ था, पानी खींचकर फ़ौरन आग बुझादी गयी; यदि बम्बे के सहारे रहता या आग बुझानेवाले अंजन का इन्तज़ार करता तो पैसे भर का भी माल न बचता । जिस शहर में नल द्वारा पानी देने का विचार हो तो वहाँ सब कुएँ बंद न करने चाहियें; भारतवर्ष गरम देश है यहाँ ये बातें वैसी हो नहीं हो सकतीं जैसी ठंडे देशों में; यहाँ अधिक पानी की आवश्यकता है; केवल बम्बे से ही काम नहीं चल सकता ।

५. कुएँ से पानी खींचना एक प्रकार का व्यायाम है; अपने सुख के लिये कोई परिश्रम का काम करने में शरम नहीं होनी चाहिये । कुओं से बहुत से मनुष्यों को काम मिलता है; अर्थात् नगर में बेकारी कम होती है । नलों द्वारा पानी पहुँचाने के लिये मशीनों की आवश्यकता है जो भारतवर्ष में नहीं बनतीं । जो लोग पहले कुओं से पानी खींचकर अपना निर्वाह करते थे वह लोग आज कल स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाले पेशे अख़्तियार करते हैं; जितने चाट, खोंचे और मलाई का बरफ़, पान, तम्बाकू, सिग्रेट बेचने वाले हैं उन में से अकसर कहार लोग हैं ; चाट और मलाई का बरफ़, पान तम्बाकू इत्यादि स्वास्थ्य बिगाड़ने वाली चीज़ें हैं ।

नलों के फ़ायदे

१. यदि प्रबन्ध अच्छा है और पानी काफ़ी है और पानी को साफ़ करने में कोई कसर नहीं रक्खी जाती और नलों का प्रबन्ध का भार

हमारे ऊपर ही है अर्थात् हम उनके कारण पराधीन नहीं हैं तो वे रोग जो आम तौर से पानी द्वारा फैलते हैं न फैलेंगे। यदि खर्च का ख्याल न किया जावे तो ऐसा बन्दोबस्त किया जा सकता है (नलों के चारों ओर उष्णता का कुचालक लगाने से) कि न गरमियों में नल का पानी अधिक गरम हो और न सरदियों में अधिक सर्द। इससे अधिक गरम और अधिक ठंडे होने का दोष जाता रहेगा।

२. जब आग लग जाती है और नलों का प्रबन्ध ठीक है अर्थात् पानी की कमी नहीं और हर समय पानी मिलता है तो आग बुझाने में आसानी होती है।

३. यदि पानी काफ़ी है तो सड़कों पर पानी छिड़कने और नालियों और नालों को धोने में बड़ी आसानी रहती है। जहाँ नल हैं वहा अपने आप धुलने वाले पाख़ाने भी बनाये जा सकते हैं जिससे मेहतरों के नख़रे कम हो जाते हैं; जब मेहतरों के लिये काम ही न रहेगा तो अछूतों की संख्या अपने आप कम हो जावेगी।

नलों और कुओं के विषय में हमारी सम्मति

१. जहाँ धन की कमी न हो वहाँ नलों का बन्दोबस्त करना चाहिये परन्तु नलों के अलावा शहर में कुछ बड़े बड़े कुएँ भी रहने चाहियें और इन कुओं को साफ़ रखने का प्रबन्ध भी रहना चाहिये (देखो कुओं सम्बन्धी नियम) ताकि जब ज़रूरत हो इन कुओं का पानी काम में आवे; जो लोग चाहें इनका पानी रोज़ काम में लावें। इनके अलावा कुछ नल वाले कुएँ भी रहने चाहियें। केवल नलों का ही होना अच्छा नहीं है इससे अत्यन्त हानि होती है।

२. जहाँ नल न हो, वहाँ हर एक मुहल्ले में बड़े बड़े कुएँ होने चाहियें; ये कुएँ मुमकिन हो तो ऊपर से पाट दिये जावें और

उनमें नल लगा दिये जावें (हैंड पम्प)। हर एक घर में कुआँ रखने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह कुँआ आम तौर से पाखाने से काफ़ी दूरी पर नहीं हो सकता और पानी कम खिचने के कारण हमेशा साफ़ नहीं रक्खा जा सकता। यदि आवश्यकता हो तो घरों में हैंड पम्प लगाया जा सकता है।

संक्षेप—सब से अच्छा बन्दोबस्त इस प्रकार है—

१. जो लोग चाहें वे अपने घरों में गाड़ने वाले नल (हैंड पम्प) लगावें।

२. बाज़ारों और मोहल्लों में बड़े बड़े कुएँ होने चाहिये। ये कुएँ चाहे खुले हों और चाहे पटे हों और उन में नल लगा दिये जावें।

३. म्युनिसिपलटी की ओर से नल लगे हों।

मिश्रित बन्दोबस्त से ही भारतवर्ष जैसे गर्म देश की आवश्यकता दूर हो सकती है। इस विधि से परावलम्बन भी नहीं रहता ; बरफ़ का खर्च भी कम होगा।

भोजन और जल के अतिरिक्त खाने पीने की और चीज़ें

इस संसार के दुःखों और कष्टों को थोड़ी देर के लिये भूल जाने के लिये मनुष्य सदा से ऐसी चीज़ों का प्रयोग करता रहा है कि जिनका उसके मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव पड़े कि या तो उसको नींद आने, या वह उत्तेजित हो, या दर्द कम मालूम हो, या वह कष्ट और दुःख को भूल जावे या ऐसा मालूम हो कि उसकी थकान कम हो गई है इत्यादि।

जिन चीज़ों का प्रयोग आम तौर से आज कल होता है वे ये हैं—

मदिरा, ताड़ी, भंग और भंग से बनी हुई चीज़ें (गाँजा, चरस), अफ़ीम, कोकीन, तम्बाकू, क़हवा, कोको, चाय।

चित्र ५५ शराब घर का तमाशा

जो लोग इन चीज़ों का प्रयोग करते हैं उन में से अधिकतर तो ऐसे हैं कि वे जानते हैं कि ये चीज़ें बुरी हैं परन्तु आदत पड़ जाने के कारण वे उन को छोड़ नहीं सकते। बहुत से अक़ल के

अंधे गाँठ के पूरे ऐसे हैं कि वे उन के नुक़सान को मानने को तैयार ही नहीं उन को इन चीज़ों में फ़ायदा ही नज़र आता है; नुक़सान कम।

चित्र ५६ दारू (मदिरा) की बदौलत

मदिरा

में ख़ास चीज़ होती है 'अलकोहल, (Alcohol)। मदिरा अनेक चीज़ों से बनाई जाती है। महुवा, गन्ना, अंगूर, जौ ये चार चीज़ें आम तौर से काम में आती हैं। ये चीज़ें सड़ाई जाती हैं फिर भपके द्वारा उन से शराब खींची जाती है।

अलकोहल* के विषय मे वैज्ञानिकों की राय

२४ घन्टे में मनुष्य १½ औंस से अधिक अलकोहल नहीं पचा सकता (यह जब कि वह पानी द्वारा खूब हलका करके दिया जावे)। इस से अधिक उस को कभी न कभी हानि अवश्य पहुँचा-वेगा। प्रोफ़ेसर रोज़ेनौ (Prof. Rosenau) उस के विषय में यों लिखते हैं—

"अलकोहल उन चीज़ों में से है कि जिन की आदत पड़ जाया करती है। उस के प्रयोग से हमारी रोगनाशक शक्ति घटती है और

---

* रेक्टी फाइड स्पृट्स में	९० %	अलकोहल होता है
ब्रांडी	" ४०-७० "	"
रम	" ४०-५४ "	"
जिन	" २५-५० "	"
व्हिस्की	" ४०-५४ "	"
पोर्ट	" १५-२५ "	"
शेरी	" १५-२० "	"
क्लारेट, शेम्पेन	" ९-१२ "	"
बीअर, स्टौट	" ५- ९ "	"
हलकी बीअर	" २- ५ "	"

चित्र ५७ भंगड़ी भाँग घोट रहे हैं। ताड़ी वाला ताड़ी जमा कर रहा है।

जब महानन्द सिन्धु की लहरों में पहुँचे

आयु कम होती है। वह हमारे सामर्थ्य को घटाता है और दरिद्रता को बढ़ाता है। उस के द्वारा जुर्म (अपराध) बढ़ते हैं और आकस्मिक चोटों की संख्या ज़्यादा होती है। अलकोहल काम, क्रोध, लोभादि को बढ़ाता है और स्वावलम्ब को घटाता है। उस के प्रयोग से दुर्वासनायें अधिक होती हैं। वह ज़नाकारी (वेश्यागमन) से होने वाले रोगों का एक बड़ा भारी सहायक कारण है। अलकोहल समाज की उन्नति में बाधक होता है और फ़ज़ूल ख़र्ची को बढ़ाता है। बजाय उत्तेजक होने के वह वास्तव में सुस्ती लाता है। उस की पोषक शक्ति भी बहुत नहीं है। परश्रिम करने में सहायता देने के लिये उस का प्रयोग करना अंगव्यवहार विद्या के विरुद्ध है। वह वात तंतु (दिमाग़) पर ज़हरीला असर डालता है। थोड़ी मात्रा से भी विचार शक्ति मंद हो जाती है, इच्छा, बल घटता है और हमारी सहनशीलता कम हो जाती है; अर्थात् मन की ऊँची क्रियाएँ सब मंद हो जाती हैं।" ईसाई देशों में अलकोहल पागलपन का एक मुख्य कारण है

भंग, अफ़ीम, कोकीन, तम्बाकू

ये सब चीज़ें स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाली हैं और इसलिये सर्वथा त्याज्य हैं। भारतवर्ष में भंग पागलपन का एक मुख्य कारण है। भंग और तम्बाकू दृष्टि को ख़राब करते हैं। तम्बाकू के धुएँ में एक बड़ा भयानक विष होता है जिसे निकोटीन कहते हैं। इस का कुछ न कुछ अंश शरीर में अवश्य पहुँचता है और हानि पहुँचाता है।

कोको, कौफ़ी, चाय

ये सब उत्तेजक हैं। हमारी राय में इन का प्रयोग केवल औषधि के तौर पर जायज़ है। स्वस्थ मनुष्य को इन के पीने की आवश्यकता नहीं। भारतवर्ष में तो इन चीज़ों के पीने की किसी मौसम में भी

आवश्यकता नहीं है। यदि कभी किसी कारण बहुत मेहनत करना ज़रूरी हो तो इन चीज़ों का आरज़ी प्रयोग किया जा सकता है। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि ईसाई सभ्यता (यूरोप, अमरीका) वालों में जो आहारपथ का 'कैन्सर' नामक घातक रोग होता है उसका सहायक कारण इन चीज़ों का प्रयोग है। ये चीज़ें हमेशा खूब गर्म पी जाती हैं और अधिक गर्मी आहारपथ की इलैस्टिक कला को हानि पहुँचाती है और इस हानि पहुँचे स्थान पर कैन्सर अपना क़ब्ज़ा जमाता है।

काफ़ी* के अधिक प्रयोग से बंध्यता भी उत्पन्न होती है अर्थात सन्तान कम उत्पन्न होती हैं (गर्भ नहीं ठहरता)।

चाय बनाने की ठीक विधि

भारतवासी चाय का उचित विधि से पीना नहीं जानते। बहुत से पश्चिमी लोग भी नहीं जानते। चाय में एक चीज़ होती है जिसे कहते हैं "टैनिन Tannin" यह क़ाबिज़ होती है और पाचन शक्ति को हानि पहुँचाती है। जितनी देर चाय पानी में पकाई जावेगी उतनी ही अधिक टैनिन पानी में घुलेगी। ठीक तरीक़ा चाय बनाने का यह है—पानी उबालो, फिर उस में चाय भिगो दो। दो मिनट बाद उस को छान लो। जितनी उमदा चीज़ें हैं वे पानी में घुल जावेंगी; हानिकारक चीज़ें दो मिनट में पत्तों में से न घुलने पावेंगी। अब इस घोल में ज़रा सा दूध मिलाओ। दूध से जो कुछ टैनिन है वह नीचे बैठ जावेगी केतली में जो पत्ते बचे उनको फेंक दो। लालच में आकर उनको लोग दूसरी बार उबालते हैं। रेल पर जो हिन्दू या मुसलमान चाय वाले फिरते हैं या बाज़ार में जो एक पैसे में एक या दो प्याली बेचते हैं वह चाय हरगिज़ पीने क़ाबिल नहीं।

* "The Medical Press", September 25, 1929 page 249.

मसाले

थोड़ी मात्रा में (अर्थात् जिससे मुँह न जले और बार बार पानी पीने को जी न चाहे या गले में खराश न हो जावे; और खाँसी न उठे) मसालों का सेवन अच्छा है। उनमें कई प्रकार के तेल होते हैं जो रुचि को बढ़ाते हैं; भोजन सुगंधित और स्वादिष्ट हो जाता है; आँतों की हरकत अच्छी रहती है और ये तेल रोगाणु नाशक भी होते हैं इस कारण आँतों में सड़ाव कम होने पाता है।

अधिक मसाले पाचक शक्ति को बिगाड़ते हैं और उनके अधिक सेवन से गला हमेशा खराब रहता है और हाज़मा बिगड़ जाता है।

भोजन और जल का रोगों से सम्बन्ध

निम्न-लिखित रोगों का भोजन से सम्बंध है अर्थात् वे भोजन द्वारा होते हैं या हो सकते हैं:—

हैज़ा
पेचिश
टायफौयड
बदहज़मी
कृमि रोग
ज़हरीला असर और मृत्यु
रिकेट्स, स्कर्वी, बेरीबेरी इत्यादि रोग
कई प्रकार के नाड़ी रोग (सीसे और संखिया और अलकोहल द्वारा)

दूध का इन रोगों से सम्बन्ध है:—

क्षय रोग
टायफौयड

अध्याय ५

घरेलू मक्खी (चित्र ५८)

जाँच पड़ताल और प्रयोगों से यह बात सिद्ध हो गयी है कि घरेलू मक्खी का हमारे स्वास्थ्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। इस प्राणि की सहायता से मनुष्य जाति में बहुत से रोग फैलते हैं जैसे—

हैज़ा
पेचिश
टायफौयड ज्वर
क्षय रोग
बच्चों के दस्त
आँख आना
कुष्ठ (?)
कृमि रोग (?)

इनके अतिरिक्त संभव है चेचक, सुर्खबादा (Erysipelas), कनार (Glanders), अन्थ्रेक्स (Anthrax) इत्यादि रोग भी उसके द्वारा फैलते हैं।

मक्खी की आदतें

१. मनुष्य का मल (विष्ठा) मक्खी को अत्यंत प्यारा होता है। मल में अनेक प्रकार के रोगाणु रहते हैं। जब मक्खी मल को खाती है तो ये रोगाणु भी उसके पेट में चले जाते हैं और फिर उसकी विष्ठा में निकलते हैं। जहाँ मक्खी विष्ठा करेगी वहीं वे रोगाणु जिनमें से अधिकतर जीवित होते हैं पहुँच जावेंगे।

चित्र ५८ घरेलू मक्खी (वास्तविक परिमाण से बहुत बड़ी)
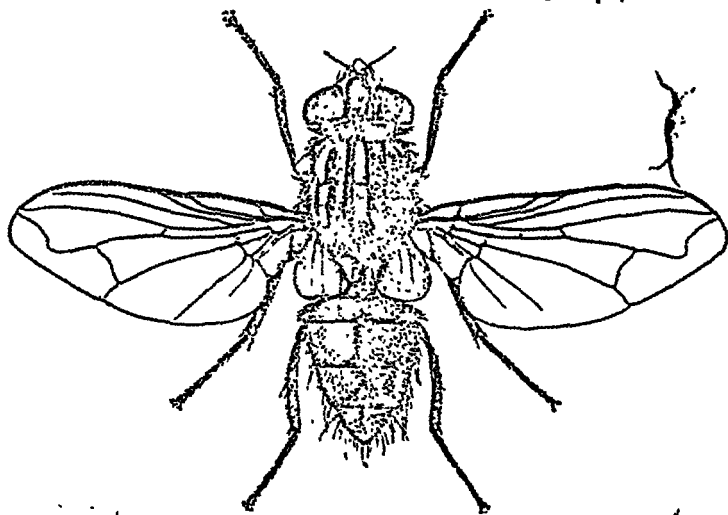
By permission of the Trustees of British Museum from "The House fly"

२. पाख़ाना खाने के पश्चात् या पाख़ाने पर बैठने के पश्चात् मक्खी बहुधा मनुष्य के भोजन जैसे रोटी, दूध, मिठाई पर जा बैठती है। उसकी टाँगों और परों में अनेक रोगाणु लगे रहते हैं। ये भोजन में

मिल जाते हैं। खाते खाते मक्खी विष्ठा भी त्यागती है, उसकी विष्ठा द्वारा रोगाणु भोजन में मिल जाते हैं। वह भोजन को अपने थूक में घोल कर चूसा करती है; इस थूक में भी अनेक रोगाणु रहते हैं और उसके द्वारा भोजन में पहुँच जाते हैं। मक्खी द्वारा एक मनुष्य का पाख़ाना दूसरे मनुष्य के भोजन में मिल जाता है। यदि कान्यकुब्ज ब्राह्मणों को कोई अकान्यकुब्ज पवित्रता से बना भोजन खिलाना चाहे तो वे कभी न खावेंगे। यदि उनको सहस्रों मक्खियों का गू मिली हुई बाज़ार की मिठाई जो अत्यन्त अपवित्रता से बनाई जाती है खाने को दी जावे तो तुरन्त हड़प कर जावेंगे। अज्ञानता! तेरा सत्यानाश हो! हैज़ा, पेचिश, टायफ़ोयड इत्यादि रोग पाखाना या वमन (क़ै) के खाने से होते हैं। चाहे ये चीज़ें थोड़ी खाई जावें चाहे बहुत; इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

मक्खी के परों और टाँगों पर ५७० से ४४००० कीटाणु और उसकी आँतों में १६००० से २८०००००० कीटाणु तक पाये जाते हैं।

३. आँखों पर बैठने से मक्खी द्वारा अक्षिकला का प्रदाह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को विशेष कर बालकों को लग जाता है।

४. मक्खी ज़ख़्मों पर बैठ कर मवाद को एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचा देती है। चेचक के दानों से चेचकाणु, कुष्ठ के ज़ख़्मों से कुष्ठाणु, सुर्ख़बादा से सुर्ख़बादाणु, क्षयी के बलग़म से क्षयाणु दूसरों की त्वचा, ज़ख़्म और भोजन में मिला देती है।

मक्खी की जीवनी (चित्र ५९, ६०, ६१, ६२)

१. मक्खी अंडे देती है (चित्र ६१) एक समय में ५०–१०० –१५० अंडे तक दे सकती है। अंडे की लम्बाई $\frac{1}{२४}$ इंच के लगभग होती है; उसका रंग सुफ़ेद होता है। अंडे की आयु ६–१२ घंटे तक होती है।

२. ६–१२ घंटे में (कभी कभी २४ घंटों में २ दिन तक) अंडे से एक कीड़ा निकलता है जिसे "लहर्वा" कहते हैं। लहर्वे की आयु

चित्र ५९ मक्खी का कुप्पा
(वास्तविक परिमाण से बड़ा)
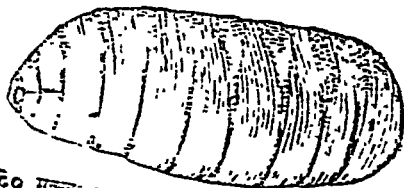
चित्र ६० मक्खी का लहर्वा (वास्तविक परिमाण से बड़ा)
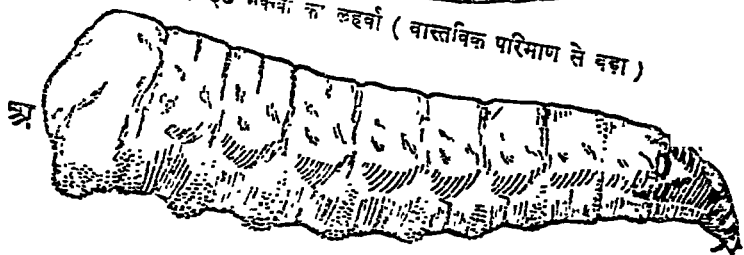
अ=लहर्वे का पिछला भाग—यहाँ स्वांस लेने के लिये छिद्र हैं।
By permission of the Trustees British Museum from "The Housefly"

५–६ दिन होती है। इस आयु में वह तीन चोलियाँ बदलता है। लहर्वे का अगला सिरा नोकीला और पिछला मोटा होता है। पिछले

सिरे पर श्वास पथ के दो छिद्र होते हैं। लहर्वा खूब रेंगता है और खूब खाता है। (चित्र ६०, ६२)

३. ५-६ दिन पीछे लहर्वा से 'कुप्पा' बन जाता है। कुप्पा स्थिर अवस्था है और उसका रंग भूरा होता है। कुप्पे की आयु ३-७ दिन। (चित्र ५९)

४. कुप्पे से ५-६ दिन में मक्खी निकलती है। कुप्पा आगे से फट जाता है और नयी मक्खी, जिसे इस अवस्था में डिंभ मक्खी कहते हैं, बाहर आ जाती है। मक्खी जितनी बड़ी निकलती है वह उतनी ही बड़ी हमेशा रहती है। आम तौर से छोटी मक्खी को लोग मक्खी का बच्चा समझा करते हैं; वास्तव में वह जाति ही और होती है, वह मक्खी पैदायशी ही छोटी होती है।

ग्रीष्म ऋतु में मक्खी के बनने में ७-८ दिन लगते हैं (औसत १०-१२ दिन का समझना चाहिये)। यदि भोजन खूब मिलता है तो समय कम लगता है; भोजन की कमी होती है या सर्दी अधिक पड़ती है तो समय भी अधिक लगता है।

मक्खी की आयु २१ दिन के लगभग होती है। अपने जीवन में ५-६ बार अंडे जन सकती है। एक मक्खी २००० तक अंडे दे सकती है। इससे यह समझना कठिन नहीं कि गरमी की मौसम में मक्खियाँ क्यों शीघ्र बढ़ जाती हैं। २८८० मक्खियों का भार ½ छटाँक के लगभग होता है। मक्खी से ४० दिन में १४० पौंड मक्खियाँ बन जाती हैं यदि उनमें से केवल आधी ही जीवित रहें। एक नारी मक्खी को मारना २००० मक्खियों को कम करने के बराबर है।

मक्खी कहाँ कहाँ अंडे देती है

मक्खी इन स्थानों और चीज़ों पर अंडे देती है—

१. घोड़े की लीद पर।

२. रसोई घर के कूड़े पर, विशेषकर तरकारियों के टुकड़े या छीलन पर।

३. मनुष्य के पाख़ाने पर।

४. जहाँ शराब खींची जाती है वहाँ के कूड़े पर (यहाँ महुवा, अंगूर इत्यादि चीज़ें रहती हैं)।

सूखी राख पर कभी नहीं ब्याहती।

लहवें के पलने के लिये तीन बातों की ज़रूरत है—

१. जहाँ वह हो वहाँ अधिक गरमी न हो।

२. वहाँ तरी होनी चाहिये।

३. वहाँ रोशनी न हो अर्थात् उसे अँधेरा पसंद है।

खाद, कूड़ा करकट के ढेरों में लहवें ऊपर की तह में नहीं रहते क्योंकि वहाँ उपरोक्त तीनों चीज़ें नहीं मिलतीं; ढेर के भीतर भी नहीं रहते क्योंकि वहाँ सड़ाव के कारण गर्मी अधिक हो जाती है। वे ऊपर की तह के नीचे रहते हैं।

मक्खी रोग कैसे फैलाती है

१. घरेलू मक्खी को मनुष्य के पाख़ाने, बलग़म इत्यादि से अत्यंत प्रेम है यह सभी जानते हैं।

२. पाख़ाने और बलग़म में रोगों के रोगाणु रहते हैं।

३. मक्खी को मनुष्य के भोजन—मिठाई, दूध, शकर, रोटी इत्यादि भी बहुत अच्छा लगता है।

४. जब मक्खी थूक, बलग़म और पाख़ाने को खाती है तो इन रोगाणुओं को भी खा लेती है। ये रोगाणु और कृमियों के अंडे उसके पाख़ाने में अकसर ज़िन्दा पाए जाते हैं।

चित्र ६१ मक्खी के अंडे (वास्तविक परिमाण)

चित्र ६२ मक्खी के लहर्वे

By kind permission of Emeritus Professor R. Newstead F. R. S. of Liverpool.

पृष्ठ २१४ के सम्मुख

चित्र ६३ मक्खी की टाँग (देखो नन्हें नन्हें वाल)

५. जहाँ मक्खी वैठती है वहाँ का मल उस के परों और टाँगों में भी चिपट जाता है। और जहाँ वह हगती है वहाँ मल द्वारा निकलेहुए रोगाणु भोजन इत्यादि में मिल जाते हैं।

उस की टाँगों पर नन्हें नन्हें वाल होते हैं। इन वालों में हज़ारों रोगाणु लगे रहते हैं। जव वह भोजन पर वैठती है तो रोगाणु भोजन में मिल जाते हैं।

६. मक्खी केवल तरल पदार्थों को ही ग्रहण कर सकती है। जव वह ठोस चीज़ों पर बैठती है जैसे मिश्री, मिठाई तो वह अपना थूक निकाल कर उस पदार्थ का घोल वना लेती है और फिर उस घोल को चूस जाती है। थूक का बुलबुला आप ने अकसर देखा होगा। थूक द्वारा कुछ रोगाणु भोजन में मिल जाते हैं। (चित्र ६४ में १)

चित्र ६४ मक्खी की जीवनी

(१)
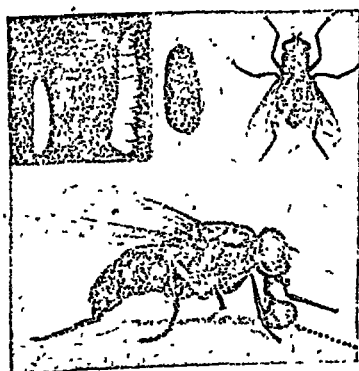
(१) मक्खी थूक का बुलवुला निकाल रही है

By courtesy of Prof. Ashworth of Edinburgh

मक्खी से फायदे

यदि मक्खी मनुष्य को दिक़ न करती और रोगों के फैलाने में विशेष भाग न लेती तो मैं उस तुच्छ जानवर के विषय में इतने पन्ने रंग कर अपना और अपने पाठकों का समय कदापि नष्ट न करता। वह मैल ख़ोर है इस में कोई सन्देह नहीं परन्तु वह मनुष्य के भोजन को भी दूषित करती है; हमारे आँख नाक, कान, पर भिनभिनाती है; बड़ों और बच्चों के आराम में ख़लल डालती है। कहते हैं कि ये परमात्मा के भेजे हुए मेहतर हैं। माना यह सच है। मेहतर मेहतर सब बराबर। क्या आप अपने पाख़ाना उठाने वाले मेहतरों को अपने चौके में, अपनी कुरसी पर अपनी खटिया पर और अपने पढ़ने लिखने के कमरे में बिठा लेते हैं। हरगिज़ नहीं? समाज सुधारक कहें कि हम ऐसा करने को तैयार हैं, तो भी वे बिना हाथ पैर धुलाये, नहलाये और साफ़ कपड़ा पहनाये हरगिज़ न करेंगे (यदि करेंगे तो धिक्कार इन सुधारकों पर!) जब आप इन मनुष्य मेहतरों से अलग रहते हैं (और ऐसा करना उचित है) तो मक्खी को, जिस के कारण आप के नन्हें नन्हें बच्चे हज़ारों की तादाद में इस संसार से बिना इस जीवन के सुख दुख सहे प्रति दिन आप को रुला कर बिदा होते हैं, तो अवश्य दूर रखना चाहिये।

क्या मक्खी जान बूझ कर मनुष्य को दिक़ करती है

नहीं। वह जो कुछ करती है आत्म रक्षा और मक्खी जाति की रक्षा के लिये करती है। उसका कर्त्तव्य है कि जहाँ से भोजन मिले—चाहे मेहतर के टोकरे से, चाहे राजा के दस्तरख़्वान से, चाहे भला मियाँ

को खुश करने के लिये की गयी क़ुर्बानी से, चाहे शिवजी के ऊपर चढ़ाये हुए दूध और शकर से,—उसको प्राप्त करे। यही नहीं उसका यह भी कर्त्तव्य है कि थोड़े से थोड़े समय में अधिक से अधिक सन्तान उत्पन्न करे जिस से उसकी जाति की उन्नति हो। जहाँ उसकी होने वाली सन्तान को ऐशो अशरत के सब सामान मिलेंगे वहीं वह अंडे देगी। लीद को वह ख़ूब पसंद करती है।

यदि आप अपने रहने के स्थान के आस पास घोड़ा बाँधेंगे और लीद को साफ़ कराने का प्रबन्ध न करेंगे तो वहाँ मक्खी अवश्य आवेगी और अंडे देगी। यदि आप जगह जगह खाने पीने की चीज़ों को फैलावेंगे और जगह जगह थूकेंगे, छिनकेंगे, तो वहाँ मक्खी अवश्य आवेगी। उसे अपने काम से काम, उसकी बला से उसके कामों से आप के बच्चों की आँखें दुखें, उनको दस्त आवें, हैज़ा फैले, टायफौयड् फैले या क्षय रोग फैले। चोर का काम चोरी करना, आप का काम अपने माल की रखवाली करना। याद रक्खो यहाँ मुक़ाबला है एक तुच्छ प्राणि का एक बड़े प्राणि से। मूर्ख यह कह कर हट जाते हैं कि ये परमात्मा के भेजे हुए मेहतर हैं; बुद्धिमान उनसे बचने और उनकी बढ़ौत को रोकने का उपाय करते हैं।

क्या मक्खी को मारना पाप है

हमारी राय में पाप वह काम है जो आत्म रक्षा और स्वजाति रक्षा करने में बाधा डाले। मक्खी को अपने पास भिनकने देना, उनकी बढ़ौत को न रोकना, उनको न मारना इन कामों में बाधा डालते हैं इस कारण ये काम पाप हैं; उसको मारना, और उसकी बढ़ौत को कम करने का यत्न करना और उसको मार डालना पाप नहीं। साफ़ बात तो यह है कि यदि आप मक्खी को न मारेंगे तो

वह आप को अवश्य मारेगी। गाय, बकरा, सुअर, मछली, मुर्गी इत्यादि बड़े बड़े प्राणियों को तो आप मार कर हज़म कर जावें, फिर भी मक्खी को मारना पाप समझें। क्या इन हज़रत इन्सान से भी अधिक कपटी और बेवक़ूफ़ कोई और जानवर है ?

मक्खी कितनी दूर उड़ कर जा सकती है

ज़रूरत पड़ने पर, जैसे भोजन की तलाश में, मक्खी एक दिन में ८ मील तक उड़ कर जा सकती है। एक मील तो उसके लिये मामूली बात है। आम तौर से वह ६००–७०० गज़ चली जाती है। इस से यह स्पष्ट है कि वह स्थान जहाँ कूड़ा इकट्ठा किया जावे आबादी से बहुत नज़दीक न होना चाहिये; अर्थात् आबादी से कम से कम एक मील हो।

मक्खी से बचने की तरकीबें

१. जहाँ तक हो सके अस्तबल घर से दूर बनाने चाहियें। जहाँ आप रहें वहीं घोड़ा बँधे यह ठीक नहीं। अस्तबल के किवाड़ जाली दार होने चाहियें ताकि उस में हर समय मक्खी न घुस सकें। अस्तबल को साफ़ रखना चाहिये। जैसे ही घोड़ा लीद करे, लीद को उठा कर तुरंत ढकनेदार बरतन में रख देना चाहिये। सूर्य्य उदय होने से पहले लीद इकट्ठी कर लेनी चाहिये क्योंकि मक्खियाँ रात को सोती रहती हैं; सुबह होते ही वे लीद पर आ बैठती हैं।

२. रसोई घर और जहाँ शराब बने वहाँ का कूड़ा बंद ढकनेदार कूड़े के टीनों में रखना चाहिये।

३. लीद और कूड़ा बस्तियों से कम से कम १ मील की दूरी पर जमा करना चाहिये। यदि जलाना हो तो जला दिया जावे। खाद बनानी हो तो ढेर लगाये जावें।

४. जब लीद का ढेर लगा दिया जाता है तो उसके सड़ने (Fermentation) से गरमी उत्पन्न होती है। यह गर्मी ढेर के भीतर होती है, सतह पर नहीं। इस गर्मी के कारण मक्खी के लहवें ढेर के भीतर जीवित नहीं रह सकते। सतह के नीचे तरी भी रहती है, और गर्मी भी अधिक नहीं होती; इस कारण लहवें वहीं रहते हैं। इस ज्ञान से हमको लहवों को मारने में सहायता मिलती है—इस प्रकार—

(अ) खाद्य के ढेर को ऊपर से खूब पीटो जिससे ढेर ढीला न रहे। उसकी बाहर की सतह इस प्रकार चिकनी सी हो जावेगी। उसके पहलू ढालू बनाओ। ऐसे ढेर में लहवें भीतर ही रहेंगे और सड़ाव की गरमी से मर जावेंगे।

(आ) ढेर मामूली तौर पर बनाओ और उसको पीटो नहीं अर्थात् ढीला ही रहने दो। केवल उसकी ऊपर की सतह को प्रतिदिन उलट पलट दिया करो अर्थात् जो आज ऊपर है वह कल ५—६ इंच नीचे रहे। जो लहवें आज ऊपर हैं कल ५—६ इंच नीचे दबकर वहाँ की गर्मी से मर जावेंगे।

(इ) जब नया ढेर लगाओ तो उसके ऊपर एक पुराना टाट जिसमें कोई छिद्र न हो तेल में भिगोकर ढक दो। इस ढेर में मक्खी अंडे ही न दे पावेगी।

(ई) जहाँ अंडे दिखाई दें उस भाग को हटाकर जला दो। लहवें बनने ही न पावेंगे।

लहवों को मारने की और विधि

५ सेर सोहागा ४९५ सेर पानी में घोलो (५% घोल बनाओ) इस घोल में से ५ सेर एक वर्ग गज़ क्षेत्र पर छिड़को। जो लहवें ऊपर

आवेंगे वे मर जावेंगे और इस कारण उनसे कुप्पे न बन पावेंगे। बजाये सोहागे के घोल के ५% क्रियोसोल (Creosol) का घोल भी वही काम देगा।

मक्खी पकड़ने और मारने की विधि

मक्खी-पकड़ काग़ज़—

यह काग़ज़ बना बनाया बाज़ार में मिलता है। $1\frac{1}{2}$—२ आने के दो तख़ते मिलते हैं। इस पर मक्खी खूब चिपकती है। एक काग़ज़ पर १००० मक्खियों का बैठ जाना कोई बड़ी बात नहीं। यदि काग़ज़ एक महराब बनाकर रक्खा जावे तो मक्खियाँ बहुत आती हैं।

चित्र ६५ मक्खी-पकड़ काग़ज़ (Tangle foot paper)

देखो कितनी मक्खियाँ चिपटी हैं ?

जो मसाला इस काग़ज पर लगा रहता है वह आप इस प्रकार बना सकते हैं—

(१) रेंडी का तेल ५ भाग
राल ८ भाग
या (२) अलसी का तेल ५ भाग
राल १२ भाग

राल को तेल में डाल कर पका लो। फिर इस मसाले को काग़ज़ पर या डोरी पर या तार पर लगालो।

मक्खी मारने का पंखा

तार और तार की जाली के पंखे बाज़ार में बिकते हैं। जहाँ मक्खी बैठे सावधानी से उस को इस पंखे से मारो। एक लकड़ी पर एक पान की शकल का चमड़े का टुकड़ा जड़वा लो या लकड़ी पर सिलवा लो। इस से मक्खी ख़ूब मरती हैं। चौहरी भी बढ़िया चीज़ है।

और तरकीबें

२½ औंस फ़ॉर्मेलिन (Formalin) १०० औंस पानी में घोलो। इस घोल को एक उथली तश्तरी में रख दो। मक्खी इस पानी को पीती है और कुछ दूरी पर जा कर मर कर गिर पड़ती है।

फ्लिट (Flit) यदि फुव्वारे से मक्खियों पर छिड़का जावे तो मक्खियाँ बेहोश हो जाती हैं यदि फिर झाड़ू से मारी जावें तो बहुत सी मक्खियाँ मर जाती हैं। यह एक क़ीमती चीज़ है; मच्छर ख़ूब मरते हैं परन्तु मक्खियों के मारने के लिये हमारे तुजुर्बे में बहुत कारामद नहीं निकली।

घरेलू मक्खी के अतिरिक्त और मक्खियाँ

कई मक्खियाँ जिनकी बनावट घरेलू मक्खी जैसी होती है परन्तु आकार और रंग में भेद होता है मनुष्य को तंग करती हैं। ये

मुर्दाखोर मक्खियाँ हैं; मुर्दे के पास आती हैं और उस पर अंडे देती हैं; ये मक्खियाँ ज़ख्मों पर बैठ जाती हैं तो वहाँ भी ब्याहती हैं; अंडों

चित्र ६६ मुर्दाखोर और ज़ख्मों और मुर्दों में कीड़ा डालने वाली एक मक्खी
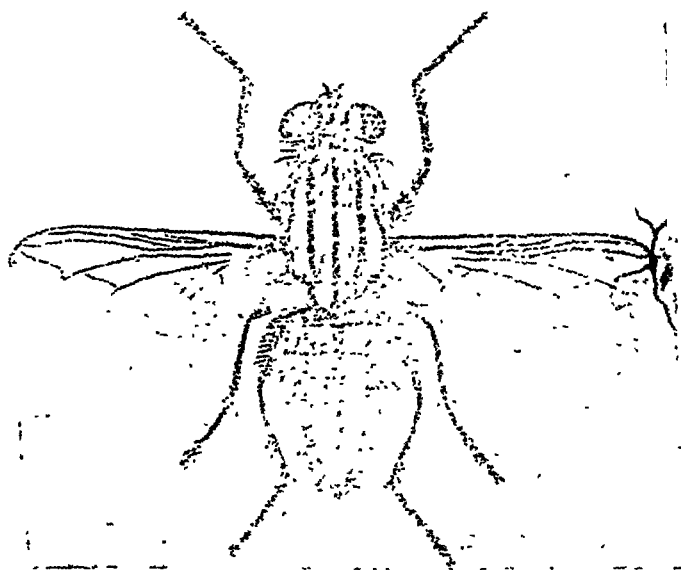
Female Sarcophaga haemorrhoidalis
By courtesy of Prof. W. S. Patton from "Insects, Ticks, Mites and Venomous animals" Part I

से लहव निकलते हैं जो मनुष्य के तंतुओं को खा जाते हैं। ज़ख्मों में जो कीड़े पड़ जाते हैं वे इन्हीं मक्खियों के लहव होते हैं। ज़ख्मों और मुर्दों के अतिरिक्त ये मक्खियाँ फलों, जैसे आम, पर भी अंडे देती हैं। इस प्रकार की मुर्दाखोर मक्खियाँ घरेलू मक्खी से लगभग दुगनी

चित्र ६७

नाक में कीड़े पड़ गये थे, नाक की अस्थियाँ खाई गयीं और नाक में छिद्र हो गया; नाक बैठ गयी

चित्र ६८
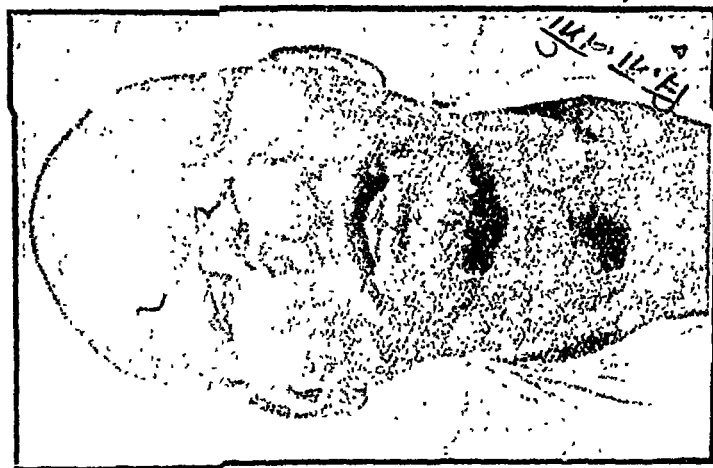
कीड़े नाक, तालु, आँख और मस्तिष्क को खा गये और यह दुर्भागी मर गया

बड़ी होती है और उनमें से कई का उदर चमकीला नीला या नारंगी हरा होता है. (यही सोना मक्खी होती है); एक मुर्दाखोर मक्खी का चित्र यहाँ दिया जाता है। इसी प्रकार की मक्खियाँ नाक में भी कीड़े देती हैं। वे नाक के सब भागों को खा डालते हैं और यदि चिकित्सा न हो तो मस्तिष्क तक पहुँच जाते हैं और आँखों को भी खा जाते हैं और अन्त में रोगी की मृत्यु हो जाती है (चित्र ६८, ६७)।

अध्याय ६

दूसरों के मल विष्ठा खाने से होने वाले रोग

(१) हैज़ा (विषूचिका)

भारतवर्ष में प्रति वर्ष हज़ारों मनुष्य हैज़े से मरते हैं। संयुक्त प्रांत में ही प्रति वर्ष ५० हज़ार मृत्यु इस रोग से होती है। बहुत से स्थान तो ऐसे हैं कि वहाँ हैज़ा थोड़ा बहुत हमेशा बना रहता है जैसे हरिद्वार, कलकत्ता, गढ़वाल।

हैज़े का कारण

मूल कारण इस रोग का एक प्रकार का कीटाणु है जो द्वितीया-चन्द्राकार होता है (चित्र ३१ में १२)। हैज़े के रोगी की वमन, मल और मूत्र में असंख्य विषूचिकाणु होते हैं। यदि वमन, मल या मूत्र का कुछ अंश जल, भोजन या अंगुली द्वारा (छूत द्वारा) हमारे शरीर में प्रवेश कर जावे और हमारा स्वास्थ्य उस समय किसी कारण अच्छा न हो तो हम को हैज़ा हो जावेगा। साफ शब्दों में यह कहना चाहिये कि यह रोग किसी दूसरे व्यक्ति के वमन, मल या मूत्र के खाने से (अंश मात्र ही क्यों न हो) होता है।

जब रोगी हैज़े के रोग से अच्छा हो जाता है तब भी बहुत दिनों तक उस के मल, मूत्र इत्यादि में विषूचिकाणु निकला करते हैं। यद्यपि रोगक्षमता प्राप्ति के कारण ये कीटाणु उस विशेष व्यक्ति को हानि नहीं पहुँचाते, दूसरे व्यक्ति के लिये ये अत्यंत हानिकारक हैं। मेले के दिनों में (जैसे कुम्भ का अवसर) हैज़ा इसी प्रकार आरंभ होता है। नहाने के लिये बहुत से ऐसे मनुष्य भी आते हैं जिन को कभी हैज़ा हो चुका है और वह हैज़े से अच्छे हो चुके हैं। गंदी आदतों के कारण ये लोग दूसरे लोगों का जल या भोजन अपने मल या मूत्र से अपवित्र या दूषित कर देते हैं। ये रोगाणु दूसरे मनुष्य के शरीर में पहुँच कर हैज़ा पैदा कर देते हैं। एक रोगी बबा फैलाने के लिये काफ़ी है। यदि सावधानी न की जावे तो कुओं का और तालाबों का जल (विशेषकर दुर्भिक्ष और क़हत के दिनों में) दूषित हो जाता है और जितने व्यक्ति उस दूषित जल को पीते हैं उन सब को हैज़ा होने की संभावना रहती है।

मक्खी हैज़ा फैलाने में बहुत सहायता देती है। अपनी गंदी आदत से लाचार हो कर यह हैज़े की क़ै, दस्तों पर बैठ कर फिर दूध, मिठाई, फल या तरकारियों पर जा बैठती है और वहाँ अपने थूक द्वारा, या मल द्वारा और स्पर्श द्वारा (टाँगों और परों में अनेक कीटाणु लगे रहते हैं) अनेक विषूचिकाणु पहुँचा देती है।

जब क़ै और पाखाने की छींटें बरतनों या डोल या बाल्टी पर पड़ती हैं और उन्हीं बरतनों से पानी कुएँ से निकाला जाता है तो रोगाणु कुएँ के पानी में मिल जाते हैं।

मुख्य लक्षण

एक दम क़ै, दस्तों का आरंभ होना। पहले क़ै और दस्तों में पचा और अधपचा भोजन निकलता है; परन्तु शीघ्र ही क़ै और दस्तों

का रंग पतले माँड जैसा हो जाता है। जो कुछ रोगी पीता है तुरंत क़ै कर डालता है। अधिक क़ै और दस्तों के कारण बदन में से जल कम हो जाता है, खून गाढ़ा पड़ जाता है, ठंडा पसीना आता है, आँखें बैठ जाती हैं, आवाज़ खोखली (भूत जैसी) हो जाती है। टाँगों में और हाथों में बाँयटे आते हैं अर्थात् पेशियाँ (पुट्ठे) बड़ी ज़ोर से सिकुड़ती हैं इतनी कि दर्द होने लगता है। नब्ज़ पहुँचे पर से ग़ायब हो जाती है, पेशाब बंद हो जाता है और यदि चिकित्सा न हो तो रोगी शीघ्र वैकुंठ की सड़क लेता है।

चिकित्सा

१. प्यास मत रोको। बरफ चूसने को दो। उबला हुआ पानी ठंडा करके दो। सेर भर पानी में २ ग्रेन (१ रत्ती) पोटाश परमंगनेट घोलो और रोगी के पास रख दो वह जितना चाहे पी जावे।

२. तुरंत अच्छे चिकित्सक को बुलाओ या रोगी को अस्पताल में पहुँचा दो।

३. जब तक कोई बन्दोबस्त न हो सके किसी अंगरेज़ी दवाखाने से बढ़िया केओलीन (Kaolin) पाव भर खरीद लाओ। मर्क (Merck) के कारखाने की यह औषधि उत्तम होती है। उत्तम केओलीन सुफेद, हलकी छूने में मुलायम और चिकनी होती है। डलीदार मैले रंग की खड़िया मिट्टी की तरह भारी चीज़ अच्छी नहीं होती। यह चीज़ मँहगी चीज़ नहीं है। एक छटाँक केओलीन को एक गिलास पानी में चलाकर मिला लो। उस को पिलाओ, जितना चाहे रोगी पी सकता है; कुछ पर्वाह नहीं यदि क़ै होती रहें।

४. केओलीन न मिले तो दवाखाने से हैज़े का "इसेन्शल ओयल

४. म्युनिसिपलटी के दफ़्तर में रोगी की सूचना दो यदि आप के चिकित्सक ने नहीं दी है।

५. मुहल्ले के कुँए में (यदि घर में कुआँ हो तो वहाँ भी) आधी छटाँक पोटाश परमंगनेट डाल दो।

६. कोई चीज़ कच्ची न खाओ। उबालने से रोगाणु मर जाते हैं। कच्चे और सड़े फल बदहज़मी पैदा करते हैं और जब बदहज़मी होती है तो रोगाणु शीघ्र असर करते हैं। इस कारण हैज़े के दिनों में ककड़ी, फूट, खीरा, अमरूद, बेर, भुट्टा, जामुन इत्यादि त्याज्य हैं। सड़े अंगूर, अमरूद और आम जिन पर मक्खियाँ भिनकती हैं न खाने चाहियें

७. लहसुन और प्याज़ का प्रयोग हैज़े के दिनों में अच्छा है।

८. प्रातःकाल कुछ खाये बिना काम पर न जाओ। आमाशय में जब कुछ तेज़ाब रहता है तो रोगाणु असर नहीं कर सकते।

९. बरफ़, मलाई का बरफ़, आलू कचालू, चाट और बाज़ार की मिठाइयों को न खाओ।

१०. इतना परिश्रम भी न करो कि जिससे बहुत थकान हो जावे। किसी कारण स्वास्थ्य बिगड़ गया हो तो उचित प्रबन्ध करके उसको ठीक करो और रोग नाशकशक्ति बढ़ाओ।

११. डर और वहम को पास न फटकने दो।

(२) पेचिश (मुर्रा, आमातिसार)

जब पाखाना बार-बार और दर्द के साथ आवे और उसके साथ आम (आँव) या खून या दोनों चीज़ें निकलें या केवल आँव खून ही आवें तो रोग पेचिश कहलाता है। कभी दिन भर में पचासों दस्त आ जाते हैं। पेट में और गुदा में ऐंठन होती है। थोड़ा बहुत बुखार भी अक्सर आ जाता है। जब पेचिश पुरानी हो जाती है तो खून नहीं

बचने के उपाय

१. सड़ा हुआ या रक्खा हुआ और बाज़ार में खुले बरतनों में रक्खा हुआ भोजन जिस पर सैकड़ों मक्खियाँ दूसरों का पाखाना ला कर रखती हैं मत खाओ।

२. पेचिश के पाखाने पर राख डाल दो या जिस बरतन में पाखाना पड़े उसमें रोगाणु नाशक औषधियों के घोल रक्खो। पेचिश के पाखाने पर मक्खी हरगिज़ न बैठने दो।

३. अधिक लाल मिर्चे, अधिक खटाई बड़ी आँत को हानि पहुँचाती है और यहीं पेचिश होती है।

पेचिश के समय रोगी का भोजन

१२ घंटे या एक दिन कुछ न खाया जावे तो अच्छा है।

रोटी दाल नुक़सान करती है। खिचड़ी, दही खिचड़ी, खूब पका चावल और दही, दूध सागुदाना, केवल दही, थोड़ा-थोड़ा दूध—ये चीज़ें दी जा सकती हैं। तरकारियाँ विशेष कर साग हानि पहुँचाती हैं। सौंफ (कच्ची पक्की) और मिश्री लाभदायक है।

और अहतियात

जिन लोगों को एक बार पेचिश हो चुकी है उनको सावधानी से रहना चाहिये। पेट को विशेष कर बरसात और गर्मी में ठंढ से बचाना चाहिये। पेट पर एक कपड़ा रखकर सोना चाहिये। पंखे के नीचे कदापि न सोना चाहिये।

३. टायफौयड् (मोतीझरा)

भारतवर्ष में यह रोग दिन-प-दिन बढ़ता जाता है। इस रोग का

कारण एक प्रकार के शलाकाणु हैं (चित्र ३१ में ११)। इस रोग में क्षुद्रांत्र (छोटी आँत चित्र ३४) में उत्पन्न हो जाते हैं। जो लोग खान पान के सम्बन्ध में उचित स्वच्छता नहीं बरतते इन्हीं को यह रोग आम तौर से होता है। कट्टर हिन्दू की अपेक्षा आज़ाद (कम छूत-छात मानने वाले) हिन्दुओं में अधिक होता है। जो लोग चौके की बनी रोटी खाने के सिवा बाज़ार की बनी कोई भी चीज़ नहीं खाते उनको इस रोग के होने की संभावना कम होती है यदि ये लोग सब्ज़ी से भी परहेज़ करें। जब तक बालक केवल माँ का दूध पीता है उस वक़्त तक यह रोग उसको नहीं होता (लग भग १½ वर्ष की आयु तक); इस आयु के पश्चात् जब तक वह चौके में बैठ कर न खाने लगे अर्थात् ७-८ वर्ष तक, यह रोग अक्सर होता है। इस आयु में कट्टर ब्राह्मणों में भी बालक बाज़ार की बनी चीज़ खा लेते हैं और छूत छात नहीं मानी जाती; ८-१० वर्ष के बाद जब केवल चौके की बनी ही चीज़ खाई जाती है रोग कम होने लगता है। २०-२५ वर्ष पहले यूरोपियन डाक्टर इस बात को नहीं समझ सकते थे कि भारतवर्ष में जवानों में यह रोग इतना क्यों नहीं होता जितना और देशों में होता है। इसका कारण यही है जो मैंने ऊपर बतलाया है। बड़ों में इस कारण कम दिखाई देता था कि इस आयु में छूत छात ज़्यादा मानी जाती थी; बालकपन में इस कारण अधिक होता था कि छूत छात नहीं मानी जाती थी। बचपन में रोग होने से रोगक्षमता मिल जाती थी। आज कल असली छूत छात जैसी कि पहले कट्टर हिन्दुओं में होती थी नहीं रही, नकली छूत छात है; इस कारण रोग सभी आयु में दिखाई देता है। चौके की बनी चीज़ों में किसी प्रकार के रोगाणु रह ही नहीं सकते यदि भोजन गरम खाया जावे और बनाने वाला गन्दी आदत का न हो और मक्खियाँ न आती

हा—दाल, तरकारियाँ, रोटी सभी तो गरम होती हैं। बाज़ार की डबल रोटी ठंढी होती है और उस में अनेक प्रकार के रोगाणु रहते हैं। हमने डबल रोटी बनाने वालों के घर देखे हैं, वहाँ पर अव्वल दर्जे की गंदगी रहती है; कभी भी बच्चों को बाज़ार की डबल रोटी न खिलाओ। विलायत में डबल रोटी मशीन द्वारा बनती है और स्वच्छ रहती है। यदि डबल रोटी खानी हो तो किसी बढ़िया कारखाने की बनी लो; यदि उसका टोस्ट बना कर खाया जावे (आग पर सेंक कर कुरकुरी बना कर) तो रोगाणु मर जाते हैं।

यह रोग गोश्त खाने वालों को भी अधिक होता है; विशेष कर उन लोगों में जिनको ताज़ा गोश्त नहीं मिलता जैसे यूरोप वालों में (इनका गोश्त हज़ारों मीलों से आता है और आते आते १५–२०–३० दिन पुराना हो जाता है)।

टायफौयड् एक मियादी ज्वर है; एक बार होने के बाद आम तौर से दूसरी बार नहीं होता।* आम तौर से ज्वर धीरे धीरे बढ़ता है। अर्थात् पहले रोगी चलता फिरता रहता है, हलकी सी हरारत रहती है; ज़रा सा सर दर्द होता है और तबियत गिरी रहती है।

सुबह शाम के ज्वर में थोड़ा सा फर्क रहता है; सुबह ९९° है तो शाम को १००° हो जाता है फिर बुखार तेज़ होने लगता है; २४ घण्टे बुखार रहता है; सुबह शाम में २-३ दर्जे का फ़र्क़ हो जाता है और बुखार किसी समय भी उतरता नहीं। कुछ दिनों ठहर कर जब सुबह शाम क़रीब क़रीब एक सा ही ज्वर रहता है (१०४–

---

* चार प्राकर के रोगाणु हैं जो एक ही प्रकार का रोग उत्पन्न करते हैं। यह हो सकता है कि एक बार एक प्रकार के रोगाणु रोग उत्पन्न करें और फिर दूसरे प्रकार के और फिर तीसरे प्रकार के।

१०५)। ज्वर धीरे धीरे उतरने लगता है और आम तौर से २१–२८ दिन में उतर जाता है।

कभी कभी ज्वर एक दम आरंभ होता है; पहले ही रोज़ १०२°–१०३° हो जाता है।

इस रोग की मामूली मियाद ४ सप्ताह हैं। परन्तु कभी कभी ५,६,७,८,१० सप्ताह में भी उतरता है। थोड़ी सी खाँसी भी आती है, कभी कभी न्युमोनिया हो जाता है। कभी कभी बुखार बहुत तेज़ हो जाता है; बुखार में रोगी बकने लगता है या बेहोश हो जाता है। आँतों मे ज़ख़्म होने के कारण पेट में हल्का हल्का दर्द होता है; वायु रुकने से पेट फूल और तन जाता है। कभी कभी दस्त आने लगते हैं।

इस रोग में खास बात यह होती है कि नब्ज़ की रफ़्तार ज्वर के मुक़ाबले में कम रहती है। अर्थात् नब्ज़ सुस्त रहती है। आम तौर से और ज्वरों में यदि ज्वर एक दर्जा बढ़ जावे तो नब्ज़ की संख्या ८ अधिक हो जावेगी; ज्वर तीन दर्जे बढ़ जावे तो नब्ज़ २४ बढ़ जावेगी। मानों ज्वर ९८·४ फ़° से १००° हो गया है तो नब्ज़ ७२ से ८४–८५ हो जावेगी; रोग १०५ है तो नब्ज़ १२०–१३० के लगभग हो जावेगी। टायफ़ायड में १०५° ज्वर पर भी नब्ज़ १०० –११० से अधिक न हो। जब हृदय कमज़ोर होने लगता है तो नब्ज़ तेज़ होने लगती है।

कुइनीन का इस ज्वर पर कोई असर नहीं होता। ज्वर का धीरे धीरे बढ़ना; पेट में हल्का सा दर्द या भारीपन होना; कुहनी और जंघा से ऊपर पेट को दबाने से बेचैनी का मालूम होना; सिर में दर्द; बेहद सुस्ती; जिह्वा का मैला रहना; जिह्वा की नोक और किनारों का सुर्ख़ रहना; नब्ज़ की मन्द चाल; कुइनीन का ज्वर पर

कोई असर न होना; दिन रात ज्वर का बना रहना—ये ऐसे लक्षण हैं कि जिनसे टायफॉयड् ज्वर शीघ्र पहचाना जाता है।

यदि रोग सीधी चाल चले तो विना किसी औषधि के अपने आप तीन चार सप्ताह में उतर जाता है; जिस प्रकार एक दो दर्जे रोज़ बढ़ता है, उसी प्रकार अपना समय लेकर एक दो दर्जे रोज़ घट कर उतरता है। केवल खाने पीने की अहतियात चाहिये। अधिकतर रोगी को दूध ही देते हैं वह भी पानी मिला कर हलका करके। थोड़ा थोड़ा दूध कई वार दिया जाता है (२–३ छटाँक जल मिश्रित दूध २$\frac{1}{2}$ घंटे के अंतर से); जवान मनुष्य को एक दफे में ३ छटाँक से अधिक न देना चाहिये। पानी की कोई रोक न होनी चाहिये; जितना पी जावे अच्छा है। पानी को एक उबाल देकर (रोगाणु रहित करने के लिये) ठंढा कर लेना चाहिये। यदि दूध भी न पचे, पेट अफ़रे या पेट में दर्द हो, तो दूध को फाड़ कर दूध का पानी जिसे तोड़ कहते हैं देना चाहिये।

इस रोग में कभी दस्त आते हैं कभी कब्ज़ रहता है। अधिक दस्त आना बुरा है। कब्ज़ वाले रोगी आसानी से अच्छे होते हैं।

जब यह रोग टेढ़ी चाल चलता है या यह कहो कि रोगाणु बली हैं और स्वास्थ्य अच्छा नहीं है तो अनेक प्रकार के संकट रहते हैं। अधिक पेट के फूलने से साँस लेने में तकलीफ़ होती है और दिल पर भी असर पड़ता है; दिल कमज़ोर भी हो जाता है। आँतों के ज़ख़्मों से पाखाने में खून आता है या कोई रक्तवाहिनी फट जाती है और खून का दस्त आ जाता है; कभी कभी आँत में छिद्र हो जाता है जिसके कारण उदरकला का प्रदाह हो जाता है। ऐसी दशा में ज्वर एक दम कम हो जाता है और नब्ज़ तेज़ हो जाती है, रोगी का चेहरा एक दम उतर जाता है। रोगी की जान संकट में रहती है, यमराज

मौत का पैग़ाम लिये सामने खड़े नज़र आते हैं। न्यूमोनिया हो जाता है या मस्तिष्कवेष्टप्रदाह हो जाता है; कान बहने लगता है; फोड़े बन जाते हैं और हड्डियों या उनकी झिल्लियों पर वरम आ जाता है; नाड़िप्रदाह भी हो जाता है। ब्याही औरतों में २०–३० वर्ष की आयु में और गर्भित औरतों में यह रोग और भी संकटमय होता है। इस ज्वर में अक्सर (और ज्वरों में भी जब त्वचा गंदी रहती है और पसीना आता है) नन्हें नन्हें मोती जैसे दाने निकलते हैं; पहले गरदन पर फिर शेष स्थानों पर। भारतवासियों के ख्याल में दानों का नीचे अर्थात् पेट और पैरों की ओर को पहुँचना अच्छा है; जब दाने नाभि से नीचे उतरें तब रोग घटने के दिन आते हैं। हमारे तजुर्बे में ये मोती जैसे दाने हर एक देर तक रहने वाले बुखार में जब त्वचा मैली रहती है तब ही निकलते हैं; जब रोज़ बदन तौलिये से धोया जाता है ये दाने दिखाई नहीं देते।

टायफॉयड् के जो विशेष दाने होते हैं वे लाल रंग के छोटे धब्बे या दाफड़ होते हैं जैसे कि पिस्सू के काटने से पड़ जाते हैं; ये ज्वर के दूसरे सप्ताह में पेट की त्वचा पर निकलते हैं; कुछ दिन ठहर कर जाते रहते हैं। भारतवासियों की काली त्वचा पर ये दाने भली प्रकार दिखाई नहीं देते; गोरी त्वचा पर अच्छी तरह दिखाई देते हैं।

टायफौयड् से बचने के उपाय

१. एक टीका* ईजाद हुआ है; यह दवा पिचकारी द्वारा त्वचा में पहुँचाई जाती है। इसके असर से साल भर के लिये रोगक्षमता

* Inoculation against Typhoid.

प्राप्त हो जाती है। एक औषधि ऐसी भी बनी है कि जिसके खाने से साल भर के लिये रोगक्षमता प्राप्त हो जाती है†।

२. ऐसे होटलों में खाना न खाओ जहाँ भोजन को खानसामा हाथों से छूता है या जहाँ पकने के बाद मक्खियाँ खाने पर बैठती हैं। बाज़ार में जो डबल रोटी खौंचे वाले गलियों में बेचते हैं वह खाने क़ाबिल नहीं होती।

३. मक्खी से डरो; उसको भोजन पर हरगिज़ न बैठने दो।

४. देखो कि तुम्हारी रसोई बनाने वाले और खाना परोसने वाले और पानी लाने वाले नौकर पाखाने जाने के बाद अपने हाथों को खूब साफ़ करते हैं।

५. दूध को उबाल कर पिओ।

६. हर एक जगह का पानी बिना सोचे समझे न पिओ। जिसके घर में टायफौयड् का रोगी हो या हाल ही में रोगी अच्छा हुआ हो उस घर का खाना और पानी ग्रहण न करो। बाज़ार का मलाई का बरफ़ भी अच्छा नहीं होता।

टायफौयड् के रोगी को क्या करना चाहिये

१. रोगी को अलग कमरे में रक्खो और वहाँ घर के और आदमियों को विशेष कर बच्चों को न जाने दो।

२. जो तीमारदारी करे वह रोगी को छूने के बाद अपने हाथ साबुन इत्यादि से धोवे।

३. रोगी के मल, मूत्र, पसीने में रोगाणु रहते हैं। मल, मूत्र जिस बरतन में रहे उस में रोगाणु नाशक घोल रक्खो। कुछ न बन

† Billi-vaccine.

अध्याय ७

कृमि रोग

१. अंकुषा (चित्र ६९)

यह कीड़ा कोई $\frac{1}{2}$ या $\frac{3}{4}$ इंच लम्बा और पेचक के धागे के बराबर मोटा होता है। उस का अगला सिरा मुड़ा रहता है इसी कारण वह अंकुषा कहलाता है। नर नारी से छोटा होता है।

मनुष्य-शरीर में कहाँ रहता है

वह आँतों में विशेषकर क्षुद्रांत्र और द्वादशांगुलांत्र में रहता है। ये कीड़े श्लैष्मिक कला को अपने मुँह से पकड़े रहते हैं और वहाँ का खून पीते हैं और कला को ज़ख़्मी करते हैं। इस के अतिरिक्त उन का ज़हर खून में पहुँचकर मनुष्य को अत्यंत हानि पहुँचाता है और स्वास्थ्य को बिगाड़ता है।

जीवनी

आँतों में नारी बहुत से अंडे देती है। ये अंडे पाखाने में लाखों की संख्या में निकला करते हैं। जब तक शरीर से बाहर निकलने का

चित्र ६९ अंकुषा की जीवनी
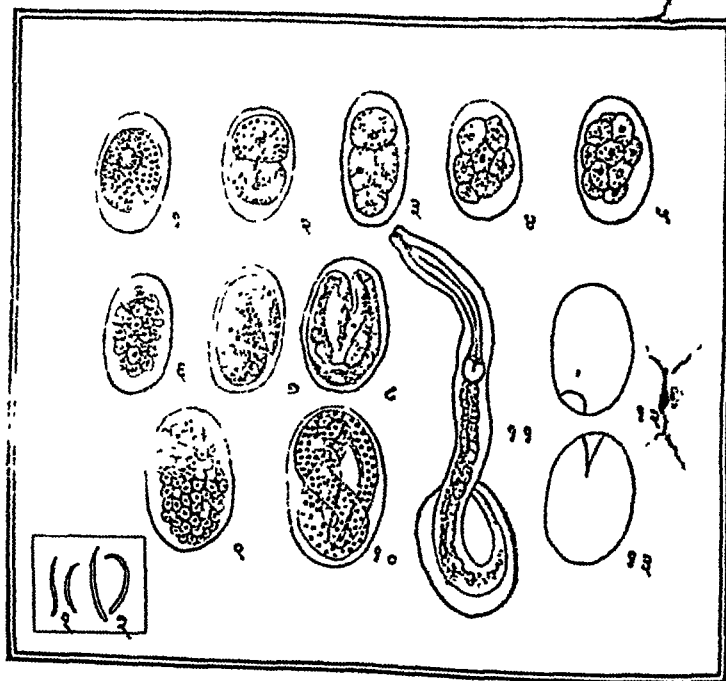
By permission of His Majesty's stationery office from Memoranda of diseases of Tropical areas

१=अंडा

१,२=आँतों में रहने वाली अवस्था

३=चार भाग वाली अवस्था जो पाखाने में दिखाई देती है

४,५=कभी कभी यह अवस्था भी पाखाने में देख पड़ती है

६,७,८,९,१०=ये अवस्थाएं शरीर के बाहर भूमि में रहती हैं

११-अंडे से लहर्वा निकल रहा है

कोने में १,२=अंकुषा वास्तविक परिमाण

समय आता है। प्रत्येक अंडे की सेल के चार भाग हो जाते हैं; कभी कभी दो ही भाग होने पाते हैं; कभी आठ और सोलह भाग तक हो जाते हैं। इसी प्रकार भ्रूण बढ़ता है (चित्र ६९ में १, २, ३, ४, ५)। शरीर से बाहर आ कर २४ घंटे में अंडे से एक लहर्वा निकलता है। यह लहर्वा पाखाने और मिट्टी में रहता है। दो चोली बदलने के बाद यह लहर्वा इस योग्य हो जाता है कि मौक़ा मिले तो मनुष्य की त्वचा को भेद कर उस के शरीर में घुस जावे।

मानो लहर्वा त्वचा में घुस गया। त्वचा में हो कर वह रक्त-वाहिनियों द्वारा हृदय में पहुँचता है और वहाँ से फुफ्फुस में जाता है। फुफ्फुस से श्वास प्रनालियों में होता हुआ ऊपर को स्वर यंत्र में पहुँचता है। वहाँ से रेंगता हुआ अन्न प्रनाली में घुसता है और फिर वहाँ से आमाशय और क्षुद्रांत्र में पहुँचता है। क्षुद्रांत्र में जाकर बस जाता है। यहाँ नर नारियों का विवाह होता है और उन की सन्तान (अंडे) विष्ठा द्वारा बाहरी जगत में पहुँचती है।

रोग के मुख्य लक्षण

एक लहर्वे से एक ही जवान कीड़ा बनता है। अंडों से आँत के अन्दर कीड़े नहीं बनते। कीड़े बनने के लिये यह आवश्यक है कि अंडे पहले शरीर से बाहर निकल कर भूमि पर रहें। इस से यह स्पष्ट है कि जितने लहर्वे शरीर में घुसते हैं उतने ही कीड़े वहाँ बनते हैं। ५० कीड़ों से कम से मनुष्य को कोई हानि नहीं पहुँचती। १०० से अधिक कीड़े अवश्य अपना असर दिखाते हैं। जहाँ लहर्वा या लहर्वे खाल में घुसते हैं वहाँ थोड़ी सी खुजली होती है और ज़ख़्म भी बन जाता है। जब कीड़े ५० से अधिक, अर्थात् १००-५००-१००० इत्यादि होते हैं तो निम्नलिखित बातें मालूम होती हैं:—

चित्र ७० अंकुश [illegible] कला में चिपटे हुए हैं
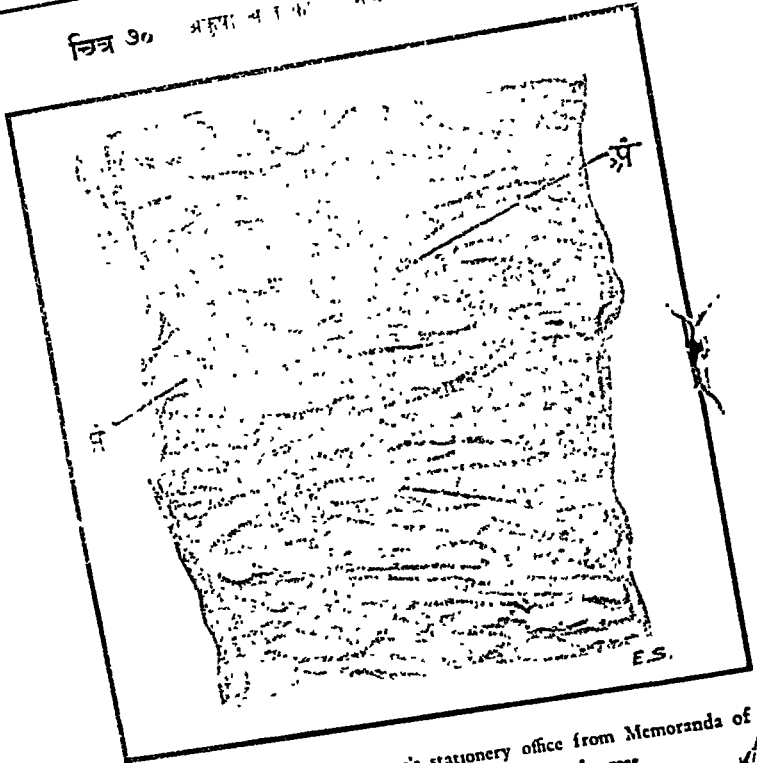
By permission of His Majesty's stationery office from Memoranda of diseases of Tropical and sub-tropical areas

(१) यदि रोगी छोटा बच्चा है, तो उस का वर्धन रुक जाता है। बालक कमज़ोर और शक्तिहीन दिखाई देता है। पढ़ने लिखने और खेल कूद में मन नहीं लगता। वह और बच्चों से सभी कामों में पीछे रहता है।

(२) यदि रोगी बड़ा है तो कमज़ोरी और शक्तिहीनता के अतिरिक्त, हाथों पैरों पर वरम; त्वचा का रंग फीका, परिश्रम करने को जी न चाहना, बदहज़मी, क़ब्ज़, सर में दर्द, चक्कर आना, शीघ्र थक जाना। रक्तहीनता के कारण स्त्रियों का मासिक-धर्म बंद हो जाता है।

कीड़े शरीर में कैसे पहुँचते हैं

जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं लहवें त्वचा में होकर घुसते हैं। यदि मैला पानी (लहवें वाला) पिया जावे या भोजन में पाखाना मिल जावे तो भी लहवें शरीर में पहुँच जाते हैं।

बचने के उपाय

१. खेतों में या जहाँ लोग हगते हों कभी भी नंगे पैर न जाओ। यह रोग अधिकतर गँवारों को ही होता है जो नंगे पैर फिरा करते हैं।

२. जहाँ चाहे हंग देना बहुत बुरा है। खेतों में हगना हो तो वहाँ खंदकें या नालियाँ खुद वा लेनी चाहिये और पाखाने पर मिट्टी डाल देनी चाहिये। न हर जगह पाखाना पड़ा रहेगा न पाखाने में पैर सनेंगे और न लहवें पैर में घुस पावेंगे।

३. पानी और भोजन को पाखाने से बचाओ; गंदे तालाब में न नहाओ।

४. जब यह मालूम हो कि अमुक व्यक्ति के पाखाने में अंडे निकलते हैं तो उस पाखाने को जलाना चाहिये क्योंकि पाखाने पर मिट्टी डाल देना काफ़ी नहीं है। लहवें ४ फुट मिट्टी में से रेंग कर उपर चले आते हैं परन्तु वह इधर उधर अधिक नहीं रेंगते।

५. हर एक रोगी का इलाज करना चाहिये ताकि उस के पाखाने से औरों को हानि न पहुँचे और वह खुद मेहनत करके अपना पेट

मर सकें और पराश्रयी न रहें। कार्बन टेट्राक्लोराइड, चीनोपोडियम का तेल, अजवायन का सत, इन के लिये अमोघ औषधियाँ हैं।

२. गौ पट्टिका (चित्र ७१)

नर नारी का कोई भेद नहीं होता। पूरे कीड़े की लम्बाई २-४ गज होती है; नापने वाला कपड़े के फीते की तरह पतला और चपटा होने के कारण इसका नाम पट्टिका रक्खा गया है। इसकी चौड़ाई अधिक से अधिक ½ इंच होती है। उसके बहुत से टुकड़े होते हैं जो एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। पूरे कीड़े में कोई १००० टुकड़े होते हैं। पाखाने में यही टुकड़े निकला करते हैं। इनका रंग, लम्बाई, चौड़ाई लौकी कद्दू के बीजों से मिलता जुलता है, इस कारण ये टुकड़े कद्दू-दाने कहलाते हैं। ज्यों ज्यों सिर के निकट पहुँचते जाते हैं; टुकड़े छोटे होते जाते हैं; जितना सिर से दूर चलिये उतने ही टुकड़े बड़े दिखाई देंगे।

कीड़ा कहाँ रहता है

प्रौढ़ कीड़ा मनुष्य की क्षुद्रांत्र में रहता है। पाखाने में इसके टुकड़े निकला करते हैं। टुकड़ों में अंडे होते हैं। पाखाने में अंडे भी निकलते हैं।

कीड़े की दूसरी अवस्था

मनुष्य को अंडे खाने से कोई हानि नहीं पहुँचती। यदि मनुष्य अंडे खा भी जावे (दूसरे के पाखाने द्वारा) तो ये अंडे पेट में जाकर मर जाते हैं। परन्तु यदि अंडों को मवेशी (गाय, बैल) खा जावें तो उनके पेट में जाकर अंडे से लहर्वा बन जाता है। यह लहर्वा धीरे धीरे मवेशी की पेशियों (गोश्त) में पहुँच जाता है और वहाँ पहुँचकर उससे एक कोष बन जाता है। यदि मनुष्य इस कोष वाले मवेशी के गोश्त

चित्र ७१ गो पट्टिका
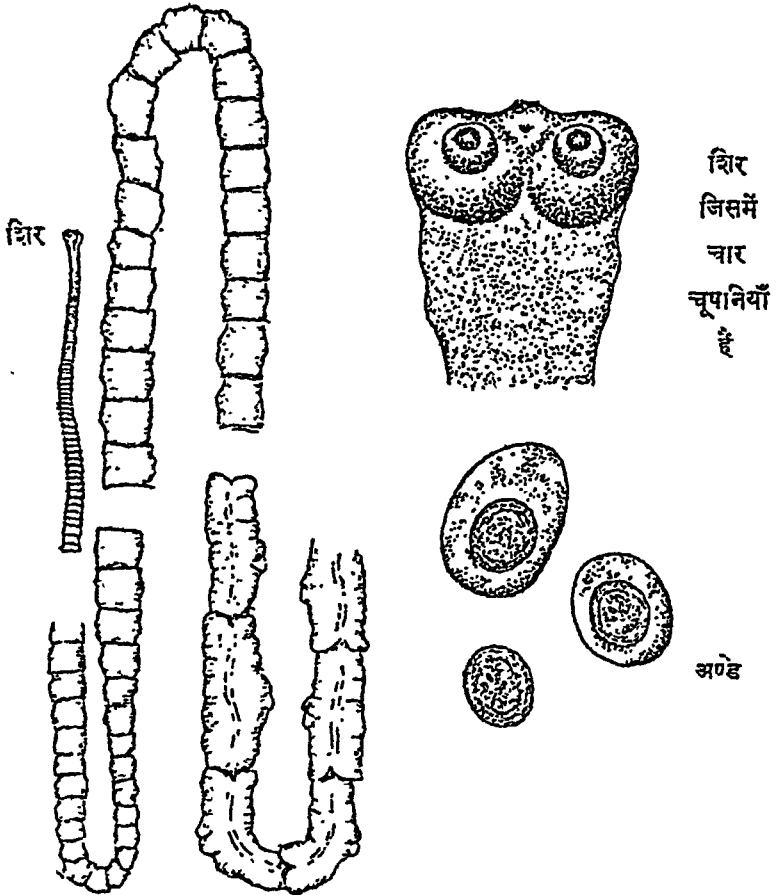
After Simon

को बिना अच्छी तरह पकाए खाले तो उसकी आँतों में इस कोप से फिर एक लार्वा निकल आवेगा और वह बढ़कर कीड़ा बन जावेगा। बिना

कोपावस्था वाले लहवें के खाये जो कि मवेशी के गोश्त में रहते हैं यह कीड़ा मनुष्य की आंतों में नहीं बन सकता, इससे यह स्पष्ट है कि जो लोग गाय का गोश्त नहीं खाते उनमें यह कीड़ा नहीं होता। यह कीड़ा मुसलमान, ईसाई या चमारादि हिन्दुओं में जो गाय का गोश्त खानेवाले हैं होता है।

बचने के उपाय

१. गाय का गोश्त न खाओ या इतना पकाकर खाओ कि जिससे यदि पट्टिका कोप हों तो मर जावें।

२. जिस व्यक्ति को यह रोग हो उसको मीठे कद्दू के बीज खिलाकर या "एक्स्ट्रेक्ट आव मेल फर्न (Extract of Male Fern)" खिलाकर अच्छा करो।

३. रोगी घास पर न हगे क्योंकि यदि गाय उसका पाखाना खावेगी तो उसके गोश्त में लहवें बन जावेंगे।

२. शूकर पट्टिका (चित्र ७२)

नर नारी का कोई भेद नहीं होता। यह भी गोपट्टिका की तरह से होता है भेद यह है कि इसके सिर पर काँटे होते हैं जो गो पट्टिका के सिर पर नहीं रहते। सिर पर चार चूपनियाँ होती हैं जिनके द्वारा वह आँत में चिपटा रहता है। लम्बाई २-३ गज़; टुकड़ों की लम्बाई $\frac{1}{2}$ इंच चौड़ाई $\frac{1}{3}$ इंच।

कृमि क्षुद्रांत्र में रहता है। पाखाने में टुकड़े और अंडे निकलते हैं।

चित्र ७२ शूकर पट्टिका
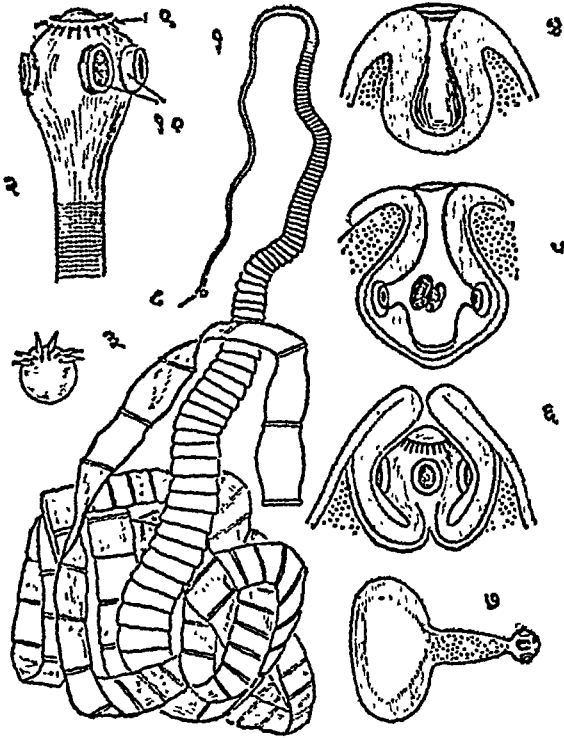
From Davis's Natural History of Animals

१=पूरा कीड़ा

८=शिर

२=बड़ा करके दिखाया गया शिर

१०=चूपनी

९=काँटे

कृमि का शूकर (सुअर) से सम्बन्ध

यदि सुअर मनुष्य के पाखाने को जिसमें कृमि के टुकड़े और अंडे हों खाले तो अंडे से उसकी आँत में लहर्वा बन जावेगा और यह लहर्वा उसके गोश्त में पहुँचकर कोष बन जावेगा। अब यदि मनुष्य सुअर के इस कोषवाले गोश्त को बिना अच्छी तरह और उचित समय तक पकाये खा लेता है तो इस कोष से उसकी आँत के अन्दर कृमि बन जावेगा। कीड़े की दो अवस्थाएं हुईं—एक मनुष्य में रहनेवाली, दूसरी शूकर में रहनेवाली।

यदि मनुष्य अंडे खाले तो क्या होगा

गो पट्टिका के अंडे मनुष्य के पेट में जाकर मर जाते हैं और उनके खाने से कीड़ा नहीं बन सकता। परन्तु शूकर पट्टिका के अंडे खाने से उसके शरीर में शूकर पट्टिका कोष बन जावेंगे।

मनुष्य अंडे कैसे खा सकता है

अपना या दूसरे मनुष्य का पाखाना खाकर। पाखाना भोजन और जल द्वारा या खेतों से आयी हुई तरकारियों द्वारा खाया जाता है। जो व्यक्ति आवदस्त लेने के बाद अपने हाथों को अच्छी तरह साफ़ नहीं करते, उनके हाथों पर विशेषकर नाखूनों के नीचे विष्टा का कुछ अंश जिसमें अंडे होते हैं लगा रह जाता है। जब यह गंदा मनुष्य अपनी अंगुली अपने मुँह में देता है तो अपना पाखाना अपने आप खाता है।

४. कुक्कुर पट्टिका

नर नारी का कोई भेद नहीं होता। यह कीड़ा बहुत छोटा होता है। प्रौढ़ कीड़े की लम्बाई $\frac{1}{4}$ इंच होती है। शिर को

छोड़ कर केवल २ या ४ टुकड़े होते हैं । शिर पर २८-५० काँटे होते हैं ।

कहाँ पाया जाता है

१. प्रौढ़ कीड़ा कुत्ते, गीदड़, भेड़िये और कभी कभी लोमड़ी और बिल्ली को छोटी आँतों में रहता है ।

२. इन जानवरों के पाखाने में कीड़े और कीड़ों के अंडे पाए जाते हैं । अंडों को खाने से मनुष्य, गाय, बैल, भेड़, घोड़े और सुअर को रोग उत्पन्न होता है ।

३. इस अंडे के खाने से खाने वालों में एक लहर्वा बनता है जो कोषावस्था में रहता है । ये कोष घासखोरों के (विशेष कर भेड़, ढोर और घोड़ों के) वैसे तो प्रत्येक अंग में परन्तु विशेष कर यकृत में पाये जाते हैं । थैली में एक तरल रहता है । एक कोष से अनेक कोष बन जाते हैं । ज्यों ज्यों कोषों की संख्या बढ़ती है वह अंग जिस में वे कोष हैं बड़े होते जाते हैं । ये कोष बड़े भयानक होते हैं । सब से बड़ा कोष बच्चे के सर के बराबार बड़ा हो सकता है ।

कोषों के अन्दर तरल में इस कीड़े के सहस्रों सिर रहते हैं । प्रत्येक सिर से एक कीड़ा बन सकता है । इस कीड़े की उत्पत्ति बड़ी विचित्र है । एक अंडे से एक लहर्वा जिससे एक कोष बनता है; फिर एक कोष से अनेक कोष और प्रत्येक कोष को दीवार से अनेक सिर बनते हैं, एक अंडे से लाखों सिर बन जाते हैं; फिर प्रत्येक सिर से एक कीड़ा बन जाता है ।

मनुष्य में कौन अवस्था रहती है

मनुष्य में थैली वाली अवस्था रहती है । थैली का वही असर

होता है जैसे किसी स्वोली का। थैली किसी ही अंग में बन सकती यकृत में, मस्तिष्क में, प्लीहा में, फुप्फुस में इत्यादि।

मनुष्य (और गाय) को रोग कैसे होता है

जिन जानवरों के पेट में प्रौढ़ कीड़ा रहता है उनका पाखाना खाने से। कुत्ता, गीदड़, लोमड़ी इत्यादि चरागाह में पाखाना फिर देते हैं; गाय, घोड़ा यहाँ चरते हैं; यदि पाखाने में कीड़े के अंडे हैं तो अंडे शरीर में पहुँच कर कोष बनाते हैं।

कुत्ता खेतों में पाखाना फिरता है, वहाँ हरी तरकारियाँ रहती हैं; पाखाना तरकारियों में लग सकता है और यदि ये तरकारियाँ बिना उबाले मनुष्य खाले तो उसको रोग हो सकता है। मनुष्य कुत्ते को प्यार भी करता है; उसका हाथ कुत्ते के मलद्वार पर भी लगता है; यदि वहाँ पाखाना लगा हो तो कुत्ते का पाखाना मनुष्य के हाथ द्वारा मनुष्य के मुह में पहुँच सकता है; कुत्ता अपनी जीभ से अपने मलद्वार को भी चाटा करता है; अपने मलद्वार को चाट वह अपने मालिक के हाथ को भी चाट लेता है; कभी कभी उसका मालिक उसका मुँह भी चाट लेता है (आपने अंगरेज़ों को इस प्रकार प्यार करते देखा होगा) और इस प्रकार उसका पाखाना भी चाट लेता है।

५. केंचवा

यह कीड़ा बरसाती केंचवे की तरह से होता है परन्तु रंग में धूसर श्वेत या मैला श्वेत होता है। नर की लम्बाई १० इंच मोटाई $\frac{1}{6}$ इंच होती है; नर का पिछला सिरा नोकीला और मुड़ा रहता है। नारी की लम्बाई १२-१४ इंच और मोटाई $\frac{1}{8}$ इं० होती है; पिछला सिरा सीधा होता है और नोकीला भी नहीं होता।
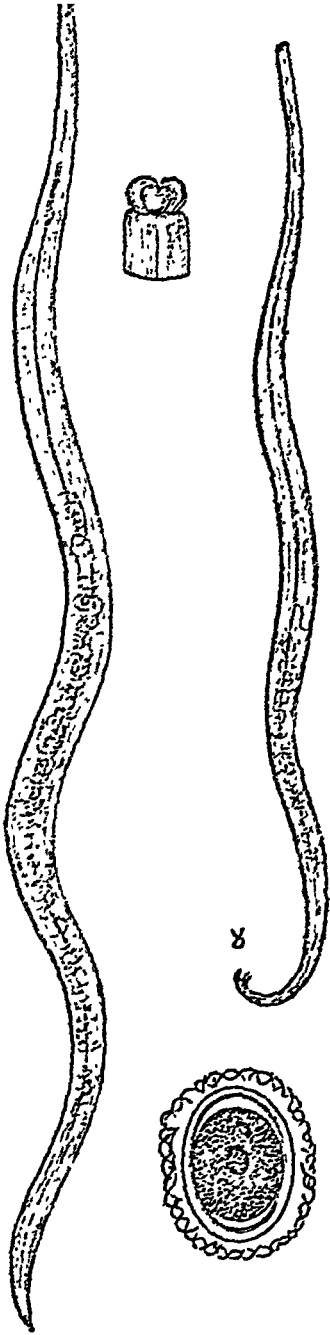
नारी
नर
४
पिछला सिरा
मुड़ा हुआ
अंडा

कहाँ रहता है

(१) यह कीड़ा मनुष्य की आँतों में रहता है। कभी कभी सुअर, भेड़ और ढोरों में भी पाया जाता है। आम तौर से क्षुद्रांत्र में रहता है; परन्तु यह कीड़ा खूब भ्रमण करने वाला है; इस कारण यह बृहद् अंत्र, आमाशय और फेफड़े में भी पहुँच जाता है। इस ओर से (अर्थात् मलद्वार और मुँह) दोनों के रास्ते निकलता है।

(२) पाखाने में कीड़े के अंडे निकला करते हैं। इन अंडों को खाने से कीड़ा नहीं बन सकता।

(३) कुछ दिन शरीर से बाहर रहने के पश्चात् अंडे में लहर्वा बनता है। यदि अंडा अब खाया जाये तो वह शरीर में पहुँच कर बढ़ सकेगा और उससे कीड़ा बनेगा।

एक नारी केंचुवे के शरीर में २७०००००० अंडे होते हैं और वह २००००० अंडे रोज़ देती है।

मनुष्य में कीड़ा कैसे बनता है

यदि पाखाने में निकलते ही अंडे खा लिये जावें तो वे पेट में जा कर मर जावेंगे। वे बढ़ न पावेंगे।

शरीर से बाहर आने के कुछ सप्ताह पीछे अंडे के अन्दर लहर्वा बनता है। यदि अब अर्थात् लहर्वा बन जाने पर वे अंडे पेट में पहुँच जावें तो शरीर में पहुँचने के कुछ दिनों बाद कृमि बन जावेंगे। यह लहर्वे वाले अंडे दूध, मिठाई, तरकारियों और जल द्वारा पेट में पहुँचते हैं। शरीर में पहुँच कर लहर्वा एक बार समस्त शरीर की यात्रा करता है; लौट कर आँतों में रहने लगता है। यहीं नर नारी मैथुन करते हैं और नारी अंडे देती है।

कीड़े से क्या क्या विकार उत्पन्न होते हैं

कीड़े चुप चाप एक जगह नहीं रहते, घूमा करते हैं। इसी कारण पाखाने में निकलने के अतिरिक्त कभी कभी मुँह से कै द्वारा और कभी कभी नाक से निकलते हैं। पित्त प्रनाली में घुस जाते हैं जिसके कारण (पित्त रुकने से) पीलिया हो जाता है; कभी कभी उपांत्र में घुस कर उपांत्र प्रदाह पैदा करते हैं। अकसर बालकों के पेट में दर्द होता है; कभी कभी मंदाग्नि रहती है; भूक नहीं लगती; क़ब्ज़ रहता है। कभी कभी वहुत से कीड़े एक स्थान में इकट्ठे हो जाते हैं और पाखाने का वंध पड़ जाता है।

जव लहर्वा यात्रा करता है तो शिशुओं में न्यूमोनिया के आसार नमूदार होते हैं (जव लहर्वे फुप्फुस में पहुँचते हैं)।

चिकित्सा

सेन्टोनीन (Santonin) अमोघौषधि है।

बचने के उपाय

खेतों में जहाँ तरकारियाँ उगती हों पाखाना न फिरना चाहिये। तालावों का पानी जहाँ आवदस्त लिया जाता हो हरगिज़ न पिओ। सुअर से भी परहेज़ करो क्योंकि उसके पेट में भी यह कीड़ा पाया जाता है और उस के पाखाने में भी अंडे हो सकते हैं। मक्खी भिनकी हुई चीज़ें न खाओ।

६. चुन्ने (चुमूने)

ये कीड़े पेचक के धागे जैसे वारीक होते हैं। नर $\frac{1}{6}$ इंच लम्बा होता है; उस का पिछला सिरा मुड़ा होता है; नारी $\frac{1}{2}$ इंच

लम्बी होती है और उसका पिछला सिरा (या पूँछ) सीधा और नोकीला होता है।

कहाँ रहते हैं

जवान कीड़े क्षुद्रांत्र में रहते हैं। नर नारी को गर्भित करके शीघ्र मर जाता है। गर्भित नारियाँ नीचे उतर कर बृहत् अंत्र में पहुँचती हैं और मलाशय में रहती है।

कीड़े क्या करते हैं

नारी आँतों के अंदर अंडे नहीं देती। वह गुदा से निकलकर गुदा के पास की त्वचा पर अंडे देती है और फिर रेंग कर भीतर घुस जाती है। उसके बाहर आने और फिर अंदर घुसने से एक विशेष प्रकार की खुजली होती है। आम तौर से नारी रात्रि के समय बाहर निकलती है। अंडे त्वचा पर चिपक जाते हैं और खुजाते समय नाखूनों के नीचे घुस जाते हैं। निकलने के ३६ घंटे बाद अंडे में लहर्वा बन जाता है। यदि इस समय उसको खा जावें तो अंडे से कीड़ा बन जावेगा।

अंडे हमारे शरीर में कैसे पहुँचते हैं

गंदी आदत द्वारा ; अपना पाखाना अपने आप खाने से या दूसरों को खिलाने से। इस कीड़े से गुदा के पास बेहद खुजली होती है। बच्चा खुजाए बिना नहीं रह सकता; बड़े भी गुदा को खुजाते रहते हैं। यदि कपड़े में से खुजाया जावे और अँगुली गुदा के भीतर न घुसे तब तो कोई हर्ज नहीं; अकसर अँगुली बिना कपड़े के गुदा के पास और उसके अंदर भी दी जाती है। कीड़े के अंडे और कभी-कभी ज़रा सा मल भी नाखूनों के नीचे जमा हो जाते हैं। बच्चों को अपनी

अँगुली मुँह में डालने का शौक़ भी होता है; माता पिता भी अपनी अँगुली अपने मुँह में देने के अतिरिक्त अपने बच्चों के मुँह में दे देते हैं। इस प्रकार बच्चा न केवल अंडे अपनी अँगुलियों द्वारा ग्रहण करता है बल्कि अपने माता पिता से भी; यही नहीं जब बच्चा रात्रि को चिल्लाता है तो माता पिता उसकी गुदा को खुजा देते हैं और अपने नाखूनों के नीचे उसका मल जमा करते हैं।

मातापिता के अलावा नौकर चाकर महा गंदे होते हैं और उनके नाखूनों में तो अकसर मल भरा रहता है। ये लोग कभी-कभी बच्चों के मुंह में अँगुली दे देते हैं। मक्खी द्वारा भी अंडे, मिठाई और दूध द्वारा पहुँच सकते हैं।

चिकित्सा

नाखून काट कर छोटे रक्खो ताकि उनके नीचे अंडे न जमा होने पावें और अच्छा होने के पीछे फिर नये कीड़े न बनें। आबदस्त लेने के बाद हाथ खूब साबुन से मल कर साफ़ करो। मलद्वार पर डाक्टर से पूछ कर पारे की मरहम लगाओ ताकि खुजली कम रहे। और वहाँ आये हुए चुन्ने मर जावें। बच्चों को नंगा मत सुलाओ, जाँगिया पहनाओ ताकि यदि खुजावें तो कपड़े में से खुजावें।

नमक का घोल और कुआशिया का पानी कीड़ों को निकाल देता है। हर रोज़ रात को १$\frac{1}{8}$ तोला खाने के नमक को १$\frac{1}{8}$ पाव पानी में घोल कर पाख़ाने के रास्ते पिचकारी द्वारा चढ़ाओ; एक दो सप्ताह पीछे कीड़े सब निकल जावेंगे। यदि कसर रह जावे तो कुआशिया (Quassia) के पानी का अमल दो।

आँतों में उपरोक्त ६ कीड़ों के अतिरिक्त और भी कई कीड़े रहते हैं उनका वृत्तांत, यदि इच्छा हो, तो किसी बड़े ग्रन्थ में पढ़िये।

७. नाहरवा

नर और नारी दोनों होते हैं। नर केवल १ इंच लम्बा होता है; परन्तु नारी की लम्बाई ४० इंच तक होती है। नारी को गर्भित करने के पश्चात् नर शीघ्र मर जाता है इसलिए नारी कीड़े ही देखने में आते हैं। यह कृमि त्वचा के नीचे विशेषकर पैर, टखना या टाँग में पाया जाता है। पहले एक छाला सा पड़ जाता है, यह फूट जाता है और इस ज़ख्म में से सुफेद सुफेद एक चीज़ दिखाई देने लगती है यह नारी नाहरवा का गर्भाशय है। इस स्थान से जो पानी निकलता है उस में छोटे छोटे कीड़े होते हैं; ये नाहरवा के लहर्वे हैं (चित्र ७४)। (नदी और तालाब में) चलने फिरने से ये लहर्वे पानी में पहुँच जाते हैं और वहाँ साइक्लोप्स (Cyclops) नामक एक नन्हें कीड़े (चित्र ७५ में २) के पेट में चले जाते हैं। वहाँ ये लहर्वे कुछ दिनों रहते हैं। जब मनुष्य इस पानी द्वारा साइक्लोप्स को निगल जाता है तो आमाशयिक रस के प्रभाव से साइक्लोप्स मर जाता है और उसका शरीर पच जाता है और लहर्वे उसके शरीर से बाहर निकल आते हैं। मनुष्य के पेट से ये लहर्वे फिर और स्थानों में पहुँचते हैं; नारी को गर्भित करने के पश्चात् नर मर जाता है; नारी ऐसे स्थान में पहुँचती है जो पानी से अकसर भीगता है जैसे टाँगें। भिश्तियों में जो पानी की मशक पीठ पर लाद कर चलते हैं और जिन की पीठ अकसर भीगती है यह कीड़ा पीठ पर भी निकल आता है।

बचने के उपाय

जिन देशों में यह मर्ज़ होता हो (पंजाब में, पेशावर की तरफ़,

चित्र ७५ नाहरुआ

चित्र ७५
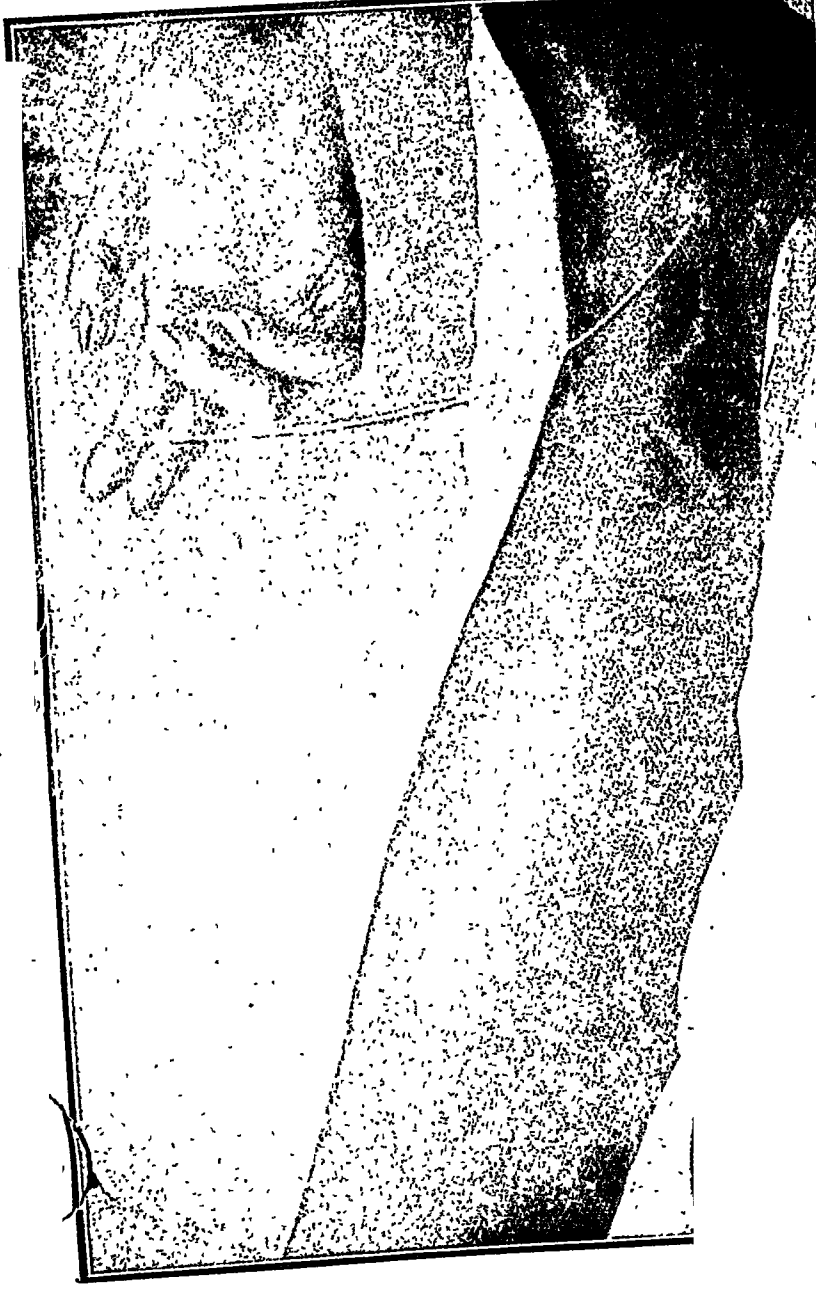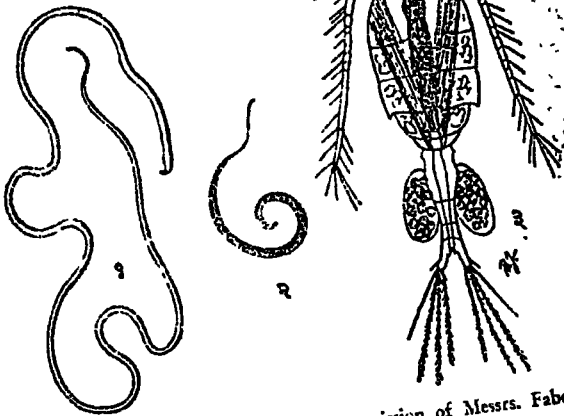
From "Fight against Infection" by permission of Messrs. Faber and Gwyr Ltd., London.

१ = नाहरवा, २ = लहर्वा, ३ = साइक्लोप्स नामक कीड़ा जो गंदे पानी में रहता है।

राजपूताने में) वहाँ नदी, नाले, तालाब का पानी बिना उबाले न पिओ।

अध्याय ८

वायु

खाद्य और जल से भी अधिक आवश्यक हमारे जीवन के लिये वायु है। वायु पृथिवी के चारों ओर है और वायु मंडल की गहराई लगभग ५० मील है। नोषजन (Nitrogen या नत्रजन), ओषजन (Oxygen), कर्बनद्विओषिद् (Carbon dioxide) और जलीय वाष्प वायु के मुख्य अवयव हैं। इनके अतिरिक्त और कई गैसें रहती हैं और थोड़ी सी धूल और कीटाणु भी पाये जाते हैं।

वायु के मुख्य अवयव प्रति १०० भाग

ओषजन—२०·९३

नोषजन—७८·१०

आर्गन—०·९४

कर्बनद्विओषिद्—०·०३

जल वाष्प, धूल, कीटाणु थोड़ी सी

स्वांस लेने से वायु के संगठन में परिवर्तन

जब हम स्वास लेते हैं तो वायु में से हमारे रक्त कण ओषजन ले

क्षय भी होता है। पौधे वायु से कर्बनद्विओषिद् ले लेते हैं और उसके कर्बन से अपना शरीर बनाते हैं।

एक पुरुष ०·६ घन फुट, एक स्त्री ०·४ घन फुट प्रति घंटा निकालती है। अधिक मेहनत करने से अधिक कओ$_2$ निकलती है। वायु में प्रति दस हज़ार भाग १० भाग से अधिक कओ$_2$ न होनी चाहिये। २% से स्वांस तेज़ हो जाता है; ५% से हँपनी आ जाती है; ७-८% से स्वांस लेने में कष्ट होने लगता है, सिर में दर्द होता है, मतली होती है; सर्दी लगने लगती है; २०% से मनुष्य बेहोश हो जाता है और फिर मर जाता है।

ताज़ी हवा

स्थिर वायु स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। जब हवा चलती रहती है तो हम को हर समय ताज़ी हवा मिलती है; गंदी हवा एक स्थान से दूसरे स्थान को चली जाती है और हवा का ताप भी ठीक रहता है। जो वायु हम प्रश्वास द्वारा निकालते हैं वह अंदर जाने वाली वायु की अपेक्षा गरम होती है; यदि हवा न चले तो कमरे की हवा इतनी गरम हो जाती है कि चित्त परेशान हो जावेगा। पंखे से हवा की अदला बदली हो जाती है। जब हवा एक मील फी घंटे की चाल से चलती है तो मालूम भी नहीं होती; २ मील की चाल से चले तो मालूम होने लगती है; २ मील से अधिक चले तो झोंका लगने लगता है।

वायु की गरमी और तरी का स्वास्थ्य पर असर

वायु में जल वाष्प रहती है। सूर्य और पृथिवी की गरमी से वायु गरम हो जाती है। वायु में कितनी गरमी समा सकती है यह उसकी

चित्र ७०

ओषजन
नोषजन
कार्बनद्विओषिद

वायु

वायु

वायु

ओषजन

कार्बनद्विओषिद

मृत वनस्पति

मृत प्राणि

कीट

कीट

नोषित
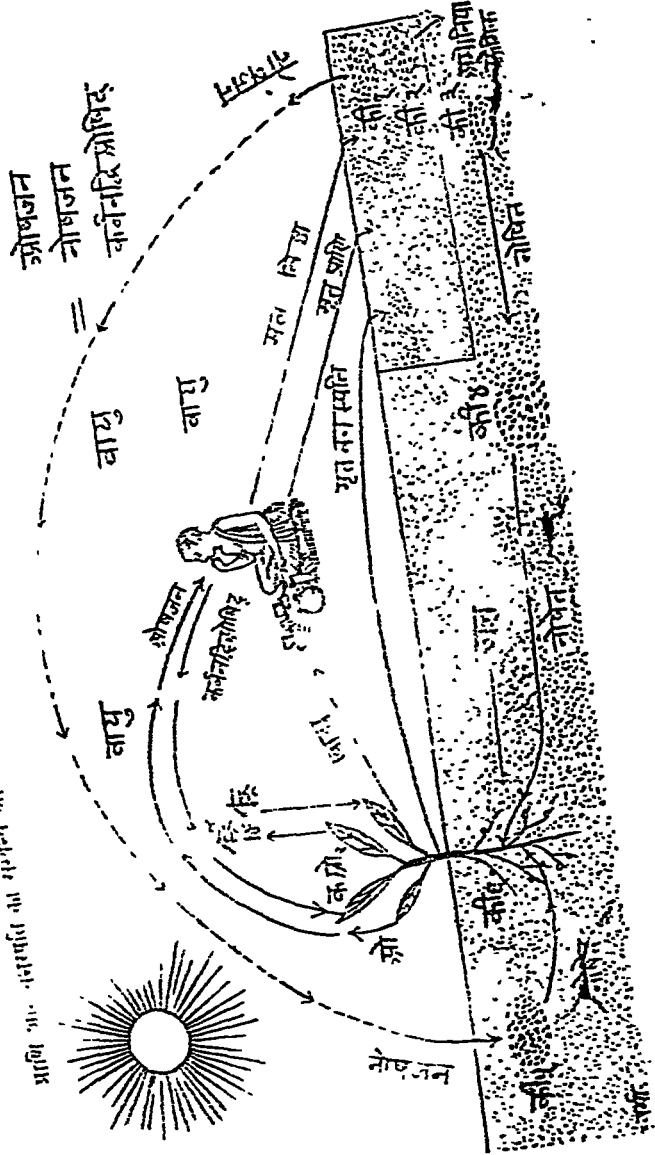
चित्र ७८ की व्याख्या

१. प्राणि वायु से ओपजन ग्रहण करता है और कर्बनद्विओषिद् वायु को देता है।

२. पौधा दिन में वायु से कर्बनद्विओषिद् लेता है और सूर्य के प्रकाश की सहायता से उससे अपने शरीर में काष्ठोज, श्वेतसार, शर्करा इत्यादि बनाता है।

३. रात्रि के समय पौधा कर्बनद्विओषिद् निकालता है और ओषजन वायु से ग्रहण करता है।

४. प्राणि पौधे को खाकर खाद्य पदार्थ ग्रहण करता है (प्रोटीन, कर्बोज, वसा इत्यादि)

५. मृत प्राणि और मृत पौधे दोनों भूमि में जा मिलते हैं; प्राणि का मल विष्ठा भी भूमि में ही रहता है। ये सब चीज़ें (मृत शरीर, मल मूत्र) सड़ती हैं और कीटाणु इन पर निर्वाह करते हैं।

६. इन मृत शरीरों और मल विष्ठा के छिन्न भिन्न होने से नोपजन बनती है जो वायु में मिल जाती है।

७. भूमि में एक प्रकार के कीटाणु नोषजन से अमोनिया बनाते हैं।

८. दूसरे प्रकार के कीटाणु अमोनिया के योगिकों से नोषित (Nitrites) बनाते हैं।

९. तीसरे प्रकार के कीटाणु नोषितों से नोषेत (Nitrates) बनाते हैं। पौधे इन नोषेतों को ग्रहण करके नत्रजनीय (नोपजनीय) पदार्थ जैसे प्रोटीन बनाते हैं।

१०. कुछ भूमि के कीटाणु ऐसे भी होते हैं कि वायु से नोपजन ग्रहण करके पौधों के शरीरों में पहुँचा देते हैं।

हानि पहुँचाती है । श्वासपथ के रोग और नाड़ी शूल होने का भी डर रहता है ठंढी तर वायु में अधिक कपड़ा पहनने की आवश्यकता है; खूब शारीरिक परिश्रम करना चाहिये और पौष्टिक, उष्णता उत्पन्न करने वाला भोजन खाना चाहिये ।

गरम खुश्क वायु

ऐसी वायु ग्रीष्म ऋतु में, भट्ठी के पास, अंजन के पास होती है । पसीना अधिक आने के कारण शारीरिक तरल गाढ़े हो जाते हैं । मनुष्य शरीर में कोई ५८·५% जल होता है; यदि जल केवल २१% रह जावे तो मृत्यु हो जाती है । ऐसी वायु में प्यास खूब लगती है और उस को समय समय पर ठंढा जल पीकर बुझाते रहना चाहिये । गरम खुश्क वायु श्वास पथ की श्लैष्मिक कला को हानि पहुँचाती है । यदि कमरे की वायु बहुत गरम और खुश्क है तो कमरे में पानी से भीगे कपड़े लटकाने चाहिये; फूलों और पौधों के गमले रक्खे जा सकते हैं; इन में पानी भरा रहना चाहिये; बरतनों में पानी भर कर रक्खा जा सकता है । पानी पंखे के पास रक्खा जावे तो वायु शीघ्र थोड़ी बहुत तर हो जाती है ।

सर्द खुश्क वायु

स्वास्थ्य के लिये अच्छी होती है । शरीर फुरतीला रहता है । स्वांस गहरा आता है; रक्त संचार खूब होता है; पाचन शक्ति बढ़ जाती है; शरीर की सब क्रियाएं तेज़ हो जाती हैं । ऐसी हवा पहाड़ों पर मिलती है ।

ताज़ी हवा—ख़राब हवा

रहने वाले कमरे की वायु खुले मैदान की वायु की अपेक्षा गंदी या दूषित होती है । जब हम स्वांस लेते हैं तो स्वांस द्वारा कर्बनद्विओ-

पिढ़, जलीय वाष्प और ... प्रकार के उड़नशील पदार्थ हमारे शरीर से
बाहर निकल कर वायु में मिल जाते हैं। यदि वायु स्थिर हो तो वह
शीघ्र गरम हो जाती है और हम को बुरी मालूम होने लगती है।
काम करने को जी नहीं चाहता; ध्यान नहीं लगता, आँखों में और
सिर में दर्द होने लगता है; जी चाहता है कि वहाँ से हट कर खुली
हवा में चले जावें।

यदि कमरे में एक से अधिक मनुष्य हों अर्थात् वहाँ भीड़ हो जैसे
कि सभा, थियेटर और सिनेमा घरों में होती है तो ऊपर लिखी बातें
और भी जल्दी पैदा होती हैं।

जब हम उस कमरे से बाहर खुली हवा में आ जाते हैं तो हमारा
चित्त एक दम प्रसन्न हो जाता है। पहली हवा अर्थात् कमरे की हवा
जिस से हमारी तबियत खराब हुई थी दूषित वायु या खराब हवा
कहलाती है; दूसरी खुले मैदान की वायु जिस से चित्त प्रसन्न हो गया
था अच्छी या ताज़ी हवा कहलाती है। पहली हवा गरम थी, दूसरी
ठंडी; पहली में जल वाष्प, कर्बनद्विओषिद अधिक हैं दूसरी
में कम; पहली में शरीर में से वायु द्वारा निकले हुए दूषित पदार्थ
अधिक हैं दूसरी में कम; पहली वायु स्थिर थी दूसरी चलती हुई।

यदि कमरे में पंखा चलता होता तो कमरे में यदि भीड़ भी होती तो
भी बुरा न मालूम होता। क्या कारण? पंखे द्वारा वायु की गरमी कम
हो जाती है और दूषित पदार्थ हमारे शरीर के पास से अलग हो
जाते हैं।

स्थिर और दूषित वायु में रहना अत्यंत हानिकारक है। जो लोग
ऐसी वायु में रहते हैं उन को रक्तहीनता, कमज़ोरी, बदहज़मी रहती
है और रोगों के मुकाबला करने की शक्ति कम हो जाती है। ऐसे
लोगों को क्षय रोग, न्युमोनिया, जुकाम, फोड़े फुन्सी होने की अधिक

संभावना रहती है। ये लोग कभी भी वैसे काम नहीं कर सकते जैसे कि खुली हवा में रहने वाले कर सकते हैं।

वैसे तो साँस लेने में थोड़ी बहुत सांस द्वारा बाहर निकली हुई वायु हमारे फुप्फुसों में फिर चली जाती है, मुँह ढँक कर सोना या इस प्रकार कपड़े ओढ कर सोना जिस से बाहर निकली हुई वायु को शरीर से अलग जाने का मौका न मिले अत्यंत हानि कारक है।

वायु के दूषित होने के कारण

धुआँ, धूल, श्वास वायु को दूषित करते हैं। धुआँ श्वास पथ को हानि पहुँचाता है। धूल अनेक प्रकार की होती है। उस में जान्तविक और अजान्तविक दोनों प्रकार के पदार्थ होते हैं। जान्तविक पदार्थ प्राणियों और पौधों के शरीरों से आते हैं; सेलों के टुकड़े, कीड़ों के अंश, श्वेतसार, मवाद की सेलें, बालों के अंश, पर, रुई, फूलों के अंश इत्यादि चीज़ें धूल में रहती हैं। अजान्तविक धूल अनेक प्रकार के लवणों, मिट्टी, कोयला, बालू, से बनती है। धूल में अनेक प्रकार के कीटाणु जिन में से बहुत से रोगोत्पादक होते हैं रहते हैं। मामूली धूल से अधिक हानि नहीं होती; परन्तु जब धूल अधिक हो या उस में रोगाणु हों तो श्वास पथ की कला (श्लैष्मिक कला) को हानि पहुँचती है और क्षय, ज़ुकाम, न्युमोनिया, इन्फ्लुऐन्ज़ा जैसे रोगों के होने की संभावना रहती है।

घर की धूल बाहर की धूल से अधिक हानि कारक होती है क्योंकि उस में अधिक रोगाणुओं के रहने की संभावना है; बाहर की धूल के रोगाणु सूर्य के प्रकाश से मर जाते हैं। घर में जो धूल होती है उस का विशेष भाग बाहर से उड़ कर आता है; शेष भाग पैरों और जूतों द्वारा आता है। जहाँ तक हो सके जब आप बाहर से घर

से हरामखोर होते हैं और उन के आक़ा धन और विद्या होते हुए भी अज्ञानी होते हैं।

४. दरियाँ और क़ालीन इतने लम्बे चौड़े न होने चाहियें कि जिन को उठाना और झाड़ना कठिन हो। ज़रूरत हो तो एक की जगह दो या तीन बिछाये जा सकते हैं। समय समय पर दरी और क़ालीन को कमरे से बाहर ले जा कर झाड़ना चाहिये।

५. जिन के पास धन है वे धूल खींचने वाले यंत्र (Vaccum cleaner) का प्रयोग करें। धूल नहीं उड़ती; वह सब यंत्र के भीतर चली जाती है।

६. सड़क के पास के मकानों में सोने और बैठने के कमरे ऐसी जगह बनाने चाहियें कि उन में कम से कम धूल आवे।

७. झाड़ू लगाने की उत्तम विधि—यदि बहुत कूड़ा करकट न पड़ा हो तो पक्के फ़र्शों पर झाड़ू लगाने की आवश्यकता नहीं। उन को गीले कपड़े से पोंछना चाहिये या धुलवा देना चाहिये। कच्चे फ़र्शों पर ज़रा सा पानी छिड़क लेना चाहिये या रद्दी काग़ज़ के टुकड़े पानी से भिगोकर डाल देने चाहियें; अब यदि सहज सहज झाड़ू लगाई जावे तो धूल न उड़ेगी। सूखे फ़र्श पर झाड़ू लगाने से धूल खूब उड़ती है और वह कमरे से बाहर नहीं जाती है; ज़मीन से उड़ कर ऊपर मेज़, कुरसी, किताब, चारपाई, टँगे हुए कपड़े, टोपी, भोजन, नाक, मुँह इत्यादि पर जा बैठती है; वह केवल अपना स्थान बदल देती है। झाड़ू लगाकर दर्वाज़े और खिड़कियाँ खोल देनी चाहियें ताकि उड़ी हुई धूल हवा द्वारा बाहर निकल जावे।

सड़क की धूल

गलियों और सड़कों की धूल घरों में हवा द्वारा आती है, इस
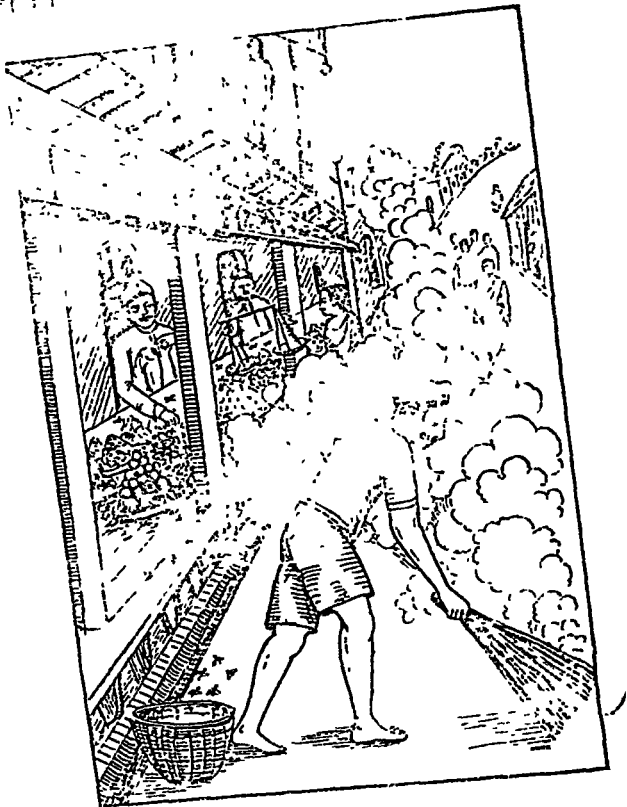
हैं और गलियों और सड़कों के पास के घरों में उस धूल को पहुँचाते हैं तो इस निन्दनीय काम के उत्तर दाता और सज़ावार उस बुरे वन्दो-वस्त वाली म्युनिसिपल्टी के मेम्बर और चेयरमेन हैं। पबलिक को चाहिये कि आगामी चुनाव में ऐसे निकम्मे मनुष्यों को न चुनें। सड़कों पर पहले छिड़काव होना चाहिये, फिर झाड़ू लगनी चाहिये और झाड़ू लगने के बाद फिर छिड़काव होना चाहिये। यदि काफ़ी पानी नहीं मिल सकता या म्युनिसिपल्टी कंगाल है तो सुबह शाम दोनों समय झाड़ू लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है; केवल प्रातःकाल दूकानें खुलने से पहले सड़क की सफाई होनी चाहिये। दिन भर केवल गोबर और लीद और मोटा कूड़ा करकट उठाने के लिये मेह-तरों का वन्दोबस्त हो। जहाँ सड़कों पर तारकोल लगा हो उन को रात्रि के समय धुलवा देना चाहिये। गलियों और सड़क की सफाई में धन अवश्य खर्च होगा परन्तु जब स्वास्थ्य सुधरेगा तो मनुष्य धन भी अधिक कमा सकेगा। इस संसार में कोई चीज़ मुफ्त नहीं मिलती। इस हाथ दे उस हाथ ले यही होता है। स्वास्थ्य भी खरीदा ही जाता है।

धूल में रोगाणु

कोई स्थान नहीं जहाँ वायु में कीटाणु न हों। ज्यों ज्यों ऊपर चढ़ते जाते हैं (जैसे पहाड़ों पर) वायु में कीटाणु कम होते चले जाते हैं। शहरों की वायु में खुले मैदान की वायु की अपेक्षा अधिक कीटाणु रहते हैं। पहाड़ों और समुद्र की वायु में कम होते हैं; आँधी में अधिक रहते हैं; घर की वायु में घर से बाहर की वायु की अपेक्षा अधिक होते हैं; तर वायु में अधिक और खुश्क वायु में कम होते हैं। वर्षा से पहले अधिक वर्षा के बाद कम होते हैं। जिन घरों में वायु

आने जाने का प्रबन्ध ठीक नहीं और जहाँ धूल खूब उड़ाई जाती है वहाँ की वायु में कीटाणु अधिक होते हैं।

दूषित वायु में अनेक प्रकार के रोगाणु पाये जाते हैं—डिफ्थीरिया, लाल ज्वर, कुक्कुर खाँसी, खसरा, न्युमोनिया, इन्फ्लुएंज़ा, ज़ुकाम, क्षय, प्लेग, चेचक इत्यादि के।

वायु में रोगाणु कहाँ से और कैसे आते हैं

१. जब क्षयरोगी, न्युमोनिया वाला या इन्फ्लुएंज़ा ज़ुकाम खाँसी वाला या कुक्कुर खाँसी वाला खाँसता है तो उसके मुँह से बलग़म और थूक के बहुत छोटे छोटे अंश फुहारे के रूप में निकल कर वायु में मिल जाते हैं। प्रत्येक अंश में सैकड़ों रोगाणु रहते हैं।

२. टायफॉयड इत्यादि रोग। इन रोगों में पाखाने, पेशाब, पसीने में रोगाणु रहते हैं। कपड़े पर पाखाना लग गया और वह सूख गया, कपड़ा झाड़ा गया, सूखे पाखाने की धूल वायु में मिल गयी। धूल में सैकड़ों रोगाणु रहते हैं।

इसी तरह क्षयी ने फर्श पर थूका, बलग़म थूका, झाड़ू लगाई गयी, धूल उड़ी और वायु में मिल गयी। सूखे थूक और बलग़म द्वारा हज़ारों रोगाणु वायु में मिल गये।

मकान का वायु से सम्बन्ध

यदि हिसाब लगाया जाय तो हमारी आयु का आधे से अधिक भाग मकान के भीतर ही गुज़रता है। मकान में खाते पीते हैं, वहीं हगते मूतते हैं; वहीं सोते हैं; मकान ही में दफ़्तर करते हैं और लिखते पढ़ते हैं। भारत की स्त्रियों को (परदा करने वाली क़ौमों को) तो क़रीब क़रीब सभी आयु मकान के अन्दर व्यतीत होती है। इस

कारण मकान की वायु का स्वास्थ्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि इन बातों पर ध्यान रक्खा जावे तो मकान की वायु अच्छी रहेगी—

१. घर बड़ी सड़कों से जहाँ गाड़ी मोटर इत्यादि बहुत चलती हों जितनी दूर बनाया जावे उतना ही अच्छा है। शहर के कुछ हिस्से केवल रहने के मकानों के लिये ही अलग कर देने चाहियें अर्थात् इन हिस्सों में दूकाने न होनी चाहियें। मोटर, गाड़ी कम चलने के कारण घरों में सड़क की धूल कम हो जावेगी; शोर गुल कम होगा इस लिये पढ़ाई में और नींद में कम खलल पड़ेगा।

२. नदी, नालों, तालाब और चौबच्चों और कूड़ा घरों के पास घर मत बनाओ। ऐसा करने से दुर्गन्ध, मक्खी, मच्छर, पिस्सू इत्यादि खूब मिलेंगे।

३. घर बाग़ बगीचों और पार्कों से दूर रहना चाहिये। लकीर के फकीर, खुद ग़र्ज़, आलसी, नक़लची, जी हजूर, जो हजूर लोग हमारी इस बात से नाखुश होंगे। हमें उनकी नाखुशी से क्या लेना है; यदि उनको अपनी जान की पर्वाह नहीं तो हमारी बला से। हमारी राय में भारत जैसे गर्म देश में (जहाँ उत्पत्ति और मृत्यु दोनों ही बहुत शीघ्रता से होती हैं) रहने सहने, बैठने उठने, सोने के कमरे से बाग़, बगीचा, लान, पार्क दूर होने चाहियें; १०० गज़ की दूरी पर हों तो अच्छा है; यदि १०० गज़ का अंतर न हो सके तो १०० फुट का तो अवश्य होना चाहिये। घर के बहुत निकट खेत बोना, तरकारियाँ लगाना, साग पात लगाना, जमीन में फूल फुलवाड़ी लगाना, या लान लगाना अच्छा नहीं। वनस्पति का कीड़ों से एक अटूट सम्बन्ध है। जहाँ घास पात हरियाली फूल फुलवाड़ी होगी वहाँ किसी न किसी प्रकार के कीड़े अवश्य होंगे। जहाँ सब्ज़ी होती है वहाँ तरी भी रहती है और साया भी रहता है, ऐसे स्थानों

में मच्छर भी रहते हैं। जब घर के पास पार्क होगा, या खेत होगा, या बग़ीचा होगा तो यह आवश्यक है कि सींचने के लिये पानी का बन्दोबस्त किया जाय। कुएं या नल से पानी लेने का प्रबन्ध होगा। पानी जमा रखने के लिये हौज़ और पानी सींचने

चित्र ७८. घर के पास होना जंगल जिसे बहुत से लोग बाग़ कहते हैं [illegible]
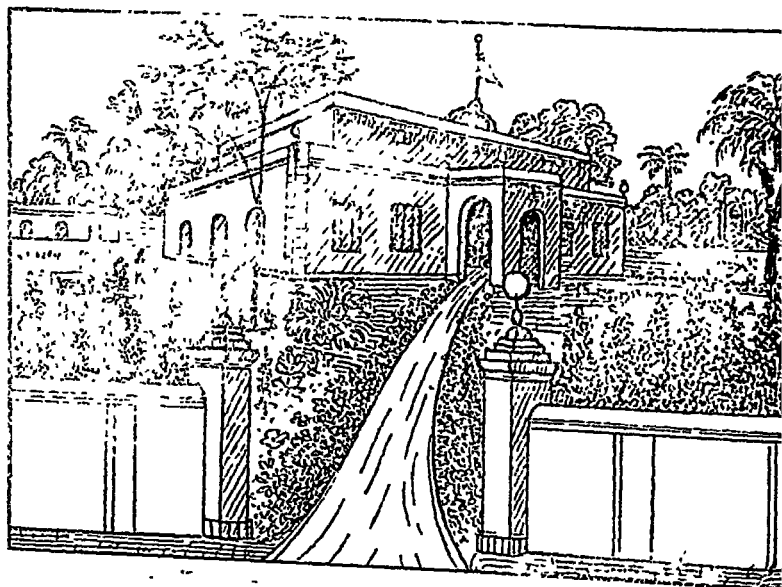
के लिये नालियाँ होंगी। बहुत जगह पानी इकट्ठा भी होगा। मच्छरों को क्या चाहिये? पानी मौजूद, [illegible]। [illegible] मच्छरी तीन सौ तक अंडे दे सकती है; इस प्रकार मच्छरियों की सन्तान मुहल्ले

भर के रहनेवालों की जान आफ़त में डालने के लिये काफ़ी है।

भारतवासियों को परदेशियों की नक़ल न करनी चाहिये। हमारे शासक सर्द देश के रहनेवाले हैं। वे लोग अधिक गर्मी को बरदाश्त नहीं कर सकते। जब वे भारत पर राज्य करने आते हैं तो यहाँ दो तीन साल लगातार रहना उनके लिए कठिन है। वे गरमियों में थोड़े समय के लिये पहाड़ पर जाते हैं। उनके बीवी बच्चे तो अक्सर गरमियों भर पहाड़ पर रहते हैं। उनकी स्त्रियाँ इस देश में ब्याहना भी पसंद नहीं करतीं। ये सर्द देश के रहनेवाले भारत की गर्मी से बचने के लिये अनेक उपाय करते हैं। बजाय हिंदुस्तानी फ़ैशन के मकानों के वे काले आदमियों से दूर मैदान में बनी हुई कोठी या बँगले में रहते हैं। ये कोठियाँ इस प्रकार बनाई जाती हैं कि उनके अंदर धूप कभी न जावे। धूप और सूर्य्य प्रकाश को कमरों में न आने देने के लिये अनेक तदबीरें की जाती हैं। खिड़कियों और दरवाजों में परदे लटकाये जाते हैं; बेलें चढ़ाई जाती हैं; बरांडों में (अक्सर बरांडे होते ही नहीं) गमले रक्खे जाते हैं और फूलों की बेलें चढ़ाई जाती हैं और अनेक प्रकार के पौधे गमलों में लटका दिये जाते हैं; कमरों के अंदर पीतल के गमलों में ताड़ इत्यादि के पौधे रक्खे जाते हैं। कोठी के चारों ओर बड़ा मैदान रक्खा जाता है; यहाँ बड़े बड़े लान लगाये जाते हैं। गोरा आदमी काले आदमियों के साथ बैठना अपनी बेइज़्ज़ती समझता है; इस लिये गोरी बिरादरी का क्लब अलग रहता है। यदि क्लब नहीं है तो कोठी के मैदान में ही टेनिस, बैडमिन्टन, गौल्फ होता है और यहीं सब गोरे लोग शाम को इकट्ठे होते हैं। फूल फुलवाड़ी, बेल, गमलों लान, परदों, चिकों द्वारा ये लोग सूर्य्य के तेज से बचने का प्रबन्ध करते हैं। विलायत में आज बीसवीं शताब्दी में भी लोग बंद कमरे

में सोने के आदी हैं; विलायत में किसी मकान के अंदर घुस कर आकाश को देखना असंभव है। बंद घर के अंदर सोने की आदत इन लोगों में भारतवर्ष में भी बहुत वर्षों तक बनी रहती है। ये लोग कोठी में कमरों के अंदर सोते हैं। बड़े बड़े वेतन पाते हैं इस कारण इनको १००-२००) की पर्वाह नहीं। गरमियों में दिन रात पंखा खिंचवाते हैं; कई कई नौकर पंखे के लिये रख लेते हैं; जहाँ बिजली है वहाँ तो उनको कोई कठिनता ही नहीं। जब हर समय और हर कमरे में पंखे का बन्दोबस्त है तो उनको मच्छर और मक्खी का डर ही नहीं। रात को पंखे के नीचे कमरे के अंदर सोते हैं। मसहरी की कोई विशेष आवश्यकता नहीं क्योंकि पंखे से मच्छर दूर रहता है। जाड़े बुखार से बचने के लिये कुइनीन का प्रयोग करते हैं। यदि बुखार आ गया तो बढ़िया से बढ़िया डाक्टर सरकार की ओर से उनका इलाज बिना फीस के करने के लिये मौजूद हैं। कोठी के मैदान में अक्सर साँप रहा करते हैं; साहब के पास बीसियों नौकर रहते हैं जो साँपों को मारते रहते हैं; इसके अलावा हर वक्त बंदूक भरी मौजूद है। गोरे चमड़े वाले के घर काला चोर भी नहीं आता और आता भी है तो गोरे के डर से काला पुलिस सब-इंस्पेक्टर शीघ्र पकड़ लेता है।

विलायत में सरदी के कारण मच्छर पनपने नहीं पाते; जितनी चाहे फुलवाड़ी और घास लगाइये; जहाँ चाहे गमले रखिये मच्छर नहीं पैदा होंगे; हिन्दुस्तान में बारहों मास मच्छर महाशय घर में विराजमान रहते हैं; गरमी और बरसात में तो कुछ ठिकाना ही नहीं; यदि नदी, तालाब, बाग़, पार्क निकट हो तो जीना कठिन है।

प्रश्न उठता है कि यदि अंगरेज़ कोठी में रहता हुआ और अपने आस पास घास और जंगल और फूल फुलवाड़ी उगा कर स्वस्थ रह

सकता है तो भारतवासी यदि उस की नक़ल करें तो क्या बेजा ? इस प्रश्न के उत्तर में मैं जो कुछ लिखता हूँ उस पर ध्यान दीजिये—

१—कोठी (या बंगला) और पास पास मिले हुए मकानों में बड़ा भेद यह है कि कोठी में यदि वह भली प्रकार बनी हो चारों ओर से हवा मिल सकती है क्योंकि वह चारों ओर से खुली होती है। इस लिये कोठी में रहना और मकानों की अपेक्षा स्वास्थ्य के लिये अच्छा है। परन्तु आजकल कोठी बनाने का तरीक़ा अच्छा नहीं। बहुत कम कोठियाँ ऐसी हैं जिन में बरांडे बनाये जाते हों; ज्यादा से ज्यादा एक बरांडा वह भी आगे बरसाती के पास बनाया जाता है। यदि बरांडे चारों ओर बनाये जावें तो उन के पास के कमरे दिन में ठंढे रहेंगे और उन में सूर्य की रोशनी भी कम जावेगी; परदे लगा कर या बेल चढ़ा कर कमरों को ठंढा या कम चमक वाला करने की आवश्यकता न रहेगी।

२—इस में संदेह नहीं क्योंकि मैं यह अपने तजुर्बे से कहता हूँ कि कोठियों में विशेष कर उन के मैदान में मच्छर खूब रहते हैं। लखनऊ जैसे बड़े शहरों में तो जितने मच्छर शहर भर में हैं उन में से अधिकतर कोठियों के मैदान में ही पैदा होते हैं। मुझ को अकसर कोठियों में जाने का मौक़ा मिला है। एक बार मैं लखनऊ की ऊटरम रोड पर (जहाँ बड़े बड़े ही आदमी रहते हैं) की एक कोठी के पीछे वाले मैदान में चला गया; वहाँ फुलवाड़ी सींचने के लिये एक हौज़ था। उस हौज़ के पानी में इतने अनोफेलीस जाति* के मच्छरों के लहवें थे कि वे मौक़ा पा कर आधे लखनऊ को मलेरिया ज्वर से पीड़ित कर सकें; जब एक कोठी में इतने मच्छर हैं तो अन्दाज़ा लगा

---

* मलेरिया फैलाने वाला मच्छर

लीजिये कि सब कोठियों में कितने होंगे। लखनऊ के नरही मुहल्ले में नज़दीक के बनारसी बाग़* में झुंड के झुंड मच्छरों के आते हैं और हज़ारों आदमियों की नींद हराम कर देते हैं। मैं दावे से कहता हूँ कि यदि कोठी के आस पास जंगल न लगाया जावे या घरों के पास पार्क या बग़ीचे न लगाये जावें तो मच्छरों की तादाद बहुत ही कम हो जावे।

३—जब कोठियों में मच्छर पैदा होते हैं तो वहाँ के रहने वालों को हानि क्यों नहीं पहुँचाते? गोरे साहब लोगों को तो (चाहे वे सरकारी नौकर हों चाहे सौदागर) पंखा और मसहरी के कारण अधिक कष्ट नहीं होता; दूसरे वह समझता है कि यह सड़ा हुआ मुल्क है इस में मच्छर रहते ही हैं; वह अपने आप को पूरा बुद्धिमान समझता है इस कारण उस के दिल में यह ख्याल बैठा हुआ है कि उस से भूल हो ही नहीं सकती; वह अपने घमंड के कारण यह समझ ही नहीं सकता कि मच्छरों की खेती वह खुद करता है। इस के अतिरिक्त वह भी लकीर का फकीर है; जैसा उस के और भाई बंधु करते हैं वह भी वैसा ही करता है। शाम को जब क्लब में बैठ कर आपस में बातें करते हैं तो कहते हैं कि इस देश में सभी प्रकार के हानि कारक जीव जन्तु रहते हैं—कहीं मच्छर, कहीं पिस्सू, कहीं साँप और कहीं बिच्छू; सभी प्रकार के भयानक रोग होते हैं; अत्यन्त गरमी पड़ती है यदि हम को अपने घर से ६००० मील आकर इतना वेतन मिले तो क्या है।

साहब का कुटुम्ब आम तौर से बहुत छोटा होता है। अकसर एक बड़े बंगले में २½ व्यक्ति से अधिक नहीं रहते; बच्चा ज्यों ही बड़ा होता है पहाड़ पर या विलायत भेज दिया जाता है। बंगला बहुत बड़ा

होता है; हर एक कमरे में थोड़ा थोड़ा सामान रहता है मच्छर भली प्रकार छिप नहीं सकते; धन काफी होने के कारण महीने में उतने का फ्लिट (Flit) खर्च कर देता है जितनी कि मामूली नौकर को महीने में तनखाह मिलती है। पंखा लगाता है, मसहरी लगाता है; हाथ पैरों पर मच्छर भगाने वाले तेल मलता है। मच्छर उस को हानि पहुँ-चावें तो कैसे। फिर मौक़ा पाकर कभी न कभी काट ही खाता है; यदि ज़हरीला मच्छर है तो साहब को मलेरिया हो जाता है; फिर सहज में छुट्टी मिल जाती है और वह पूरी तनखाह पर सर्कारी किराये से अपने घर की सैर करता है। उस का क्या बिगड़ा? जो मच्छर वह अपनी भूलों से अपने बँगले की हद में पैदा करता है वह उस के नौकरों को दिक़ करते हैं। नौकरों को ज्वर भी आ जाता है और उनके बच्चे परेशान रहते हैं। मच्छर वहाँ से उड़ कर आस पास के मकानों में भी घुस जाते हैं और वहाँ के रहनेवालों को तंग करते हैं।

गोरा साहब तो अपने धन और बुद्धि से मच्छरों से थोड़ा बहुत बचा रहता है जब उसी बँगले में काला साहब रहता है तो देखिये क्या होता है। राजा महाराजाओं को छोड़ कर जितने काले साहब बँगलों में रहते हैं उन की आमदनी अधिक नहीं होती। इन लोगों का कुटम्ब आम तौर से बड़ा होता है जिस उम्र में गोरे साहब के दो बच्चे होते हैं उतनी उम्र में काले साहब के चार पाँच और कभी कभी इससे भी अधिक बच्चे होते हैं; शादी भी भारतवर्ष में कम आयु में हो जाती है; अन्य कुटम्बी जैसे माँ, बाप, दादा, या भाई बहन इत्यादि भी अकसर साथ रहते हैं इन सब से कुटम्ब बढ़ जाता है; मेहमान भी जब चाहे बिना पहले से सूचना दिये आ कूदते हैं। कोठी में बरांडा नहीं; अब ये लोग गरमी में कैसे रहें। मैदान में सोते हैं तो सांप का डर; घर के अंदर सोते हैं तो गरमी। बिना मसहरी के सोते हैं तो मच्छर काटते

ोत होते हैं, वहीं आस पास तालाब होते हैं; वहीं तरकारी बोई जाती है; वहीं आस पास गड्ढे होते हैं। इन तालाबों और गड्ढों में मच्छर रहते हैं; हिन्दुस्तान के गाँव में चोड़े को निकालने का आजकल कोई बन्दोबस्त नहीं; कोठियाँ आम तौर से बड़ी आबादी से दूर होती हैं और म्युनिसिपल्टी की नालियाँ वहाँ तक नहीं पहुँचतीं। परिणाम यह होता है कि कोठी के चोड़े को लेजाने के लिये अलग प्रबन्ध करना पड़ता है जिसमें आम तौर से दोष रहते हैं; अकसर कोठियों में कूड़ा कुछ समय तक जमा रहता है और पाखानों और रसोई घर की नालियों का गंदा पानी या तो कोठी के पीछे ज़मीन में मरने दिया जाता है जिससे आस पास के कुँएँ के पानी के दूषित होने की संभावना ती है या वहाँ हौज़ बना दिया जाता है जिसमें मच्छर ब्याहते हैं।

भारतवर्ष में जब तक भारतवासी अपनी अकल से काम करते रहे और नक़ल करने की अधिक पर्वाह न की, रहने के मकानों में घास पात फूल, फुलवाड़ी, बग़ीचा, तरकारी का खेत लगाने का रिवाज न था। सिवाय एक तुलसी के पौधे के कोई व्यक्ति कभी भूल कर भी किसी और प्रकार के पौधे न उगाता था। उस ज़माने में मलेरिया भी कम होता था (कम से कम शहरों में); जब से नक़ल करनी शुरू की जान आफत में आई और अब बचाये बचती नज़र नहीं आती।

दूसरा नुकसान जो घर ही में लान और बग़ीचा लगाने से होता है वह यह है— जिस नगर में कोठी कोठी में बाग़ होते हैं वहाँ कोई अच्छा पार्क या सरसब्ज़ स्थान जहाँ सायंकाल या प्रातःकाल माली लोग घूमने को जा सकें बन ही नहीं सकता। संयुक्त प्रान्त के बड़े नगरों में गरमी की मौसम में शाम के समय उठने बैठने और टहलने के लिये कोई अच्छा स्थान नहीं; कारण क्या? बाग़ या पार्क को गरमी की मौसम में सरसब्ज़ रखना अत्यंत

कठिन काम है। बहुत पानी चाहिये, बहुत माली चाहियें। इन सब के लिये धन चाहिये। धन कहां से आवे। जिस समय गुंजान मुहल्लों की गरमी से बचने के लिये (चाहे थोड़ी देर ही के लिये क्यों न हो) खुले हवादार सरसब्ज़ मैदान की आवश्यकता है उसी वक्त बाग और पार्क सूखे पड़े रहते हैं, घास जल जाती है और एक फूल भी नज़र नहीं आता। शाम के समय मामूली आदमियों के लिये घर में बैठना कठिन हो जाता है क्योंकि वहां गरमी है; बाहर जाना मुश्किल है क्योंकि कहीं भी ठंढ नहीं। (लखनऊ वाले कहेंगे कि वहां गोल बाग चौक के पास है। माना! वह भी उतना सरसब्ज़ नहीं रहता जितना कि रहना चाहिये; दूसरे सब शहर के लोग वहां जा ही नहीं सकते। और जितने पार्क हैं उनमें अक्सर गर्मियों में बहुत ही खराब रहती हैं) [illegible], बंद, गर्मियों में ठंढे रहने वाले स्थानों का अभाव क्यों है? खुदगर्ज़ी के कारण। जिसके पास धन है वह अपनी कोठी में बाग और बगीचा लगाता है; जितना धन उसको पब्लिक पार्क या बाग के लिये देना चाहिये उसको वह अपने निज के बाग में लगा देता है; जब सब धनी मनुष्य ऐसा ही करेंगे तो उनको पबलिक पार्क की रक्षा के लिये धन देने की आवश्यकता कैसे मालूम होगी। म्युनिसिपल्टियाँ आम तौर से कंगाल हैं; सरकार के पास धन कहाँ; पबलिक पार्क और बगीचे कहाँ से आवें।

यदि कोठियों के बाग़ और बंगले उजाड़ दिये जावें और प्रत्येक कोठी वाले से वह सब धन जो वह अपने बगीचे पर और मच्छड़ पैदा करने के काम में व्यय करता है कानूनन ले लिया जावे तो इस कुल धन से प्रत्येक नगर में आबादी से कुछ दूरी पर एक अच्छा पार्क या बगीचा बनाया जा सकता है जहाँ गरमी की मौसम में लोग शाम के समय अपनी आँखें तर करें और शुद्ध खुली वायु में साँस लेकर अपने स्वास्थ्य

को ठीक करें और रोग नाशक शक्ति बढ़ा कर स्वराज प्राप्त करने का यत्न करें।

घर ही में जब सब चीज़ें मिलेंगी तो बाहर क्यों कोई जावेगा। घर चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो, जंगल की हवा हमेशा उससे साफ़ रहेगी। जब बाग़ या पार्क आबादी से दूर होगा तब वहाँ तक जाने में कुछ व्यायाम अवश्य हो जावेगा। इस व्यायाम के लिये भी पार्क और बाग़ घर से दूर ही चाहिये।

हमने युरोप के बहुत से बड़े बड़े नगर देखे। वहाँ अब तक भी घरों में बाग़ बगीचे लगाने का रिवाज नहीं है। पार्क और बाग़ सब बड़े बड़े बनाये जाते हैं। यहाँ पर गरमी की मौसम में फूल फुलवाड़ी देखने के लिये और सरदी की मौसम में धूप तापने के लिये सब लोग जाते हैं। इन पार्कों पर बहुत धन खर्च होता है। क्यों न होवे वे लोग स्वतंत्र हैं; भारतवासी खुदग़र्ज़ और पराधीन और नक़लची हैं।

४. मकान नीचाई में न बनाना चाहिये। जहाँ पानी भरता है वहाँ की वायु तर होती है और वहाँ दीमक, बिच्छू इत्यादि भी अधिक होते हैं। स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता।

५. मकानों के पास जनता का पाखाना और मूत्रघर भी न होना चाहिये। यदि हों तो ये अपने आप धुलने वाले होने चाहियें। अर्थात् पानी की टंकी लगी हो जिसमें से समय समय पर पानी ज़ोर से बहा करे और पाखाना और पेशाब धुल जाया करें।

६. मकान के पास कूड़ा घर भी न होना चाहिये। गोबर और लीद भी इकट्ठा न हो। कूड़ा डालने का जो टब हो वह ढकने दार होना चाहिये; कूड़ा डाला और बंद कर दिया।

७. मकान के अंदर कुआँ बनवाना भी ठीक नहीं। नल गड़वाने में कोई हानि नहीं।

मकान (गृह) कैसा होना चाहिये

धूप की तेज़ी से, धूल और आँधी से, वर्षा और सर्दी से बचने के लिये और अपने आराम की चीज़ों की रक्षा के लिये ही मकान बनाया जाता है। जिस मकान में ये आराम न हों वह मकान निकम्मा है। उत्तम प्रकार का मकान वह है कि जिसमें सर्दी में धूप मिले; गरमियों में साया मिले; और वर्षा में भीगने न पावें। गरमियों में दिन रात जिधर की हवा चले वह जब चाहें हमको मिल जावे। बहुत कम मकान ऐसे बनाये जाते हैं जिनमें सब मौसमों में आराम मिले; कारण यह है कि सब के पास धन नहीं और बुद्धि नहीं। धनी लोग आम तौर से मूर्ख दिखाई देते हैं; जिसके पास धन है वह अपना धन बढ़ाना चाहता है; बड़ा आदमी अपने धन और बल से उतनी जगह अपने कब्ज़े में कर लेता है कि ग़रीब को पैर पसारने के लिये भी कठिनता से जगह मिल पाती है।

नौकरी पेशा लोग मकान में अपनी आमदनी का कितना भाग खर्च करें ?

हमारी राय में नौकरी पेशा और मेहनत मज़दूरी करनेवालों को अपने और अपने कुटुम्ब के लिये (पुरुष, स्त्री, बच्चे और जो लोग उसकी आमदनी पर निर्भर हों) अपनी मासिक आमदनी के $\frac{1}{10}$ भाग से अधिक प्रति मास व्यय न करना चाहिये। जिस म्युनिसिपल्टी की हद में इतना व्यय करने पर हर एक व्यक्ति को अच्छा मकान न मिले तो उसके कार्य्यकर्ताओं को धिक्कार है। समझ लो कि वहाँ खुदग़र्ज़ लोग रहते हैं जो दूसरों के खून के प्यासे हैं। जो इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट (शहर सुधारक सभा) शहर में छोटे छोटे और हवादार सस्ते

किरा[illegible] वाले मकान बनाने पर ध्यान न देकर बड़े आदमियों के रहने के लिये महँगे बँगले बनवाने में सहायता दे या खुद बनवावें, समझ लो उस ट्रस्ट ने देश का सत्यानाश करने का बेड़ा उठाया है। अपने तजुर्बे से हम कहते हैं कि ये शहर का सुधार करनेवाले ट्रस्ट ग़रीबों का ख्याल तनिक भर भी नहीं रखते। देश-सेवकों को इस ओर ध्यान देना चाहिये। ग़रीब आदमियों (जैसे चपरासी, कहार, रसोइया, मेहतर, इत्यादि) का मासिक वेतन ९), १०), ११) के लगभग होता है; इनको १) मासिक में हवादार धूप और वर्षा से बचाने वाली कोठरी मिलनी चाहिये। ग़रीबों से ही अमीरों को सुख मिलता है तो ज़रा उन बेचारों का भी तो ख्याल रखिये। खुद[illegible] की कोई हद है या नहीं ?

क्या बड़ा मकान ही सुखदायक हो सकता है

नहीं यह आवश्यक नहीं है। दो कमरे वाला मकान भी सुखदायक बनाया जा सकता है। चाहे दो कमरे हों चाहे दस बिना बरांडे का मकान दो कौड़ी का।

बरांडा (बरामदा) किसे कहते हैं

बरांडा उस स्थान को कहते हैं कि जिसमें छत हो; परन्तु बजाय चार दीवारों के ज़्यादा से ज़्यादा तीन दीवारें हों; इससे कम हों तो कोई हर्ज नहीं; एक दीवार तो होनी आवश्यक है। मतलब यह है कि कमरे के आगे या पीछे या दाएँ बाएँ एक स्थान ऐसा हो कि जिसमें धूप और मेंह का बचाव हो और जब हम चाहें ज़्यादा से ज़्यादा हवा पा सकें। बरांडे से गरमियों में कमरा ठंडा रहता है; रात को सोने के लिये हवादार स्थान मिलता है; बारिश से बचाव

होता है और वर्षा ऋतु में सोने में तकलीफ़ नहीं उठानी पड़ती। हमारी राय में केवल बहुत छोटे बच्चों और वृद्धों को छोड़कर (यदि आवश्यक समझा जावे तो) हर एक व्यक्ति के लिये बरांडे से उत्तम स्थान सोने का कोई नहीं; जब हो सके खुले मैदान में सोना चाहिये।

मकान के पास की गली

गली कितनी चौड़ी रक्खी जावे। यह उस गली के दोनों ओर वाले मकानों की ऊँचाई पर निर्भर है। कोई गली जिसमें से गाड़ी जाती हो इतनी कम चौड़ी न होनी चाहिये कि उसमें से एक समय में केवल एक ही गाड़ी एक ओर को जा सके; अर्थात् वह इतनी चौड़ी होनी चाहिये कि एक गाड़ी आ सके और एक जा सके और थोड़ा स्थान दोनों ओर और दोनों गाड़ियों के बीच में बचा रहे। हमारी राय में १६ फ़ुट से कम चौड़ी कोई भी गली न होनी चाहिये। यदि एक मंज़िल के मकान हों तो कम से कम मकान की ऊँचाई की बराबर गली की चौड़ाई होनी चाहिये। जब मकान एक मंज़िल से ज़्यादा ऊँचे हों या जहाँ यह आशा की जावे कि कभी मकान एक मंज़िल से अधिक ऊँचे बनाये जावेंगे, तो पहले से ही गली चौड़ी रखनी चाहिये। यदि गली पहले बन गई है और मकान बाद में बनने लगें तो म्युनिसिपल्टी का कर्त्तव्य है कि एक नियत ऊँचाई से अधिक ऊँचे मकानों के बनाने की आज्ञा न दे।

हमारी राय में गलियों की चौड़ाई की ऊँचाई से यह निस्बत रहनी चाहिये:—

पहली मंज़िल ऊँचाई १६ फ़ुट—गली की चौड़ाई १६+० फ़ुट

दूसरी मंज़िल ऊँचाई १६+१२ फ़ुट— ,, $१६+\frac{१२}{२}$ फ़ुट=२०

तीसरी मंज़िल ऊंचाई १६+१२+१२ फुट " $१६+\frac{१२+१२}{२}$=२४ फुट

चौथी मंज़िल ऊंचाई १६+१२+१२+१२ फुट " $१६+\frac{१२+१२+१२}{२}$ =२८ फुट

चित्र ७२ एडिनबरा
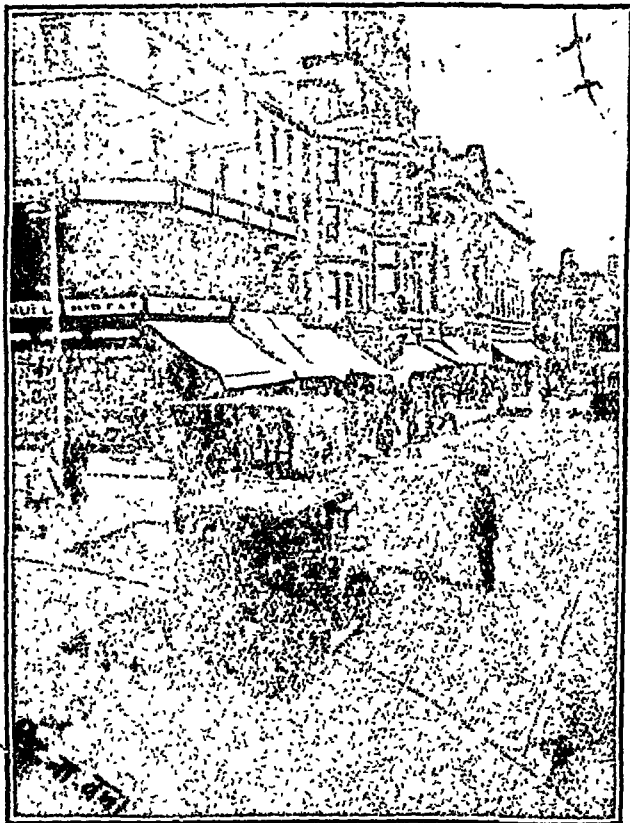
अर्थात् यह मान कर कि पहली मंज़िल केवल १६ फुट की है और कम से कम चौड़ाई गली की १६ फुट चाहिये, तो उस में प्रति नयी मंज़िल की ऊँचाई का ½ जोड़ते जाओ आप को गली की चौड़ाई मालूम हो जावेगी। यदि गलियाँ इस हिसाब से बनें तो सब मकान हवादार होंगे और उन में सूर्य का प्रकाश भी प्रवेश कर सकेगा।

सड़क, चौराहे और बाज़ार

इन की चौड़ाई शहर की हैसियत और कारोबार पर निर्भर है। लंदन, एडिनबरा और पेरिस के बाज़ारों और सड़कों के चित्र दिये जाते हैं।

मकान; भूमि

मकान कच्चा अर्थात् मिट्टी का बनाया जाता है; या पक्का ईंट, चूना, पत्थर सीमेंट, कंकरीट से बनाया जाता है। कच्चा मकान यदि अच्छी तरह बनाया गया हो तो गरमियों में ठंडा रहता है। वर्षा में कच्चे मकान का साफ रखना कठिन वरन असंभव है।

ठंडी मरतूब ज़मीन पर मकान न बनाना चाहिए; ऐसे स्थान में बाई, नाड़ी शूल और श्वास पथ के रोग अधिक होते हैं। चिकनी मिट्टी वाली भूमि बहुधा मरतूब रहती है। रेतीली और बजरीली भूमि में पानी जमा नहीं रहता और ऐसी भूमि का सूखा रखना कठिन नहीं; ऐसी ज़मीन मकान बनाने के लिये अच्छी है। ठंड और तरी से शारीरिक बल कम होता है और क्षय रोगनाशक शक्ति घटती है। मकान में कितने कमरे हों यह रहने वालों की आवश्यकता और उनकी आमदनी पर निर्भर है। हम केवल यही बतलाकर इस विषय को समाप्त करेंगे कि मकान में कमरे किस प्रकार के होने चाहियें—
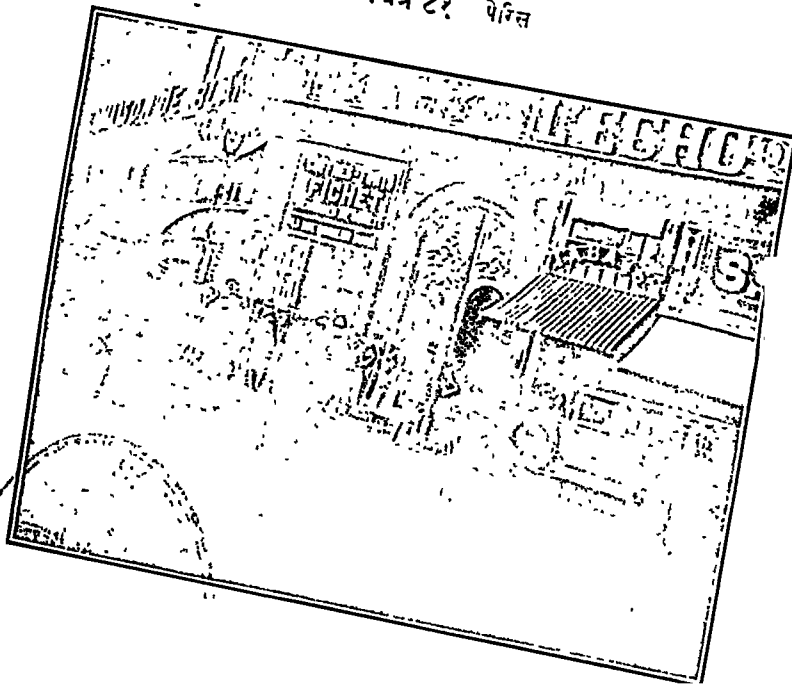
चित्र ८० लंदन

चित्र ८१ पेन्ति

चित्र ८० लंदन
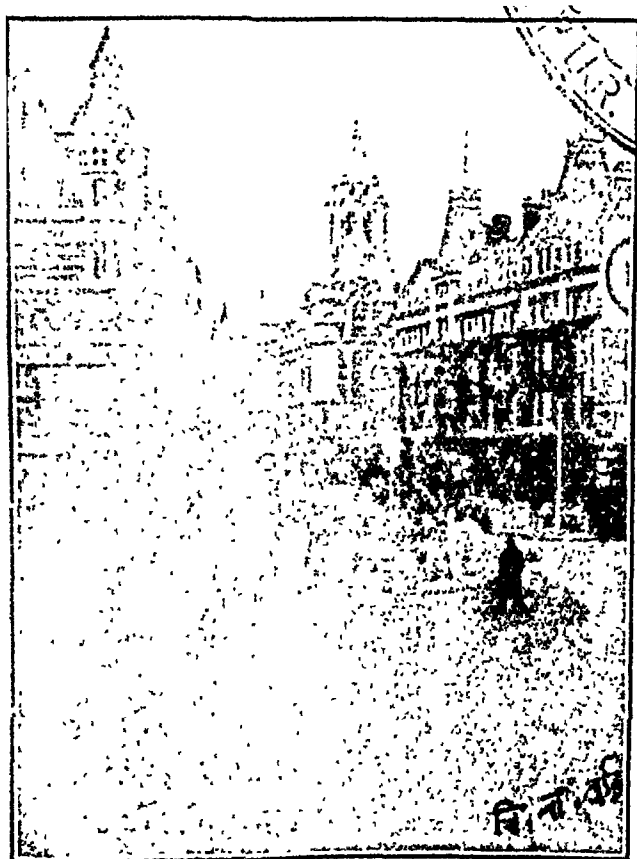
१. पाखाना—सब से पहली चीज़ जो मकान में देखने योग्य है वह पाखाना या शौचागार है। मूर्ख मकान बनाने वाले पाख़ाने

चित्र ८१ पेरिस
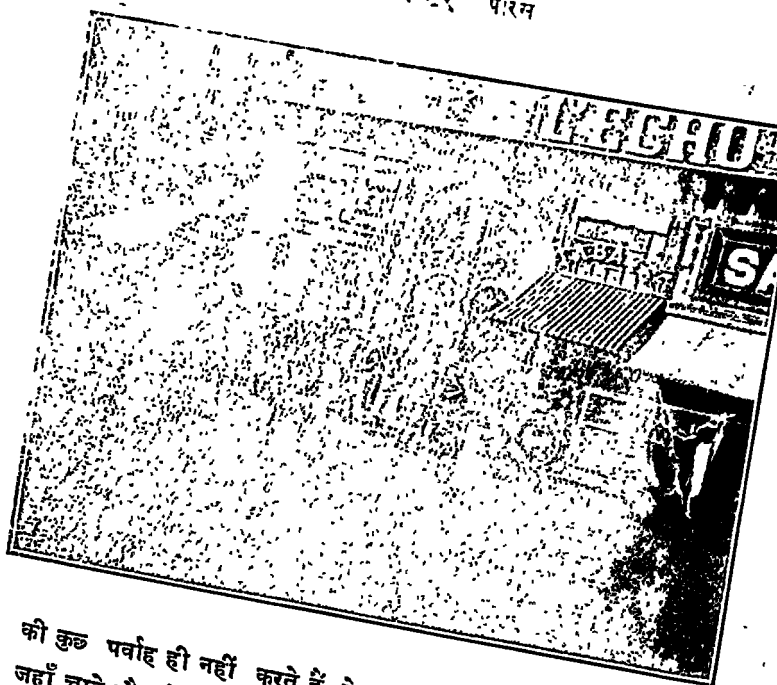
की कुछ पर्वाह ही नहीं करते हैं, वे समझते हैं कि यह ज़लील चीज़ जहाँ चाहे और जैसी चाहे बनाई जा सकती है; ऐसा नहीं। पाख़ाना हवादार होना चाहिये और ऐसा होना चाहिए कि उस में सूर्य का प्रकाश थोड़ी देर के लिये (कुछ घन्टों के लिये) अवश्य आवे। सूर्य के प्रकाश की महिमा हम आगे करेंगे। फ़र्श पक्का होना चाहिये जिस में पानी न सोखे (कंकरीट या पत्थर या सीमेंट का हो) पाख़ाना ऐसी जगह बनना चाहिये कि उस की वायु रसोई-घर या सोने

[ग]ंधा बैठने के कमरे में न जावे। खुड्डी की अपेक्षा संडास (*चित्र ८२) अच्छा होता है। मूत्र और आबदस्त का पानी अलग गिरे

चित्र ८२ मल मूत्र से अलग रहता है
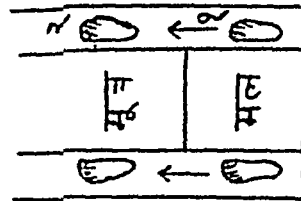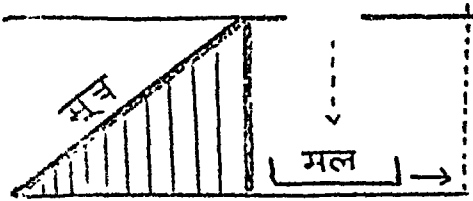
और पाख़ाना विष्टा, या मल अलग गिरे। मल के लिए इनैमल (ताम चीनी) का बरतन हो तो अच्छा है; न हो सके तो तारकोल [से] पुता हुआ कूंडा या जस्ती लोहे का पात्र हो। पाख़ाने में एक आला होना चाहिये जिसमें एक बरतन में राख या मिट्टी रक्खी हो; लोटा या पानी के बरतन के लिये भी टेक या आला होना चाहिये। पाख़ाने में छत का होना आवश्यक है; दर्वाज़ा भी होना चाहिये जिसमें किवाड़ लगे हों। फर्श पर और फर्श से दो फुट ऊँचे तक दीवारों पर तारकोल पोता जावे तो अच्छा है। जहाँ तक हो सके इस पाख़ाने के कमरे को और कमरों से अलग ही बनाना चाहिये। यदि हो सके तो नहाने के कमरे की नाली इस प्रकार निकाली जावे कि वह पाख़ाने की नाली से मिल जावे ताकि पाख़ाने की नाली बिना ख़ास तौर पर धोये भी कुछ न कुछ धुलती रहे।

जहाँ पानी के नल होते हैं और ज़मीन के नीचे चौड़े और मैले के ले जाने के बड़े बड़े मलपथ बने हैं वहाँ पाख़ाने ऐसे बनाये

* हमारा मतलब यह नहीं कि छत में एक सूराख हो और पाख़ाना नीचे गिरे।

खूब न निकलेगा; खिड़की में भी काम नहीं निकलता।

३. विश्रामागार और सोने का कमरा—सोने के लिये सब से उत्तम स्थान बरांडा है; फिर भी एक कमरा चाहिये जहां दिन में आराम किया जावे और जब जी चाहे, सोने के काम में आवे। यह कमरा खूब हवादार होना चाहिये। जिस कमरे में कभी भी सूर्य का प्रकाश न आवे वह कमरा रात के सोने के लिये अच्छा नहीं है। खिड़कियां आमने सामने होनी चाहियें; हवा जब ही प्रवेश करती है जब उस के सहज में निकल जाने का भी रास्ता हो। खिड़की की ऊँचाई फर्श से ३ फुट के लगभग होनी चाहिए या यह समझो कि चारपाई से कोई एक फुट ऊँची; इतनी ऊँची रहने से झोंका नहीं लगता; चाहे तो खिड़की और नीची रक्खी जा सकती है। खिड़कियों में स्थायी तार की जाली न लगानी चाहिये, इस से हवा बहुत रुक जाती है। यदि जाली के किवाड़ लगें तो कोई हर्ज नहीं, जब चाहें ये किवाड़ खोले जा सकते हैं। छत में हवादान खुलवाने की कोई आवश्यकता नहीं, इन से कोई फायदा भी नहीं। छत के पास रोशनदान बनाये जा सकते हैं परन्तु खिड़कियों के होते हुए इन का होना भी आवश्यक नहीं। यदि हो सके तो खिड़कियों में आधे भाग में बजाय लकड़ी के शीशा जड़ा होना चाहिये। यह शीशा धुँधला किया जा सकता है और उस पर हरा या नीला रंग का कागज़ भी चिपकाया जा सकता है ताकि चौंध न आवे। सोने का कमरा ऐसा होना चाहिये कि गर्मियों में ठंडा रहे।

सोने के कमरे में सिवाय चारपाई और ज़रूरी छोटी मेज़ कुर्सी के और झाड़ कबाड़ न होना चाहिये। बनिया सब माल साथ लेकर सोता है, वह सब असबाब को चारपाई के चारों ओर रख लेता है; यह बुरी आदत है। सोने के कमरे में भोजन की चीज़ें

[illegible] रखनी चाहियें—इस से चूहे और चींटी और मक्खियाँ आती हैं। म[illegible]रों और पिस्सुओं के छिपने के लिये जगह भी मिल जाती है।

भारतवर्ष में पहले ज़माने में मकान में तिदरी (सेदरी) या बरांडे का रिवाज था; कमरे में असबाब रखते थे बरांडे में सोते थे। ज्यों ज्यों यह रिवाज कम होता जा रहा है, क्षय रोग भी बढ़ता जा रहा है। बरांडा १० फुट से कम चौड़ा न होना चाहिये; कम चौड़ा होगा तो वर्षा से बचाव न होगा। यदि बरांडे में सर्दी अधिक मालूम हो तो कपड़ा या चिक टाँग कर झोंका रोका जा सकता है।

जिन लोगों को ज़ुकाम अकसर बना रहता है वे आज़मा कर देखें; बरांडे में सोना उन को अत्यंत लाभ पहुँचावेगा। सर्दी से बचने के लिये जितना चाहे कपड़ा ओढ़िये; मुँह खुला रखिये। ठंडी खुश्क [illegible] वायु शरीर को ताक़त पहुँचाती है और हमारी रोगनाशक शक्ति को बढ़ाती है। गरम और गरम तर वायु हानिकारक है; कमरे के अंदर की वायु गरम तर हो जाती है क्योंकि मुँह से जलीय वाष्प निकलती रहती है। कितने ही बन्दोबस्त कीजिये कमरे की वायु बरांडे की वायु का या बाहर की वायु का मुक़ाबला नहीं कर सकती; फिर क्यों पवित्र वायु का सेवन न किया जावे। पवित्र वायु को हव्वा न जानो, वह प्राण रक्षक है, आयु वर्द्धक है। पाठक! प्रण करो कि आज से हमेशा जहाँ तक संभव होगा बरांडे में सोओगे। जो लोग अज्ञानता के कारण सदा से कमरे के भीतर सोते रहे हैं, उनको अव्वल अव्वल बाहर सोने से डर लगेगा परन्तु उनको शीघ्र ही खुली हवा में सोने की आदत पड़ जावेगी और फिर वे कभी भी कमरे के भीतर रहना पसंद न करेंगे।

पाख़ाना, रसोईघर और विश्रामगार तो आवश्यक कमरे हैं; इनके अलावा आप को जो चाहिये बनवाइये—जैसे स्नानागार, अध्ययनागार,

भंडारा, कबाड़ की कोठरी, गुसलखाना इत्यादि। हम केवल स्नानागार के और भंडार के विषय में कुछ लिखकर इस विषय को समाप्त करेंगे।

४. स्नानागार—जहाँ तक हो सके ऐसा यत्न किया जावे कि स्नानागार का पानी पाखाने में से होकर जावे ताकि पाखाने की नाली गंदी न रहे। स्नानागार में पत्थर या सीमेंट का फर्श होना चाहिये और दीवारों पर चाहे मार्बल की टाइल्स लगें चाहे तीन फुट तक सीमेंट हो। एक छोटी सी अल्मारी और एक शीशा और खूंटियाँ होनी चाहियें। इस कमरे में धूप आने का बन्दोबस्त अवश्य होना चाहिये ताकि वह हमेशा सील न बना रहे। नवीन फैशन के स्नानागारों की तस्वीरें दी जाती हैं (चित्र ८४, ८५)। विलायत में स्नानागार में पाखाना भी होता है, वहाँ शृंगार का कुछ सामान भी रहता है। इसाई सभ्यता वाले (यूरोप, अमरीका) टब में नहाना पसंद करते हैं; यह

चित्र ८६ नहाने का टब
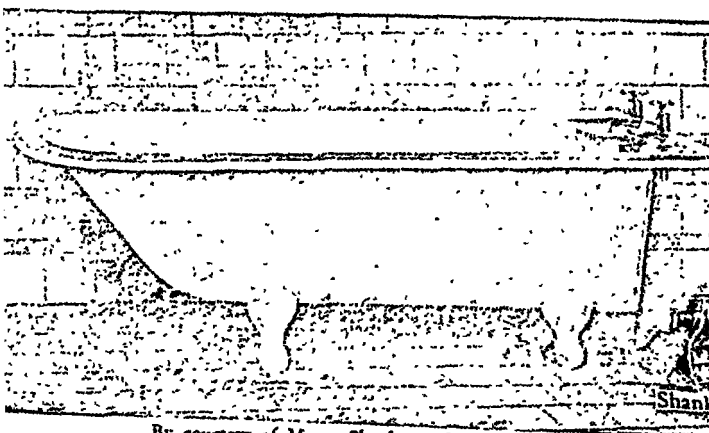
By courtesy of Messrs Shanks & Co. Ltd. Glasgow

चित्र ८४ नवीन परन्तु हिन्दुस्तानी फ़ैशन का स्नानागार
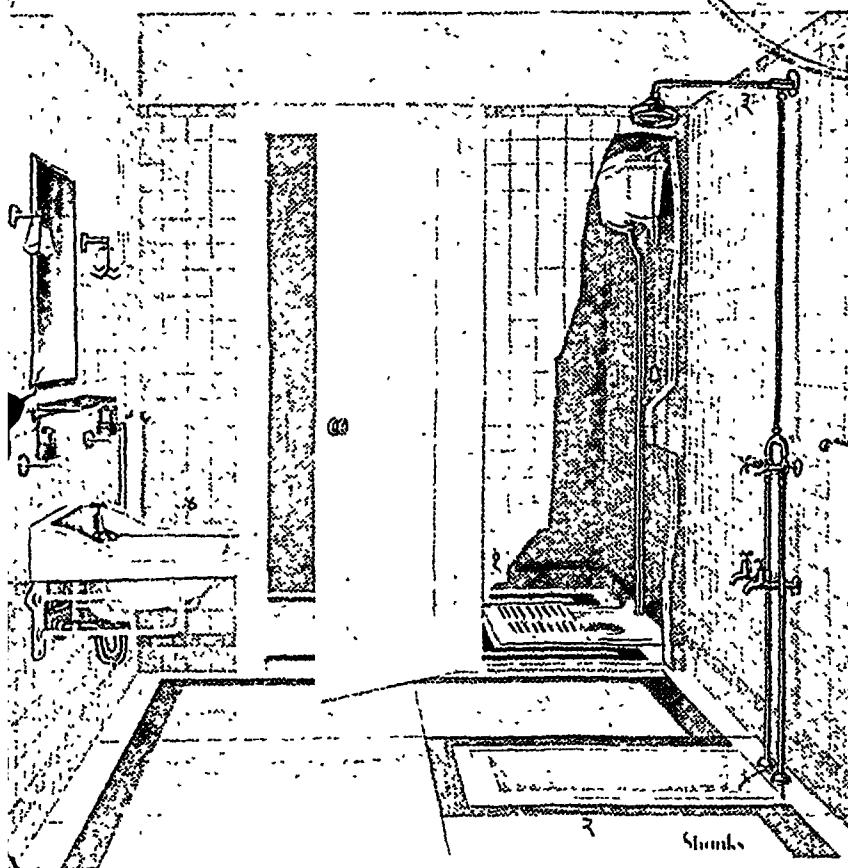
By courtesy of Messrs. Shanks & Co. Glasgow (Messrs. J. B. Norton & Sons Ltd., C

१=अपने आप धुलने वाला पाखाना; २=नहाने का स्थान; ३=फुव्वारा;

धोने का पात्र।

पृष्ठ २९६ के

चीनी या ताम्र चीनी या संगमरमर का बनाया जाता है और आदमी की लम्बाई की बराबर लम्बा होता है। टब में पानी बहुत खर्च होता है (चित्र ८६)। (टब-स्नान के विषय में हम आगे लिखेंगे।)

चित्र ८७ हाथ और मुँह धोने का पात्र

Shanks
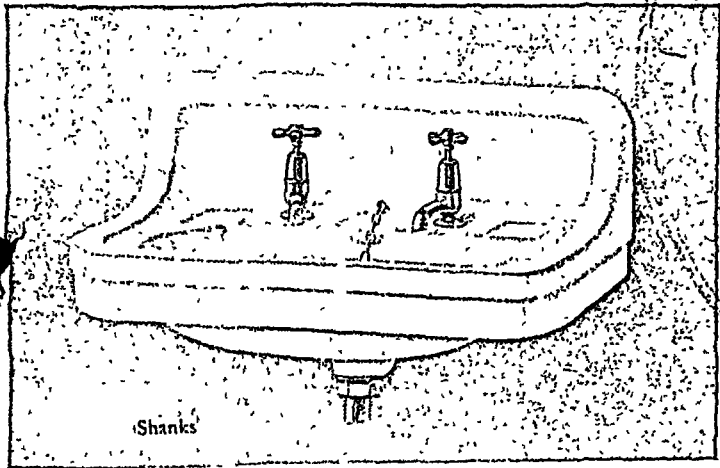
५. भंडारा—इस कोठरी में खाने पीने अर्थात् रसोई का सामान आटा, दाल, घी इत्यादि रक्खा जाता है। फ़र्श और दीवारें पक्की होनी चाहियें। हो सके तो फर्श पत्थर का या कंकरीट का हो अर्थात् यह कोठरी ऐसी हो कि चूहे खोद न सकें। फर्श से दो फुट की उँचाई पर पत्थर का टांड होना चाहिये जिस पर सब सामान ढकनेदार टीनों में भर कर रक्खा जावे। घड़े और हंडियाँ सस्ती तो होती हैं परन्तु चूहे बहुत परेशान करते हैं (चित्र ८८)।

६. और कमरे—घर में एक कोठरी ऐसी होनी चाहिये जो और कोठरियों या कमरों से घिरी हो और मज़बूत बनी हो। उसकी दीवारें

चित्र ८८ जहां सामान ढकनेदार टीनों में रक्खा जाता है
वहां चूहे परेशान होकर भाग जाते हैं

भंडार
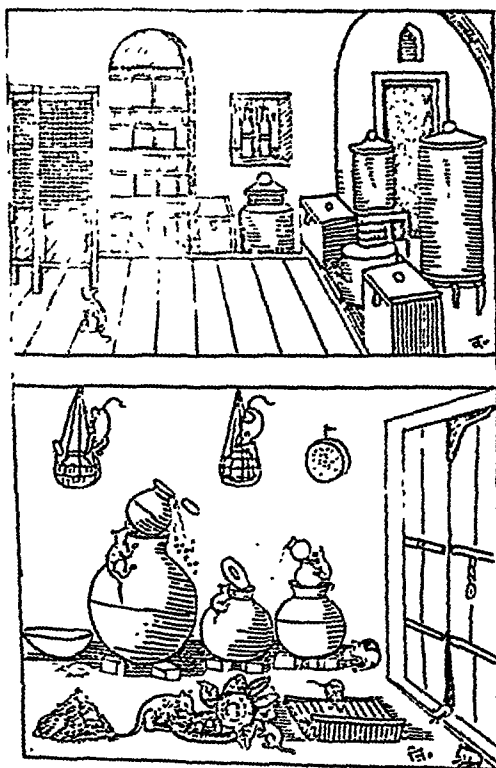
जहाँ सामान मिट्टी के घड़ों में या खुले बरतनों में रक्खा जाता है वहाँ चूहे खूब पनपते हैं और घरवाले परेशान रहते हैं

और दर्वाज़े सभी मज़बूत होने चाहियें। इस में क़ीमती सामान रक्खा जा सकता है ताकि फिर बे-फ़िकरी से सोने को मिले। एक कोठरी आड़ कवाड़ भरने के लिये भी चाहिये; यह सोने बैठने के कमरों से अलग होनी चाहिये क्योंकि इस में कीड़े मकोड़े इकट्ठे हो जाते हैं।

मकान और डंगर ढोर

जहाँ मनुष्य रहे वहाँ गाय, बैल, बकरी, घोड़ा न बाँधना चाहिये। इनके रहने का बन्दोबस्त अलग होना चाहिये। अस्तबल के पास होने से लीद की बदबू के अलावा मक्खियाँ बहुत आती हैं; गाय, बैल के पास रहने से चिंचली घर में रहती है और उनके गोबर और मूत्र से घर गंदा रहता है। ग्रामों में ढोर और मनुष्य पास पास रहते हैं; वहाँ मैदान बड़ा होता है, इसलिये मनुष्य को अधिक हानि नहीं पहुँचती। शहरों में जगह मँहगी होती है, वहाँ उतना स्थान जितना कि ग्राम में मिलता है मिलना कठिन है। बहुत से लोग दहलीज़ में पाख़ाना बनवाते हैं और वहीं डंगर ढोर और घोड़े को भी बाँध लेते हैं। यह कुरीति है और उसको शीघ्र दूर करना चाहिये।

भूमि का रोग से सम्बन्ध

भूमि में अनेक प्रकार के कीटाणु रहते हैं, इन में से बहुत से हानिकारक अर्थात् रोगोत्पादक भी होते हैं। जितने कीटाणु ऊपर की तह में होते हैं उतने नीचे की तह में नहीं होते। तल से ६ फुट नीचे की मिट्टी में बहुत कम पाये जाते हैं। जहाँ मनुष्य का मैला, पाख़ाना, पेशाबादि पड़ता है वहाँ कीटाणु अधिक होते हैं और ऐसे स्थान की मिट्टी खतरनाक होती है। भूमि से कीटाणु पानी में पहुँचते हैं; इसी प्रकार टायफ़ौयड्, पेचिश, हैज़ा होने का भय रहता है। अंकुशा कृमि भूमि द्वारा ही हमारे शरीर में प्रवेश करता है; रोगी हगता है, अंडों

से लहर्वे बनते हैं जो भूमि पर रहते हैं। गँवार और ग़रीब नंगे पैर फिरते हैं; लहर्वे पैर की त्वचा में से हो कर उस के शरीर में प्रवेश करते हैं। तालाबों के पानी द्वारा भी यह रोग लग जाता है। शूकर पट्टिका के अंडे मनुष्य के पाख़ाने में रहते हैं। शूकर पाख़ाना खाता है और उसके शरीर में लहर्वा बनता है जो कोष रूप में रहता है; मनुष्य शूकर का गोस्त खाता है और उस के पेट में कोष रूपी लहर्वे से कीड़ा बनता है; जल और तरकारी द्वारा अंडे वाले पाख़ाने का अंश खाने से उस के शरीर में लहर्वा भी बन सकता है। गो पट्टिका और केंचवा और चुननों का भी भूमि से सम्बन्ध है जैसा कि हम पीछे लिख आये हैं। इन के अतिरिक्त भूमि का और रोगों से भी सम्बन्ध है। यदि भूमि में आयोडीन कम है तो वहाँ के जल और वनस्पतियों में भी आयोडीन कम होती है। ऐसे स्थानों में घेघा रोग होता है। हमारी राय में जल पर्थ्योडिका और पत्थरी का भी भूमि और जल से घनिष्ट सम्बन्ध है। हनुस्तंभ (धनुर्वात) रोग के रोगाणु मिट्टी में—विशेष कर सड़कों और बग़ीचों की मिट्टी में—पाये जाते हैं। सड़क और बग़ीचे की चोट विशेष कर ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में भयानक होती है। जहाँ तक हो सके इन ऋतुओं में चोटों के लगने पर हनुस्तंभ विषनाशक सीरम का इनजेक्शन देना चाहिये।

सूर्य्य

हिन्दू लोग सूर्य्य को देवता मानते हैं और उसको पूजते हैं। इस में सन्देह नहीं कि सूर्य्य प्राण दाता है, वही हम को गरमी देता है, वही प्रकाश देता है। उस के बिना जीना असंभव है; उस के बिना पौधे नहीं जी सकते, पौधे बिना प्राणि नहीं जी सकते। सूर्य्य के प्रकाश में कई प्रकार की किरणें होती हैं; एक काँच के त्रिपार्शव द्वारा सूर्य्य का

प्रकाश उन रंगों में जिन के संयोग से वह बना है भिन्न किया जा सकता है।

चित्र ८९ सूर्य्य
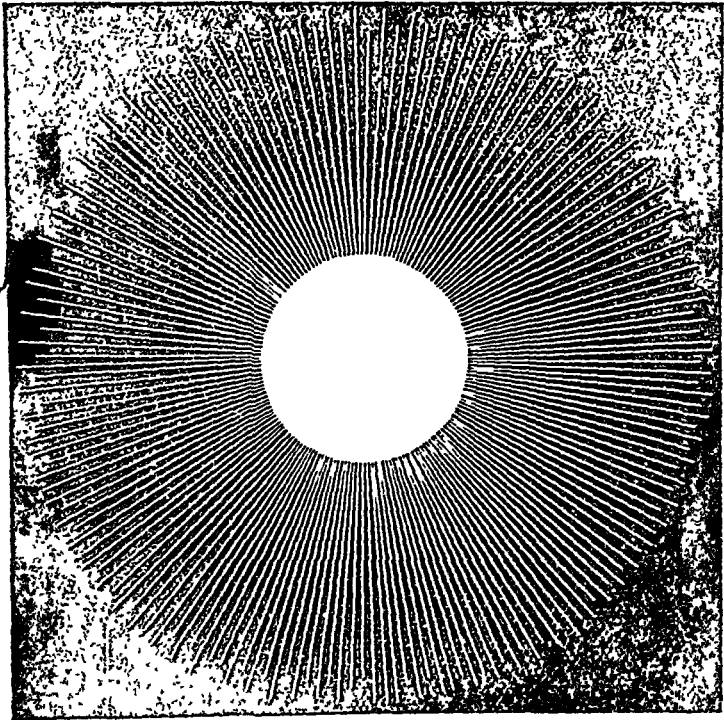
सूर्य्य का प्रकाश भिन्न करने पर निम्नलिखित रंगों से बना मालूम होता है—नीललोहित, नीला, ऊदानीला, हरा, पीला, नारंगी, लाल (रक्त)। इनके अतिरिक्त नीललोहित के परे और लाल के परे अदृश्य किरणें और होती हैं; पहली को उप-नीललोहित (अल्ट्रा

वायोलेट) दूसरी को उप-रक्त (इन्फ्रारेड) किरण कहते हैं। न
किरणों के अलग अलग गुण हैं। लाल किरणों में उष्णता होती है;
पीली में प्रकाश, नीली, नीललोहित और उप-नीललोहित में रासायनिक
गुण होते हैं। रासायनिक गुणवाली किरणें उत्तेजक होती हैं, वे हानि
भी पहुँचा सकती हैं। ये किरणें उत्साह बढ़ाती हैं और उनके प्रभाव
से हमारा परिश्रम करने को जी चाहता है; जब बादलों के कारण
ये किरणें हमको नहीं मिलतीं तो हमारी तबियत गिरी सी और सुस्त
रहती है; धूप निकलते ही एक प्रकार की चैतन्यता आ जाती है।
ये किरणें कीटाणुनाशक होती हैं। इनका त्वचा पर भी प्रभाव पड़ता
है, गोरा चमड़ा भूरा हो जाता है; कभी कभी गोरा चमड़ा जल भी
जाता है और त्वचाह (त्वचा का वर्म) हो जाता है। काले
त्वचा में जो रंग होता है वह इन्हीं किरणों द्वारा पैदा होता है
(पैदा होते समय काले माता पिता के बालक भी गोरे होते हैं; कुछ
दिनों पीछे ये काले हो जाते हैं)। त्वचा में काला रंग होना आत्म-
रक्षा का एक साधन है; काली जातियाँ गर्मी और सूर्य्य-प्रकाश
को अधिक सह सकती हैं, गोरी जातियाँ कम।

पुराने विचार के हिन्दू अब भी प्रातःकाल उठकर स्नान करके सूर्य
को जल चढ़ाते हैं। सूर्य्य जल का प्यासा नहीं और न वह आपके
इस काम से प्रसन्न हो सकता है। आपको सूर्य्य से लाभ उठाना है
तो प्रातःकाल नंगे बदन अपने आप और बाल बच्चों को सूर्य्य के
प्रकाश में बैठना चाहिये; कभी कभी तेल मलकर जिससे स्वास्थ्य
ए उत्पन्न हो। पहनने और ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों को रोज़ धूप
में डालो ताकि पसीना सूखे और कीटाणु मर जावें। मकान ऐसे
बनाओ कि जिसमें धूप आवे ताकि सील न रहे और रोगाणु मर जावें।
गाय के चरने के लिये बड़ी बड़ी चरागाह रक्खो जिससे उसके दू

में खाद्योज जो सूर्य्य के प्रकाश के विना घास में नहीं बन सकती पैदा हों।

चाँद

की किरणें क्या करती हैं यह अभी ठीक तौर से मालूम नहीं। बहुत लोगों का विचार है कि उनसे चंचलता उत्पन्न होती है और सिर दर्द भी उत्पन्न होता है यदि चाँद की ओर ताकते रहें।

जल-वायु

जल-वायु और भूमि का रोग से सम्बन्ध है और इनका स्वास्थ्य पर असर पड़ता है; इसी प्रकार सब देशों में एक ही प्रकार के रोग नहीं होते, पाँच प्रकार के जल-वायु देखे जाते हैं—

१. गरम या उष्णता प्रधान

२. सम शीतोष्ण

३. शीत प्रधान

४. पर्वतीय

५. सामुद्रिक

१. उष्ण जल-वायु—ऐसे देशों में गर्मी खूब पड़ती है, पानी भी खूब बरसता है। भारत गर्म देश है, इतना गर्म नहीं जितना निरक्ष* देश। गर्म देशों में मच्छर, पिस्सू, फुदकु, मक्खी इत्यादि द्वारा अनेक रोग उत्पन्न होते हैं (मलेरिया, काला अज़ार, प्लेग, अफरीका और दक्षिण अमरीका में बहुनिद्रा रोग और पीला ज्वर इत्यादि); हैज़ा, पेचिश, याकूती फोड़ा, देचक, लू लग जाना इत्यादि रोग होते हैं। साँप, बिच्छू, शेर, चीते इत्यादि से भी बहुत मौतें

* Equatorial region.

होती हैं। गर्मी के कारण अधिक समय तक शारीरिक और मानसिक परिश्रम करना कठिन होता है।

२. सम शीतोष्ण—भारत का कुछ भाग जैसे उत्तर का सम शीतोष्ण है। यहाँ के रहनेवाले आम तौर से बलवान और बुद्धिमान होते चले आये हैं। वाई, गठिया, न्युमोनिया, श्वास पथ के रोग, खसरा, जर्मन खसरा, लाल ज्वर, टायफॉयड, कुक्कुर खाँसी और क्षय रोग इन देशों के विशेष रोग हैं।

३. शीत प्रधान—शीत ऋतु अधिक समय तक रहती है, ग्रीष्म ऋतु थोड़े समय तक। स्कर्वी और कंठमाला, आँखों का दुखना और बरफ की चौंद से अन्धापन यहाँ अधिक होते हैं। आम तौर से स्वास्थ्य अच्छा रहता है; भूख खूब लगती है, परिश्रम करने को जी चाहता है और रोगाणु शीघ्र नहीं पनपने पाते।

४. पर्वतीय या पहाड़ी—यहाँ ताप शीघ्रता से घटता बढ़ता है। वायु भार कम होता है और वायु मंडल साफ रहता है। जिन लोगों का सीना कमज़ोर और कम फैलनेवाला है या जिनको क्षय रोग का रुझान है उनके लिये ऐसा जल-वायु अच्छा है। श्वास प्रनाली के प्रदाह वालों और गुर्दें, मस्तिष्क और यकृत के रोग वालों के लिये यह जल-वायु अच्छा है; वृद्धों और निर्बलों के लिये हानिकारक है। यहाँ की आबोहवा परिश्रम करने वालों को ही लाभ पहुँचा सकती है।

५. सामुद्रिक—अर्थात् जैसी कि द्वीपों और समुद्र के किनारों पर मिलती है। यहाँ मौसम एकसा रहता है; यह नहीं होता कि एक दम सर्दी या गर्मी पड़े। यहाँ की वायु मरतूब होती है; फुफ्फुस और श्वास पथ के रोग और वाई, (जोड़ों में दर्द इत्यादि) अधिक होते हैं।

वायु प्रवेश

जिस कमरे में हम रहते हैं वहाँ की वायु हमारे स्वाँस और पसीने द्वारा हर समय दूषित होती रहती है जैसा कि हम पीछे लिख आये हैं। आग और लेम्प वत्ती के जलने से भी दूषित पदार्थ वायु में पहुँचते रहते हैं। कमरे में रक्खी चीज़ों के धीरे धीरे क्षय होने से भी गंदगी वायु में पहुँचती है। दूषित पदार्थों के अतिरिक्त यह वायु गरम और तर भी हो जाती है जिस के कारण हमारा स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता और हमारा दिमाग़ चकराने लगता है; कमरे की वायु स्थिर भी रहती है। जीवन के लिये आवश्यक है कि यह दूषित वायु समय समय पर कमरे में से निकलती रहे और उस की जगह पवित्र वायु या कम दूषित वायु आती रहे। यह काम दरवाज़ों और खिड़कियों द्वारा होता है। कमरे की लम्बाई चौड़ाई इतनी आवश्यक नहीं कि जितना वायु प्रवेश का प्रबन्ध। छोटा, हवादार कमरा बड़े कमरे से जिसमें वायु भली प्रकार न आती हो अच्छा होता है। वैज्ञानिकों ने जाँच पड़ताल से सिद्ध किया है कि यदि कमरे में वायु के आने जाने का पूरा प्रबन्ध हो तो प्रत्येक मनुष्य को कम से कम १८०० घन फुट वायु की प्रति घंटा आवश्यकता है। मनुष्य प्रति मिनट १७ श्वास लेता है और प्रति श्वास ५०० घन शतांश मीटर (सेन्टी मीटर) या ३०·५ घन इंच वायु उसके फेफड़ों में से आती जाती है। मामूली परिश्रम करते हुए एक पुरुष ०·९ घन फुट कर्बन द्विओषिद् निकालता है ; स्त्रियाँ इससे कुछ कम और बच्चे ०·५ घन फुट त्यागते हैं। औसत पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों का ०·६ घन फुट होता है।

वायु स्थान प्रति व्यक्ति

स्वस्थ मनुष्यों को ७००–१००० घन फुट और रोगियों को इससे

होने चाहियें। जब नई गली बने और यह गली किसी कारण काफ़ी चौड़ी न बनाई जा सके तो वहाँ पर कोई मकान एक नियत उँचाई से अधिक ऊँचा बनाने की आज्ञा न दी जावे। जब अवसर मिले पुरानी गलियों को चौड़ा करना चाहिये। जगह जगह खुले मैदान होने चाहियें जहाँ पर बच्चे खेल कूद सकें; हमारा मतलब आबादी या घर के पास पार्क लगाने से नहीं है। इन खुले मैदानों की सफ़ाई का अच्छा प्रबन्ध होना चाहिये ताकि मच्छर और मक्खियाँ और पिस्सू पैदा न हों। घास उगे तो कभी भी ४ इंच से अधिक लम्बी न होने पावे।

कमरे को ठंढा रखना

१. ऊँचा कमरा नीचे कमरे की अपेक्षा ठंढा रहता है।

२. दो मंज़िला मकान हो तो नीचे वाली मंजिल के कमरे ठंढे रहेंगे।

३. पूर्व मुहाना कमरा अच्छा होता है; सुबह धूप आती है; शीत ऋतु में यह धूप अच्छी मालूम होती है और ग्रीष्म ऋतु में भी नागवार नहीं होती। पश्चिम मुहाना कमरे में इस के विपरीत होता है; उस में ग्रीष्म ऋतु में शाम को धूप आवेगी और यही सब से गर्म समय होता है। उत्तर मुहाना मकान भी अच्छा होता है।

४. पंखे से भी कमरे की वायु ठंडी हो जाती है।

५. बहुत गरमी हो तो ख़स की टट्टी लगाई जा सकती है। जो लोग कारोबारी हैं और जिन को कभी धूप में चलना पड़ता है और कभी कमरे में बैठना पड़ता है उन के लिये ख़स की टट्टी ठीक नहीं क्योंकि लू लगने का डर रहता है; और ज़ुकाम होने की भी अधिक संभावना रहती है।

चिक

चिक द्वारा आड़ रहती है; मक्खी मच्छर अन्दर कम घुसने

पाते हैं; परन्तु वायु प्रवेश आधा हो जाता है। चिक से थोड़ी बहुत चौंद भी कम हो जाती है।

जालीदार किवाड़

जाली में भी वायु प्रवेश आधा हो जाता है; झोंका नहीं लगता कीड़े, मकोड़े, मक्खी नहीं घुसने; यदि जाली बारीक हो तो मच्छर भी नहीं घुस पाते। पाख़ाने में, रसोई घर में जाली के किवाड़ होने चाहियें।

खपरैल

इस ज़माने में जब कि मनुष्य को जस्ती लोहे की चादर बनानी आती है खपरेल का प्रयोग भूल कर भी न करना चाहिये। आरंभ में खपरेल में पक्की छत की अपेक्षा कम लागत लगती है परन्तु इस को हर साल मरम्मत करनी पड़ती है; कितनी ही बढ़िया खपरेल क्यों न हो वह वर्षा में अवश्य तंग करती है। पुराने होने पर वे साबूत रहने पर भी चूने लगती हैं। मिट्टी गिरने लगती है, कीड़े भी ऊपर से गिरने लगते हैं; साँप (विशेष कर श्वेत साँप) रहने लगता है और चूहों को वहाँ रहने में बड़ा आनन्द आता है। चूहा रात को उतरता है और सुबह होने से पहले चढ़ कर ऊपर चढ़ जाता है और फिर बिना खपरेल को उधेड़े उसे कोई पा नहीं सकता। खपरेल के नीचे कपड़े की छता छत लगाने की आवश्यकता है। आँधी में खपरेल में से धूल भी बहुत गिरती है (यदि अंदर बहुत मोटा कपड़ा न लगा हो)। खपरेल वाले मकानों में मच्छर भी बहुत रहते हैं और उन को मारा भी नहीं जा सकता। हम को बढ़िया से बढ़िया खपरेल का तजुर्बा है; हमारी राय में वह मूर्ख है जो आजकल अपने मकान में खपरेल लगवाता है। जहाँ वर्षा अधिक हो वहाँ बजाय खपरेल के जस्ती लोहे की चादर

लगानी चाहिये; गरमियों में उस की गरमी कम करने के लिये उस के नीचे तख़्तों की छत लगाई जा सकती है।

फूँस

ग़रीब लोग फूंस के छप्पर डाल लेते हैं। जो काम दरिद्रता की वजह से किया जाता है उस का कोई चारा नहीं। परन्तु जो लोग बंगलों और कोठियों में फूंस का प्रयोग करते हैं उन को तो मैं बेवक़ूफ़ ही कहूँगा। कीड़े, मकोड़े, साँप, विच्छू ऐसे बंगलों में बहुत रहते हैं। और कपड़े की छत लगाने की आवश्यकता होती है। कुछ दिनों पीछे फूंस सड़ जाता है और बदलना पड़ता है। गंदा रहने के अतिरिक्त आग लगने का भी बहुत डर रहता है।

वायु का रोगों से सम्बन्ध

निम्न लिखित रोगों का वायु से सम्बन्ध है—

क्षय रोग

चेचक

खसरा

छोटी चेचक

कुक्कुर खाँसी

ज़ुकाम, खाँसी

डिफथीरिया

इन्फलुएंज़ा

सर दर्द

दम घुटना

अनवधान, सुस्ती, आलस्य, थकान

चित्र ९० क्षयाणु

By courtesy of Professor R. Muir

चित्र $\frac{\text{क}}{\text{४०६}}$ कुष्ठाणु का क्षयाणु से मुकाबला करो

कुष्ठाणु

सहायक कारण

ये रोगाणु प्लेग, हैज़ा, न्युमोनिया, इन्फ्लुएंज़ा की भाँति बहुत तीव्र और बलवान् नहीं हैं कि जो शीघ्र "मरें या मार डालें"। इन रोगों के रोगाणु ऐसे होते हैं कि वे कड़ा युद्ध करते हैं; दो चार दिन में इधर या उधर हो जाता है। यदि शरीर ने विजय पाई तो रोगाणु मर जाते हैं और रोगी अच्छा हो जाता है; विपरीत इसके यदि रोगाणु जीते, विजयी हुए, तो "राम राम सत्य है"·········होता सुनाई देता है। क्षयाणु अपना काम बड़ी सावधानी से करते हैं; वे धीरे धीरे प्राणियों के शरीर में अपना क़दम जमाते हैं और शरीर में प्रवेश करने और वहाँ रहने के महीनों बल्कि वर्षों पीछे अपना असर दिखाते हैं। वे वास्तव में उस बनिये की तरह हैं जो हाथ जोड़ कर जी हज़ूर करता हुआ, आप के मुँह पर आप की तारीफ़ करता हुआ, आप का मित्र और शुभचिंतक बन कर धीरे धीरे बिना आप के जाने और ख़बरदार हुए आप का सब धन-दौलत, जायदाद हज़म कर जाता है। बनिया खुश होता है जब आप भंग पियें, चरस पियें, शराब पियें, कोकीन खावें, यार दोस्तों को दावतें खिलावें, रंडीबाज़ी करें, ऐसे काम करें जो आप की साधारण शक्ति से बाहर हैं। बिल्कुल यही हाल और आदत क्षयाणु की है; अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान न दीजिये, अति शारीरिक और मानसिक परिश्रम कीजिये, अति मैथुन कीजिये; रंडीबाज़ी करके सोज़ाक, आतशक इत्यादि रोगों से पीड़ित हो जाइये, मलेरिया ज्वर द्वारा अपना रक्त ख़राब कीजिये और रोग-नाशक शक्ति घटाइये; आलू कचालू, चाट खाइये और पौष्टिक भोजन की ओर ध्यान न दीजिये; ऐसा और इस प्रकार बना हुआ भोजन खाइये कि खाद्योज प्राप्त ही न हों; धन नाजायज़ कामों में लगा कर मैले कुचैले वस्त्र धारण कीजिये और गंदे मकानों में रहिये;

१. फुप्फुस में पहुँचने से फुप्फुस का क्षय या थाइसिस होती है; स्वरयंत्राह हो जाता है।

२. लसीका ग्रन्थ्याह जिस में लसीका ग्रन्थियाँ फूल जाती हैं और फिर पक जाती हैं जैसे कंठमाला।

३. संधियों का प्रदाह हो जाना। अस्थियों का रोग।

४. त्वचा में ज़ख्म वनना।

५. मस्तिष्क की झिल्ली का प्रदाह ; मस्तिष्क का प्रदाह।

६. आँख का रोग।

७. उदर की लसीका ग्रन्थियों का और उदर कला का प्रदाह। आंतों का रोग।

८. शुक्र प्रनाली, अंड और डिम्ब ग्रन्थि और डिम्ब प्रनाली का प्रदाह।

९. और अंगों के रोग।

क्षयाणु के शरीर में घुसने से क्या होता है

चाहे जिस अंग में क्षयाणु रोग उत्पन्न करें नीचे की तीन, चार बातें थोड़े वहुत दिनों वाद अवश्य पैदा होती हैं—

१. ज्वर—पहले यह कभी कभी आता है और मामूली अर्थात् ९९° या १००° के लगभग होता है; परिश्रम करने से वढ़ जाता है और आराम करने से घट जाता है। ज्वर का समय आम तौर से दो पहर के वाद होता है। कुछ समय पीछे ज्वर हर समय वना रहने लगता है और १०२°, १०३° और इस से भी अधिक रहने लगता है।

२. नव्ज़ का तेज़ रहना—ज्वर न भी हो तो भी नव्ज़ तेज़ चलती है। ज़रा सा परिश्रम करने से और तेज़ हो जाती है।

बलग़म में ख़ून आना; ख़ून की क़ै होना। सीने की पेशियों का पतला पड़ जाना; हँसलियों के नीचे गढ़े पड़ना; खवे (परवोड़े) पतले पड़ जाना; पसलियों का चमकना।

चित्र ९२. कुहनी के जोड़ का क्षय

कुहनी सूज कर मोटी हो गयी है ; बाहु और प्रकोष्ठ सूख कर पतले हो गये हैं

२. अस्थि और संधि—अस्थियों में दर्द होना, उन पर सूजन आजाना (चित्र ९१) जोड़ों का फूल जाना और उनमें मवाद पड़ जाना (चित्र ९२)।

सिर में दर्द, गरदन में दर्द, गरदन का टेढ़ा हो जाना और पीछे को झुक जाना और गर्दन मोड़ने में अत्यंत पीड़ा होना; पेशियों में दर्द होना; पेशियों का फड़कना, वहकी वहकी बातें करना, चीख़ना चिल्लाना इत्यादि।

६. आँत—आँतों में ज़ख़्म हो जाते हैं; पाख़ाने में मवाद आने लगता है; दस्त आते हैं; ऐंठन होती है।

७. स्वर यंत्र—आवाज़ का वैठ जाना।

८. नर जननेन्द्रियाँ—अंड, उपांड, और शुक्र प्रनाली में वरम आना और मोटा हो जाना और फोड़ा वन जाना।

९. नारी जननेन्द्रियाँ—डिम्ब प्रनाली पर वरम होना और उस में फोड़ा वन जाना; हर समय पेड़ू और कोख में भारीपन और दर्द होना; वाँझपन।

१०. अन्य अंगों में भी रोग होते हैं—कभी कभी सभी अंगों में रोग हो जाते हैं। जिसको फुप्फुस का रोग होता है उस को धीरे धीरे आँतों और स्वरयंत्र का भी हो जाता है।

क्षय रोग के सम्बन्ध में ख़ास बात

जव कोई युवक या युवती उस आयु में जव उस को ख़ूब वढ़ना चाहिये और ख़ूब चैतन्य रहना चाहिये, न वढ़े, उस का भार स्थिर रहे या घटता जावे, त्वचा में वजाय लाली के पीलापन हो, गरदन में टटोलने से छोटी छोटी गाँठें सी मालूम हों, थोड़े से परिश्रम से थक जावे, रात्रि को अच्छी नींद न आवे, दोपहर के वाद वदन गरम हो जावे और सर में हलका सा दर्द होने लगे और हाथ पैर टूटने लगें; भूख कम लगे; तव फ़ौरन यह ख़याल करना चाहिये कि कहीं इस व्यक्ति को क्षय का आरंभ तो नहीं हो गया है। जुकाम हो

और शीघ्र ही अच्छा न हो ; खाँसी का ठसका रहे और वह खाँसी मामूली औषधियों से शीघ्र अच्छी न हो या एक बार अच्छी हो कर फिर हो जावे ; स्त्रियों में पेड़ू में दर्द हो और दवा करने से देर तक फ़ायदा न हो ; नव विवाहित अगर्भित स्त्रियों का मासिक धर्म बन्द हो जावे और वह कमज़ोर होती जावें; जवान स्त्री के पेट में दर्द हो पेट फूला रहे, मतली हो, ज्वर हो, भूख न लगे और मामूली बदहज़मी के इलाज से कोई फ़ायदा न हो—ये ऐसी बातें हैं कि क्षय रोग को याद किया जावे और जाँच पड़ताल में विलम्ब और कोताही न की जावे।

हकीम और क्षय रोग

मेरा विश्वास है और मैं यह बात १९ वर्ष के तजुर्बे से कहता हूँ कि पुरानी तालीम वाले हकीम क्षय रोग को जब वह प्रारंभिक अवस्था में होता है नहीं पहचान सकते। नई तालीम के हकीम डाक्टरों के तजुर्बे और तहक़ीकात से फ़ायदा उठाना बुरा नहीं समझते और जो उनमें से समझदार और कम हठी हैं वे उनकी राय पर अमल करना अपनी कसरे शान नहीं समझते। क्षय रोग (तपेदिक़) ऐसा रोग है कि उसकी चिकित्सा उसी समय में हो सकती है कि जब उसको आरंभ हुए बहुत देर न हुई हो। इस कारण प्रारंभिक अवस्था में इधर उधर मारे मारे फिरना और समय को हाथ से जाने देना मौत को अपने घर बुलाना है। बीमार को २४ घण्टे ज्वर रहता है, रात को ठंढा पसीना आता है, सीने में दर्द होता है, खाँसी आती है, बलग़म में ख़ून आता है, भार घटता जाता है, रोगी बिस्तर पर लग गया है, बदन पीला पड़ गया है, जिगर (यकृत) के रोग के कोई लक्षण नहीं हैं, बलग़म में असंख्य क्षयाणु पाये जाते हैं फिर भी अक़ल के पीछे लाठी लिये फिरने वाले

हकीम महाशय "वर्म जिगर" ही यतला रहे हैं ; यहाँ तक कि रोग अंतिम अवस्था में है, सैकड़ों दस्त आते हैं फिर भी यह मूर्ख उलटा ही इलाज करते चले जाते हैं। हकीम मूर्ख हैं परन्तु उस रोगी के माँ बाप महामूर्ख ; किसी बड़े ओहदे पर होने से क्या होता है, साधारण बुद्धि (जिस को अंगरेज़ी में कोमन सेंस=Common sense) और कुर्सी हमेशा साथ साथ नहीं रहतीं। वैद्य लोग इस रोग को हकीमों से ज़्यादा अच्छी तरह से पहचानते हैं। नवीन डाक्टरी में इस रोग का सब से बढ़िया निदान है। हमारा विचार है कि यदि प्रारंभिक दशा में रोगी हकीमों के चक्कर में न पड़ें तो भारत में इतनी मृत्यु इस रोग से कदापि न हों।

क्षय की व्यापकता

वैसे तो क्षय रोग सर्व व्यापक अर्थात् सर्व देशीय है परन्तु आज कल उन जातियों में बढ़ता जाता है जो पराधीन हैं, जो पाखंडी हैं, जो थूकचट हैं, जो गुञ्जान महल्लों और बस्तियों में रहती हैं, जो छोटी आयु में बच्चे जनने लगती हैं, जो दरिद्र हैं और जो अज्ञानी हैं। परदा करने वाली जातियों में परदा न करने वाली जातियों से अधिक होता है। मुसलमान स्त्रियों में अमुसलमान जैसे हिन्दू स्त्रियों से अधिक होता है। जाँच से पता लगा है कि इस संसार में जितनी मौतें होती हैं उनमें से $\frac{1}{6}$ भाग क्षय रोग से होती हैं। भारतवर्ष में यह रोग उतना ही बढ़ता जाता है जितना कि यूरोप अमरीका में घटता जाता है।

क्षय से मृत्यु

प्रारंभिक अवस्था में भली प्रकार चिकित्सा करने से रोग अच्छा हो सकता है इसमें कोई सन्देह नहीं। ज़रा बढ़ी हुई हालत में भी यत्न करने से रोगी बहुधा इतना अच्छा हो जाता है कि यदि वह साव-

धानी से जीवन व्यतीत करे तो मामूली परिश्रम करता हुआ बहुत दिनों तक जीवित रहे । जो रोग थोड़ा बहुत बढ़ गया है उसका ठेल-लना कठिन है । क्षय के लिये अभी तक कोई अमोघौषधि नहीं बनी है और न कभी बनेगी । यह कीटाणु जनक रोग है ; सृष्टि के आरम्भ से अब तक इस प्रकार के रोगों के लिये कोई ऐसी औषधि नहीं बनाई जा सकी जो बिना शरीर को हानि पहुँचाये शरीर में प्रवेश करके इन कीटाणुओं का सत्यानाश करके रोग को दमन करे, कारण यह है कि कीटाणु शरीर की सेलों से अत्यन्त छोटे होते हैं ; जो औषधि कीटाणु को हानि पहुँचावेगी वह शरीर की सेलों को बिना हानि पहुँचाये उन तक कैसे पहुँच सकती है ? कीटाणु जनक रोगों का दमन या नाश हमारी स्वाभाविक रोग नाशक शक्ति [illegible] है इसी शक्ति को बढ़ाना हमारा कर्त्तव्य है । कीटाणु जनक रोगों के लिये सृष्टि के आरम्भ से औषधियों की [illegible] होता आया है परन्तु अब तक असफलता रही—जुकाम, न्युमोनिया, टाइफायड, चेचक माल्टा ज्वर, पीला ज्वर, प्लेग, हैज़ा इत्यादि [illegible] कीटाणु जनक रोग हैं, इन में से किसी की किसी के पास (वैद्य, हकीम, डाक्टर, होम्योपैथ इत्यादि) अमोघौषधि नहीं; भाँति भाँति के यत्नों से काम निकाला जाता है । [कीटाणु जनक रोगों से भिन्न आदिप्राणि जनक रोग हैं जैसे मलेरिया, काला अज़ार, अति निद्रा रोग, आतशक, इन के लिये अमोघौषधि बनी हैं और बनती चली जाती हैं] तपेदिक़ बढ़ी हुई हालत में क़ब्ज़े में नहीं आता, वह वारंट गिरफ़्तारी है जो यमराज के हाथ में है; मौत बहुधा टाले नहीं टलती । इस कारण पाठक सावधान रहो, आरंभ में इलाज करो । यह रोग बहुत कष्ट देने वाला है, बेहद धन बरबाद होता है, अंत में रोगी कंगाल हो जाता है और फिर भी जीवन हाथ नहीं लगता ।

क्षय के फैलने के कारण

१. अच्छे मकानों की कमी और म्युनिसिपल्टियों और इम्प्रूवमेंटट्रस्टों की बेवकूफियाँ और लापर्वाही। वह मकान जिस में रहने वाले के लिये कमरे के भीतर सोना आवश्यक हो जावे अर्थात् जिस में सोने के लिये वराँडे न हों कभी भी स्वास्थ्य के लिये अच्छा नहीं हो सकता। जिस कमरे या मकान में बहुत से आदमी इकट्ठे सोवें या जहाँ मकानों और कमरों के अभाव से लोगों को बिना अपनी इच्छा के ऐसा करना पड़े वह मकान स्वास्थ्य के लिये अच्छा नहीं है। जिस मकान में सूर्य्य का प्रकाश दिन भर में किसी समय में भी न आ सके वह रहने योग्य नहीं है। जहाँ मकान इतने मँहगे हों कि लोगों को अपनी आमदनी का $\frac{1}{10}$ अंश से अधिक खर्च करना पड़े तो वहाँ क्षय रोग के फैलने का बहुत डर है। जहाँ मकान ऊँचे हैं और आमने समाने के मकानों के बीच में उन की ऊँचाई के हिसाब से चौड़ी गली नहीं बनी है तो समझ लो कि यहाँ क्षय का पौधा भली प्रकार उगेगा। छोटे से घर में पाखाना और कुँआ पास पास हों या जहाँ सोते बैठते हों वहीं कुआ भी हो तो वहाँ क्षय दैत्य शीघ्र विराजमान होंगे। जिस घर में धुआँ निकलने का प्रबन्ध नहीं है वह भी अत्यन्त हानिकारक है।

२. अच्छे भोजन की कमी। हरे पत्ते वाली तरकारियों को न खाना; या खाना तो उनको खूब जला भुना कर खाना; जंगल में चरने वाली स्वस्थ्य गायों का पवित्र दूध न मिलना; भोजन को बुरी रीति से पकाना; पौष्टिक खाद्योजपूर्ण भोजन का यथा परिमाण न मिलना; भोजन में खटिक और फौस्फोरस की कमी।

३. आत्म रक्षा के पूरे सामान एकत्रित होने से पहले ही स्वजाति रक्षा की ओर ध्यान देना। छोटी आयु में मैथुन का आरम्भ करना

और नन्हे नन्हें दुर्बल चूहे जैसी सन्तान उत्पन्न करना। मैथुन को आनन्द प्राप्ति का साधन समझना। शीघ्र शीघ्र सन्तान का होना।

४. स्त्रियों का परदे में मकान की चार दीवारी में बंद रह कर खुले मैदान की पवित्र वायु का ग्रहण न करना। सूर्य्य प्रकाश का अभाव; व्यायाम न करना।

५. बालकों पर थोड़ी आयु में पढ़ने लिखने पर ज़ोर डालना। मदरसों की ६ घन्टे की पढ़ाई के पश्चात् भी घर पर अधिक मेहनत करना। मदरसे जाने वाले विद्यार्थियों के भोजन का समय ठीक न होना; भोजन करते ही विना ज़रा सा आराम किये मदरसे को भागना; दो पहर के समय भोजन का कोई प्रबन्ध न होना; चाट इत्यादि का खाना।

६. क्षयी का अनुचित व्यवहार। रोगी अपने आप तो मरता ही है. जगह जगह थूक कर क्षयाणु फैलाता है और इस प्रकार अन्य शरीरों में बीज बोता है।

७. मलेरिया, आतशक, काला आज़ार रोगों से स्वास्थ्य का बिगड़ जाना और इस प्रकार क्षय के बीज के उपजने के लिये भूमि का तैयार होना।

८. एक दूसरे का हुक्का पीकर एक दूसरे का थूक चाटना जैसा कि बहुत सी बिरादरियों में विशेष कर नीच कौमों में होता है। एक दूसरे के झूठे अर्थात् थूक लगे बरतनों में खाना पीना।

९. सड़कों पर पानी के न छिड़के जाने से धूल उड़ना और उसका भोजन के पदार्थों पर बैठना और घर के भीतर जाना।

१०. भंग, चरस, कोकीन, मदिरा, ताड़ी से स्वास्थ्य को बिगाड़ना।

११. मदरसों में मेज़ कुर्सियों का विद्यार्थियों की ऊँचाई के हिसाब

रा न दिया जाना जिसके कारण विद्यार्थियों को कमर झुका कर बैठना पड़ता है ।

क्षय रोग से बचने के उपाय

१. जिसको फुप्फुस का क्षय है उसके बलग़म में रोगाणु रहते हैं; रोगी अकसर अपने बलगम को थोड़ा बहुत निगल जाया करता है, इस लिए उसके मल में भी रोगाणु रहते हैं; आंत्रिक क्षय वाले के मल में रोगाणु रहते हैं। जब लसीका ग्रन्थियों का फोड़ा फूटता है या त्वचा में क्षय के ज़ख्म बनते हैं तो इनके मवाद में भी थोड़े बहुत रोगाणु रहते हैं। इस लिये क्षयी के बलग़म, मल और मवाद से बचना चाहिये। जहाँ तक हो सके रोगी को अलग अच्छे से अच्छे और हवादार कमरे में रखना चाहिये; हो सके तो ऐसे अस्पताल में रक्खे जहाँ केवल क्षय का ही इलाज होता हो। रोगी को चाहिये कि खाँसते समय अपने मुँह के सामने रूमाल या कपड़ा रख ले ताकि बलग़म की फुव्वार या छीटें दूसरों के मुँह, हाथ पर न पड़ें, या वायु में मिल कर दूसरों के खाने पीने की चीज़ों को दूषित न करें या काग़ज़ के लिफाफों में (जो बिकते हैं) या छोटी छोटी बोतलों में थूके और फिर इन लिफाफों को जला दे। रोगो को फर्श और दीवारों पर भी न थूकना चाहिये क्योंकि बाल बच्चे विशेष कर फर्श पर किरड़ने-वाले शिशु अपनी अँगुली ख़राब कर के बलग़म को चाट सकते हैं। कुछ न हो सके तो चारपाई या कुर्सी के पास एक काग़ज पर राख रक्खें और उसी पर थूकें; हो सके तो थूक दान में जिसमें रोगाणु नाशक घोल पड़े हों थूके। बलग़म को रद्दी काग़ज या फूस या पत्ते में रख कर जला डालना चाहिये; या ज़मीन में दो फुट गहरा गड्ढा खोद कर गाड़ देना चाहिये। बलग़म पानी में न मिलना चाहिये; क्षयाणु पानी में

साल भर तक जीवित रह सकते हैं; सूखे बलग़म में भी महीनों जीवित रह सकते हैं।

२. क्षयी के खाने पीने के बरतन अलग रहने चाहियें। उसके मुँह से लगे हुए बरतनों में कोई और कभी भी न खाये या पिये। क्षयी कभी पेन्सिल, क़लम को मुँह में न दे और दूसरा कोई और व्यक्ति उसके मुँह में दी हुई पेन्सिल, क़लम को न चाटे। जो बांसुरी इत्यादि, मुँह से बजाने वाला बाजा क्षयी बजाये उसको दूसरा न बजाये। क्षयी किसी को चूमे भी नहीं।

३. याद रक्खो कि ठंडी पवित्र खुली वायु से किसी को भी हानि नहीं पहुँचती। कमरे की खिड़की और दर्वाज़ों को खोल कर सोना चाहिये। जहाँ तक हो सके बरांडे या खुले मैदान में सोने की आदत डालो। मुँह ढक कर कभी भी न सोओ। मुँह और दांतों और गले को धोकर, कुल्ली करके, मंजन और दांतौन करके साफ़ रक्खो।

४. छोटी आयु में विवाह न करो। कुमार बाज़ी (गुदा मैथुन) और हस्त मैथुन द्वारा भी वीर्य्य नष्ट न करो। कोई युवक २० वर्ष से पहले मैथुन न करे; कोई युवती १६ वर्ष से पहले गर्भित न हो। दो सन्तानों के बीच में २½ वर्ष का अन्तर रहे—(९ मास गर्भ के, ९ मास शिशु को दूध पिलाने के, ९ मास स्त्री को आराम करने के लिये)।

५. परदा एक दम अलग कर दो। स्त्रियों को गुड़िया मत बनाओ। हर समय घर के भीतर घुसे बैठे रहने से स्वास्थ्य बिगड़ता है। थोड़ी देर चलना फिरना, मैदान की पवित्र वायु में टहलना, सूर्य के प्रकाश में बैठना, उन के लिये उतना ही आवश्यक है जितना पुरुषों के लिये।

६. बिरादरियों के "एक हुक्के" वाले जत्थे से अलग रहो। दूसरों का थूक चाटना अच्छी बात नहीं। सुना है कि इस विचित्र भारत में एक मत ऐसा भी है कि जिस के अनुयायी गुरु के थूके हुए भोजन को

खा जाते हैं। धिक्कार उन मूर्ख चेलों को और महा मूर्ख ख़ुदग़र्ज़ उन के गुरु को।

७. नशे बाज़ी और रंडी बाज़ी कर के अपने स्वास्थ्य और अपनी रोग नाशक शक्ति को न घटाओ। नशों और वेश्या गमन का एक परिणाम सोज़ाक, आतशक, उपदंश रोगों का होना है जिन से क्षय की भूमि तैयार हो जाती है।

८. संसार को एक रंग भूमि समझो और यहाँ पर बहादुरी से तन, मन, धन से लड़ने का उद्योग करते रहो। भविष्य को अच्छा बनाने की फिक्र मत करो। वर्तमान को ठीक रक्खो भविष्य अपने आप अच्छा हो जावेगा। भविष्य के लिये धन जोड़ना या सन्तान के लिये धन जमा कर के छोड़ जाना और वर्तमान में खाने पीने या रहने सहने में यथा आवश्यकता व्यय न करना, जहाँ जगह मिली वहाँ पड़ गये, जैसा मिला खा लिया क्योंकि एक दिन तो मरना है फिर क्यों सुख से रहें यह वृत्ति त्याज्य है। जब तक जीना है अच्छी तरह रहो सहो और अपने स्वास्थ्य पर पूरे तौर से ध्यान दो; मौत और भविष्य का ख्याल न करो, उन से तनक भी न डरो। बुरे कामों में धन खर्च न करो। भारतवासी जितना धन मंदिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों पर खर्च करते हैं यदि वह स्वास्थ्य सम्बन्धी कामों में लगाया जावे तो क्षय क्या क्षय की परछाईं भी ढूँढे न मिले।

९. दूध गर्म कर के पिओ।

१०. सरकार का धर्म है कि ऐसा यत्न करे कि किसी व्यक्ति को अपनी जान और माल का भय न रहे ताकि सब लोग खुले अर्थात् हवादार मकान बनावें। धन और जान की रक्षा के लिये भारतवासी ऐसे मकान बनाते हैं कि जिन में छिप कर बैठ सकें और जहाँ उन के माल को कोई न देख सके और सहज में चोरी न हो सके। बनिये की

तरह हमेशा धन और कीमती चीज़ों के ऊपर तप्पड़ या चारपाई बिछा कर सोना और रात को वार वार उठ कर देखना कि सब संदूक मौजूद हैं और ताले बंद हैं या नहीं स्वास्थ्य के लिये अच्छा नहीं। मेरा पूर्ण विश्वास है कि यदि जान माल की हिफ़ाज़त का पूरा बन्दोबस्त हो तो क्षय रोग भारत में उन्नति न करने पावे।

११. याद रक्खो कि ७०% बालकों के शरीर में १६ वर्ष की आयु से पहले क्षय के रोगाणु थोड़े बहुत पहुँच लेते हैं। वे शरीर में वास करते रहते हैं और कोई विशेष हानि नहीं पहुँचाते। ज्यों ही किसी कारण से शरीर रूपी भूमि उनके उपजने के लिये तैयार हो जाती है, वे बड़ी तेज़ी से फलते फूलते हैं और रोग पैदा करते हैं। इस कारण १६ वर्ष की आयु तक यदि स्वास्थ्य की ओर खूब ध्यान दिया जावे तो ये रोगाणु मर जावें और फिर रोग के होने की अधिक संभावना न रहेगी।

२. चेचक

इस रोग से सभी डरते हैं क्योंकि यह रोग कुरूप बना देता है, अंधा या काना कर देता है, या पुतली पर सुफेदी डाल कर दृष्टि को कम कर देता है। इस रोग से मृत्यु भी बहुत होती है।

बीज कारण

निश्चित रूप से मालूम नहीं, संभव है कि कोई अति सूक्ष्म कीटाणु या आदि प्राणि हो जो चेचक के दानों के मवाद में और उनके खुरंट में रहता है। चेचक एक संक्रामक रोग है जो छूत, वायु, कपड़ों, बरतनों और रोगी के काम में आई हुई और चीज़ों द्वारा दूसरों को लगता है।

जिस समय में टीका नहीं लगाया जाता था बहुत कम लोग बिना

चेचक निकले बचते थे। कोई कौम या जाति इस रोग से बची नहीं वैसे तो कोई आयु नहीं कि जिस में वह न निकलती हो, विशेष कर वह बच्चों को ही दिक करती है।

लक्षण

रोग की कई अवस्थाएं हैं—

१. चेचक का ज़हर हमारे शरीर में ज्वर आने से कोई १२ दिन पहले कभी कभी इस से अधिक और कभी इस से कुछ न्यून काल पहले हमारे शरीर में प्रवेश कर चुकता है। इस काल में कभी तो रोगी को कुछ भी नहीं मालूम होता; कभी कभी तबियत कुछ गिरी सी मालूम पड़ती है, सिर में हलका सा दर्द होता है; पीठ में दुखन होती है और सुस्ती, आलस्य आता है, कुछ बदहज़मी रहती है और कभी कभी गला पड़ जाता है।

२. फिर रोगी को ज्वर आता है, ठंढ लगती है, कभी कभी जाड़े बुखार की तरह झुरझुरी या कपकंपी आती है; सिर में अत्यन्त पीड़ा होती है; कमर में सख्त दर्द होता है; १०४° के लगभग ज्वर हो जाता है; बच्चों में कल्हेड़ा (एक दम हाथ पैरों या कुल शरीर का फड़कना और अकड़ जाना) आता है; हाथ पैर टूटते हैं; गले में छिलन सी मालूम होती है; जिह्वा मैली दिखाई देती है और क़ब्ज़ रहता है।

३. रोगारंभ के तीसरे कभी कभी चौथे दिन दाने निकलते हैं। पहले छोटे छोटे लाल रंग के धब्बे से मालूम होते हैं; ये शीघ्र दाने (दाफड़) बन जाते हैं। दो तीन दिन में ये दाने बड़े हो जाते हैं। निकलने के तीसरे दिन हर एक दाने के चारों ओर एक लाल घेरा बन जाता है। रोगारम्भ के छठे दिन अर्थात् दाने निकलने के तीसरे दिन दाने में ज़रा सा पानी सा इकट्ठा हो जाता है जिस के कारण दाना

चित्र ९४ चेचक

चित्र ९५ चेचक। मुँह और पलक भारी हैं
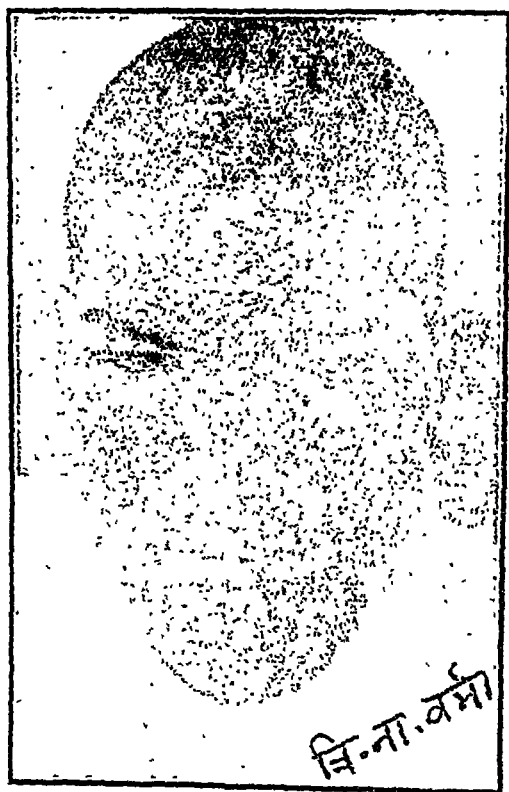
कोप का रूप धारण करता है। इस जल भरे दाने को जलक कहते हैं। दो तीन दिन और बीतने पर यह कोप या जलक पक जाने अर्थात् उस में मवाद पड़ने के कारण पीला सा हो जाता है। दानों के बीच की त्वचा सूजी रहती है, इस कारण चेहरा और पलक भारी हो जाते हैं। (चित्र ९४) रोगारंभ से कोई १२ वें दिन मवाद सूखने लगता है और खुरंट बनने लगते हैं। खुरंट कुछ दिनों में सूख कर गिर जाते हैं और उस के नीचे एक दाग़ दिखाई देता है; यह दाग़ आम तौर से बीच में से ज़रा सा दबा होता है अर्थात् उस में छोटा सा गड्ढा होता है।

याद रखने की बात यह है कि चेचक में सब दाने एक दम नहीं निकल आते। पहले चेहरे और ठटरी पर, फिर छाती पर, हाथों पर, पीठ पर, फिर पेट और टांगों पर निकलते हैं। पैर के पंजों पर सब से पीछे निकलते हैं। जैसे त्वचा पर दाने निकलते हैं, अंदर की झिल्लियों (श्लैष्मिक कलाओं) पर भी निकलते हैं— जैसे गाल, गला, नाक, स्वरयंत्र, टेंटवा, श्वास प्रनाली, अन्न प्रनाली, भग, योनि, आँत इत्यादि में।

चेचक का ज्वर

ज्यों ही दाने निकल आते हैं ज्वर कम पड़ जाता है; सिर का दर्द कम हो जाता है, बकना और बहकी बहकी बातें करना भी कम या बंद हो जाता है और रोगी की तबियत कुछ हल्की हो जाती है। जब दानों में मवाद पड़ता है तब ज्वर फिर बढ़ जाता है।

चेचक कई प्रकार की होती है

१. वह जिसमें दाने कम निकलते हैं; ज्वर भी हलका होता है (चित्र २७)।

२. दाने बहुत निकलते हैं परन्तु अलग अलग रहते हैं (चित्र ९४)।

३. दाने बहुत पास पास होते हैं और रोग तीक्ष्ण होता है (चित्र ९५)।

४. दानों में खून आ जाता है; पाखाने में भी खून आता है (आंतों के दानों से) रोग बहुधा असाध्य होता है (चित्र ९६)।

चित्र ९६ खूनी चेचक

From Archives of Dermatology and Syphilology 1927

इस रोग में और बातें

इस रोग में निम्न लिखित बातें भी हो जाया करती हैं— फोड़े फुन्सी का निकलना, मस्तिष्क प्रदाह और सरसाम, श्वास प्रनालियों का

दाह और न्युमोनियाँ, आंख में दाने पड़ना और ज़खमों का होना और पुतली पर सुफेदी का आ जाना, या आंख का जाता रहना, कान बहना, जोड़ों का सूज जाना और फिर उन की गति का कम हो जाना (चित्र ९७) गर्भित स्त्रियों में भ्रूणपात हो जाना ।

चित्र ९७ चेचक में कुहनी का वरम आजाना और जोड़ का अचल हो जाना

रोग से बचने के उपाय

१ चेचक का टीका चेचक के आक्रमण से आमतौर से अवश्य बचाता है (कभी कभी नहीं भी बचाता अर्थात् टीके लगे लोगों के भी चेचक

निकल आती है परन्तु ऐसा बहुत कम होता है); यदि टीका विधि पूर्वक और ताज़ी बनी हुई औषधि से लगाया गया है तो आम तौर से अव्वल तो चेचक निकलेगी नहीं यदि निकलेगी तो हलकी निकलेगी और शीघ्र अच्छी हो जावेगी।

टीका कब लगना चाहिये

यदि ग्रीष्म और वर्षा ऋतु न हो तो शिशु के दूसरे से छठे मास तक टीका लग जाना चाहिये; दूध के दांत निकलने से पहले लग जाना अच्छा है। दूसरी बार ८-१० वर्ष में लगना चाहिये। बस उम्र भर में दो बार लगना काफ़ी है। पहला टीका वैसे तो थोड़ा बहुत उम्र भर के लिये बचाता है, धीरे धीरे उसका असर कम होने लगता है; इसलिये दूसरा टीका लगाना उचित है। यदि डर लगे तो जब आप के घर के आस पास चेचक का ज़ोर हो या आप को चेचक के रोगी की परिचर्य्या करनी पड़े तो आप टीका लगवा लें। बहुत ही ख्याल हो तो हर दस्वें साल लगवाइये। बहुत से लोग हर साल लगवाते हैं इससे कोई फ़ायदा नहीं।

टीके से क्या होता है

टीके से एक हल्के प्रकार का रोग उत्पन्न किया जाता है। उसके प्रभाव से शरीर में चेचक नाशक वस्तुएं बन जाती हैं। कभी कभी टीका लगाने के पश्चात् बदन पर चेचक जैसे दाने भी निकल आते हैं यह "गो चेचक" है।

मानों आज टीका लगा है; तो आज से तीसरे या चौथे दिन टीका लगने के स्थान पर एक दाना बन जाता है और वह स्थान लाल हो जाता है। दो दिन पीछे अर्थात् छठे, सातवें दिन दाने में पानी आ जाता है (जलक बन जाता है)। दो तीन दिन और बीतने पर

अर्थात् ९ वें दिन दाने में मवाद पड़ जाता है (पूयक बन जाता है) और आस पास का स्थान लाल हो जाता है और सूज जाता है; १२ दिन तक ज़ोर रहता है। अब लाली जाती रहती है, मवाद सूखने लगता है और २० दिन में खुरंट गिर पड़ता है। खुरंट गिरने पर वहाँ सुर्खी-मायल एक निशान जो बीच में से कुछ दबा होता है रह जाता है। यह चेचक किण या चेचक क्षतांक कहलाता है।

जब टीका लगता है तो तीसरे चौथे दिन ये बातें होती हैं— तबियत गिरती है, भूख कम लगती है; कभी मतली आती है, सिर में दर्द, पीठ में दर्द रहता है। हल्का सा ज्वर १००° के लगभग होता है।

रोग एक से दूसरे को कैसे लगता है

रोगी के सिनक और थूक में और दानों के मवाद और खुरंट और पयास में रोगाणु रहते हैं। ये चीज़ें हमारे शरीर में श्वास द्वारा पहुँचती हैं; स्पर्श द्वारा भी ये चीज़ें हमारे शरीर में पहुँचती हैं। दाने निकलने से पहले ही यह रोग रोगी के पास रहने वालों को लग सकता है। रोग अत्यन्त उड़नशील है। रोगी के पास की चीज़ों से भी रोग लग जाता है जैसे उसके कपड़ों, रूमाल, तौलिये, चादर, बरतन द्वारा। मक्खी भी रोग को फैलाती है संभव है कि चींटी और और कीड़े भी फैला सकते हों।

रोग से बचने के उपाय

रोगी के कपड़े खूब पानी में उबालने के पश्चात् धोबी के यहाँ धुलने डालो। जो चीजें जैसे रूमाल या कपड़े के टुकड़े कम मूल्य के हैं उनको जला दो। पेशाब और पाखाने पर चूना या ब्लीचिंग पौडर डालो। रोगी को अलग रक्खो।

३. खसरा

यह खास तौर से बच्चों का रोग है; बड़ों को भी हो जाता है। इसमें न्युमोनिया और श्वासनलिका-प्रदाह हो जाने का डर रहता है; ये दोनों रोग बच्चों के लिये अत्यन्त संकटमय होते हैं। रोगाणु लक्षण विदित होने से १२ दिन पहले शरीर में प्रवेश कर लेते हैं; मानो आज रोगाणु ने शरीर में प्रवेश किया है तो रोग के लक्षण १३-१४ दिन में विदित होंगे। खसरा के रोगाणु का ठीक पता नहीं लगा है, संभव है कि कोई कीटाणु होगा।

लक्षण

आरंभ में जुकाम, खांसी, गला पकना, छींक आना, हल्का ज्वर ९९°-१०२° तक। इस अवस्था में अक्सर (हमेशा नहीं) गालों के भीतरी तल पर जो पहली डाढ़ के पास है नीलाहट लिये

चित्र ९८ खसरा

सुफ़ेद धब्बा, (या धब्बे) जिसके चारों ओर लाल घेरा होता है दिखाई देता है।

रोगारंभ से चौथे दिन कानों के पीछे, ठोड़ी (ठुड्डी) पर और ऊपर के होठ पर छोटे छोटे लाल धब्बे, जैसे मच्छर के काटने से पड़ते हैं, दिखाई देते हैं। २४ घन्टे और बीतने पर दाने चेहरे, गरदन, ठठरी और बाहु पर निकल आते हैं; फिर पीठ, पेट (उदर) और टाँगों पर निकलते हैं। चेहरे के दाने बहुधा एक दूसरे से मिल जाते हैं और वरम के कारण चेहरा फूला सा दिखाई देता है। ३-४ दिन पीछे दाने मुर्झा जाते हैं। पहले चेहरे के दाने मुर्झाते हैं फिर और स्थानों के। मुर्झाने पर भूसी सी निकलती है।

चित्र ९९ ख़सरा के दाने रोगी की पीठ पर

ज्वर

जब दाने निकलते हैं ज्वर बढ़ जाता है और ज़ुकाम के लक्षण भी अधिक हो जाते हैं, ज्वर १०३°-१०४° और कभी कभी इससे भी

अधिक हो जाता है। ज्यों ज्यों दाने मुर्झाते हैं ज्वर घटता जाता है, अधिक ज्वर के कारण या मस्तिष्कावरण प्रदाह के कारण रोगी बकने लगता है और नींद नहीं आती।

इस रोग में और क्या होता है

खसरा कभी कभी बहुत भयानक होती है; कभी अधिक कष्ट नहीं देती। कभी केवल दाने ही निकलते हैं, ज्वर इत्यादि कुछ नहीं होता, ज़ुकाम भी बहुत मामूली सा होता है। कभी कभी जगह जगह से खून निकलने लगता है और मृत्यु शीघ्र हो जाती है।

इस रोग में मुँह आ जाता है, गले की ग्रन्थियाँ फूल जाती हैं, न्युमोनिया हो जाता है; कान बहने लगता है, आँखें दुखने लगतीं हैं और मस्तिष्कावरण प्रदाह हो जाता है। बच्चों को कम्हेड़ा तो अक्सर आता ही है; कभी कभी अत्यन्त तेज़ ज्वर से मृत्यु हो जाती है। यह बुरा रोग है और कभी भी लापर्वाही न करनी चाहिये।

बचने के उपाय

यह रोग बहुत जल्दी एक से दूसरे को लगता है। रोगी की आँख, नाक, मुँह से जो चीज़ें निकलती हैं उनमें तथा दानों की भूसी में रोगाणु रहते हैं और इन्हीं के द्वारा रोग फैलता है। जिस कमरे या मकान में रोगी हो वहाँ दूसरे बच्चों को कभी भी न जाने देना चाहिये। रोग कपड़ों द्वारा भी फैलता है। रोगी विद्यार्थियों को पाठशाला में न जाने देना चाहिये; यदि पाठशाला में किसी को हो गया है तो पाठशाला तीन सप्ताह के लिये बंद कर देनी चाहिये।

४. मोतिया (Chicken-Pox)

रोगाणु (जिनके विषय में अभी कुछ मालूम नहीं) लक्षण विदित

होने से १४ दिन पहले शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। आम तौर से दाने सब से पहले धड़ पर निकलते हैं, फिर चेहरे और खोपड़ी पर और अंत में शाखाओं (हाथ, पैरों) पर। मुँह, गले के अन्दर और भग

चित्र १०० मोतिया

पर भी कभी कभी दाने निकल आते हैं परन्तु आँखें बची रहती हैं। इन दानों में साफ तरल भरा रहता है अर्थात् वे जलक होते हैं। जलक

चित्र १०१ मोतिया

के चारों ओर लाली होती है। एक दो दिन पीछे तरल मैला सा हो

जाता है; फिर दाना सूख जाता है और पपड़ी (या खुरंट) बन जाती है। साधारणतः ज्वर १०२° से अधिक नहीं होता; बहुधा ९९° ही रहता है। रोग अधिक कष्ट नहीं देता और शीघ्र अच्छा हो जाता है। याद रखने की बात यह है कि दाने सब एक साथ नहीं निकलते; थोड़े थोड़े कई रोज़ तक निकलते रहते हैं (चित्र १००,१०१)

बचने के उपाय

रोग एक व्यक्ति से दूसरे को लगता है; दाने के मवाद में रोगाणु रहते हैं। रोगी को अलग रखना चाहिये। बालकों को पाठशाला में न जाने देना चाहिये।

५. हर्पीज़ (Herpes), मकड़ी मलना

मोतिया की भाँति कभी कभी होठों पर, माथे पर, बग़ल में, छाती पर, कमर पर, कूल्हे पर, जांघ पर जलक पड़ जाया करते हैं। न्युमोनिया वा मलेरिया वा अन्य तेज़ ज्वरों में भी होठों, माथे पर इस प्रकार के जलक पड़ जाते हैं। साधारण लोग इसे मकड़ी मलना कहते हैं, वे समझते हैं कि ये दाने मकड़ी के मलने से निकल आते हैं। यह असत्य बात है; इन दानों का मकड़ी से कोई भी सम्बन्ध नहीं। आज कल यह रोग दो प्रकार का माना जाता है:—(१) जो ज्वरों के विष का असर ज्ञानवाही नाड़ियों की गंडों पर पड़ने से होता है; यह रोग न्युमोनिया, तपेदिक, मलेरिया में देखा जाता है; जहाँ जहाँ विशेष ज्ञानवाही नाड़ी की शाखाएं रहती हैं वहीं वे दाने निकलते हैं। (२) वह जो मोतिया की भाँति स्वयं एक रोग होता है, उसका और रोगों से कोई सम्बन्ध नहीं; इसका विष सम्भव है मोतिया के विष से

चित्र १०२ बगल और कन्धे का हर्पीज

मिलता जुलता हो। कभी कभी इस रोग की वबा फैल जाती है; नगर के बहुत से व्यक्तियों को यह रोग हो जाता है; कभी कभी घर में कई कई व्यक्तियों को एक साथ या एक दूसरे के बाद हो जाता है। प्रत्येक दाने के चारों ओर सुर्खी रहती है और बड़ी जलन मारती है। आमतौर से एक सप्ताह में ये दाने सूख जाते हैं परन्तु ज़रा सी जलन कभी कभी कुछ समय तक रहती है। जस्त, बोरिक ऐसिड, कापूर और श्वेतसार की बुरकी फायदा करती है। जस्त की मरहम जिसमें १० ग्रेन फी औंस के हिसाब से मेन्थोल मिला हो उस पर लगाने से एकदम ठंडक डालती है।

६. कुक्कुर खाँसी (काली खाँसी)

यह रोग बहुधा बालकों को ५-६ वर्ष की आयु तक होता है। कारण एक प्रकार का कीटाणु है। मुँह और नाक (खांसी और सिनक) द्वारा जो माद्दा निकलता है उस में रोगाणु रहते हैं। रूमाल, खिलौने, तौलिये इत्यादि द्वारा भी रोग फैलता है। रोग एक से दूसरे को लग जाता है। रोगाणु रोगारंभ से कोई २-३ सप्ताह पहले शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। यह खांसी कितनी बुरी होती है सभी जानते हैं। बच्चा खाँसते खाँसते परेशान हो जाता है और जो कुछ खाता है वह क़ै द्वारा निकल जाता है।

इस रोग में किस बात का भय रहता है

न्युमोनिया होने का भय रहता है। इस रोग के बाद क्षय रोग होने का भी भय रहता है। बच्चों को कम्हेड़ा भी आ जाता है; कभी कभी रक्त वाहिनियाँ फट जाती हैं और पक्षाघात हो जाता है या मसूढ़ों से खून आता है, आँख की श्लैष्मिक कला में खून आ जाता है और त्वचा में खून के धब्बे पड़ जाते हैं।

बचने के उपाय

बालकों को रोगी से अलग रक्खो। रोगारंभ से कम से कम ४ सप्ताह तक रोगी से औरों को न मिलने दो।

७. ज़ुकाम

इसी को नज़ला कहते हैं। इस में नासिका, गला और कभी कभी स्वरयंत्र और टेंटवे की श्लैष्मिक कला (भीतरी तल) का प्रदाह हो जाता है। इस के रोगाणु कई प्रकार के होते हैं कुछ विन्द्वाणु होते हैं, कुछ शलाकाणु होते हैं।

सहायक कारण

एक दम मौसम का बदलना; गर्म या सर्द वायु के झोंकों का लगना शरीर का एक दम ठंढा हो जाना; किसी प्रकार शरीर की रोग नाशक शक्ति का कम हो जाना। रोग एक दूसरे को वायु द्वारा जिस में सिनक खेखार इत्यादि के नन्हें नन्हें अंश होते हैं लगता है; एक दूसरे के रूमाल, झाड़न, तौलिये, धोती द्वारा भी लग सकता है।

क्या होने का डर है

बाई, न्युमोनिया, गुर्दे का वर्म, दिल की बीमारियों के होने का डर रहता है।

बचने के उपाय

रोगी को औरों से अलग रहना चाहिये; चलने फिरने से रोग बढ़ता है। दूसरों के ऊपर खांसना या चूमना बुरा है। गुंजान जगह में न रहो। दूसरों के तौलिये और रूमाल काम में न लाओ। गंदी हवा, धूल और झोंकों से बचो। एक दम गरम वायु से ठंढी वायु में, ठंढी से गरम वायु में न जाओ। ठंढ खाना, सील में बैठना, भीगना, अधिक परिश्रम, कम सोना, भोजन ठीक न मिलना ये सभी सहायक कारण हैं और त्याज्य हैं। नाक की बनावट कभी कभी क़ुदरती तौर से ठीक नहीं होती; नाक का बीच का परदा तिर्छा होता है या उस पर अर्बुद होता है; या नाक में कोई रसोली होती है; इन के कारण वायु ठीक तौर पर प्रवेश नहीं करती। सिनेमा, थियेटर घरों में जाने से भी ज़ुकाम हो जाता है क्योंकि वहाँ साफ वायु नहीं मिलती।

८. डिफथीरिया

यह रोग समशीतोष्ण देशों का है; भारतवर्ष में पहाड़ों पर नीचे

के स्थानों की अपेक्षा अधिक होता है। इस रोग में गले का और गलग्रन्थियों का और स्वरयंत्र का विशेष प्रकार का प्रदाह हो जाता है जिसके कारण वहाँ एक झिल्ली सी बन जाती है; इसके अतिरिक्त ज्वर भी होता है। इस रोग का विष इतना तीव्र होता है कि कम ज्वर होते हुए भी अत्यंत सुस्ती आती है। सूजन और झिल्ली के कारण स्वांस लेने और निगलने में अत्यन्त कठिनाई होती है; कभी कभी स्वांस का रास्ता रुँध जाता है और मृत्यु भी हो जाती है। आँखों और योनि में भी कभी कभी यह रोग होता है; कभी जख्मों (व्रणों) पर भी इस रोग द्वारा झिल्ली बन जाती है।

रोगाणु

एक शलाकाणु है जो लक्षण विदित होने से २-७ दिन पहले शरीर में प्रवेश कर लेता है।

किस आयु में होता है

आम तौर से ५ से ७ वर्ष के बच्चों को होता है; परन्तु इससे कम आयु में भी होता है और जवानों को भी होता है।

रोग कैसे लगता है

रोगाणु मुँह और नाक द्वारा प्रवेश करते हैं। रोगाणु रोगी के शरीर से नाक और मुँह के मैल द्वारा ही बाहर निकलते हैं। रोगी का थूक, खंखार और सिनक दूसरों को अनेक विधियों से रोगी बना सकता है जैसे छींक द्वारा, खाँसी द्वारा, मुँह में अंगुली देने से, रूमाल, पेन्सिल, कागज, तौलिया इत्यादि द्वारा। यह रोग दूध द्वारा भी हो सकता है जैसे दूहने वाले को रोग हो; या रोगी दूसरे के दूध को किसी प्रकार अपने सिनक, थूक द्वारा दूषित कर दे। गाय को भी यह रोग होता है और रोगी गाय के दूध में रोगाणु रहते हैं।

चिकित्सा

डिफ़्थीरिया विष नाशक एक सीरम बनाया गया है जो इस रोग के लिये अमोघौषधि है। रोग का निदान करते ही तुरन्त सूची क्रिया द्वारा यह प्रति विष शरीर में पहुँचा देना चाहिये। ठीक समय पर प्रयोग से जादू का सा असर दिखाता है।

बचने के उपाय

रोगी को अलग रक्खो। जो चीज़ें रोगी के काम में आवें या उस के स्पर्श से दूषित हो जावें उन को उबाल कर शुद्ध करो; कम मूल्य वाली चीज़ों को जला दो। आस पास के लोगों को और जिस पाठ-शाला में रोगी पढ़ता हो वहाँ के विद्यार्थियों को रोग के आक्रमण से बचाने के लिये प्रतिविष त्वचा भेदन क्रिया द्वारा दिलवाओ ; रोग होने से पहले ही शरीर में पहुँचने से यह सीरम रोग से बचावेगा।

६. इन्फ्लुएंजा

इस रोग से सन् १९१८ में भारतवर्ष में ६००००० मौतें हुईं। रोगी को ज्वर आता है और वह अत्यन्त निढाल हो जाता है; आरंभ में ज़ुकाम, खाँसी, बदन में दर्द होता है; अकसर श्वास प्रनालियों का और फुफ्फुस का प्रदाह (न्युमोनिया) हो जाता है। आम तौर से ज्वर तीन दिन ठहरता है; यदि कोई गड़बड़ हो तो अधिक दिन ठह-रता है जैसे कि न्युमोनिया में। सुस्ती बेहद रहती है; हाथ पैरों और पीठ में दर्द होता है और सब बदन टूटता है। कभी कभी आँतों, और मस्तिष्क पर अधिक असर पड़ता है और नाड़ियों का प्रदाह हो जाता है। क़ै, दस्त आते हैं; रोगी बहकी बहकी बातें करता है। इस रोग का कारण एक अत्यन्त छोटा शलाकाणु समझा जाता है।

कैसे फैलता है

यह रोग एक दूसरे को सिनक, थूक, बलग़म द्वारा लगता है।

बचने के उपाय

जब यह रोग वबा रूप में फैलता है अर्थात् एक दम बहुत लोगों को हो जाता है तो बचना कठिन है। रोगी को अलग रक्खो। सिनेमा, थियेटर इत्यादि स्थानों में जहाँ बहुत लोग इकट्ठे होते हैं न जाओ; गुंजान स्थान में न रहो; सर्दी और सील से बचो; अपनी रोग नाशक शक्ति को कम न होने दो। जाँच पड़ताल से मालूम हुआ है कि यह रोग प्रति ३० साल सर्वदेशीय हो जाता है; उस के बाद कहीं कहीं थोड़ा थोड़ा रहता है। १९१८ की वबा के बाद १९४८ में इस वबा के फैलने की संभावना है।

सारांश

जितने रोगों का संक्षिप्त वर्णन अब तक किया गया है उन से बचना कठिन नहीं है। केवल तीन बातों की ज़रूरत है—

१. दूसरे के सिनक, थूक, बलग़म, मल, पसीना इत्यादि को स्वांस द्वारा, भोजन द्वारा, जल द्वारा या तौलिये, रूमाल, चुम्बन द्वारा अपने शरीर में प्रवेश न करने दो।

२. रोगी को जहाँ तक हो सके अलग रक्खो।

३. जिस रोग के लिये टीका लगाया जा सकता है (जैसे चेचक) लगवाओ।

रोगियों को कब तक अलग रखना चाहिये

हैज़ा—अच्छा होने के १४ दिन बाद तक।

चेचक—जब तक सब खुरंट उतर न जावें (लगभग ३-४ सप्ताह)।

मोतिया—जब तक सब फुंसें उतर न जावें (लगभग ३-४ सप्ताह)।

खसरा—जब तक जुकाम, खांसी रहे (लगभग २ सप्ताह)।

कुक्कुर खांसी—४ सप्ताह।

इन्फ्लुएंज़ा—जब तक जुकाम, खांसी रहे।

अध्याय १०

भोजन, जल, वायु सम्बन्धी कुछ फुटकर बातें

१. दूसरों के मल, मूत्र, सिनक, थूक इत्यादि चीज़ों को अपने खाने पीने की चीज़ों में न मिलने दो। मक्खी से डरो और उसको अपने पास न आने देने को अपना परम धर्म समझो। इस संसार में कोई चीज़ नष्ट नहीं होती। मल मूत्र पृथिवी में जाकर सड़ने के पश्चात् हानिकारक नहीं रहता है और उससे वनस्पति और प्राणि वर्ग की उत्पत्ति होती है अर्थात् वही चीज़ रूप बदल कर के वनस्पति और गोश्त, दूध, अंडे के रूप में हमारे शरीर में पहुँचती है। यदि उसका कुछ अंश भूमि में पहुँचने और अहानिकारक बनने से पहले पानी, स्पर्श, धूल, भोजन, या मक्खी या अन्य कीड़ों द्वारा (चित्र १०३ में १) हमारे शरीर में पहुँचता है तो रोग उत्पन्न होने की संभावना रहती है। देखो चित्र १०३।

२. चौके में रसोई बनाने वाला अकसर बेलन को अपने पैर पर रख लेता है; बच्चों की खुड्डियाँ भी भोजनशाला से बहुत निकट रहती हैं। चौके में मक्खियाँ भिनका करती हैं। मक्खियाँ गू खाकर और उसको अपने पैरों और परों में लगाकर भोजन पर जा बैठती हैं। भोजन की
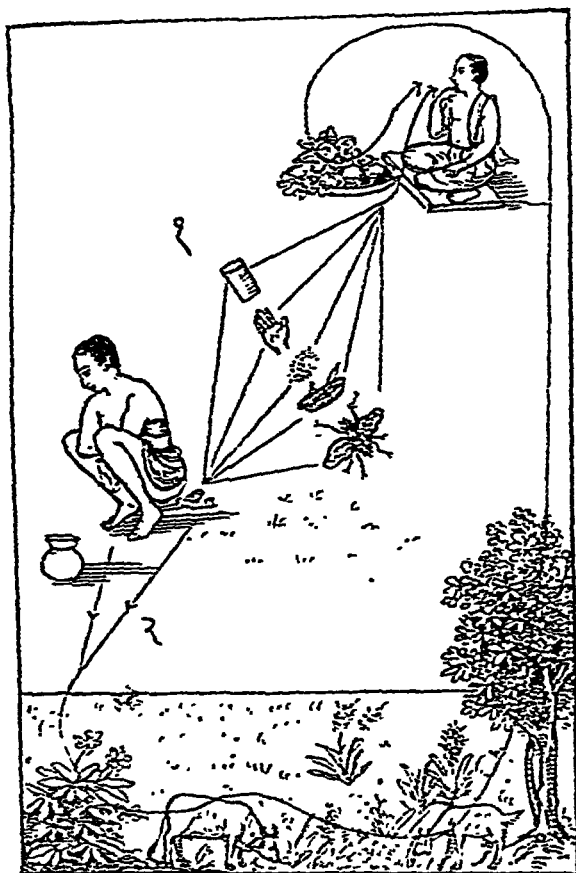
चित्र १०२

१—मल मूत्र सीधा हमारे शरीर में पहुँचकर रोग उत्पन्न करता है।

२—उसी चीज से खाद बनती है जिससे वनस्पति बनती है जिसे खाकर गाय, बकरी, मुर्गी इत्यादि बनते हैं। भूमि में पहुँचकर मल मूत्र महानिकारक हो जाते हैं।

चीज़ों को ढक कर रक्खो। बच्चे को दूर हगाओ और फ़ौरन उसके मल मूत्र पर राख डाल दो। ऐसी जगह बैठ कर खाओ जहाँ मक्खी न आवें (चित्र १०४)।

चित्र १०४ मक्खी और भोजन और बच्चे का मल

वेलन पैरों पर रक्खा है; मक्खी गू को भोजन पर रख रही हैं

३. बिरादरियों के पंजों में फँसकर थूकचट मत बनो। एक हुक्के से बहुत आदमियों का तम्बाकू पीना ठीक नहीं। यदि आपका गुरु भी अपना थूक चटावे तो उसको पाखंडी और कपटी समझकर उससे दूर भागो।

चित्र १०५　थूकचटों की महफिल

४. जगह जगह न थूको। गंदी आदत वाले घर भर में थूक मारते हैं और ऐसी जगह थूकते हैं कि जहाँ दिखाई न दे जैसे किवाड़ों के पीछे, कोनों में, लकड़ियों की आड़ में, सन्दूकों के पीछे। जहाँ सोते बैठते हैं वहीं थूक देते हैं। जब यह सूखता है तो रोगाणु धूल द्वारा शरीर में पहुँचते हैं। छोटे बच्चे जो ज़मीन पर किरड़ते हैं अपनी अंगुली सानकर चाट भी जाते हैं।

थूकने के लिये थूकदान या पीकदान रक्खो जिसमें घास पड़ी हो या रोगी का हो तो रोगाणुनाशक घोल पड़े हों। और भी कुछ न हो सके तो एक काग़ज पर राख रख दो और उस राख पर थूको।

चित्र १०६ हर जगह न थूको
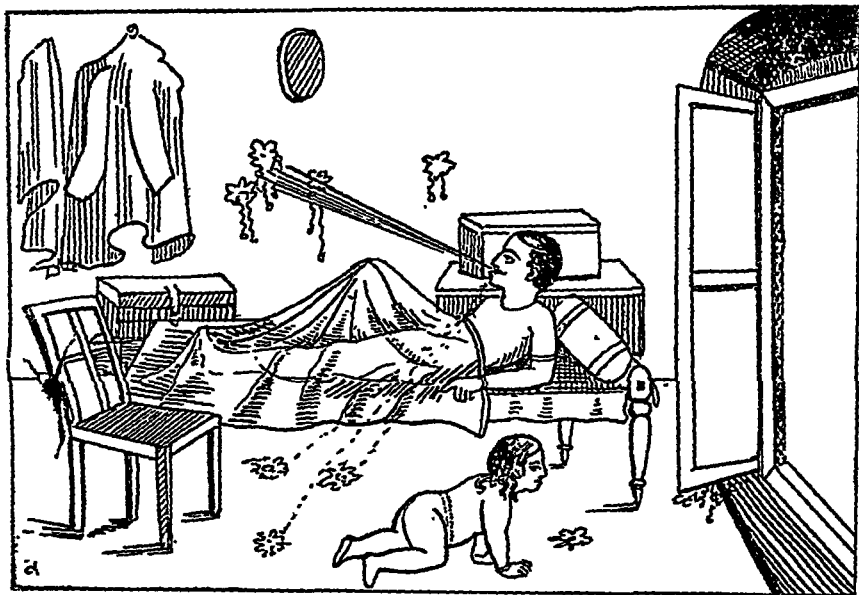
४. दूध के सम्बन्ध में बड़ी सावधानी से काम लो। पवित्र दूध अमृत समान है परन्तु अपवित्र दूध विष समान है। देखो कि गाय अस्वस्थ तो नहीं है; गंदी जगह जहाँ गोबर, मूत्र, कूड़ा करकट पड़े हों और मक्खियाँ भिनकती हों गाय को न रक्खो और ऐसी जगह दूध न दुहाओ।

५. मुँह ढक कर न सोओ (चित्र १०८ में १)। कमरे में सोओ तो खिड़की और दर्वाज़े खुले रक्खो (चित्र १०८ में २); सब से अच्छा तो यह है कि बरांडे में सोओ (चित्र १०८ में ३)

चित्र १०७ पवित्र दूध का प्रयोग करो

इस चित्र में गंदगी दिखलाई गई है

६. बाजार में मलाई का वर्फ़, आलू-कचालू गंदी आदतों वाले लोग बेचते हैं; ज़्यादातर तो कहार या नीच श्रेणी के बनियें होते हैं, कुछ बामन (ब्राह्मण) होते हैं। यह लोग कभी नाक छिनक कर हाथ नहीं साफ करते, बहुत से तो पाख़ाना जाने के बाद आबदस्त ले कर अच्छी तरह हाथ नहीं धोते। इन के कपड़े बहुत मैले कुचैले होते हैं; जो कपड़ा वह चाट को धूल या वर्षा से बचाने के लिये ढकते हैं वह भी गंदा होता है। वे अक्सर नाली और कूड़े के पास बैठ जाते हैं;

चित्र १०८ कहाँ सोना चाहिये
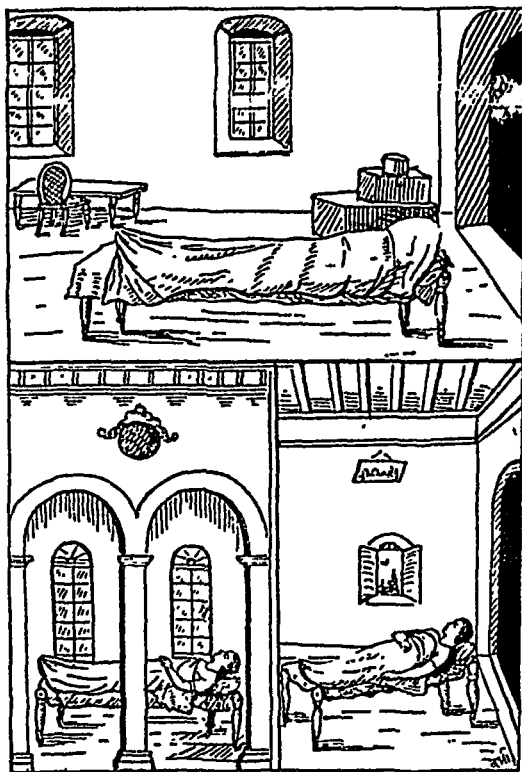
१—मुँह ढककर सोना बुरा है। खिड़की और किवाड़ बंद करना भी बुरा है।

२—खिड़की और किवाड़ खोलकर सोना अच्छा है।

३—वरांडे में सोना सब से अच्छा है।

की मक्खियाँ खाने की चीज़ों पर भिनकती हैं। इन बातों के

अतिरिक्त ये चीज़ें अजीर्ण भी पैदा करती हैं। इसलिये इन चीज़ों से घृणा करो (चित्र १०९, ११०)।

चित्र १०९ खोंचे वाला

चित्र ११० मलाई का बरफ

७. हलवाइयों की दूकान पर जो मिठाइयाँ रहती हैं वे आम तौर से खुले बरतनों में रक्खी रहती हैं। चिराग़ तले अंधेरा! लखनऊ जैसे नगर में जहाँ हेल्थ आफिसर (स्वास्थ्याध्यक्ष) और डाक्टर पढ़ाये जाते हैं; जहाँ हेल्थ (स्वास्थ्य) के मुहकमें का डाइरेक्टर और कई असिस्टैंट

चित्र १११ हलवाई की दूकान (सन् १९२१)
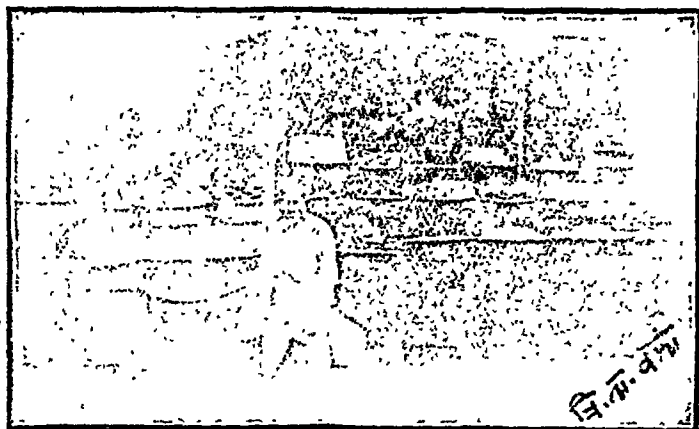
लखनऊ के निशातगंज मुहल्ले की एक दूकान। मिठाई खुले थालों में रक्खी है और मक्खियाँ भिनक रही हैं

डाइरेक्टर रहते हैं वहाँ पर जब मिठाई खुले थालों में बिके और हज़ारों मक्खियाँ भिनकें तो छोटे शहरों और ग्रामों का तो कहना ही क्या।

८. क्या काबुल में गधे नहीं होते? उत्तर—क्या विलायत में अज्ञानी नहीं? यह चित्र (११२) इंगलैंड के प्रसिद्ध नगर लीवरपूल (Liverpool) का है; जो बात यहाँ दिखाई दे रही है वह मैंने युरोप के और कई नगरों में भी देखी है। बम्बे से एक ज़ंजीर द्वारा एक धातु का गिलास लटक रहा है, जो चाहे उस गिलास से पानी पीले। इस प्रकार रोग फैलते हैं इस में कोई सन्देह नहीं।
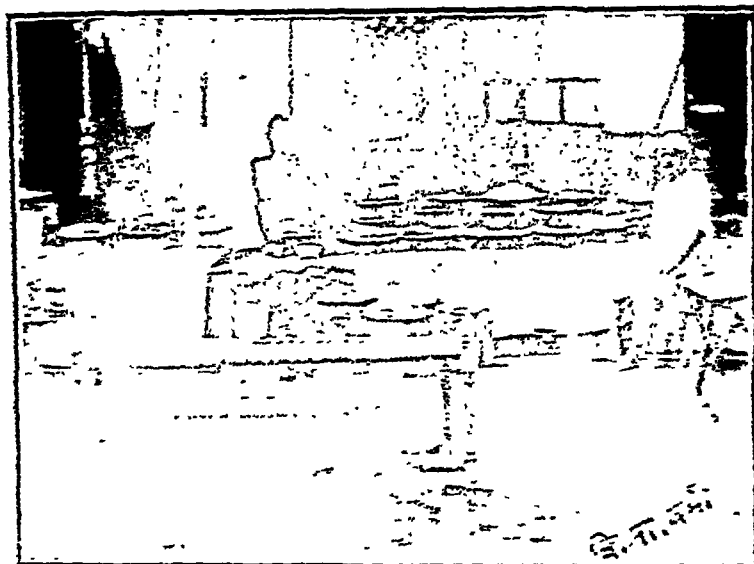
चित्र ११३

लीवरपूल का एक दृश्य। बम्बे से लटके हुए गिलास से
जिस का जी चाहे पानी पी ले

९. ग्रामों में जो तालाब होता है लोग उसको बहुत से कामों में लाते हैं। उसी में सुबह पाखाने जाने के बाद आबदस्त लेते हैं; वहीं मुँह धोते हैं और कुल्ला दातौन करते हैं; वहां धोबी कपड़े भी

धोता है, और उसी में भैंस भी लोटती है और गोबर और पेशाब भी कर देती है।

चित्र ११४ ग्रामीण दृश्य
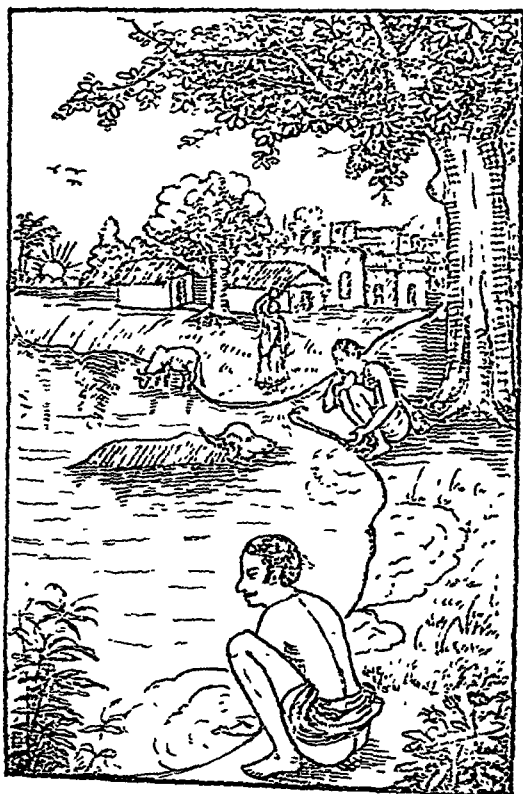
एक आदमी आबदस्त ले रहा है और थोड़ी दूर पर दूसरा आदमी कुल्ला दातौन कर रहा है

इस तालाब में वर्षा में गाँव का चोड़ा भी आता है; वैसे भी गाँव की नाली कभी कभी इस तालाब से आ मिलती है। इस तालाब

चित्र ११५ ईसाई-मत और स्कोच ह्स्की

पादरी साहब भारतवर्ष में ईसाई-मत और
"स्कोच ह्स्की" साथ साथ लाये

के पानी को आदमियों को अपने काम में न लाना चाहिये; केवल ढंगर ढोरों के काम में लाओ।

१०. मदिरा का ईसाई-मत से घनिष्ट सम्बन्ध है। गोरी ईसाई जातियाँ तो शराब पीती ही हैं, भारतवर्ष की काली कौमें, चाहे हिन्दू हों चाहे मुसलमान, ईसाई बनते ही शराब पीने लगती हैं यदि वे पहले न भी पीती हों। ईसाई-मत का चाय और क़हवे से भी अटूट सम्बन्ध मालूम होता है। हिन्दू और मुसलमान, ईसाइयों की देखा देखी ही चाय पीते हैं। स्कॉटलैंड अपने धार्मिक विचारों के लिये प्रसिद्ध है, साथ साथ वह "स्कोछ ह्विस्की" Scotch Whisky के लिये भी प्रसिद्ध है। हिन्दू लोग "शिव जी महाराज—बम भोला" की बदौलत भंगड़ी बनते हैं।

११. अधिक कर्बोज (जैसे चावल, मिठाई) के सेवन से और कम परिश्रम करने से थोंद निकल आती है; थोंदल स्त्री पुरुषों के सन्तान भी कम होती है; वे मैथुन के अयोग्य भी हो जाते हैं। बहुत मोटे पुरुष बहुधा नपुंसक होते हैं; इसी तरह बहुत मोटी स्त्रियाँ भी बाँझ होती हैं। उनका हृदय विकृत हो जाता है। सेठ जी अक्सर दूसरों की सन्तान को गोद लेकर अपना वंश चलाया करते हैं। (चित्र ११६) यदि थोंद पर टैक्स लगने लगे तो हमारी राय में लोगों का स्वास्थ्य शीघ्र सुधरे।

१२. भोजन किस प्रकार बैठ कर खाया जाता है इसका भी स्वास्थ्य पर बहुत असर पड़ता है। इस प्रकार बैठो कि आपका पेट न मिचे (चित्र ११७ में ४,५)। भोजन की थाली अपने सामने किसी ऊँची चीज़ पर जैसे मेज़ या पटरा पर रक्खो। नवीन सभ्यता वाली कौमों का भोजन खाने का कमरा अलग होता है और वह स्वच्छ रहता है; मेज़ पर साफ़ मेज़पोश बिछा रहता है (चित्र ११७ में ५);

चित्र ११६

शकर, घी और चावल खा कर, बिना शारीरिक परिश्रम किये कपट बल से दूसरों का माल हड़प करके सेठजी ने अपनी और सठानी जी की थोंद निकाली है।

मुसलमान भी सफाई से धुएँ से अलग बैठ कर खाते हैं। पाखंडी हिन्दू लोग गंदी जगह कभी कभी तो कीचड़ में (कच्चे चौके में कीचड़ ही रहती है) बैठ कर खाते हैं। इन सब बातों का स्वास्थ्य पर प्रभाव

पड़ता है। उकड़ू बैठ कर खाने में (चित्र ११७ में १) या टांग मोड़कर खाने में पेट पर दुबाव पड़ता है (चित्र ११७ में २) ।

चित्र ११७ भोजन खाते हुए कैसे बैठें और कैसे न बैठें
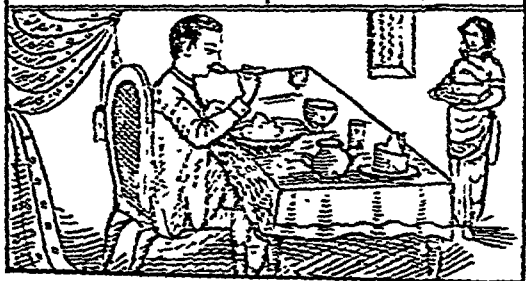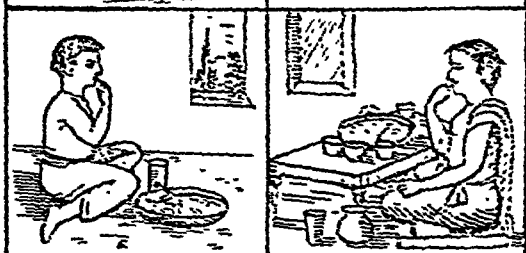
१२. भारतवर्ष में रोगनाशक शक्ति कम होने के कारण जब कोई

चित्र ११८ भारत में मृत्यु बहुत होती है
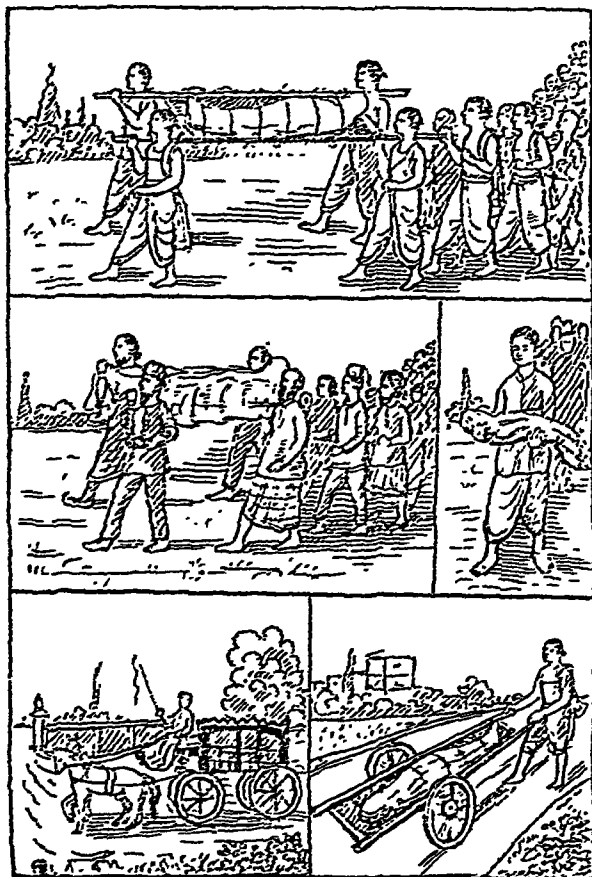
जब कोई बवा फैलती है तो जिधर देखो उधर मुर्दे ही मुर्दे दिखाई देते हैं
बड़ी बवा फैलती है तो मर्द, औरत और बच्चे बरसाती पतंगों की
तरह मरते हैं।

युरोप के महायुद्ध में जो ४½ वर्ष तक रहा कुल जगत् में लगभग ७० लाख मनुष्य काम आये। सन् १९१८-१९ की इन्फ्लुएंज़ा की वबा में ब्रिटेन में १,८०,२७२, जर्मनी में ४,०००००, इटली में ८,००,०००, नार्वे, डेन्मार्क, हौलेंड, स्पेन, स्विटज़रलेंड सभों में ५८,५५१ आदमी मरे। अकेले भारतवर्ष में ६०,००,००० (साठ लाख) आदमी मरे या यह समझो कि जितने महायुद्ध में ४½ वर्ष में मरे उनसे १० लाख कम यहाँ एक वर्ष में मर गये। भारतवासियों के लिये इन्फ्लुएंज़ा का तुच्छ रोगाणु बड़े बड़े बम्ब के गोलों, टौर्पीडो, ज़हरीली गैस इत्यादि से भी अधिक काम करने वाला है।

जन्म और मृत्यु प्रति १००० जन संख्या (सन् १९२५)

भारतवर्ष का और देशों से मुक़ाबला

देश	जन्म प्रति १०००	मृत्यु प्रति १०००	एक वर्ष से कम आयु वाले शिशुओं की मृत्यु प्रति १०००
भारतवर्ष (ब्रिटिश राज्य)	३६·७८	२५·५९	१७३
इंगलैंड और वेल्ज़	१६·७	११·७	६५
स्कौटलैंड	१९·८	१३·७	८६
न्युज़ीलैंड	१९·६	८·५	३६
यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका	१९·७	१२·०	७०
औस्ट्रेलिया	२१·३	९·५	५३
कैनाडा	२४·५	११·३	९०
यूनियन औफ़ सौथ अफ़रीक़ा	२५·९	१०·०	७०
मिश्र (इजिप्ट)	४२·२	२४·१	१५१

इस तालिका से विदित है कि जहाँ इंगलैंड में प्रति १००० जन संख्या में केवल ११'७ मनुष्य मरते हैं वहाँ भारतवर्ष में २५'५९ या दुगने से भी अधिक यमराज के पंजे में फँसते हैं। शिशु मृत्यु तो भारतवर्ष में और देशों से बहुत ही अधिक है; इसका तात्पर्य यह है कि भारत की स्त्रियाँ अत्यंत कर्म हीन हैं; नौ महीने भ्रूण को पेट में रक्खें और फिर जनने का कष्ट उठावें और फिर उसकी साल भर सेवा करें, इस पर भी बच्चा हाथ न लगे। इसका उत्तर दाता कौन ? माता और पिता और सरकार।

भारतवर्ष की जन्म और मृत्यु संख्या १९२८

जन्म	८८८२५७३ =	नर ४६११६८८
		नारी ४२७०८८५
मृत्यु	६१८०११४	

भारतवर्ष में मृत्यु के मुख्य कारण सन् १९२८

ज्वर (मलेरिया, न्युमोनिया, क्षय रोग)	३४२८९५१
हैज़ा	३५१३०५
प्लेग	१२१२४२
पेचिश, दस्त	२२१३३८
चेचक	९६१२३

भारतवर्ष की शिशु मृत्यु (एक साल की आयु) संख्या सन् १९२८

सन् १९२८ में भारतवर्ष में १५३६१८६ एक साल से कम आयु वाले बच्चे मरे अर्थात् जितनी मौतें भारतवर्ष में हुईं उनमें से २५% एक वर्ष की आयु में हुईं। जितने शिशु साल भर से कम आयु में

मरते हैं उनमें से ५०% पहले ही मास में मर जाते हैं; और जितने पहले मास में मरते हैं उनमें से ६५% पहले सप्ताह में ही मर जाते हैं। जिस देश में शिशु पतंगों की मौत मरें वह कैसे स्वाधीन हो सकता है।

शिशु मृत्यु के मुख्य कारण

१. गर्भ बनने से पहले पति पत्नी का स्वास्थ्य ठीक न होना; और गर्भावस्था में भ्रूण का यथोचित पोषण न होना। इन कारणों से शिशु का दुर्बल उत्पन्न होना, उसके शरीर का ठीक न बनना या पूरे दिनों का शिशु उत्पन्न न होना।

२. श्वासोच्छ्वास संस्थान के रोग जैसे न्युमोनिया

३. कम्हेड़ा (Convulsions)

४. दस्त, पेचिश इत्यादि

५. ज्वर, मलेरिया

६. चेचक

७. खसरा

८. अन्य कारण

अध्याय ११

मच्छर

घरेलू मक्खी की भाँति मच्छर दो पंख वाला (द्विपत्रा) और छः पैर वाला (षष्ट पदा) उड़ने वाला एक कीड़ा है। आम तौर से नर मच्छर अपना जीवन निर्वाह वनस्पतियों का रस चूस कर करता है और मनुष्य को हानि नहीं पहुँचाता; परन्तु मच्छर साहब की मेम साहब अर्थात् नारी मच्छर आम तौर से अन्य प्राणियों का खून पीकर ही रहती है।

मच्छर की साधारण बनावट

मच्छर के शरीर के तीन भाग होते हैं:—

१. सिर (शिर)
२. छाती (वक्ष)
३. उदर (पेट)

(१) सिर—यहाँ दो आँखें होती हैं। आगे एक सुई जैसा लम्बा भाग होता है उसे शुंडा या भेदनी कहते हैं (चित्र १२० में ९); यह भेदनी वास्तव में कई भागों से बनी है (चित्र ११९ में १,२,३,४);

भेदनी के इधर उधर छोटा या बड़ा एक भाग होता है इसे बोधनी कहते हैं (चित्र १२० में ११,१३); बोधनी के इधर उधर बाल वाला भाग जो होता है वह स्पर्शनी कहलाता है (चित्र ११९; १२० में १०,१४)

(२) वक्ष—से तीन जोड़े टाँगों के और एक जोड़ा परों का निकलता है।

स्पर्शनी (चित्र ११९; चित्र १२० में १०,१७,१४)

नर और नारी मच्छर की एक बड़ी पहचान स्पर्शनी द्वारा होती है। नर में आम तौर से स्पर्शनी पर बहुत से लम्बे लम्बे बाल होते हैं (चित्र १२० में १७)। नारी में लम्बे बालों की जगह केवल रोआँ सा होता है (चित्र १२० में १४,११)। याद रखने के लिये नर को पुरुष की तरह डाढ़ी वाला और नारी को स्त्री की तरह बिना डाढ़ी वाला समझो।

भेदनी (चित्र ११९)

की बनावट विचित्र है; नंगी आँखों से तो वह सुई जैसी केवल एक ही चीज़ मालूम होती है; वास्तव में वह कई भागों से बनी है जैसा कि चित्र ११९ से विदित है। इस के ७ अवयव हैं जिनके मिलने से एक खोखली सुई बन जाती है; जब मच्छरी खून चूसती है तो इस सुई को त्वचा में चुभा देती है (भेदनी का नं १ भाग त्वचा के भीतर नहीं घुसता)। चुभने पर पहले थोड़ा सा थूक इस सुई द्वारा त्वचा में प्रवेश करता है और फिर रक्त ऊपर को चढ़ कर मच्छरी के पेट में जाता है।

चित्र ११९ मच्छरी की भेदनी
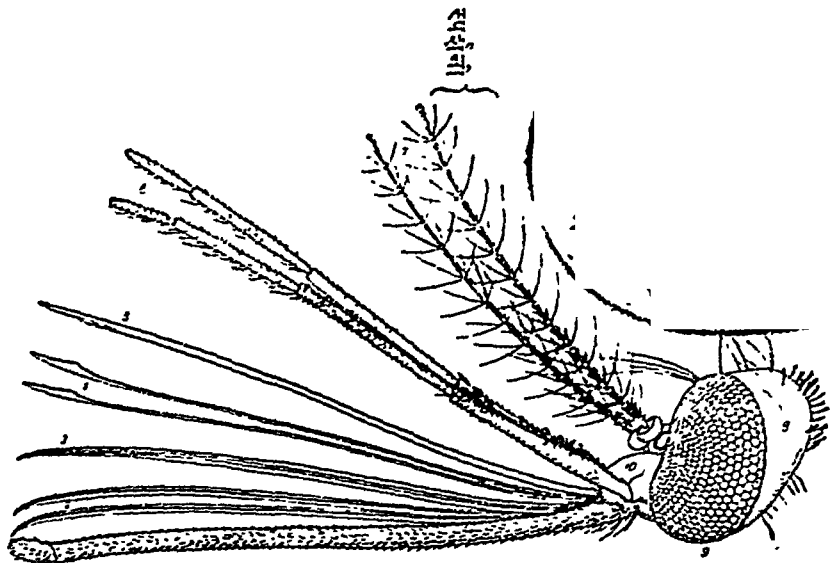
From Castellani and Chalmer's Tropical Medicine, by permission

१=ओष्ठ

२,२=ऊर्ध्वहनु

४,४=अधः हनु

५=ओष्ठ

मच्छरों की जातियाँ

मच्छरों की कई जातियाँ हैं; उनमें से तीन को जानना आवश्यक है—

१. क्युलेक्स—घरों में अधिकतर इसी जाति के मच्छर पाये जाते हैं। इस की खास पहचान यह है कि जब वह कहीं (जैसे दीवार पर) बैठता है तो उसका उदर (पेट) वक्ष (छाती) पर झुका सा

चित्र १२०
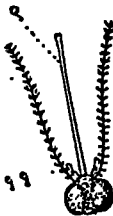
From the "Fight Against Infections" by courtesy of Messrs Faber and Gwyer

चित्र १२० की व्याख्या; क्युलेक्स और अनोफेलिस की पहचान

१. क्युलेक्स के अंडे इकट्ठे रहते हैं और एक नौकाकार जत्था बन जाता है।

२. क्युलेक्स का लहर्वा सिर नीचे कर के लटकता है; पूँछ जिस में हवा लेने की नलियाँ होती हैं पानी की सतह की ओर ऊपर को रहती है।

३. जब क्युलेक्स दीवार पर या त्वचा पर बैठता है तो उस का कूबड़ शरीर बैठने की जगह के समतल रहता है।

४. पर के ऊपर चित्तियाँ नहीं होतीं।

१८. नारी क्युलेक्स का सिर—

९=भेदनी

१०=स्पर्शनी

११=बोधनी भेदनी से बहुत छोटी होती है।

५. अनोफेलिस के अंडे सब इकट्ठे नहीं रहते।

६. अनोफेलिस का लहर्वा पानी की सतह से चिपट जाता है; पिछले सिरे पर नालियों के स्थान में केवल छिद्र रहते हैं।

७. अनोफेलिस का शरीर सीधा होता है और बैठते समय समतल रहने के बजाय बैठने के स्थान से एक कोण बनाता है।

८. पर के ऊपर अकसर चित्तियाँ होती हैं।

२०. नारी अनोफेलिस का सिर—

१२=भेदना

१३=बोधनी भेदनी की बराबर लम्बी है।

१४=स्पर्शनी

१९. नर मच्छर का सिर—दोनों में एक सा होता है।

१७=लम्बे बाल वाली स्पर्शनी

१६=लम्बी बोधनी

१५=भेदनी

रहता है अर्थात् वह कुबड़ा सा दिखाई देता है और उसका कुल शरीर दीवार के समतल रहता है (देखो चित्र १२० में २)

२. अनोफेलीस—इसकी पहचानें इस प्रकार हैं:—

(अ) यह मच्छर जब दीवार पर बैठता है तो उसका सिर, वक्ष और उदर एक लाइन में रहते हैं। उसका शरीर दीवार के समतल रहने के बजाय उससे एक कोण बनाता है (चित्र १२० में ७)

चित्र १२१ क्युलेक्स मच्छर की जीवनी
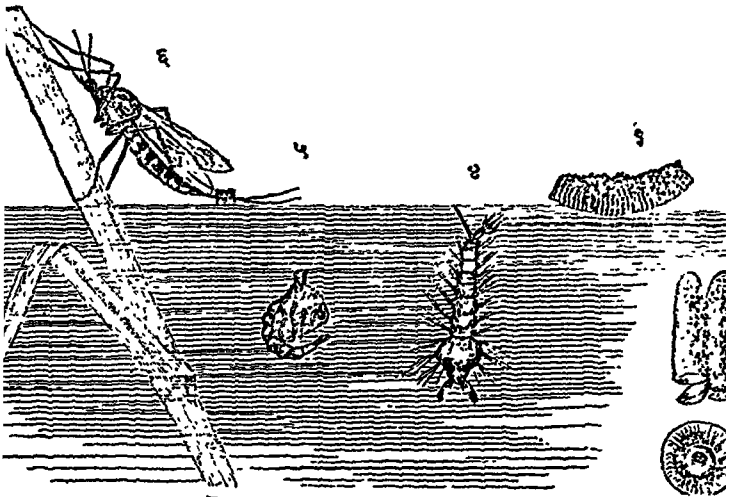
From Davis's Natural History of Animals

१=नौकाकार अंड समूह

२=अंडे

३=अंडे का ढकना

४=लहर्वा

५=कुप्पा

६=मच्छरी जो अंडे दे रही है। कुप्पे से मच्छरी निकलती है।

(आ) आम तौर से पंख पर चित्तियाँ या धब्बे पड़े रहते हैं (चित्र १२० में ८)

(इ) क्युलेक्स की अपेक्षा कुछ पतला और नाजुक बदन होता है।

(ई) क्युलेक्स की अपेक्षा कम भिनभिनाता है।

३. पैडिस (स्टीमगोया)—वक्ष पर और टाँगों पर श्वेत, रुपहली या पीली लकीरें या धब्बे होते हैं (चित्र १२०)

मच्छर की जीवनी

मैथुन अधिकतर सायंकाल होता है। गर्भित मच्छरी खून चूसने की फिक्र में रहती है। खून से उसके अंडों का पोषण होता है। क्युलेक्स के अंडे इकट्ठे एक नौकाकार समूह में रहते हैं; अनोफेलिस का अंडा नौकाकार होता है और ये अकसर अलग अलग या दो दो, चार चार के समूह में रहते हैं या उन के मेल से एक चित्र सा बन जाता है। ऐडिस के अंडे पास पास परन्तु अलग अलग पड़े रहते हैं। मच्छरी अंडे या तो जल में देती है या जल के पास जैसे नदी के किनारे, तालाब में, चौबच्चे में, कुएँ में, चोड़े के नलों और नालियों में, वृक्षों की खोह में, घर के आस पास पड़े हुए टूटे फूटे मिट्टी के बरतन या टीनों में, छतों पर, बरसाती पानी के छोटे छोटे गड्ढों में, जहाँ मकान बनते हैं वहाँ की नांदों में, खस की टट्टी छिड़कने वाली कूड़ों में, बाग़ सींचने की नालियों और हौज़ों में, फूलों के गमलों में इत्यादि।

मच्छरी कितने अंडे देती है

एक मच्छरी लगभग ३०० अंडे देती है। पैदा होने के एक सप्ताह बाद मच्छरी गर्भवती हो कर अंडे देने आरंभ कर देती है। एक

मौसम में कई बार गर्भ धारण कर सकती है। एक जोड़े से त
मौसम में सैकड़ों मच्छर बन सकते हैं।

मच्छर की आयु

यदि जल और भोजन मिले तो वह कई महीने जीवित रह सकता है। जो मच्छर जाड़े के आरंभ में पैदा होते हैं वे भारतवर्ष के गरम भागों में तो आम तौर से जाड़े भर जीवित रहते हैं और इन्हीं से गरमी के आरंभ में नये मच्छर पैदा होते हैं। जो लोग मच्छर की आयु ३—४ सप्ताह की बतलाते हैं वे हमारी राय में ठीक नहीं जानते।

मच्छर कितनी दूर उड़ कर जा सकता है

आम तौर से जहाँ मच्छर पैदा होते हैं वे वहाँ से थोड़ी ही दूर पर—कुछ गज़ों की दूरी पर—रहने सहने लगते हैं। भूख प्यास से पीड़ित होकर वे अधिक से अधिक ½ मील तक जाते हैं। वैसे सवारी में बैठकर जैसे जहाज़ और रेल द्वारा और हवाई जहाज़ द्वारा और कभी कभी हवा के झोंके द्वारा वे दूरदूर एक नगर से दूसरे नगर, एक देश से दूसरे देश में पहुँच जाते हैं।

मच्छर का अंडे से पैदा होना

हम पीछे बतला चुके हैं कि मच्छरी अपने अंडे पानी में या पानी के पास देती है। अंडे से दो तीन दिन में एक नन्हा कीड़ा निकलता है जो पानी में तैरता है। धीरे धीरे यह खा पीकर बड़ा होता है। सब मक्खियाँ अंडे से कीड़े के रूप में पैदा होती हैं (देखो घरेलू मक्खी); इस कीड़े वाली अवस्था को लहर्वा* कहते हैं क्योंकि कीड़ा लहरा कर तैरता और चलता है।

---

* अँगरेज़ी में लार्वा (Larva) कहते हैं।

चित्र १२२ क्युलेनस लहरों का फोटो (वास्तविक परिमाण से ज़रा बड़े)
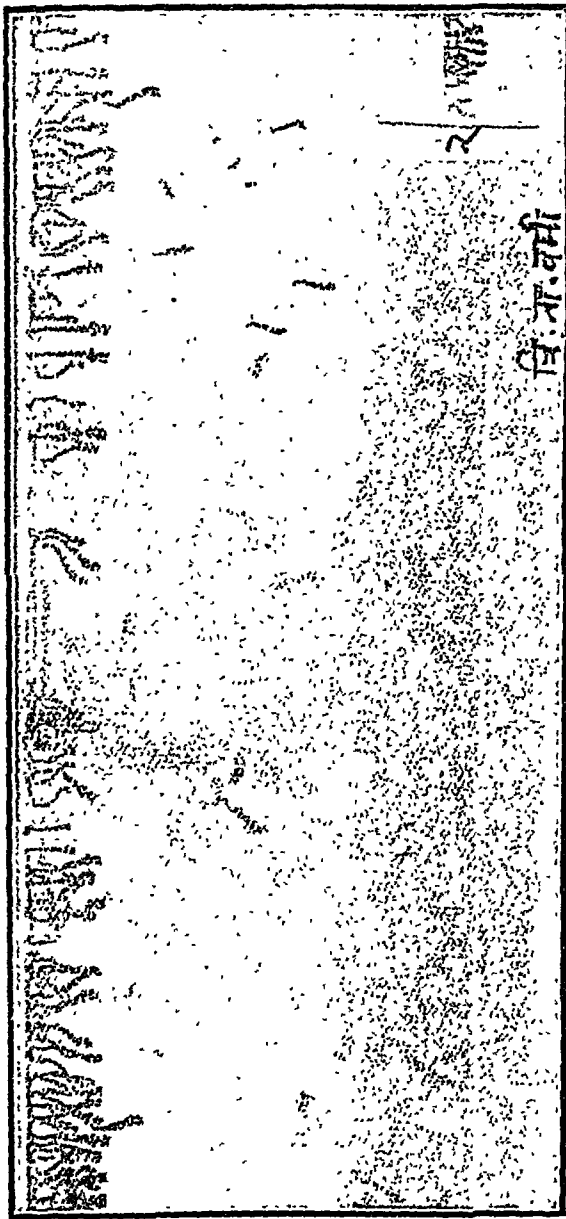
२==वास्तविक परिमाण

चित्र १२२ में एक क्युलेक्स मच्छरी के लहर्वे दिखाई देते हैं। हमने अपनी मसहरी में से एक गर्भित मच्छरी को पकड़ा (जब मच्छरी खून चूसती है तो वह आम तौर से गर्भित होती है) और एक काँच के गिलास में जिस में पानी, ज़रा सी मिट्टी और ज़रा सी घास डाल दी थी बंद कर दिया; गिलास पर जाली ढक दी। दो तीन दिन पीछे लहर्वे दिखाई देने लगे। जब वे बड़े हुए तब यह फोटो खींचा।

लहर्वा कई बार चोली बदलता है (जैसे साँप पर से कैंचुली उतर जाती है वैसे ही उस पर से भी उसकी त्वचा एक खोल के रूप में उतर जाती है)। लहर्वा साँस लेता है। क्युलेक्स में लहर्वे की दुम के पास दो छोटी सी श्वास नालियाँ होती हैं (अनोफेलिस में केवल छिद्र होते हैं देखो चित्र १२० में २,६)। जब वह सांस लेना चाहता है तो पानी की सतह के पास आता है और नालियाँ (या छिद्र) पानी की सतह से मिल जाती हैं। क्युलेक्स का लहर्वा सांस लेते समय उलटा लटका रहता है, अनोफेलिस का लहर्वा पानी की सतह से चिमट कर उसके समतल रहता है (चित्र १२० में २,६)। कुछ दिनों बाद लहर्वा खाना पीना और लहराना बंद कर देता है और धीरे धीरे उसकी शकल भी बदल जाती है (चित्र १२१ में ५)। उसका एक सिरा मोटा हो जाता है। इस अवस्था को कुप्पा कहते हैं। यह कुप्पा की अवस्था सभी मक्खियों में होती है (देखो घरेलू मक्खी और पिस्सू)। मच्छर का कुप्पा पानी में तैरता है और वह नलियों द्वारा या छिद्रों द्वारा (अनोफेलिस में) सांस लेता है। एक दो दिन में कुप्पा फटता है और उसके भीतर से मच्छर निकलकर उसके ऊपर खड़ा हो जाता है (चित्र १२१)। इस प्रकार मच्छर की चार अवस्थाएँ हुईं—

१. अंडा या डिम्ब	२—३ दिन
२. लहर्वा	३—५ दिन
३. कुप्पा	१—३ दिन
४. मच्छर	

ग्रीष्म ऋतु में ७-१० दिन में अंडे से मच्छर निकल आता है।

चित्र १२३—अनोफेलिस मच्छर का कुप्पा
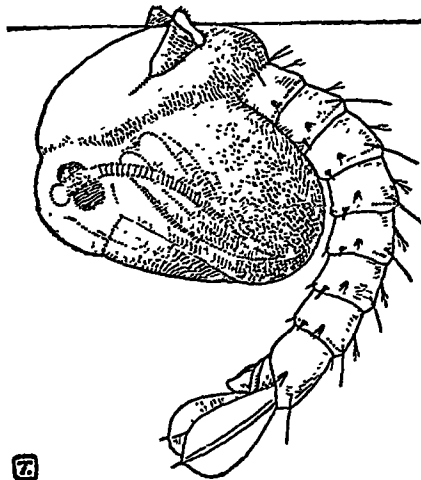
वास्तविक परिमाण से बहुत बड़ा

From Castellani and Chalmer's Tropical Medicine, by permission

मच्छर का रोगों से सम्बन्ध

१. क्युलेक्स मच्छर—

(अ) श्लीपद (फील पा)—अर्थात् (पैरों का, फोते या अंड कोष का, और हाथों का मोटा हो जाना) (चित्र १४०, १४१) बहुत लोगों का ख्याल है कि अंड कोष का जल दोष जिसे अँगरेज़ी में

हाइड्रोसील (Hydrocele) कहते हैं और जो संयुक्त प्रान्त के पूर्वी भाग और बंगाल में बहुत होता है वह भी उसी कीड़े द्वारा होता है जिस के द्वारा श्लीपद होता है।'

(आ) अस्थिभंजक ज्वर या डेंगू (Dengue)।

२. अनोफेलिस मच्छर—

मलेरिया ज्वर

३. ऐडिस मच्छर—

(अ) पीला ज्वर जो भारतवर्ष में नहीं होता। यह बड़ा ही भयानक रोग है; कोई इलाज नहीं, अफरीका और दक्षिण अमरीका में होता है।

(आ) डेंगू जो भारत में बहुत होता है।

उपरोक्त रोगों के अतिरिक्त मच्छर और क्या करते हैं

इनके काटने से विशेषकर बालकों में फोड़े फुन्सी बन जाते हैं; वे रात्रि को और अंधेरे कमरे में दिन को नींद नहीं आने देते। जो व्यक्ति रात को करवट बदलते हुए जगता रहेगा, वह दिन में कैसे काम कर सकेगा।

मच्छरों की आदतें

१. मच्छर अंधेरा पसंद करते हैं; सूर्य्य की चौंध को वे नहीं सह सकते। वे शाम होते ही अपने छिपने के स्थानों से निकल आते हैं और रात भर मौज करते हैं। जब गरमी अधिक होती है तो वे और भी चैतन्य हो जाते हैं; अधिक प्यास लगने के कारण वे काटते भी अधिक हैं। वैसे तो मच्छर आम तौर से सायंकाल और रात्रि को ही काटते हैं परन्तु यदि आप कमरे में अंधेरा कर लें जैसा कि साहब लोग बहुत से परदे इत्यादि लगा कर करते हैं तो वे दिन में भी खूब काटते हैं।

२. मच्छरी ही खून चूसती है, नर मच्छर नहीं। परन्तु मैथुन करने की इच्छा से मच्छर और मच्छरी बहुधा साथ साथ रहते हैं। वैसे तो जब मौक़ा मिले तब ही मैथुन हो जाता है, आम तौर से सायंकाल या रात्रि में तीन चार बजे अर्थात् प्रातःकाल होने से पहले होता है।

३. मच्छरों के छिपने के स्थान—

लम्बी घास, खपरैल, छप्पर, मेज़, कुर्सी के नीचे, जूतों के अन्दर, मकान के अंधेरे कोनों में, ख़ाली सन्दूक़ों या टीनों में, किताबों के पीछे, अलमारियों में, टँगे हुए कपड़ों के पीछे, नहाने के कमरे में, पाख़ाने में (हिन्दुस्तानियों के पाख़ानों में अँधेरा बहुत रहता है), अस्तबल में। काली चीज़ उनको बहुत पसंद है।

४. सब्ज़ी, फूल फुलवाड़ी, घास और तर ज़मीन के पास (जैसे बाग़, लान, पार्क) मच्छर बहुत रहते हैं।

५. धुआँ, गंधक का धुआँ, लोबान का धुआँ, प्याज़ और तेज़ खुशबुएँ जैसे कई प्रकार के तेल (यूकालिप्टस तेल, सिट्रोनेला तेल), पेट्रोल की बू उन को दूर भगाती है।

६. मच्छर बालकों को उन की त्वचा अधिक पतली होने के कारण बड़ों की अपेक्षा अधिक काटते हैं। कान, पैर और हाथों पर जहाँ शिराएँ बहुत छिपी नहीं होतीं उन का दाँव शीघ्र लगता है।

मच्छरों को कम करने की विधियाँ

१. लहवों को मारो। जहाँ लहवें हों वहाँ पेट्रोल या मिट्टी का तेल टपकाओ *। तेल या पेट्रोल की एक पतली तह पानी के ऊपर

* मोटर का पुराना मोबिल आयल भी खूब काम देता है; वह आम तौर से फेंक दिया जाता है; हमारी राय में उस को इस काम में लाना चाहिये।

बन जावेंगी। लार्वे बिना साँस लिये जीवित नहीं रह सकते, तेल की वजह से उन को वायु न मिलेगी और वे शीघ्र साँस घुट कर तड़प कर मर जावेंगे। प्रति दिन अपने मकान के आस पास ऐसी जगह ढूँढो जहाँ पानी इकट्ठा हो विशेषकर वर्षा ऋतु में। यदि प्रत्येक व्यक्ति ऐसा काम करे तो मच्छर शीघ्र कम हो जावें। मंदिर में जा कर घन्टा बजाने से कोई लाभ होता है, यह अभी तक साबित नहीं हुआ; इन लार्वों को मारने से तो लाभ प्रत्यक्ष है।

२. मच्छरों को मकान के कोनों कोनों में ढूँढो अर्थात् उन के छिपने के स्थानों का पता लगाओ और फिर फ्लिट (Flit)* या फ्लिट के बदले † से पिचकारी द्वारा उन को मारो।

३. घर में लोबान की धूनी देने से भी मच्छर थोड़ी देर के लिये भाग जाते हैं।

---

* Flit

†(१) इस चीज़ से भी मच्छर खूब मरते हैं—

पेट्रोल (Petrol)	१ गैलन
कार्बोलिक एसिड (Carbolic acid)	½ पौंड
नैफ्थेलिन गोलियाँ (Naphthalene balls)	½ पौंड
फॉर्मेल्डी हाइड (Formaldehyde)	४ औंस
सिट्रोनेला तेल (Citronella oil)	४ औंस

यह फ्लिट की तरह छिड़का जाता है।

(२) खड़िया मिट्टी का तेल या पेट्रोल १ गैलन। फ्लिट की तरह कार्बन टेट्राक्लोराइड (Carbon Tetrachloride) ४ औंस। छिड़को।

नोट—फ्लिट, नं० १, नं० २ ये सब शीघ्र दहन शील चीज़ें हैं; अतः दिया बत्ती से अलग रक्खो।

४. कमरा बंद कर के उस में तम्बाकू का धुआँ करो। एक पौंड (आध सेर) तम्बाकू का धुआँ १००० घन फुट स्थान के लिये काफ़ी है।

५. गंधक के धुएँ से मच्छर फ़ौरन मरते हैं। प्रति ५०० घन फुट स्थान के लिये एक पौंड गंधक काफ़ी है। खिड़की और दरवाजे सब बंद करने चाहियें और गंधक के धुएँ से खराब होने वाला सामान कमरे में से हटा लेना चाहिये।

६. थोड़े बहुत मच्छर वैसे ही मारे जा सकते हैं। जो मच्छर मसहरी के भीतर घुस जावे उस को कभी भी न छोड़ो विशेषकर जब उस ने खून पिया हो। याद रक्खो एक गर्भित ख़ून पी हुई मच्छरी को मारना हज़ारों मच्छरों को मारने के बराबर है। बालकों को बचपन से ही मच्छरों को और उन के लहर्वे को मारने की शिक्षा दो और उन को प्रति छुट्टी के दिन घर के आस पास मच्छरों के लहर्वे की खोज करने के लिये भेजो। याद रक्खो भारतवर्ष में आज कल मच्छर मारने से बढ़ कर सवाब का काम कोई नहीं है। और यह स्वराज प्राप्त करने में भी अत्यन्त सहायता देता है।

७. मच्छरों को कम करने की और भी विधियाँ हैं जैसे तालाब में एक विशेष प्रकार की मछली रखना इत्यादि; परन्तु जो बातें हम ने ऊपर लिखी हैं वे हर व्यक्ति काम में ला सकता है और उस में अधिक धन भी व्यय नहीं होता।

मच्छरों के आक्रमणों से बचने की विधियाँ

१. सब से अच्छी विधि मसहरी लगा कर सोना है। मसहरी की जाली बहुत बड़े छिद्रों वाली न होनी चाहिये क्योंकि बड़े छिद्र में से मच्छर सुकड़ सुकड़ा कर अन्दर घुस जाता है। पिस्सू मच्छर से छोटा

होता है, जाली ऐसी होनी चाहिये कि पिस्सू भी न घुस सके क्योंकि वह भी हानिकारक है। चित्र १२७, १२८ में दो जालियों के नमूने हैं; जहाँ पिस्सू और मच्छर दोनों हों जैसे लखनऊ में वहाँ बारीक जाली ही लगानी चाहिये, इसमें एक वर्ग इंच में कोई ४५–४८ छिद्र होते हैं; प्रति वर्ग इंच २५–२६ छिद्रों से कम किसी मसहरी में न होने चाहियें। मसहरी की छत चाहे कपड़े की हो चाहे जाली की; कपड़े की छत में हवा कम आती है परन्तु ओस से बचाव होता है जो एक बड़ी आवश्यक बात है। मसहरी के नीचे का एक फुट भाग हमेशा कपड़े का होना चाहिये ताकि उसमें से मच्छर, पिस्सू न काट सकें; इस
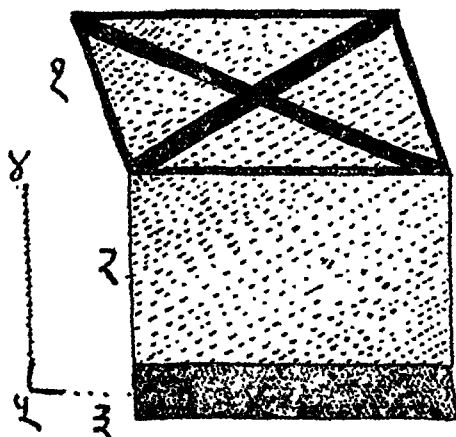
चित्र १२९

छत यदि जाली की बनी हो तो उसमें कपड़े की दो पट्टियाँ लगा देनी चाहियें; इससे मजबूती आ जाती है। ३=कपड़ा ५=नीचे का कपड़ा आधा बिस्तर के नीचे दबा दिया जाता है।

कपड़े का कुछ भाग मोड़ कर बिस्तर के नीचे दबा देना चाहिये (चित्र १२४, १२५)। मसहरी इस प्रकार बाँधनी चाहिये कि मसहरी के डंडे या छत का चौकठा जाली के बाहर रहे, अन्दर नहीं। यदि डंडे और चौकठा अंदर रहेंगे तो मसहरी का नीचे का भाग बिस्तर के नीचे अच्छी तरह न दबाया जा सकेगा और मच्छर और पिस्सू भीतर

चित्र १२५ ठीक प्रकार की मसहरी; नीचे का कपड़ा मोड़कर बिस्तर के नीचे दबा दिया गया है
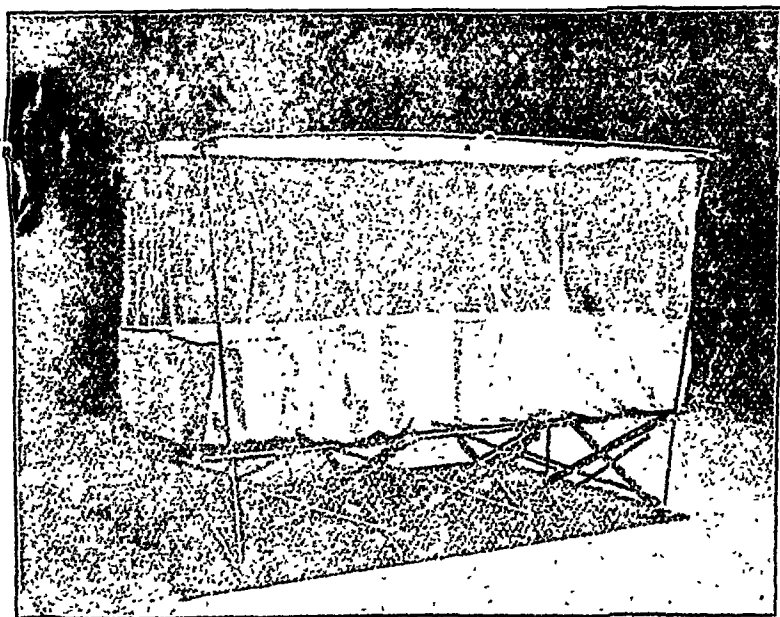
Photo by Miss Brown

घुसेंगे। मसहरी में यदि कोई छिद्र हो जावे तो उसको फौरन बंद करा लेना चाहिये; यदि फट जावे तो या तो जाली का जोड़ लगाया जावे या बारीक कपड़े का पेवंद लगा दिया जावे। जाली में ज़रा

चित्र १२६

Photo by Miss Brown; from Patton and Evans' Insects, Mites, Ticks and venomous animals

सा भी रास्ता मिलेगा तो मच्छर भीतर घुस कर रात भर परेशान करेंगे। प्रातःकाल मसहरी से बाहर निकलने से पहले खूब ध्यान से देखो कि रात को कोई मच्छर या पिस्सू भीतर घुस तो नहीं गया। यदि कोई मिले तो उसको तुरंत दोनों हाथों से पीट कर दोज़ख का रास्ता दिखलाओ।

२. हाथ पैरों पर यह तेल मला जावे तो उसकी तेज़ गंध के कारण मच्छर दूर रहेंगे—

चित्र १२७ मसहरी जिसमें पिस्सू नहीं घुस सकते। ४५-४८ छिद्र प्रति वर्ग इंच
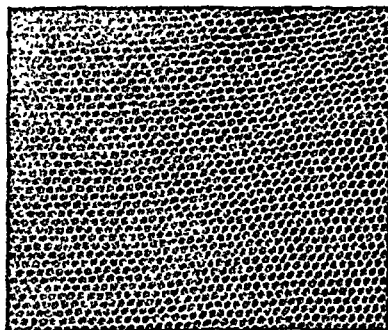
चित्र १२८ इसमें पिस्सू घुस सकते हैं परन्तु मच्छर नहीं
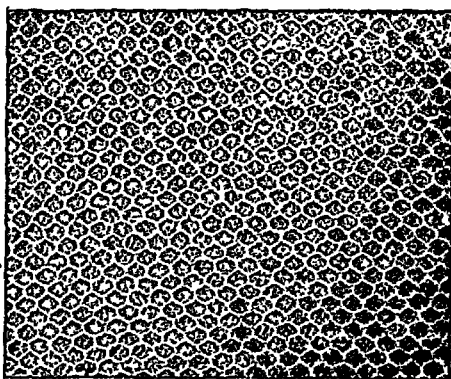
मसहरी २५-२६ छिद्र प्रति वर्ग इंच

After MacArthur, Journal Royal Army Medical Corps 1923

सिट्रोनेला तेल १½ औंस*
बढ़िया मिट्टी का तेल १ औंस
नारियल का तेल या गोले का घी २ औंस
कार्बोलिक एसिड २० बूंद

३. शाम के समय मोटे मोजे पहनो। पतले मोजों में से मच्छ[र]
डंक मार लेते हैं।

---

* Citronella oil 1½ ounce
Kerosene 1 ounce
Coconut oil 2 ounce
Carbolic Acid 20 drops

चित्र १२९ भारत में मलेरिया फैलाने वाली एक अनोफेलीस मच्छर।
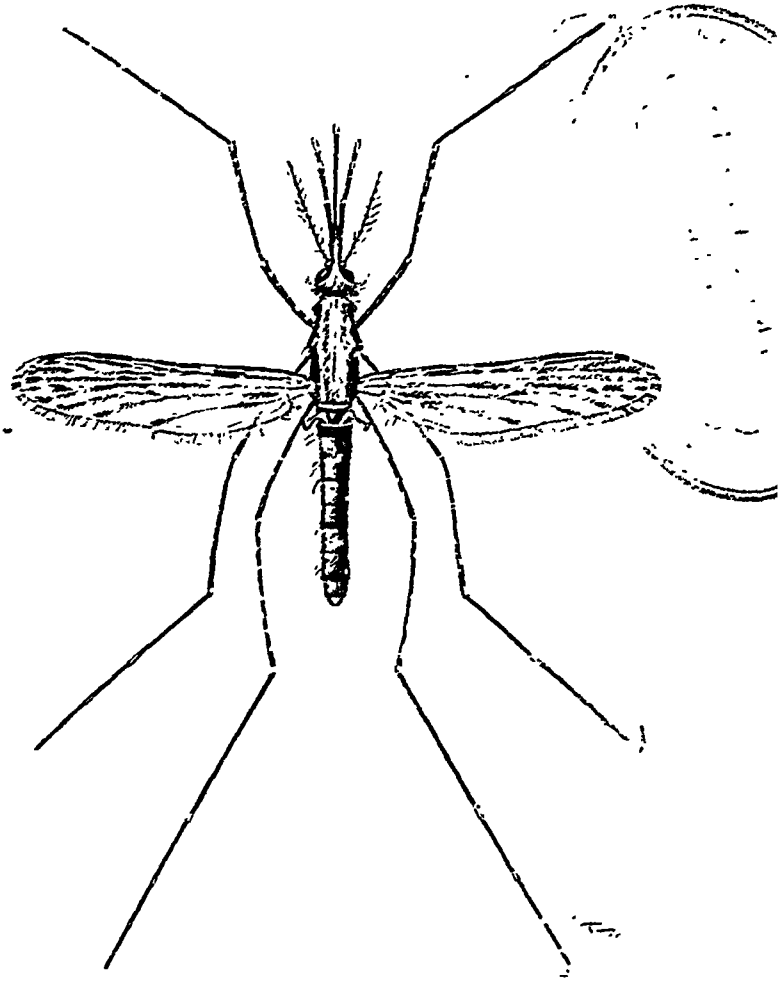
Anopheles stephensi (female).
From Patton and Evans' Insects Mites, Ticks and other Venomous animals Part I; by kind permission

पृष्ठ ३८६ के सम्मुख

चित्र १३० भारत में मलेरिया फैलाने वाली एक अनोफिलीस मच्छरी
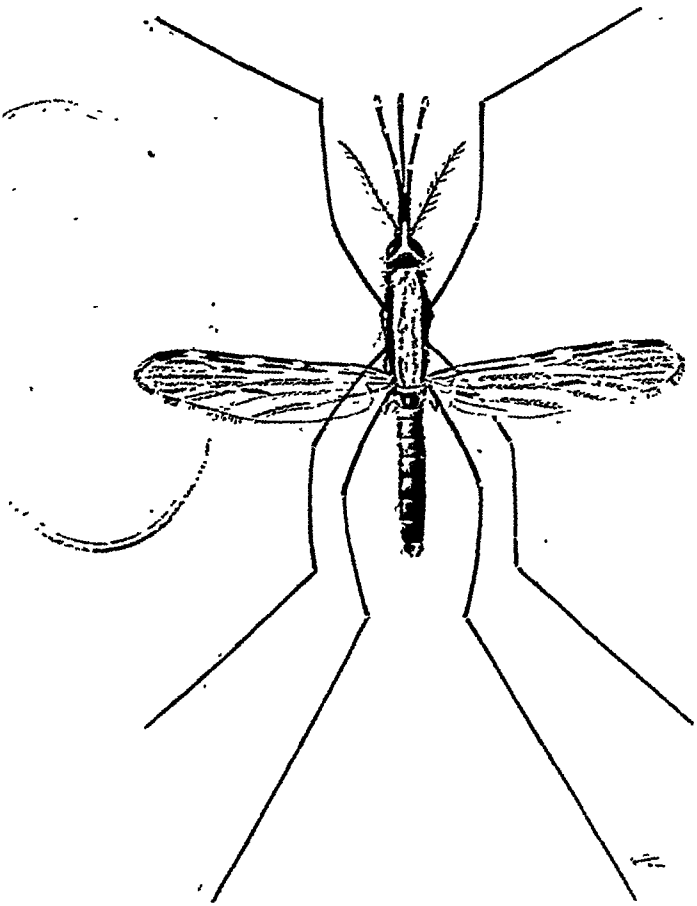
Anopheles culicifacies, (female) A. J. Engel Terzi, del.
From Patton and Evans' Insects Mites, Ticks and other Venomous animals
Part I; by kind permission

पृष्ठ ३८७ के सम्मुख

अध्याय १२

मलेरिया—जाड़ा बुख़ार

मच्छरों की एक विशेष जाति है जिसको यूरोपियन भाषाओं में अनोफेलीस कहते हैं। (देखो चित्र १२९, १३०) इस जाति के मच्छरों का मलेरिया ज्वर से एक विशेष सम्बन्ध है। मलेरिया रोग के रोगाणु (मलेरयाणु) अपना कुछ जीवन इस जाति के मच्छरों में व्यतीत करते हैं और कुछ मनुष्य के शरीर में। मनुष्य के शरीर में मलेरिया के रोगाणु केवल इस विशेष जाति के मच्छरों के काटने ही से पहुँचते हैं। यदि मनुष्य अपने आप को इन मच्छरों से बचाता रहे तो उसको मलेरिया कभी नहीं हो सकता। बस याद रक्खो कि न अनोफेलिस काटे न मलेरिया हो।

ज्वर के लक्षण

मलेरियाणुपूर्ण अनोफेलीस मच्छरी के काटने के आम तौर से १२ दिन पीछे (९-१७ दिन, कभी कभी १७ दिन से भी अधिक)

रोग के लक्षण दिखाई देते हैं।* ज्वर आने से एक दो दिन पहले हलका सिर दर्द और बेचैनी मालूम होती है।

रोग की तीन अवस्थाएँ

१. शीत—रोगी को एक दम झुरझुरी आती है। वह सर्दी के मारे काँपने लगता है। ओढ़ने के लिये कपड़ा माँगता है। दाँत कट-कटाने लगते हैं। चेहरे का रंग फ़क हो जाता है। यह हालत लग भग ½ घन्टे तक रहती है।

२. ज्वर—शीघ्र ही उसका शरीर गरम होने लगता है और जो कपड़े उसने ओढ़े थे उनको वह अब फेंकने लगता है। सिर में दर्द की शिकायत करता है। थर्मामीटर से देखा जावे तो बुख़ार १०४°, १०५° और कभी कभी १०६° तक भी मिलता है। यह अवस्था कोई ४–६ घन्टे रहती है।

३. पसीना—४-६ घन्टों के बाद पसीना आने लगता है और कपड़े भीग जाते हैं, मानों मेंह में भीग गया है। पसीना आने से तबियत हलकी हो जाती है, दर्द जाता रहता है। अब ज्वर घटने लगता है और कोई ६ घन्टे में शरीर का ताप परिमाण जितना होता है उससे भी कम हो जाता है और रोगी को थकान मालूम होती है।

अब इन तीनों अवस्थाओं के बाद जिनमें कुछ कम या अधिक १२ घन्टे लगते हैं रोगी समझने लगता है कि ज्वर उतर गया और वह अच्छा हो गया। वास्तव में ऐसा नहीं होता। कुछ अंतर के पीछे (४८ घन्टे या ७२ घन्टे) रोगी को फिर ठंढ लगती है, जूड़ी

---

*डाक्टर लोग एक मलेरिया के रोगी का रक्त स्वस्थ मनुष्य के शरीर में सूची द्वारा पहुँचा कर मलेरिया ज्वर उत्पन्न कर सकते हैं।

आती है, ज्वर चढ़ता है और पसीना आकर फिर बुखार उतर जाता है। फिर ४८ या ७२ घन्टे के अंतर से यही दौर फिर चलता है।

अंतरा

दौरों के बीच में अंतर पड़ने के कारण मलेरिया ज्वर **अंतरा** कहलाता है। जब अंतर ४८ घन्टे या दो दिन का होता है या यूँ कहो कि जूड़ी तीसरे दिन आती है तो ज्वर **तैया** (तृतीयक) कहलाता है; जब अंतर ७२ घन्टों का होता है, अर्थात् जूड़ी चौथे दिन आती है, तो ज्वर **चौथिया** (चतुर्थक) कहलाता है।

तृतीयक ज्वर

दो प्रकार का होता है—एक साधारण दूसरा संकटमय। साधारण ज्वर में रोगी की जान अधिक संकट में नहीं रहती। ज्वर तो बहुत तेज़, कभी कभी १०६,° १०७° तक हो जाता है परन्तु वह शीघ्र उतर भी जाता है। संकटमय मलेरिया में ज्वर इतना तेज़ नहीं होता, आम तौर से १०४°, १०३° के लगभग रहता है परन्तु ज्वर की अवस्था दीर्घ होती है—२४ से २६ घन्टे तक और कभी कभी दूसरी जूड़ी आने तक भी थोड़ा सा ज्वर बना ही रहता है। संकटमय मलेरिया में अन्य लक्षण भी दिखाई देते हैं—जूड़ी बहुत ज़ोर से नहीं आती है; क़ै, दस्त, बेहोशी, बहकी बहकी बातें करना (सरसाम), पेचिश, पाख़ाने में ख़ून आना, मुँह से ख़ून आना, न्युमोनिया का हो जाना। कभी कभी बुखार टायफौयड का रूप धारण करता है और हर समय बहुत दिनों तक बना रहता है; यदि रक्त परीक्षा न की जावे तो मामूली चिकित्सक अकसर धोखा खा जाता है। इस रोग से अकसर मृत्यु भी हो जाती है।
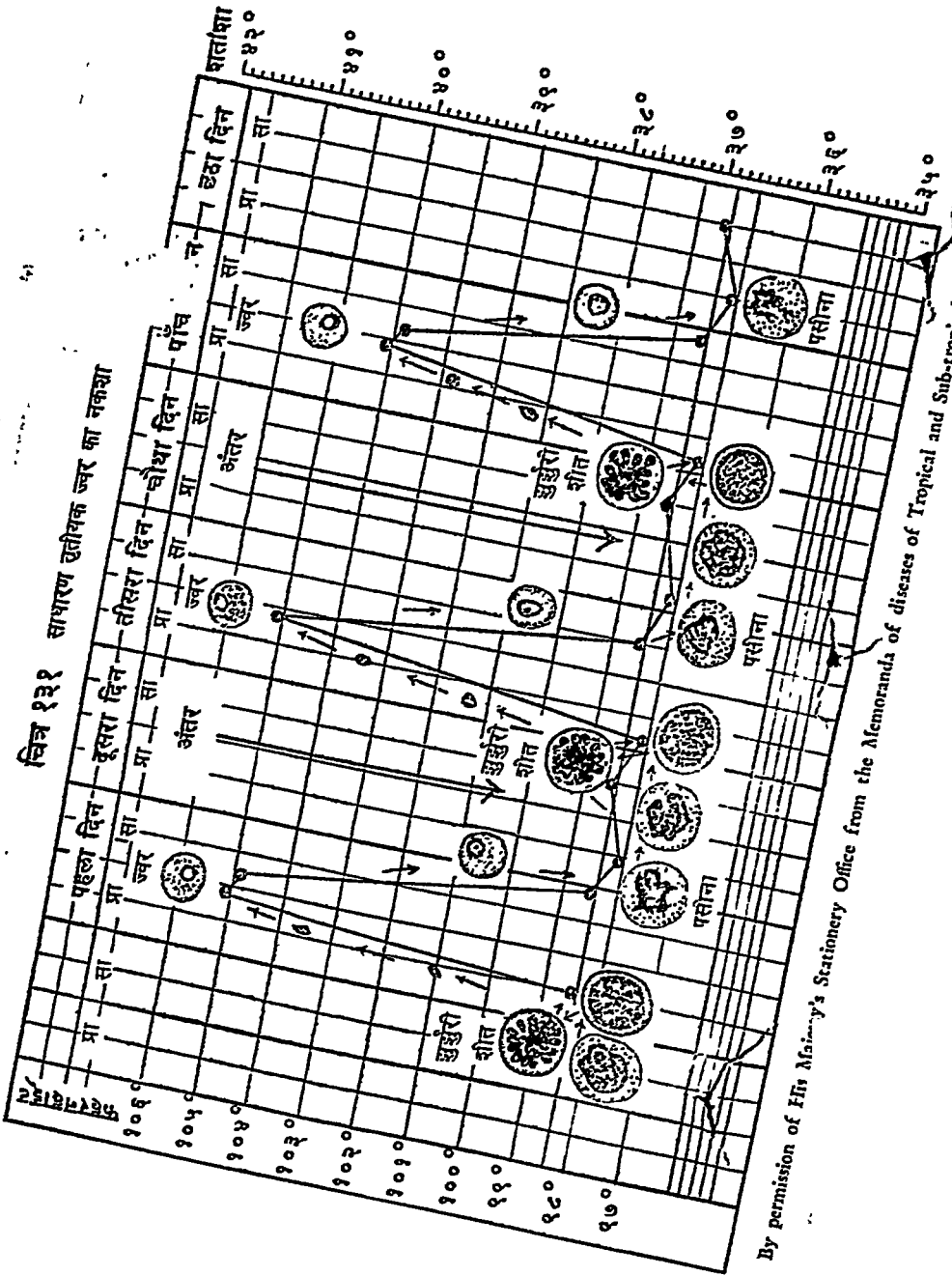
चित्र १३१ साधारण तृतीयक-ज्वर का नक्शा।

इस चित्र में यह दर्शाया गया है कि साधारण तृतीयक ज्वर में कौन कौन अवस्थाओं में मलेरियाणु की कौन कौन अवस्थाएँ पाई जाती हैं। झुरझुरी और शीत के साथ रोगारंभ होता है और फिर एक दम ज्वर १०५,° १०६° हो जाता है; इस समय मलेरियाणु की वृद्धि पूरी हो जाती है और उस रक्त कण के फटने स स्पोर निकल कर रक्त में फैल जाते हैं; अब ये नये रक्ताणुओं में घुसते हैं और बुखार पसीना आ कर उतर जाता है; दूसरा दिन खाली जाता है, इस समय में मलेरियाणु बढ़ता है; तीसरे दिन जब उस से स्पोर बन जाते हैं तो फिर जूड़ी आती है और ज्वर बढ़ जाता है; चौथा दिन फिर खाली रहता है इत्यादि। यदि 'अंतर' के दिन रक्त परीक्षा की जावे तो मलेरियाणु विविध अवस्थाओं में दिखाई देंगे; यदि जूड़ी आने पर या आने से ठीक पहले परीक्षा की जावे तो प्रौढ़ मलेरियाणु या स्पोर बने दिखाई देंगे।

संकटमय तृतीयक मलेरिया का नक्शा
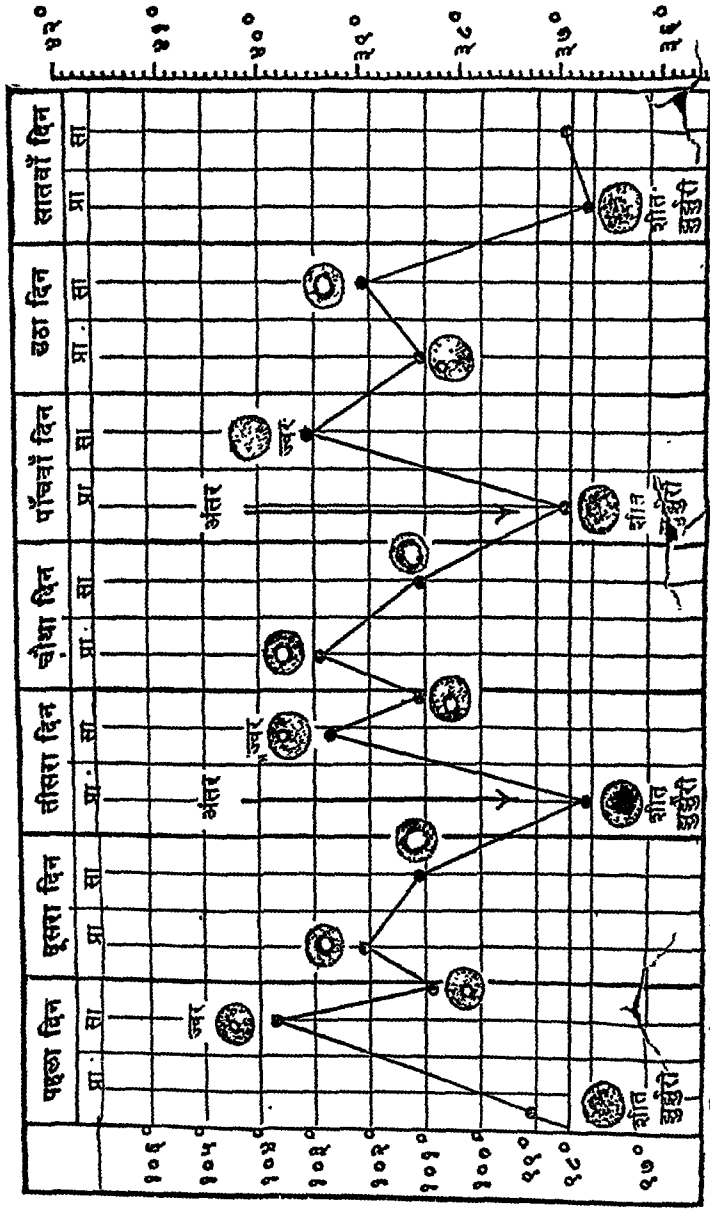
By permission of His Majesty's Stationery Office from the Memoranda of Tropical and Sub-tropical areas

चित्र १३२ संकटमय तृतीयक मलेरिया का नकशा

चित्र देखने से पता लगता है कि इस में थोड़ा बहुत ज्वर बना ही रहता है; ऐसा नहीं होता कि एक दिन के लिये बुखार बिलकुल उतर जावे। पहले दिन बुखार तेज है, यह बुखार कुछ हलका होकर दूसरे दिन भी रहता है। तीसरे दिन बारी आने से थोड़ी देर पहले करीब करीब उतर जाता है परन्तु उतरते ही फिर जूड़ी आ जाती है। प्रान्तस्थ रक्त को देखने से (त्वचा का रक्त) केवल अंगूठी वाली अवस्था दिखाई देती है; पुराना पड़ जाने पर "लिंगज" भी दिखाई देते हैं।

दैनिक मलेरिया

कभी कभी जूड़ी प्रति दिन आती है, ऐसे ज्वर को दैनिक ज्वर कहते हैं। यह भी हो सकता है कि जूड़ी दो दिन लगातार आवे और फिर दो दिन का अंतर रहे और फिर दो दिन लगातार आवे। कारण आगे बतलाया जावेगा।

ज्वर का कारण

मच्छरी (नारी मच्छर) ही खून चूसती है, मच्छर (नर मच्छर) नहीं। नर मच्छर बहुधा वनस्पतियों (घास, पात, फल, फूल इत्यादि के रस पर निर्वाह करता है। गर्भित होते ही नारी मच्छर अपने अंडों के पोषण के लिये किसी व्यक्ति का खून चूसती है; गाय, बैल, घोड़ा इत्यादि का खून चूस सकती है और उसका काम भली प्रकार चला जाता है; यदि मनुष्य मिले, विशेषकर यदि छोटे बालक मिलें तो उनका खून खूब चूसती है। बालकों का खून आसानी से चूस सकती है क्योंकि वे बड़ों की तरह उनको उड़ा नहीं सकते, दूसरे उनकी त्वचा पतली होती है।

यदि अनोफेलिस मच्छरी के थूक में मलेरियाणु नहीं हैं तो उस के काटने से सिवाय कुछ पीड़ा होने के और कोई बात न होगी; हाँ कभी कभी दाफड़ या फुंसी हो जाती है, कभी कभी ज़हरबाद भी हो जाता है।

खून चूसने से पहले मच्छरी ज़रा सा थूक खून में मिला देती है; यदि थूक में रोगाणु हों तो ये भी थूक द्वारा खून में पहुँच जाते हैं।

क्या मच्छरी के काटते ही रोग आरंभ हो जाता है

नहीं। ऐसा नहीं होता। ये रोगाणु अत्यंत सूक्ष्म शलाकाएँ हैं

(चित्र १२४ में १;१२५ में १)। ये रक्त में पहुँच कर रक्ताणुओं (लाल रक्त कण) के भीतर प्रवेश करते हैं। और वहाँ रक्ताणुओं के कणरञ्जक को खा कर धीरे धीरे बढ़ कर अमीवा की शकल धारण करते हैं। आरंभ में इस मलेरियाणु की शकल नगदार अँगूठी की भाँति होती है (चित्र १३४ में २;१३५ में ३); धीरे धीरे यह रोगाणु बड़ा होता है और रक्ताणु भर में फैल जाता है। मलेरियाणु के दो भाग हैं—एक वह जो विधि पूर्वक रँगने से लाल दिखाई देता है, यह इस की मींगी है और 'क्रोमेटीन' कहलाता है। दूसरा भाग रँगने पर नीला हो जाता है यह "जीवौज" है। अब मलेरियाणु बड़ा हो जाता है और क्रोमेटीम के कई भाग हो जाते हैं (चित्र १२४ में २,४, चित्र १२५ में ७,८,९) और थोड़ा थोड़ा जीवौज प्रत्येक क्रोमेटीन के टुकड़े के चारों ओर जमा हो जाता है। फिर रक्ताणु (रक्त कण) फट जाता है और यह छोटे छोटे टुकड़े जो बीज सदृश हैं रक्त में मिल जाते हैं। जब कण फटता है तब ही जूड़ी आती है (चित्र १३१ में झुर्झुरी, शीत); ऐसे ही चित्र १३२, १३३ में देखो। जिस दिन से मच्छरी ने थूक द्वारा मलेरियाणु हमारे शरीर में दाखिल किये उस समय से रक्त कण के फटने और छोटे छोटे बीज सदृश मलेरियाणु के रक्त में फैलने तक लग भग १२ दिन लगते हैं (९—१७ दिन)। इस लिये मच्छरी के काटते ही ज्वर नहीं आता; कुछ समय पीछे आता है। जब कण फटता है या फटने वाला होता है तब ही जूड़ी आती है। जब छोटे छोटे बीज सदृश मलेरियाणु जिन को अँगरेज़ी में स्पोर्स (Spores) कहते हैं रक्त में मिल जाते हैं तो उनका क्या होता है ? वे और रक्ताणुओं में घुस जाते हैं (चित्र १२५ में लाल तीर, चित्र १२४ में ६); रक्ताणु में घुस कर प्रति स्पोर फिर बढ़ता है (चित्र १२५ में २,३,४,.......) और अमीबा का रूप धारण करता है और फिर इस बड़े मलेरियाणु से
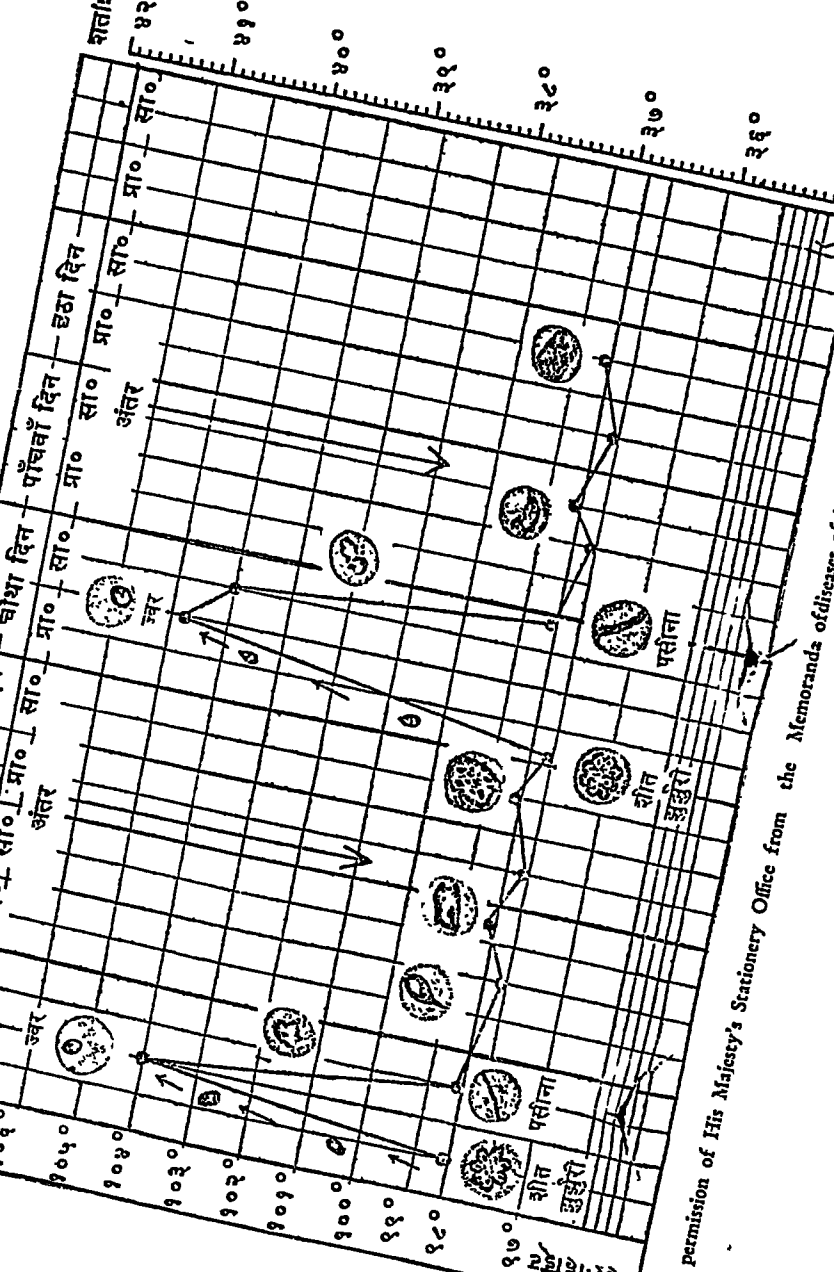
permission of His Majesty's Stationery Office from the Memoranda ofdiseases

चित्र १३३—चतुर्थक ज्वर का नकशा

इस से स्पष्ट है कि बजाय एक दिन के जैसा कि तृतीयक ज्वर में होता है इस ज्वर में दो दिन का अंतर रहता है; इन दोनों दिन रोगी को ज्वर नहीं आता। पहले दिन जूड़ी आती है; फिर चौथे दिन आवेगी। हर रोज़ रक्त में किसी न किसी अवस्था के रोगाणु मिलेंगे।

स्पोर्स बनते हैं। कण फिर फटता है और फिर जूड़ी आती है चित्र १३१, १३२, १३३)।

तृतीयक ज्वर में एक कण के फटने से फिर दूसरे कण के फटने तक ४८ घन्टे लगते हैं। चतुर्थक ज्वर में ७२ घन्टे लगते हैं इस कारण जूड़ी चौथे दिन आती है (चित्र १३३)।

मानो विषपूर्ण मच्छरी ने आज काटा और कल भी काटा। जो रोगाणु आज शरीर में पहुँचे उन से जूड़ी आज से १२वें दिन आवेगी; जो कल घुसेंगे उनसे जूड़ी कल से १२वें दिन अर्थात् आज से तेरहवें दिन आवेगी। इस प्रकार समझो :—पहली तारीख को काटने से जूड़ी १२ तारीख़ को आवेगी, फिर १४ तारीख़ और १६ तारीख़ और १८ तारीख को आवेगी। यदि मच्छरी ने दूसरी तारीख़ को भी काटा, तो जूड़ी १३, १५, १७, १९ तारीख को आवेगी। इस लिये जूड़ी प्रतिदिन आवेगी और ज्वर दैनिक होगा यद्यपि रोगाणु तृतीयक ज्वर के ही हैं—

एक जूड़ी, ज्वर	१२		१४		१६		१८	
दूसरी ,, ,,		१३		१५		१७		१९

हिसाब साफ है। ज्वर तृतीयक है परन्तु जूड़ी प्रतिदिन आती है; इसलिये रोग दोहरा तृतीयक हो जाने के कारण दैनिक हो जाता है और पूरे दिन का अंतर नहीं रहता।

अब देखिये चतुर्थक ज्वर में क्या होता है। पहली तारीख के रोगाणु वाली जूड़ी १२, १५, १८, को आवेगी; दूसरी तारीख के रोगाणु वाली जूड़ी १३, १६, १९ को आवेगी। रोगी को ज्वर जूड़ी इस प्रकार आवेगी:—

एक जूड़ी, ज्वर	१२		१५		१८	
दूसरी ,, ,,		१३ ×		१६ ×		१९

दो जूड़ियों के बीच में केवल १ दिन का अंतर रहेगा। (१४, १७ तारीख)। यहाँ भी हिसाब साफ है, ज्वर चतुर्थक है परन्तु अन्तर बजाये ७२ घंटे के ४८ घंटे का है और दो दिन बराबर जूड़ी आती है। यदि विषपूर्ण मच्छरी तीन दिन लगातार काटे तो चतुर्थक ज्वर का रूप दैनिक भी हो सकता है।

मिश्रित ज्वर

एक ही रोगी को एक ही समय में साधारण और संकटमय तृतीयक दोनों ज्वर हो सकते हैं। इसी प्रकार तृतीयक और चतुर्थक भी मिल कर हो सकते हैं। ज्वर का रूप बदल जाता है।

मलेरियाणुओं का मैथुनी चक्र

कई बारी आने के पश्चात् आम तौर से ज्वरारंभ से कोई ८, १० दिन पीछे मलेरियाणु में एक विशेष परिवर्तन होने लगता है। मलेरियाणु कुछ बढ़कर बजाये फटकर बहुत स्पोर बनाने के बड़े होते जाते हैं और क़रीब क़रीब समस्त कण को घेर लेते हैं। इनसे स्पोर नहीं बनते। साधारण तृतीयक और चतुर्थक ज्वर में इन विशेष रोगाणुओं का आकार गोल सा होता है (चित्र १२५ में ११, १२, १०, ११) परन्तु संकटमय तृतीयक ज्वर में ये कुछ कुछ चन्द्राकार होते हैं (१२५

में ९, १०)। इनमें लिंग भेद होता है; कुछ नर होते हैं और कुछ नारी। (अँग्रेज़ी में इनको नर और नारी गेमिटोसाइट Male and Female gametocyte कहते हैं); हमने इनका नाम नर और नारी लिंगज रक्खा है।

मच्छरी में मलेरियाणु का वर्द्धन

यदि अब (नर लिंगज और नारी लिंगज के बनने के पश्चात) मच्छरी इस रोगी का रक्त चूसे तो उसके पेट में रक्त के साथ साथ ये लिंगज भी चले जावेंगे। और रक्त कण तो हज़म हो जाते हैं परन्तु ये रोगाणु वहाँ पहुँच कर बढ़ते हैं। कुछ समय पीछे यह होता है कि नर लिंगज और नारी लिंगज रक्तकण से बाहर निकल आते हैं और गोलाकार हो जाते हैं (चन्द्राकार लिंगज भी गोलाकार हो जाते हैं)। नर लिंगज से चार छः तार से निकल पड़ते हैं (चित्र १३४ में ११) और ये रेशे शुक्राणु की भाँति गति करते हैं। ये मलेरिया के शुक्राणु हैं और लिंगजाणु कहलाते हैं। इनमें से एक लिंगजाणु नारी लिंगज से चिपट जाता है और उसमें घुस जाता है (जिस प्रकार शुक्राणु डिम्ब में घुस जाता है) और उसको गर्भित करता है (चित्र १३४ में १४); धीरे धीरे यह गर्भित लिंगज (गर्भ) मच्छरी के पेट की दीवार में घुस जाता है और वहाँ बढ़ता है। फिर इस गर्भ से हज़ारों अत्यंत सूक्ष्म तर्क्वाकार रेशे बन जाते हैं। प्रत्येक रेशा जीवौज से बनता है जिसमें ज़रा सा क्रोमेटीन होता है। ये रेशे जो अब बीजाणु कहलाते हैं थूक की ग्रन्थियों में जमा हो जाते हैं (चित्र १३४ में २०, २१)। इस सब वृद्धि क्रम में कोई १२ दिन लगते हैं।

यदि मच्छरी रोगी का खून चूसते ही दूसरे स्वस्थ मनुष्य को काटे, तो क्या उस मनुष्य को मलेरिया हो जावेगा ?

नहीं जब तक नर और नारी लिंगज के मेल से गर्भ न बने और फिर इस गर्भ से बीजाणु न बनें उस समय तक मच्छरी के काटने से मलेरिया न होगा। इस वृद्धिक्रम में कोई १२ दिन लगते हैं। अधिक शीत पड़ने पर १२ से भी अधिक दिन लगते हैं। ग्रीष्म ऋतु में १२ दिन पीछे यह मच्छरी विषैली अर्थात् मलेरियादाता हो जावेगी। एक बार विषैली होकर मच्छरी महीनों तक विषैली बनी रहती है।

चित्र १३४ की व्याख्या

इस चित्र के दो भाग हैं एक ऊपर का जिस में मच्छर की शकल है, दूसरा नीचे का। ऊपर वाले भाग में यह समझाया गया है कि जब कोई अनोफेलिस मच्छरी मलेरिया के रोगी का रक्त यथासमय चूसती है तो मलेरियाणु का वर्द्धन उस के शरीर में कैसे होता है—यही वर्द्धन मलेरियाणु का मैथुनी चक्र या मच्छरी चक्र है। नीचे के भाग में मलेरियाणु का मनुष्य चक्र या अमैथुनी चक्र समझाया गया है।

क—विषपूर्ण अनोफेलिस मच्छरी अपनी भेदनी द्वारा मनुष्य शरीर में तर्कोकार मलेरिया के बीजाणु पहुँचाती हैं; एक समय में सहस्रों बीजाणु शरीर में पहुँच जाते हैं।

१—बीजाणु रक्ताणु में घुस जाता है।

२—बीजाणु नगदार अंगूठी का रूप धारण करता है।

३—मलेरियाणु बढ़ कर अमीबावत् हो जाता है। रँगने पर उस में लाल क्रोमेटीन और नीला जीवौज दिखाई देता है; उस में काले काले दाने भी दिखाई देते हैं यह मलेरियाणु का विशेष रंग है।

चित्र १३४ मलेरियाणु का जीवन चक्र
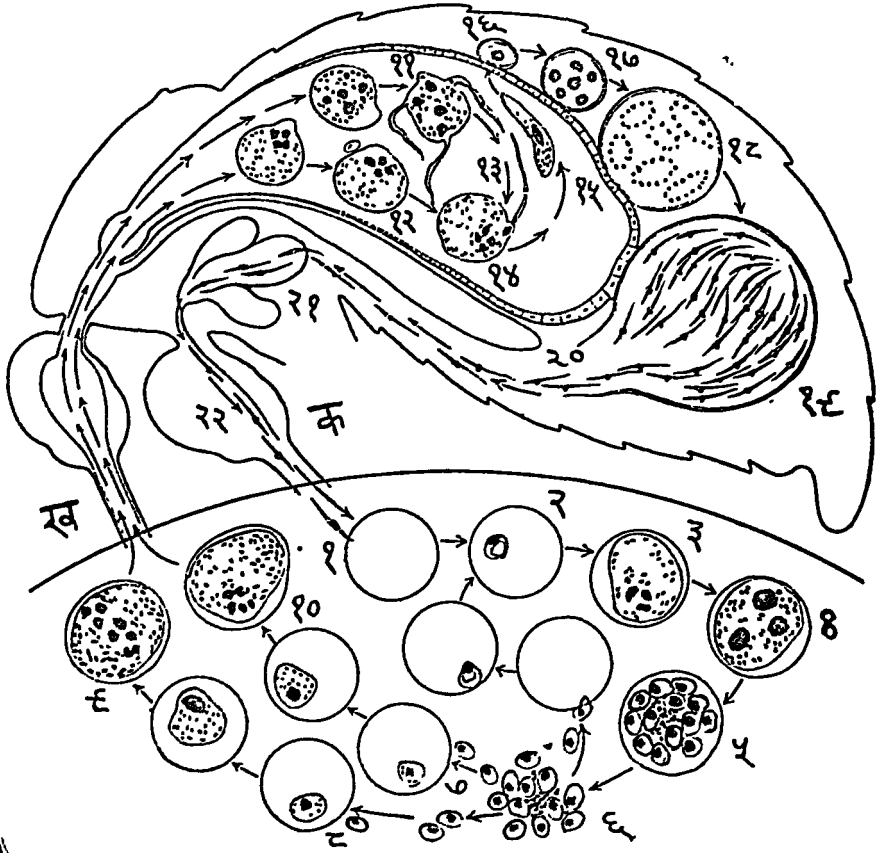
By courtesy of Sir Aldo Castellani from "Manual of Tropical Diseases".
Coloured by the author

४=क्रोमेटीन के कई भाग हो गये हैं। ५=क्रोमेटीन के बहुत से भाग हो गये हैं और प्रत्येक भाग के चारों ओर जीवौज इकट्ठा हो गया है।

६=अब रक्तकण (रक्ताणु) फट जाता है और बीज (स्पोर) रक्त में मिल जाते हैं। इन में से कुछ दूसरे रक्ताणुओं में घुस कर फिर मलेरियाणु बन जाते हैं (२,३,४,५,६) कुछ बड़े हो कर नर और नारी लिंगज बनते हैं।

७, ८=से नर लिंगज या नारी लिंगज ९, १० बनते हैं।

९=नर लिंगज, इस में क्रोमेटीन अधिक होता है।

१०=नारी लिंगज, इसमें क्रोमेटीन कुछ कम होता है।

९, १०=रक्ताणुओं के अंदर नर लिंगज और नारी लिंगज।

ख=जब मच्छरी रक्त चूसती है तो ये उस के पेट में चले जाते हैं। पेट में जा कर नर लिंगज और नारी लिंगज रक्तकणों से बाहर आ जाते हैं।

११=नर लिंगज से कई तार से निकलते हैं और ये तार अलग होकर रक्त में तैरते हैं।

१२=नारी लिंगज गर्भित होने के लिये तैयार है।

१३=मलेरिया शुक्राणु या लिंगजाणु। १४=नारी लिंगज से मिल रहा है।

१५=गर्भित नारी लिंगज कीड़े की तरह मच्छरी के पेट की दीवार में घुस रहा है।

१६,१७,१८=अब एक कोष बन जाता है जिस के भीतर गर्भ बढ़ता है।

१९=कोष से सहस्रों सूक्ष्म तर्कांकार बीजाणु निकलते हैं।

२०=बीजाणु थूक की ग्रन्थियों की ओर जा रहे हैं।

२१=थूक की ग्रन्थियाँ।

२२=जब मच्छरी खून चूसती है, तर्कांकार बीजाणु मनुष्य में फिर पहुँच जाते हैं।

मच्छर चक्र=१२ दिन; मच्छरी के काटने के १२ दिन पश्चात् ज्वर आता है; ज्वर आने के ८-१०-१२ दिन बाद नर लिंगज और नारी लिंगज बनते हैं।

चित्र १३५ की व्याख्या

जब मनुष्य का रक्त कांच की पट्टी पर लगा कर विधिपूर्वक रँगा जाता है तो रोगाणु ऐसे ही दिखाई देते हैं। इस चित्र में विविध प्रकार के मलेरियाणुओं का वृद्धि क्रम दिखाया गया है।

ऊपर की दो पंक्तियाँ—साधारण तृतीयक मलेरियाणु

१=तर्कांकार बीजाणु जो मच्छरी हमारे रक्त में पहुँचाती है।

२=रक्ताणु जिसके भीतर बीजाणु घुसता है।

३=बीजाणु नगदार अंगूठी का आकार धारण करता है। लाल क्रोमेटीन और नीला जीवौज है।

४=अँगूठी बड़ी हो जाती है।

५=इस ज्वर में रक्ताणु बड़ा होता जाता है ज्यों ज्यों मलेरियाणु बढ़ता है। रक्ताणु के जीवौज में नन्हें नन्हें दाने दिखाई देते हैं। मलेरियाणु अमीबा बन गया है और वह गति करता है।

६=रक्ताणु में मलेरिया का काला रंग भी बन गया है।

७,८=क्रोमेटीन के अब कई भाग हो गये हैं।

९=प्रत्येक भाग के चारों ओर जीवौज है। काला रंग बीच में इकट्ठा हो गया है।

१०=रक्ताणु फट गया और बीज रक्त में मिल गये।

लाल तीर=बीज फिर दूसरे रक्ताणु में घुस कर अमीबा का आकार धारण

चित्र १३५ रक्त-कणों में मलेरियाणुओं की वृद्धि अर्थात् मलेरिया का अमैथुनी जीवन चक्र

पृष्ठ ४०२ के सम्मुख
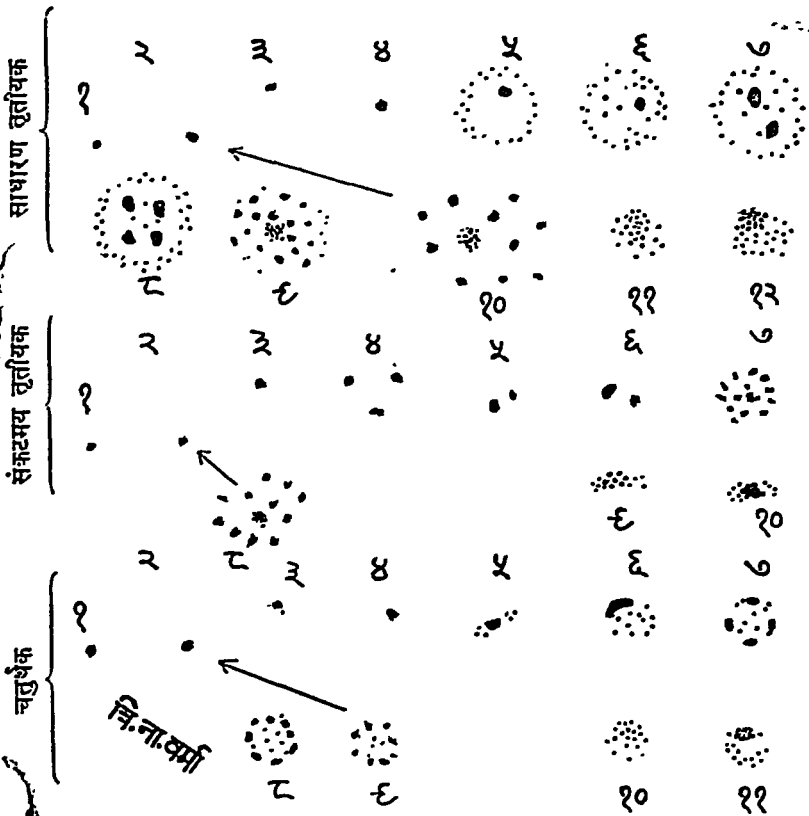
करते हैं और मलेरियाणु फिर बढ़ता है। शेष अवस्थाएँ वही हैं जो बीजाणु के घुसने और बढ़ने से हुईं।

११-१२=कुछ मलेरियाणु से (४) बीजाणु नहीं बनते प्रत्युत ८-१० दिन बीतने पर अर्थात् तीन चार बारी आने पर नर और नारी लिंगज बनते हैं। ११=नारी लिंगज है। १२=नर लिंगज है। मच्छरी के पेट में पहुँच कर इन से मैथुनी चक्र चलता है।

बीच की दो पंक्तियाँ—संकटमय तृतीयक मलेरियाणु

१=बीजाणु जो मच्छरी द्वारा आता है।

२=रक्ताणु

३=अंगूठी

४=इस रोग में एक रक्ताणु में एक से अधिक बीजाणुओं के घुसने से एक से अधिक मलेरियाणु पाये जाते हैं।

५=रक्ताणु बड़ा नहीं होता प्रत्युत कभी कभी उसका आकार कुछ घटा सा मालूम होता है।

६=मलेरियाणु बड़ा हो गया है। काला रंग भी मौजूद है।

७=बीज या स्पोर बन गये हैं।

८=रक्तकण फट गया और बीज या स्पोर रक्त में मिल गये।

लाल तीर—स्पोर दूसरे रक्तकणों में घुस कर मलेरियाणु बन जाते हैं और फिर स्पोर बनते हैं।

९, १०=कुछ मलेरियाणुओं से (४) नर लिंगज और नारी लिंगज बनते हैं जिनका आकार **चन्द्राकार** होता है।

इस रोग में प्रान्तस्थ रक्त की परीक्षा करने से केवल ३, ४, ९, १० अवस्थाएँ दिखाई देती हैं। शेष अवस्थाएँ प्लीहा, मस्तिष्क, यकृत, फुप्फुस अंत्र के रक्त में रहती हैं।

नीचे की दो पंक्तियाँ—चतुर्थक मलेरियाणु

१=बीजाणु जो मच्छरी द्वारा रक्त में पहुँचता है।

२=रक्ताणु

३=अंगूठा आकार रोगाणु

४=बढ़कर बड़ा हो गया है।

५=अक़सर यह रोगाणु एक पट्टी की शकल का दिखाई देता है।

६=अमीबा के आकार का मलेरियाणु

७, ८=क्रोमेटीन के कई टुकड़े हो गये हैं।

९=स्पोर्स थोड़े होते हैं और सब इकट्ठे होकर एक फूल की सी शकल बना लेते हैं। जब कण फटता है तो स्पोर्स (बीज) और रक्त-कणों में घुस जाते हैं।

१०=नारी लिंगज

११=नर लिंगज

मलेरिया एक बुरा रोग है

भारतवर्ष में बहुत कम लोग ऐसे हैं कि जिन को कभी न कभी मलेरिया न हुआ हो। चूंकि रोग चिकित्सा करने से शीघ्र कब्ज़े में आ जाता है और यह रोग स्वयं मृत्यु का कारण बहुधा नहीं होता (जैसे कि प्लेग, हैज़ा होते हैं), लोग मलेरिया को कुछ नहीं समझते और अकसर इसके इलाज में लापरवाही करते हैं। वास्तव में मलेरिया एक बहुत बुरा रोग है; रोगाणु लाल कणों को खाता है; रक्त कम हो जाता है; रक्तहीनता से हमारी रोग नाशक शक्ति घट जाती है और जब रोगनाशक शक्ति घटी तो यदि मलेरिया स्वयं न भी मारे और रोग जैसे क्षय, प्लेग, हैज़ा, इन्फ्लुएंज़ा, न्युमोनिया, पेचिश शीघ्र दबा

बैठते हैं और मृत्यु का कारण होते हैं। जाँच पड़ताल से पता लगता है कि मलेरिया से भी भारतवर्ष में प्रति वर्ष लाखों मृत्यु होती है।

इतिहास से पता लगा है कि यूनान, सीलोन (लंका) और कई देशों की प्राचीन सभ्यताओं के अधोपतन का मुख्य कारण मलेरिया ज्वर रहा। भारत की दुर्दशा का भी एक वड़ा कारण मलेरिया है। ग्रामों में शहरों की अपेक्षा मलेरिया वहुत होता है क्योंकि वहाँ मच्छर भी वहुत होते हैं और रोग का इलाज भी नहीं होता। ४-६ वारी आने के वाद मलेरिया विना इलाज के भी जाता रहता है परन्तु इस समय में वह वहुत सा खून जला जाता है और प्लीहा (तिल्ली) वड़ी हो जाती है जिस में मलेरियाणु रहते हैं; जव कभी किसी प्रकार रोग नाशक शक्ति घटती है मलेरिया की वारी आ जाती है। यह सव जानते हैं कि भारत के नौकर हराम-खोर होते हैं। जाँच पड़ताल की जावे तो उन में से वहुत से ऐसे मिलेंगे कि जिन को मलेरिया हो चुका है और उसके कारण उनके शरीर कमज़ोर हो गये हैं; कमज़ोरी के कारण उनका काम करने को जी ही नहीं चाहता। और उनसे परिश्रम नहीं हो सकता।

मलेरिया का इलाज

कुइनीन (जो सिंकोना नाम के वृक्ष की छाल से निकाली जाती है) और प्लाज़्मोकीन (जो अभी हाल में जर्मनी में वनाई गई है) इस रोग के लिये अमोघौषधियाँ हैं इन के अतिरिक्त संखिया भी फायदा करता है। कुइनीन तो इतनी लाभदायक है कि हकीम और वैद्य भी उस का (खुल्लम खुल्ला नहीं तो छिपा कर) प्रयोग करते हैं। याद रखने की वात यह है कि वैसे तो दो चार दिन के प्रयोग करने से बुखार रुक जाता है, जड़ से खो देने के लिये वहुत समय तक कभी

कभी तीन महीने तक उस का और खून बढ़ाने वाली औषधियों का प्रयोग करना चाहिये।

मलेरिया के मच्छर

जहाँ तक पता लगा है मलेरिया मनुष्य को केवल अनोफेलीज जाति के मच्छरों द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। अनोफेलीस जाति के मच्छर कई प्रकार के होते हैं। हम यहाँ दो प्रकार के मच्छरों के चित्र देते हैं, भारत में मलेरिया फैलाने में ये दोनों प्रकार के अनोफेलीस विशेष भाग लेते हैं। मच्छर अपनी विशेषताओं से पहचाने जाते हैं। (चित्र १२९, १३०)

अनोफेलीस मच्छरों के ब्याहने और बढ़ने के स्थान वही हैं जो हम पिछले अध्याय में बतला चुके हैं। भारत में गत सन् १९३० में युरोप से एक विद्वानों का कमीशन मलेरिया की जाँच करने आया था, उन विद्वानों ने वे सब स्थान देखे जहाँ जहाँ मलेरिया बहुत होता है; हम

चित्र १२६
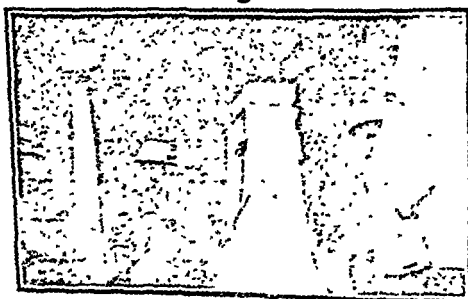
बंगलोर—"अनोफेलीन स्टेफेन्साई" घर के कुएँ में ब्याहता है

By courtesy of League of Nations from C. H. Malaria 147

चित्र १३७
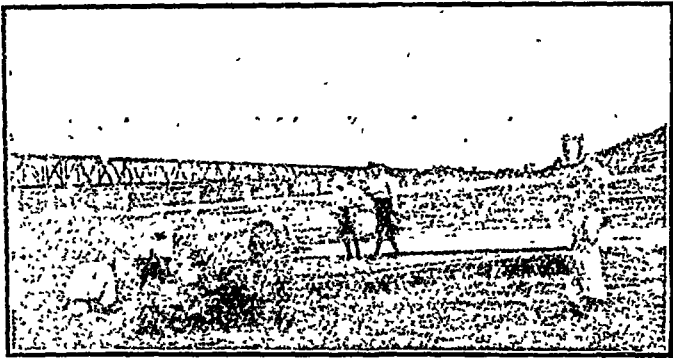
चनाव नदी (पंजाब) "अनोफलीस क्युलिसिफेशीस" के ब्याहने के स्थान

चित्र १३८
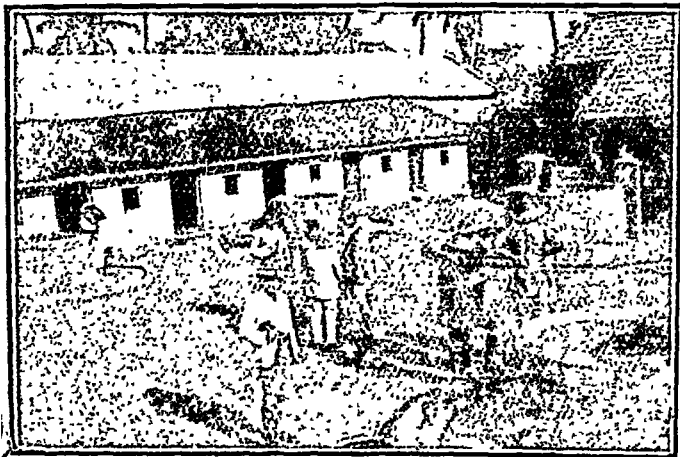
विज़ागापटम में "अनोफेलीस स्टीफेन्साई" के ब्याहने के स्थान—कुएं

By courtesy of League of Nations from C. H. Malaria 147

यहाँ तीन फोटो देते हैं जिन से कुछ अनुमान हो जावेगा कि अनोफेलीज़ कहाँ कहाँ ब्याह सकते हैं।

मलेरिया से बचने के उपाय

१—याद रक्खो बिना विषपूर्ण अनोफेलिस मच्छर के काटे मलेरिया नहीं हो सकता; इसलिये मच्छर से बचो, उसे कदापि न काटने दो।

२—अनोफेलिस मच्छर मलेरिया का विष किसी मलेरिया के रोगी से प्राप्त करता है। मलेरिया के रोगियों की यदि शीघ्र चिकित्सा हो तो रोगी के रक्त में नर और नारी लिंगज न बनने पावेंगे और जब तक मच्छरी के पेट में ये लिंगज न जावेंगे, मलेरियाणु का मैथुनी चक्र न चल सकेगा; इसलिये यत्न करो कि अव्वल तो रोगी के रक्त में ये लिंगज न बनने पावें, यदि बन जावें तो उचित औषधियों द्वारा जैसे प्लज़्मोकीन (Plasmoquine) उन का नाश हो जावे।

३—कुछ औषधियों से जैसे फिटकरी, मलेरिया दब जाता है। परन्तु मलेरियाणु पूरे तौर से नहीं मरते या वे प्लीहा में छिप जाते हैं। कुछ बारियों के बाद भी रोग स्वयं दब जाता है परन्तु प्लीहा बढ़ी हो जाती है। जब प्लीहा बढ़ जाती है और रोगाणु उस में रहते हैं तो रोगी को जब तब ज्वर आया करता है। ऐसा रोगी रोग फैलाने में बहुत सहायता देता है क्योंकि मच्छरी उस का खून चूस कर विषैली हो जाती है। ऐसे रोगियों का जम कर इलाज करो। ग्रामों में जाँच पड़ताल की जावे तो बहुत से बच्चे ऐसे मिलेंगे कि जिन की प्लीहा (तिल्ली) मलेरिया के कारण बड़ी हो गयी हैं। जब तक ये अच्छे न हो जावें, इन बालकों को मलेरिया की खान समझना चाहिये।

४—मकानों के पास-मच्छरों को न ब्याहने दो (मच्छर कहाँ

कहाँ ब्याह सकते हैं यह हम पीछे बतला चुके हैं)

५—मकानों के पास हरियाली, घास, जंगल, बाग़; पार्क, लान, फूल फुलवाड़ी न लगाओ। प्रति छुट्टी के दिन अपने बालकों को मच्छरों के लहवों की तलाश में भेजो; जहाँ मिलें तुरंत मिट्टी के तेल या पेट्रोल से मारो; मोटर का पुराना मोबिल आयल जो फेंक दिया जाता है इस काम में लाया जा सकता है।

६—जहाँ तक बन सके अच्छी बनी हुई मसहरी का प्रयोग करो। जहाँ मच्छर बहुत हों वहाँ बारहों मास मसहरी लगा कर सोना चाहिये।

७—यदि मसहरी न मिल सके तो लोबान या धुए द्वारा मच्छरों को भगाओ और हाथ पैरों पर पीछे लिखे हुए तेल मलो।

८—प्रत्येक समझदार म्युनिसिपलटी का यह फ़र्ज़ है कि वह मच्छर पालने वालों पर एक बड़ा टेक्स (कर) लगावे। यदि भारत वर्ष में यह टेक्स (कर) लगने लगे तो देखिये मलेरिया उनक़ा हो जाता है कि नहीं। पाठक, याद रक्खो, यदि आप चाहें तो मच्छरों को बहुत शीघ्र कम कर सकते हैं। कपट और ख़ुदग़र्ज़ी, और इच्छा बल की कमी ये तीन बातें ऐसी हैं कि जिन के कारण मच्छर और मलेरिया और मच्छरों से होने वाले रोग देश में फैलते हैं।

अध्याय १३

मच्छर द्वारा फैलने वाले और रोग

(१) डेंगू (हड्डी तोड़ ज्वर)

बहुधा रोग एक दम आरंभ होता है; ज्वर १०३°-१०४° हो जाता है; माथे में दर्द होता है; आँखें बहुत दुखती हैं; चेहरा, गरदन, और छाती सुर्ख हो जाती हैं। कमर और हाथ पैरों में कभी कभी अत्यंत पीड़ा होती है ऐसा मालूम होता है कि हड्डियाँ टूटी जाती हैं। आँखें लाल हो जाती हैं। ज्वर कभी कई रोज़ तक चढ़ा रहता है और सातवें आठवें दिन उतरता है। अक्सर तीन चार दिन पीछे ज्वर कम हो जाता है और ज्वर घटने पर शरीर की पीड़ा भी कम हो जाती है; एक दो दिन कम रह कर ज्वर दूसरी बार फिर चढ़ता है और एक दो दिन रहता है; हड़फूटन फिर होती है; अब अक्सर शरीर पर खसरा जैसे दाने भी निकल आते हैं; ये दाने शाखाओं और धड़ पर निकलते हैं; कभी कभी शीघ्र मुर्झा जाते हैं कभी दो तीन दिन ठहरते हैं। मुर्झाने पर भूसी सी निकलती है।

चित्र १३९ ऐडिस मच्छरी
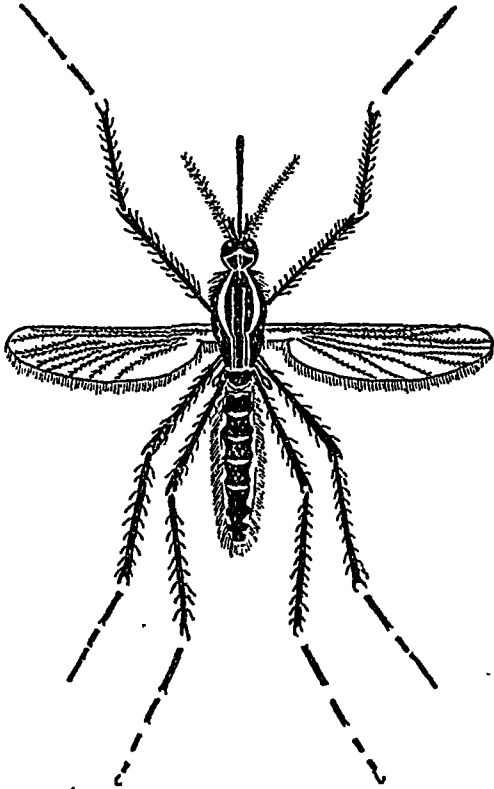
By permission of His Majesty's Stationery Office from Memoranda of medical diseases in Tropical and Sub-tropical areas

देखो—वक्ष (छाती) पर विशेष प्रकार के रुपेले निशान हैं; उदर (पेट) पर रुपेली लकीरें हैं पिछली टांगों पर ५ रुपेली लकीरें हैं।

रोग कैसे फैलता है

रोग एक दूसरे को ऐडीज़ मच्छरी द्वारा पहुँचता है। इस रोग का कारण एक अति-अणुवीक्ष्य रोगाणु है जो रोगी के रक्त में रहता है। यदि ऐडीज़ मच्छरी किसी रोगी को रोग के पहले तीन दिनों में काटे तो उस के शरीर में रोगाणु आजाते हैं। यदि अब यह मच्छरी रोगी को काटने के ११ दिन बाद (कम से कम ८ दिन बाद) किसी दूसरे व्यक्ति को काटे तो उस नये व्यक्ति को रोग होना संभव है। इस विषपूर्ण मच्छरी के काटने के चौथे पाँचवें दिन ज्वर आ जाता है।

रोग कै दिन रहता है

आम तौर से ७-८ दिन; कभी कभी तीन दिन, कभी एक दो दिन।

डेंगू और मृत्यु

मृत्यु अधिक नहीं होती। कभी कभी इस रोग की वबा फैलती है, इस वबा में बहुत कम लोग बच पाते हैं।

बचने के उपाय

वबा के दिनों में बचना कठिन है। मच्छरों से बचो। ऐडिस मच्छर के अतिरिक्त पिस्सु (Sandfly) और कभी कभी क्युलेक्स के काटने से भी यह रोग उत्पन्न होता है। रोगी को मसहरी में रक्खो ताकि मच्छरियाँ उस को काट कर विषैली न बनने पावें।

२. श्लीपद, फ़ीलपा

यह रोग भारत में बहुत पाया जाता है। पैर और फोते और कभी कभी हाथ मोटे हो जाते हैं देखो चित्र—

चित्र १४०

श्लीपद

चित्र १४१

फोते का श्लीपद

एक बाल जैसा बारीक स्वच्छ कीड़ा होता है जो लसीका ग्रन्थियों, लसीका वाहिनियों और महा लसीका वाहिनी में रहता है। इस की लम्बाई ३-४ इंच होती है; नारी की लम्बाई नर से आधी होती है। नर और नारी आम तौर से इकट्ठे रहते हैं; कभी कभी बहुत से कीड़े इकट्ठे होते हैं। नारी सहस्रों लहर्वे देती है (अंडे नहीं देती)। ये लहर्वे रक्त में घूमा करते हैं। एक विचित्र बात यह है कि यह लहर्वे त्वचा के रक्त में रात्रि के समय पाये जाते हैं, दिन में नहीं या बहुत कम। सायंकाल से ज्यों ज्यों रात्रि गुज़रती जाती है, लहर्वों की संख्या त्वचा के रक्त में (प्रान्तस्थ रक्त) बढ़ती जाती है, रात के बारह बजे संख्या सब से अधिक होती है, बारह बजे के बाद फिर संख्या घटती जाती है और प्रातःकाल के लगभग बहुत कम लहर्वे पाये जावेंगे। रात के बारह बजे कभी कभी एक बूँद रक्त में २००—६०० तक पाये जाते हैं; समस्त रक्त में ४—५ करोड़ के लगभग हो सकते हैं। दिन में ये लहर्वे फुफ्फुस में और बड़ी रक्तवाहिनियों में चले जाते हैं। इन लहर्वा का एक क्युलेक्स मच्छर से विशेष सम्बन्ध है और ये मच्छर विशेष कर रात्रि में काटते हैं इस कारण ये लहर्वे भी रात ही के समय त्वचा के रक्त में आते हैं ताकि मच्छर रक्त चूसकर उनको शरीर से बाहर ले जावें।

लहर्वा

जिस रोगी के रक्त में लहर्वे होते हैं यदि उसका रात्रि का रक्त अणुवीक्षण द्वारा देखा जावे तो लहर्वे हिलते हुए दिखाई देंगे, और लहर्वा ऐसा दिखाई देगा जैसा कि चित्र १४६ में देख पड़ता है; यह तसवीर हमने असली कीड़े की खींची है। लहर्वा की चौड़ाई रक्तकण की चौड़ाई के बराबर होती है परन्तु लम्बाई कोई $\frac{१}{८०}$ इंच (०'२ सहस्रांशमीटर) होती है।

चित्र १४६ लहर्वां

लहर्वा और मच्छर
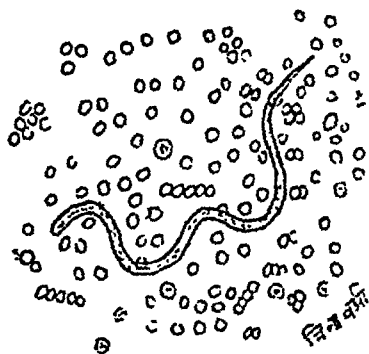
लहर्वों के ऊपर एक पतला पिधान (गिलाफ़) चढ़ा रहता है। जब मच्छरी (भारतवर्ष में आम तौर से "क्युलेक्स फैटिगांस" मच्छरी इस रोग को फैलाती है; और देशों में एडिस मच्छरी—देखो चित्र १२७) रात को खून चूसती है तो उसके पेट में बहुत से लहर्वे पहुँच जाते हैं। पेट में पहुँच कर लहर्वे पिधान में से बाहर निकल आते हैं और पेट में से वक्ष की पेशियों में घुस जाते हैं; वहाँ वे १०—२० दिन ठहरते हैं। इस समय में उनकी रचना में कुछ परिवर्तन होता है; उनकी बनावट जवान कीड़े सी हो जाती है। अब उनका परिमाण भी बड़ा हो जाता है। लहर्वा $\frac{1}{६०}$ इंच लम्बा था, वे बच्चे $\frac{1}{१६}$ इंच लम्बे हो जाते हैं। वक्ष की पेशियों से ये घूम घाम कर मच्छरी की शुण्डा या भेदनी की जड़ में पहुँच जाते हैं। और अवसर ढूँढ़ते रहते हैं कि कब मच्छरी काटे और कब वे मनुष्य में पहुँचें। जब मच्छरी काटती है तो ये भेदनी की जड़ से निकल कर त्वचा पर आ जाते हैं और मच्छर काटने के छिद्र में

चित्र १४७ क्युलेक्स मच्छरी
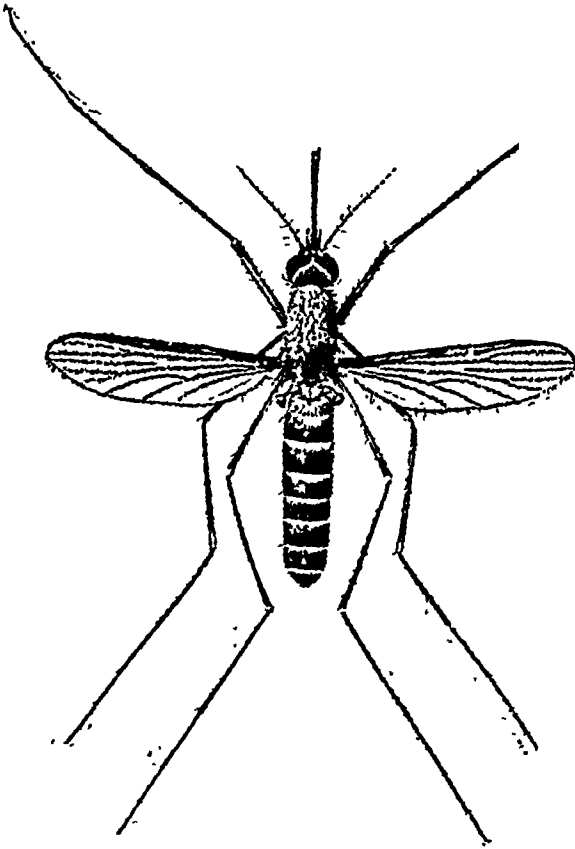
From Patton and Evans' Insects, Mites, Ticks and other Venomous animals
Part I

पृष्ठ ४१६ के सम्मुख

से होकर त्वचा में घुस जाते हैं; वहाँ से लसीका द्वारा लसीका वाहिनियों में पहुँचते हैं और बड़ी लसीका वाहिनियों और लसीका ग्रन्थियों में वास करने लगते हैं। कुछ समय पीछे (६ मास के लगभग) नारी लहर्वे देने लगती है जो रक्त में पहुँच जाते हैं और इनको मच्छरी फिर रक्त चूसकर मनुष्य के शरीर से बाहर निकालती है।

चित्र १४८ मच्छरी के शरीर में कीड़ों का वर्द्धन
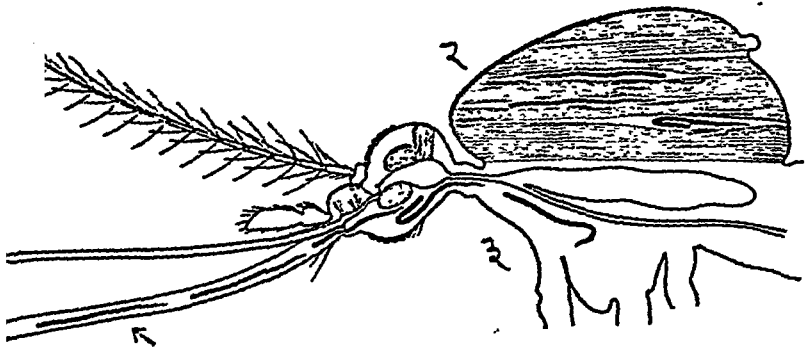
By courtesy of Sir Aldo Castellani from Castellani and Chalmer's Manual of Tropical Diseases

१=भेदनी में युवक कीड़े हैं

२=वक्ष की पेशियों में लहर्वे बढ़ रहे हैं

३=युवक कीड़े भेदनी की ओर जा रहे हैं

रोग

लहर्वों से हमेशा कोई विशेष हानि होती नज़र नहीं आती। बहुत से मनुष्यों के रक्त में लहर्वे रहते हैं और वे हट्टे कट्टे नज़र आते हैं।

चित्र १३९ छ [illegible] का रोग

चित्र १४० मगोदों का रोग

From Manson's Tropical diseases, by permission

जवान कीड़ों और उनके लहवों के शरीर में वास करने से अकसर तेज़ ज्वर आता है; यह ज्वर समय समय पर आया करता है, कुछ दिनों के पीछे अपने आप अच्छा हो जाता है। जब यह ज्वर आता है तो कभी कभी उपरितन लसीका वाहिनियों, कभी कभी गहरी लसीका वाहिनियों का और लसीका ग्रन्थियों का प्रदाह हो जाता है। कभी कभी ज्वर के साथ साथ टाँगों पर या हाथों पर या फोतों पर सूजन भी आ जाती है, ज्वर के बाद यह सूजन अधिकांश पटक जाती है जो सूजन शेप रहती है वह दूसरी बार ज्वर आने पर और प्रदाह होने से बढ़ जाती है; अंत में वह भाग मोटा पड़ जाता है। कभी कभी फोड़े बन जाते हैं और इन फोड़ों के मवाद में मृत कीड़े मिलते हैं। भारत में आम तौर से टाँगें और फोते मोटे दिखाई देते हैं, स्त्रियों में भगोष्ठ मोटे हो जाते हैं।

चिकित्सा

अभी तक कोई औषधि नहीं मिली जो इस रोग में कुछ फायदा करे। कुछ औपधियों के प्रयोग से सूजन थोड़ी बहुत पटक जाती है और लहवों की संख्या भी कम हो जाती है।

बचने का उपाय

मच्छर से डरो और उसका सत्यानाश करने का यत्न करो (देखो मच्छर), जिन स्थानों में (संयुक्त प्रान्त का पूर्व भाग, बिहार, बंगाल, इत्यादि) यह रोग हो वहाँ बारहों मास मसहरी लगाकर सोना चाहिये।

श्लीपद और नपुंसकता

चित्रों से विदित है कि यह रोग पुरुष को (और स्त्री को भी) मैथुन के अयोग्य बना देता है। जिस स्त्री का पति इस रोग से
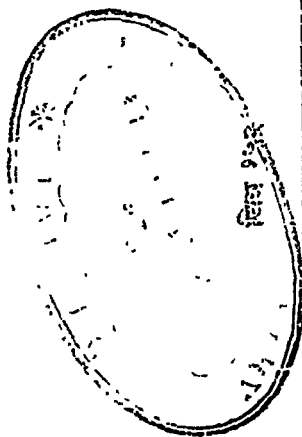
चित्र १५१

चित्र १५२

औपरेशन से पहले

औपरेशन के बाद

चित्र १६४
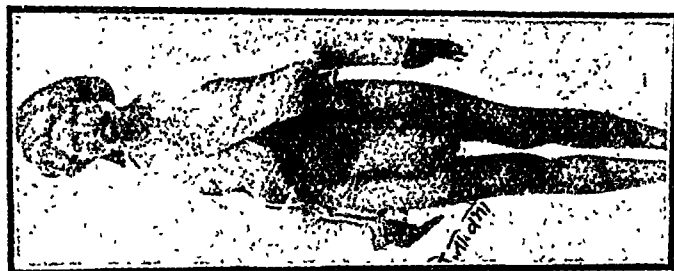
चित्र १६३ जल पर्य्याण्डिका
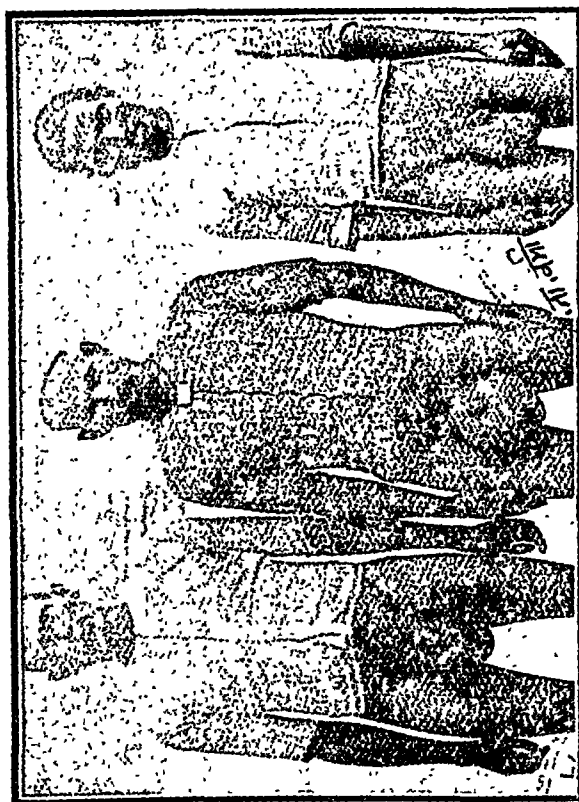
चित्र १५५ जल पर्य्याण्डिका

चित्र १५६

पीड़ित है उससे पूछिये कि वह अपने आपको कितना कर्महीन समझती है। ऑपरेशन (शल्य क्रिया द्वारा) से इस प्रकार की नपुंसकता दूर हो सकती है। शल्य क्रिया द्वारा बड़े बड़े फ़ोते भी छोटे किये जा सकते हैं चित्र १५१, १५२।

जल पर्य्याण्डिका (Hydrocele)

जल दोष

अण्ड (आंड) के ऊपर एक थैली होती है; उस थैली में पानी

भर जाने को अंग्रेज़ी में हाइड्रोसील कहते हैं; हमने उसका नाम जल पर्य्याण्डिका रक्खा है।

(पर्य्याण्डिका=अण्ड के ऊपर की थैली)। कभी कभी इस थैली में जल नहीं होता, दूधिया तरल रहता है (रस पर्य्याण्डिका); कभी कभी रक्त रहता है (रक्त पर्य्याण्डिका)। यहाँ पर हम दो चार बातें जल पर्य्याण्डिका के विषय में लिखेंगे।

यह गरम तर जलवायु का रोग है; संयुक्त प्रांत के पूर्वी भागों में (बस्ती, गोरखपुर की तरफ़) बंगाल, बिहार इत्यादि प्रान्तों में अकसरत होता है। बहुत लोगों का विचार है कि इस रोग का सम्बन्ध श्लीपद रोग से है; इस में कोई सन्देह नहीं कि जहाँ जहाँ श्लीपद रोग होता है वहाँ यह रोग भी होता है। हमारे विचार में इस रोग का जल से कोई सम्बन्ध है; संभव है कि जहाँ जहाँ यह रोग होता है वहां के जल में कोई चीज़ कम या अधिक मात्रा में पाई जाती हो या कोई विशेष कीटाणु हो। जाँच पड़ताल की आवश्यकता है। हमारी निजी सम्मति है (यह अनुमान है, कोई प्रमाण नहीं) कि जिस प्रकार आयोडीन की कमी से घेघा हो जाता है, उसी प्रकार किसी चीज़ की कमी से यह रोग भी हो जाता होगा।

इस रोग से कुछ दिनों पश्चात् पुरुष मैथुन करने के अयोग्य हो जाता है यह चित्रों से विदित है। शल्यविद्या द्वारा इस की चिकित्सा होती है और जिस को यह रोग हो वह उस का इलाज अवश्य करावे क्योंकि ऑपरेशन किंचित मात्र भी ख़तरनाक नहीं।

बचने का उपाय

(१) इस विचार से कि इस का श्लीपद और इस कारण क्युलेक्स और ऐडिस मच्छरों से सम्बन्ध है हमेशा मसहरी में सोओ।

(२) जिन स्थानों में यह रोग बहुत होता है, वहाँ हमेशा पानी को उबाल कर पिओ।

अध्याय १४

पिस्सू

यह कोई ⅛ इंच लम्बा (मच्छर से कोई चौथाई कद) नन्हीं सी मक्खी जैसा उड़ने वाला जानवर होता है। यह एक दम बहुत दूर एक और बड़ी दूरी तक नहीं उड़ सकता; शीघ्रता से स्थान बदलता फिरता है इस लिये इस को पकड़ना भी कठिन है। एक स्थान पर बैठा, शीघ्र फुदक कर दूसरे स्थान पर चला जाता है। रंग मटमैला होता है, पर (जो भाले के आकार के होते हैं) ऊपर को खड़े रहते हैं। स्पर्शनी और भेदनी दोनों लम्बी होती हैं। आँखें काली होती हैं। यदि आप पाखानों और दहलीज़ों की दीवारों और कोनों में खोज करें (गर्मी और वर्षा ऋतु में) तो छोटी छोटी मक्खियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर फुदक कर बैठती हुई दिखाई देंगी—ये पिस्सू ही होंगे। यदि आपको मसहरी में कोई खूब काटे और कोई मच्छर दिखाई न पड़े तो बड़े ग़ौर से मसहरी की छत और कोनों में खोज कीजिये, आपको मटमैले रंग के शीघ्र उड़ने वाले जो छोटे छोटे मक्खी जैसे कीड़े मिलें तो समझ जाइये कि ये ग़ालबन पिस्सू हैं।

नारी पिस्सू ही रक्त चूसती है। रक्त बिना चूसे वह गर्भ ही

चित्र १५७ पिस्सू की जीवनी—अंडा और लहर्वा

(वास्तविक परिमाण से बहुत बड़े)

अंडा

लहर्वा

By courtesy of Wing Commander H. E. Whittingham R.A. F.M.S.
from B. M. J.

४३८ चित्र १५८ कुप्पा और नवजात पिस्सू (वास्तविक परिमाण से बहुत बड़े)
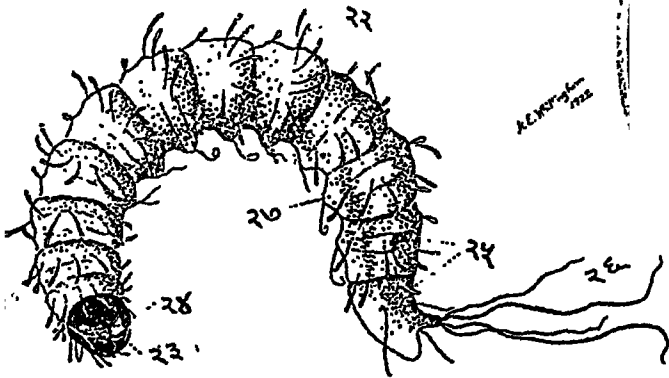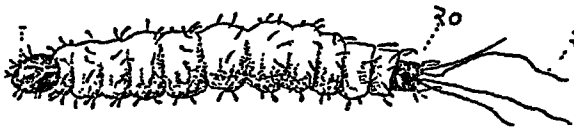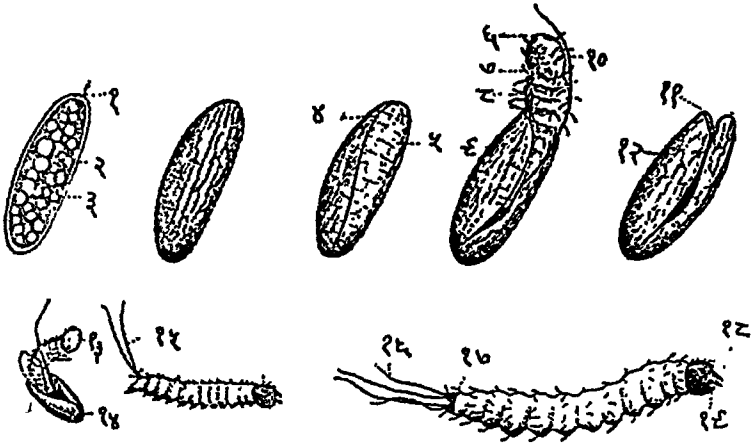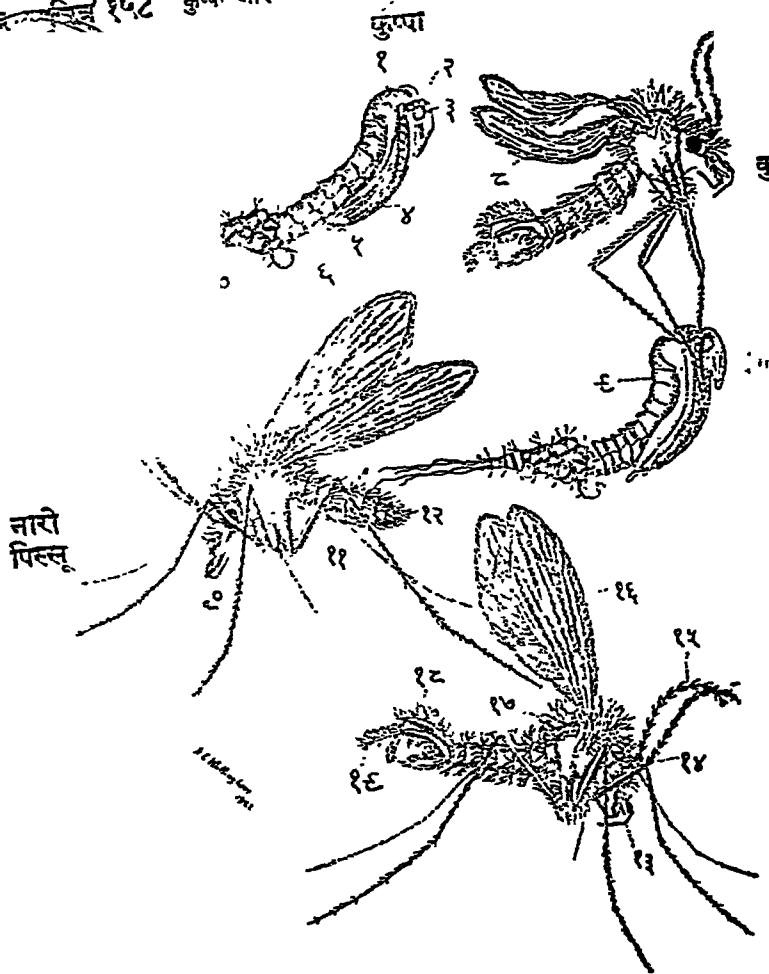
By courtesy of Wing Commander H. E. Whittingham R.A. F.M.S. from B.I

धारण न करेगी। रक्त उस के अंडों के पोषण के लिये अत्यावश्यक वस्तु है। मनुष्य का रक्त न मिले तो और जानवरों का पीलेगी।

पिस्सू की संक्षिप्त जीवनी (चित्र १५७, १५८)

नारी (पिस्सू) मैथुन से पहले रक्त चूसती है। मैथुन अक्सर सायंकाल होता है। प्रत्येक नारी (पिस्सू) कोई १५-२६ अंडे देती है। ९-१० दिन में अंडे से लहर्वा निकलता है। लहर्वा कई चोलियाँ बदलता है। लहर्वे से २४ दिन में कुप्पा बनता है। कुप्पे से फिर ९-१० दिन में पिस्सू निकलता है। पिस्सू की आयु कोई १४ दिन की होती है। (देखो चित्र १५७, १५८)।

पिस्सू के रहने और ब्याहने के स्थान

पिस्सू को तीन चीज़ें चाहिये—तरी, अँधेरा और छिपने की जगह। पिस्सू घर के आस पास के कूड़े, कर्कट, टूटी फूटी दीवारों में रहते हैं और वहीं अंडे देते हैं।

बचने के उपाय

घर के आस पास कूड़ा कर्कट, ईंट रोड़ा, खपरेल, पत्थर, झाड़ी, घास इत्यादि न रक्खो। स्थान साफ रक्खो। कपूर की तेज़ गंध से वे दूर भागते हैं। हमेशा मसहरी में सोओ। रात को हाथ पैरों पर यह मरहम मल लिया करो—इस की गंध से भी वे दूर रहते हैं:—

Aniseed oil	(सौंफ का तेल)	२ बूँद
Eucalyptus oil	(यूकालिप्टस् तेल)	३ बूँद
Turpentine oil	(तारपीन का तेल)	३ बूँद
Lanoline	(लैनोलीन)	एक औंस

पिस्सू द्वारा ये रोग फैलते हैं

१. ओरियन्टल सोर (Oriental sore) जिस के बहुत से नाम हैं—दिल्ली का ज़ख़्म, बग़दादी ज़ख़्म, अलेप्पो का ज़ख़्म इत्यादि।

२. डेंगू और डेंगू से मिलता जुलता तीन दिन का ज्वर।

३. संभव है (निश्चित नहीं है) कि काला अज़ार भी एक पिस्सू द्वारा फैलता हो।

पिस्सू की कई उपजातियाँ हैं, कोई उपजाति एक रोग फैलाती है, कोई दूसरा।

१. ओरियन्टल सोर (बग़दादी या दिल्ली का ज़ख़्म) जिन जिन स्थानों में यह ज़ख़्म होता है उन्हीं स्थानों के नामों से लोगों ने उसे पुकारा है। भारतवर्ष में पंजाब की तरफ़ यह ज़ख़्म बहुत पाया जाता है। इस ज़ख़्म का रोगाणु एक विशेष आदि प्राणि है जो ज़ख़्मों में पाया जाता है। यह रोगाणु उसी प्रकार का है जैसा कि काला अज़ार रोग का; याद रखने की बात यह है कि जहाँ जहाँ काला अज़ार खूब होता है (जैसे बंगाल में) वहाँ यह ज़ख़्म बहुत कम होता है; और विपरीत इस के जहाँ यह ज़ख़्म बहुत होता है (जैसे पंजाब में) वहाँ काला अज़ार बहुत कम (या नहीं) होता है।

जाँच से पता लगा है कि ये रोगाणु मलेरियाणु की भाँति अपने जीवन का कुछ भाग एक विशेष पिस्सू में व्यतीत करते हैं और जब कुछ जीवन व्यतीत हो जाता है तब उस विषैले पिस्सू के काटने से ये रोगाणु त्वचा में पहुँच कर ज़ख़्म बनाते हैं।

जहाँ विषैला पिस्सू काटता है वहाँ पहले एक दाफड़ सा पड़ जाता है; तीन चार मास में यह दाफड़ फूट जाता है और वहाँ एक ज़ख़्म

चित्र १५९ ओरियन्टल सोर के रोगाणु (अणु वीक्षण द्वारा देखे गये)

१=सेल के भीतर २,३,४, अलग अलग पड़े हुए

By permission of His Majesty's Stationery Office, from Memoranda of Diseases of Tropical areas

बन जाता है। ये ज़ख़्म शरीर के उन भागों पर जो बहुधा ढके नहीं रहते जैसे चेहरा, हाथ, पैर और जहाँ पिस्सू सुगमता से काट सकते हैं होते हैं। अकसर एक से अधिक ज़ख़्म भी एक व्यक्ति के होते हैं। मामूली औषधियों से कोई फ़ायदा नहीं होता।

चिकित्सा

गुंठोमनी के यौगिक (जैसे यूरिया स्टिबेमीन; न्युस्टीबोसान); इमेटीन; बर्बेरीन सलफेट (रसौत से बनता है) इस के लिये अमोघौषधियाँ हैं। कर्बनद्विओषिद् का बरफ इस ज़ख़्म को जलाने के लिये काम में लाया जाता है।

बचने का उपाय

बचना कठिन है। पिस्सू से बचो। रात को मसहरी लगाओ। जहाँ पिस्सू काटे वहाँ तुरंत टिंकचर आयोडीन लगा दो।

२. डेंगू

डेंगू का वर्णन हम पीछे कर आये हैं। पिस्सू द्वारा भी डेंगू फैलता है।

३. तीन दिन का ज्वर; सैंडफ्लाई फीवर*

अभी इस रोग के रोगाणु का पता नहीं लगा; संभव है इस का रोगाणु वही हो या उसी प्रकार का हो जैसे कि डेंगू का होता है। पिस्सू को विष किसी रोगी से प्राप्त होता है।

७-८ दिन तक ये रोगाणु पिस्सू के शरीर में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। यदि अब यह विषैला पिस्सू किसी दूसरे व्यक्ति को काटे तो काटने के २-७ दिन पीछे उस व्यक्ति को रोग हो जाता है। पहले सिर दर्द होता है; कुछ सर्दी लगती है। चेहरा लाल हो जाता है; आँखें सुर्ख हो जाती हैं; कमर और शाखाओं में दर्द होता है। नब्ज़ की चाल मंद रहती है; बहुत बेचैनी रहती है और नींद कम आती है। ज्वर कोई तीन दिन रहता है, कभी कभी एक ही दिन; कभी कभी उतरने के छठे सातवें दिन फिर एक दिन के लिये ज्वर आ जाता है।

बचने के उपाय

पिस्सू को घर में न आने दो और आवें तो मारो। कमरे में

* Sandfly fever.

फ्लिट छिड़को या १% फोर्मेलीन फुव्वारे से छिड़को); अपने मकान के पास सफाई रक्खो।

४. काला अज़ार

यह रोग अधिकतर विहार, वंगाल और आसाम में और थोड़ा थोड़ा मद्रास और संयुक्त प्रांत के पूर्वी भाग में पाया जाता है। रोगाणु उसी प्रकार का होता है जैसा कि 'ओरियन्टल सोर' का (चित्र १५९); वह एक आदि प्राणि है।

मुख्य लक्षण

रोग आम तौर से धीरे धीरे वढ़ता है, कभी कभी एक दम आरंभ हो जाता है। ज्वर आता है जो कभी कभी हफ़्तों वना रहता है; यह ज्वर अकसर २४ घन्टे में दो वार घटता और वढ़ता है। तिल्ली और जिगर दोनों वढ़ जाते हैं; तिल्ली वहुत वड़ी हो जाती है जिस के कारण पेट वड़ा हो जाता है। दिन-प-दिन कमज़ोरी वढ़ती जाती है और रोगी वहुत दुवला हो जाता है। पेट वड़ा हो जाता है (जिगर और तिल्ली के वढ़ने से) और शेष धड़ पतला हो जाता है। ज्वर पर कुइनीन का कोई असर नहीं होता, कभी कभी टायफौयड् का धोखा हो जाता है; कभी कभी ज्वर मलेरिया की तरह घटता वढ़ता है। ज्यों ज्यों रोग पुराना होता जाता है; त्वचा का रंग स्याही मायल होता जाता है (इसी से नाम पड़ा है)। इस रोग में नकसीर फूटना और जगह जगह से रक्त वहना भी अकसर होता है। अंत में रोगी को पेचिश भी हो जाती है या न्युमोनिया हो जाता है और मुँह भी सड़ जाता है; कभी कभी क्षय रोग आ दवाता है।

रोग का परिणाम

यदि ठीक समय पर यथोचित चिकित्सा न हो तो रोगी की मृत्यु हो जाती है।

रोगाणु कहाँ रहते हैं

मलेरिया के रोगाणु लाल कणों पर आक्रमण करते हैं; काला अज़ार के रोगाणु श्वेत कणों पर आक्रमण करते हैं और उन का नाश करते हैं। हमारे रक्त में प्रति घन सहस्रांशमीटर रक्त में कोई ७-१० हज़ार श्वेताणु पाये जाते हैं; इस रोग में उन की संख्या घट कर ३-२ और कभी कभी १ हज़ार रह जाती है। हमारी रोग नाशक शक्ति श्वेताणुओं पर बहुत कुछ निर्भर है; इन के कम हो जाने के कारण काला अज़ार के रोगी को और रोग जैसे पेचिश, न्युमोनिया, क्षय रोग, मुँह का सड़ना इत्यादि शीघ्र दबा लेते हैं और उसकी मृत्यु का कारण होते हैं।

रोगाणु शरीर में कैसे पहुँचते हैं

यह अभी निश्चित रूप से मालूम नहीं; शायद एक जाति के पिस्सू की सहायता से। कुछ दिनों पहले वैज्ञानिकों का ख़्याल था कि इस रोग के रोगाणु खटमल के काटने से पहुँचते हैं।

चिकित्सा

कुछ वर्षों पहले इस रोग के लिये कोई औषधि न थी और भारतवर्ष में इससे लाखों मृत्यु होती थीं। हाल में एन्टीमनी के यौगिक (एन्टीमनी टार्टरेट, यूरिया स्टिबेमीन, नव स्टीबोसान इत्यादि) इस रोग के लिए अमोघौषधियाँ मालूम हुई हैं; यदि ठीक समय पर इलाज किया जावे तो रोगी के अच्छा होने की बहुत आशा करनी चाहिये।

बचने के उपाय

पिस्सू और (खटमल ?) से वचो ; रोगी का इलाज करो। हकीमों, वैद्यों, होमियोपैथों के पास इस रोग की कोई औषधि नहीं, इसलिये समय नष्ट न करो, फौरन डाक्टरी इलाज कराओ। औषधि भी मंहगी नहीं है। रोगी के पाख़ाने में भी रोगाणु पाये जाते हैं, इसलिये पाख़ाने को जला देना चाहिये, संभव है मक्खी या और कीड़े भी इस रोग के फैलाने में सहायता देते हों।

खटमल

खटमल का किसी रोग से सम्बन्ध है या नहीं यह अभी तक निश्चित रूप से मालूम नहीं हुआ। कुछ लोगों का ख़याल है कि शायद इसका काला अज़ार, प्लेग, हेर फेर का ज्वर, टाइफस और अन्थ्रेक्स से सम्बन्ध हो। किसी रोग से सम्बन्ध न भी हो तो रात्रि को नींद न आने देना और शरीर में खुजली पैदा करना क्या कुछ कम बात है। नर और नारी दोनों ही ख़ून चूसते हैं। दिन को फर्श, दीवारों की संधों और असवाब और चारपाई की चूलों और कपड़ों की तहों में छिपे रहते हैं, रात को मनुष्य की गन्ध सूँघते ही अपने छिपने के स्थानों से बाहर आ जाते हैं। वे एक घर से दूसरे घर में भी चले जाते हैं और ९ मास तक भूखे रह सकते हैं। गर्मी की अपेक्षा वे सर्दी को अधिक सह सकते हैं।

संक्षिप्त जीवनी

एक नारी ८१ दिन में १११ अंडे देती देखी गयी है। अंडे की लम्बाई कोई $\frac{1}{25}$ इंच होती है। अंडे से ४-९ दिन में लहर्वा निकलता है जो खटमल की ही शकल का होता है। लहर्वा खून चूसता

चित्र १६० खटमल (पीठ)

चित्र १६१ खटमल उदर तल
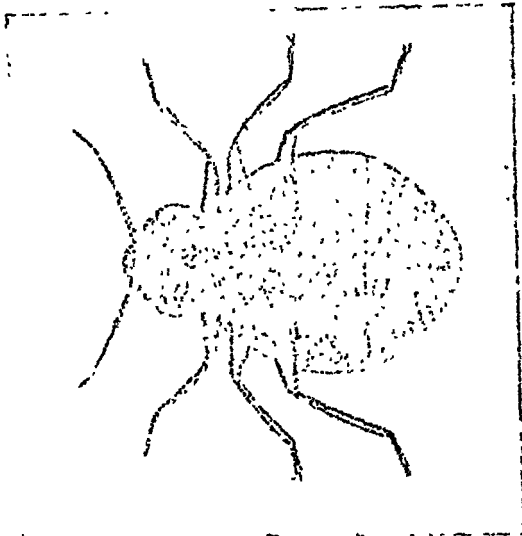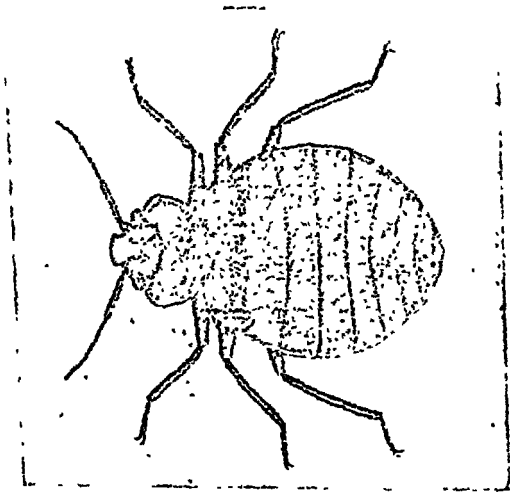
By courtesy of the Trustees of British Museum from "The Bed Bug"

है। यह लहर्वा कई चोलियाँ वदल कर खटमल वन जाता है। अंडे से जवान खटमल वनने में ६-७ सप्ताह लगते हैं। हमने देखा है कि ताड़ के वृक्ष (जिससे ताड़ी निकलती है) का खटमलों से विशेष सम्बन्ध है। ताड़ के वृक्ष पर कभी कभी लाखों खटमल रहते हैं; रात को वे उतर आते हैं और आस पास के घरों में या अस्पताल में घुस जाते हैं, दिन में फिर ताड़ पर चढ़ जाते हैं।

मारने की विधियाँ

१. मिट्टी के तेल या पेट्रोल से खटमल मर जाते हैं (ये दोनों चीज़ें शीघ्र जलने वाली हैं—इस वात का ध्यान रहना चाहिये)

२. इस घोल को संधों में टपकाने से खटमल शीघ्र वाहर आ जाते हैं—

स्पिरिट अमोनिया (Spirit ammonia) ५ भाग
तारपीन का तेल (Oil turpentine) १ भाग

३. पानी की भाप से खटमल और अंडे दोनों मर जाते हैं।

४. चारपाइयों की संधों और चूलों में उवलता हुआ पानी डालो।

५. ४ पौंड गंधक का धुआँ १००० घन फुट स्थान के लिये काफी है। खटमल मर जावेंगे।

६. फर्शों को गरम जल और साबुन से ख़ूव रगड़ो और फिर सुखा कर पिसी हुई नैफथेलीन वुरक दो।

अध्याय १५

चूहा

याद रक्खो कि चूहा और चुहिया अलग अलग जातियाँ हैं। लोग आम तौर से यह समझते हैं चुहिया चूहे के बच्चे होते हैं अर्थात् चुहिया बड़ी होकर चूहा बन जाती है—ऐसा नहीं। चुहिया को अंगरेज़ी में माउस (Mouse) कहते हैं; चूहे को रैट (Rat)। वैसे तो चूहा और चुहिया दोनों ही माल असबाब और भोजन को हानि पहुँचाते हैं, चूहे का प्लेग से एक विशेष सम्बन्ध है; हम यहाँ पर चूहे के सम्बन्ध में लिखते हैं।

ब्रिटेन (विलायत) में चूहा चुहियों को मारने के लिये पार्लियामेंट ने सन् १९१९ में Rats Mice destruction Act 1919 (चूहे, चुहियों के मारने का क़ानून) बनाया; भारतवर्ष में ऐसा कोई क़ानून नहीं है। वहाँ जो व्यक्ति क़ानून का उल्लंघन करता है उसको सरकार से दण्ड मिल सकता है; भारत में चूहे को पालना या उसको न मारना बहुत से लोग स्वर्ग की सीढ़ी पर चढ़ना समझते हैं। कल्पित स्वर्ग मिलेगा या नहीं यह तो कोई नहीं जानता; परन्तु उसकी बदौलत दुःख तो लोग अवश्य भोगते हैं यह बात प्रत्यक्ष है।

चूहे की आदतें

चूहे कई प्रकार के होते हैं:—

१. भूरा चूहा जो नालियों और मोरियों में आता जाता है; वह तैराक भी होता है और भोजन की खोज में वह नदी पार करके भी चला जाता है। प्यास से पीड़ित होकर भी वह बहुत दूर निकल जाता है।

२. काला चूहा; यह ऊपर चढ़ने में बड़ा चतुर होता है; नलों और खम्बों द्वारा चढ़ कर छतों पर पहुँच जाता है और वहाँ घर बना लेता है।

चूहा अत्यन्त चतुर, मक्कार और भयानक जानवर है; पेट भरने के लिये सब कुछ कर सकता है; कभी कभी अपने भाई बन्धों को भी खा जाता है; पकड़ने पर वह कभी कभी मनुष्य पर भी आक्रमण कर डालता है।

चूहे की सन्तान

चूहे बारह मास ब्याहते रहते हैं। एक समय में ५-१४ बच्चे देते हैं। गर्भ २१ दिन रहता है। बच्चा जनते ही नारी (चूहा) दूसरा गर्भ धारण करने के लिये तैय्यार रहती है। नारी के १२ थन होते हैं और वह साल में ५-६ बार ब्याह सकती है। ३½—४ मास की आयु में ब्याहना आरंभ कर देती है। हिसाब लगाया गया है कि एक जोड़े से साल भर में १३०, दो साल में ५८५८ और तीन साल में २५३७६२, चार साल में १०९३४६९०; दस साल में ४८,३१९,६९८,८४३,०३०,३४४,७२० चूहे बन सकते हैं। यह मान लिया गया है कि प्रत्येक नारी चूहे के सन्तान होती है।

चूहे से हानि

जो चीज़ खाने योग्य है वह चूहे से नहीं बचती, अनाज, तरकारी इत्यादि। कभी कभी चूहे, मुर्गी, बत्तख, खरगोश के बच्चों को मार कर खा जाते हैं और अंडों को चूस जाते हैं। खाने की चीज़ों के अतिरिक्त चूहे कपड़ा, कागज़, लकड़ी के सामान, किताब और दस्तावेज़ों का नाश करते हैं। मकानों को खोद डालते हैं; मकानों के शहतीरों को काट कर ज्यों को भी गिरा देते हैं; किवाड़ों को काट डालते हैं; यही नहीं चूहे के पीछे पीछे सांप भी घर में घुस जाता है। कहा जाता है कि सांप घर नहीं बनाता वह चूहे इत्यादि के बिलों में रहने लगता है। अनुमान किया गया है कि विलायत में एक चूहा प्रति दिन एक कौड़ी का और एक चुहिया प्रति दिन ½ आने का नुकसान करती है। विलायत में केवल भोजन ही का नुकसान १० लाख पौंड (आज कल १ करोड़ ४० लाख रु० के बराबर) का प्रति वर्ष होता है। भारतवर्ष में चूहे की बदौलत इस से कई सौ गुना नुकसान होता होगा। अनुमान है कि अमरीका में चूहे १८२५००००० डॉलर (डॉलर=३ रु० लगभग) का नुकसान प्रति वर्ष करते हैं।

चूहों की संख्या

चूहों की संख्या कम से कम उतनी होती है जितनी कि मनुष्यों की; चुहियाँ चूहों से दो गुनी होती हैं।

चूहा और रोग

चूहे का इन रोगों से सम्बन्ध है:—

१. प्लेग (ताऊन, महामारी)

२. एक प्रकार का पाण्डु रोग (पीलिया या यर्कां)

३. चूहे काटे का ज्वर
४. एक कृमि रोग (ट्रिकिनोसिस= Trichinosis)
५. संभव है (निश्चित नहीं) कि कुष्ट से कोई सम्बन्ध हो

चूहे के शत्रु

कुत्ता और बिल्ली चूहे के शत्रु हैं और उस को खा जाते हैं। परन्तु ये खुद रोग फैला सकते हैं; इसके अतिरिक्त बिल्ली और कुत्ते और भी नुक़सान कर सकते हैं। सांप भी चूहे का बड़ा शत्रु है।

चूहे कम करने की विधियाँ

१. जो लोग (धन के कारण) पक्के मकान बना सकते हैं वे फ़र्श और फ़र्श के पास की दो फ़ुट दीवारें कंकरीट या पत्थर या सीमेंट की बनावें ताकि चूहे उन को खोद न सकें।

२. अनाज बजाय मिट्टी के घड़ों और मटकों में रखने के जहाँ तक हो सके टीन के डिब्बों में जिन में ढकना लगा हो रक्खा जावे। पकाई हुई चीजें जाली दार अलमारियों में रखनी चाहियें।

३. हर जगह और हर कमरे में खाने पीने की चीजें न रक्खो।

४. अमीरों को चाहिये कि खपरेल का और फूस का प्रयोग न करें।

५. याद रक्खो कि गणेश जी ने चूहे को अपने नीचे दबा कर रक्खा; आप को भी चाहिये कि उस व्यक्ति को सिर न उठाने दो अर्थात् उस की ताक़त न बढ़ने दो, उस की संख्या न बढ़ने दो क्योंकि वह संख्या और बल बढ़ने पर आप को अत्यन्त हानि पहुँचा सकता है। इस के निमित्त उस को पकड़ने और मारने का यत्न करो:—

(अ) चूहें पकड़ने के कई प्रकार के पिंजरे और यंत्र बाज़ार में बिकते हैं। एक यंत्र द्वारा चूहे को फांसी लग जाती है। पिंजरों में

पकड़ कर उन को किसी न किसी विधि से मरवादो (हौज़ या दरिया में डुबा कर; चील या कुत्ते को दे कर, ईंट से मार कर)

चित्र १६२ इस चूहे ने हमारा बहुत नुक़सान किया। ३ दिन के बाद वह इस जेल खाने के तारों को चौड़ा कर के निकल भागा; फिर गिरफ़्तार किया गया; फिर ४ दिन बाद आत्महत्या कर के मर गया।
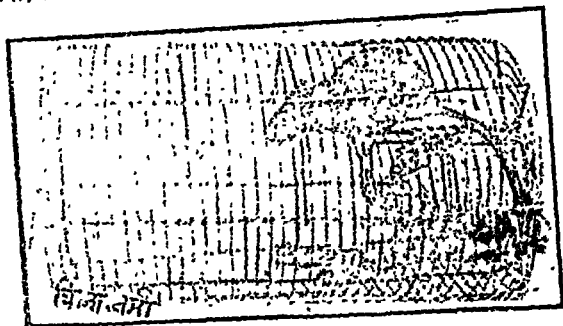
(आ) चूहे मारने की बहुत सी दवाएँ बाज़ार में बिकती हैं। इन सभों में किसी न किसी प्रकार के ज़हर होते हैं—जैसे कुचले का सत, संखिया, फौस्फोरस, स्किल, प्लास्टर ओव पेरिस, बेरियम कार्बोनेट। ये चीज़ें आटे, शक्कर, सौंफ के तेल, जीरा इत्यादि में मिला कर चूहों के मारने के लिये काम में लाई जाती हैं।

कुछ नुसख़े यहाँ दिये जाते हैं—*

१.	आटा	३ भाग तोल कर
	बेरियम कार्बोनेट	१ भाग " "
२.	आटा	२ भाग " "

*List of Poisons issued by the Ministry of Agriculture (Great Britain), Hogarth's The Rat.

	वेरियम कार्बोनेट	१ भाग तोल कर	
	शकर	१ भाग	” ”
३.	आटा	२ भाग	” ”
	वेरियम कार्बोनेट	५ भाग	” ”
	पनीर	१० भाग	” ”
	ग्लीसरीन.	३ भाग	” ”

इन चीज़ों को खूब मिलाओ और पानी द्वारा उन को मांड लो। फिर एक वेलन द्वारा रोटी के रूप में फैला लो। प्रति १ पौंड वैरियम कार्बोनेट १४०० टिकियाँ काट लो और फिर इन को आवे में हलके हलके सेंक लो। प्रति टिकिया के ऊपर ज़रा सा सौंफ का तेल मिला हुआ आटा बुरक दो और रात्रि के समय जहाँ चूहे आते हों रख दो। ध्यान रहे कि छोटे बच्चों के हाथ में ये टिकयाएं न पड़ जावें। प्रातः काल जितनी टिकियाँ बचें उन को उठा कर अलग रख लो और रात में फिर रख दो।

बेरियम कार्बोनेट

पिसा हुआ होना चाहिये। ऊपर लिखी हुई विधियों के अतिरिक्त इस चीज़ को और तरह भी काम में ला सकते हैं। फलों और तरकारियों के टुकड़ों पर इस को बुरक दो और खूब अच्छी तरह मल दो और फिर इन टुकड़ों को बिलों के पास रख दो। ३ ग्रेन वेरियम कार्बोनेट और चार ग्रेन मँड़ा हुआ आटे की गोलियाँ बनवाओ और इन को चूहे के बिलों के पास या फर्श पर रख दो। ध्यान रहे कि बच्चे न खा जावें।

वेरियम कर्बोनेट के ज़हर की चिकित्सा

यदि कोई बच्चा खा जावे तो उस को राई या नमक को पानी में

डाल कर क़ै कराओ;* या मुँह में अंगुली डाल कर क़ै कराओ। क़ै के बाद उस को मगनेशिया का जुलाब दो।

६. चूहों के बिलों में पानी भर दो तो वे या तो भीतर ही मर जावेंगे या बाहर निकल आवेंगे। बाहर निकले हुए चूहों को कुत्ते और बिल्ली के हवाले करो। कच्चे मकानों में यह विधि काम में नहीं आ सकती। जहाँ सीमेंट या कंकरीट का फ़र्श है वहाँ यह विधि ख़ूब काम देगी।

७. बिलों में ज़हरीली गैसों के पहुँचाने से भी चूहे मारे जाते हैं।

फुदकु (Flea)

यदि आप किसी चूहे या चुहिया को पकड़ लें और उसके बालों में कंघी करें या उसको मार डालें तो उसके बालों में से नन्हें नन्हें (कोई $\frac{1}{10}$ इंच लम्बे) कुछ कुछ स्याही मायल लाल कीड़े फुदकते हुए देख पड़ेंगे। ये कीड़े रेंगते नहीं और उड़ते भी नहीं इनके पर नहीं होते; वे एक स्थान से दूसरे स्थान को फुदक फुदक कर जाते हैं; हमने इसी कारण उनका नाम फुदकु रक्खा है। ये आम तौर से कोई ४ इंच ऊँचा फुदक सकते हैं।

फुदकु की कई उपजातियाँ हैं। प्रत्येक उपजाति विशेष प्राणियों से प्रेम रखती है, कोई चूहे से; कोई चुहिया से, कोई गिलहरी से और कोई मनुष्य से। फुदकु पहलू से चपटे होते हैं; मुँह में ख़ून चूसने वाले अंग होते हैं। छः टाँगें होती हैं इनके द्वारा वह चिपट जाता है और फुदकता है। जब वह ख़ून चूसता है (नर और नारी दोनों ही

---

* $1\frac{1}{4}$ तोला नमक या $2\frac{1}{2}$ तोला राई एक गिलास गुनगुने पानी में

चित्र १६३ फुदकु (वास्तविक परिमाण से २० गुना बड़ा)
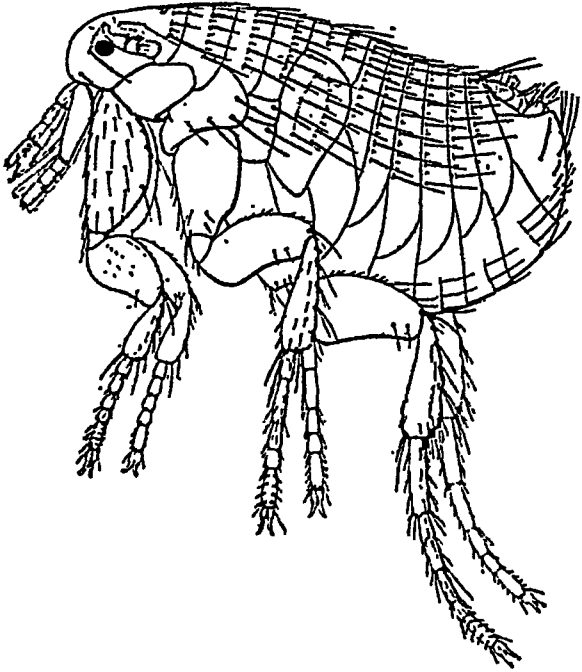
चित्र १६४ लहर्वा
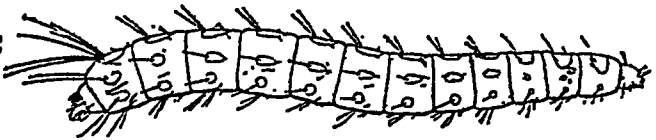
वास्तविक परिमाण से १६ गुना बड़ा

From "The Fleas" by courtesy of the Trustees of British Museum

खून चूसते हैं) तो त्वचा में एक दाफड़ पड़ जाता है जिसमें बड़ी खुजली मचती है ।

फुदकु की जीवनी

अंडे वालों में रहते हैं। नारी अंडे देती है। अंडे से २—४ दिन
में लहर्वा निकलता है जिसके न आँखें होती हैं न टाँगें; ये लहर्वे
श्वेत और वालों वाले कीड़े होते हैं। जब जानवर चलता फिरता है,
कीड़े भूमि पर गिर पड़ते हैं। लहर्वा फर्श की धूल कूड़े में रहता है
या जहाँ चूहा रहता है वहाँ रहता है। लहर्वा दो चोली वदलता है
और दो सप्ताह में उससे कुप्पा वन जाता है जिससे कोई १५ दिन
में फुदकु निकलता है।

फुदकु को दिन की रोशनी अच्छी नहीं मालूम होती; उनको
गर्मी पसंद है। यदि उनको छेड़ा जावे तो वे अपनी टाँगों को सुकोड़
लेते हैं और ऐसा मालूम होता है कि वे मर गये। आम तौर से
वे ४ इंच ऊँचा कूद सकते हैं, कहा जाता है कि मनुष्य पर रहने
वाला फुदकु ४ से इंच अधिक कभी कभी पौने आठ इंच ऊँचा और
१२ इंच लम्बा कूद सकता है।

फुदकु से बचने के उपाय

१. चूहों, चुहियों को घर में न रहने दो।

२. सोने बैठने के कमरों में बिल्ली, कुत्तों, चूहों इत्यादि को न
आने दो।

३. पालतू कुत्ते और विल्लियों को साफ रक्खो। उनको कार्बोलिक
साबुन से स्नान कराओ। उनके वालों में पिसी हुई नैफथेलीन मलो।

४. चूहे के विलों में या फर्शों की संधों में नैफथेलीन को पेट्रोल
में घोलकर छिड़को। इससे अंडे, लहर्वे और जवान फुदकु सभी मर
जावेंगे। यदि किसी मकान में फुदकु वहुत हों तो वहाँ फर्श पर
नैफथेलीन वुरक दो और २४ घन्टे वाद वहाँ सफाई करो।

५. घर में सफाई रक्खो। इस घोल के छिड़कने से मकान फुदकु रहित हो जाता है :—

३ भाग कोमल साबुन को १५ भाग गरम पानी में घोलो। फिर इस गरम साबुन के घोल में ७०-१०० भाग मिट्टी का तेल धीरे धीरे मिलाओ और खूब चलाते जाओ। जल्दी न करो। यह मिश्रण दूधिया सा हो जाना चाहिये और तेल न दिखाई पड़ना चाहिये। अब इस मिश्रण को पानी मिला कर (१ भाग मिश्रण २० भाग पानी) फर्श और जानवरों पर छिड़को, फुदकु शीघ्र मर जावेंगे।

क़लई करते समय यदि कलई में फिटकरी मिला ली जावे तो भी फुदकु नहीं रहने पाते।

६. नीम की बत्ती जलाने से भी फुदकु मर जाते हैं :—

पोटाश क्लोरस	२ ड्राम	(८ माशे)
पोटाश नाइट्रास	१½ ड्राम	(६ माशे)
गंधक	२ ड्राम	(८ माशे)

इन सब को अलग अलग पीसो और फिर इन को मिला लो और इस मिश्रण में ५ ड्राम (२० माशे) कड़ुवा तेल या रेंडी का तेल मिलाओ। फिर इस में १ ड्राम (४ माशे) पिसी हुई लाल मिर्च और मुट्ठी भर नीम की सूखी पत्तियों का चूरा मिला दो। कपड़े की ९ इंच लम्बी बत्ती बनाओ और इस बत्ती को शोरे के घोल में भिगो कर सुखा लो। इस सूखी बत्ती पर उपरोक्त मसाला लगा कर उसको सुलगा कर चूहे के बिल में रख दो और चूहे के बिल को बाहर से बंद कर दो।

७. सूर्य की कड़ी धूप भी फुदकु को मार डालती है। बिस्तर और कपड़ों को धूप में ३-४ घन्टे सुखाओ।

१. प्लेग* (ताऊन, महामारी)

वास्तव में प्लेग चूहों, गिलहरी इत्यादि का रोग है जो मनुष्य को उन के साथ रहने के कारण लग जाता है। जब कहीं प्लेग फैलता है तो मनुष्यों में वबा फैलने से कुछ समय पहले—अक्सर २-३ सप्ताह-पहले चूहों में वबा फैल जाती है जिस के कारण चूहे मरने लगते हैं। जब घर में बिना मारे चूहे मरने लगें तो पहला ख़्याल प्लेग का होना चाहिये।

प्लेगाणु

प्लेग हमारे शरीर में एक विशेष कीटाणु के प्रवेश करने से होता है जिसे प्लेगाणु या महामारियाणु कहते हैं। आम तौर से ये कीटाणु हमारे शरीर में एक विषैले फुदकु के काटने से पहुँचते हैं; फुप्फुसीय प्लेग के रोगाणु रोगी के बलग़म में रहते हैं और वह दूषित वायु द्वारा जिसमें रोगी के खाँसने से बलग़म के ज़र्रे मिल जाते हैं, होता है।

चूहे से सम्बन्ध

फुदकु चूहे पर रहते हैं। जब ज़हरीला फुदकु चूहे को काटता है तो उस को रोग हो जाता है। जब चूहा प्लेग से मर जाता है तो उस का शरीर ठंढा होने लगता है; पिस्सु उस के बालों में से निकल आते हैं और अन्य चूहों के बालों में घुस जाते हैं और उन को काटते हैं और चूहों में वबा फैल जाती है। जब चूहे कम हो जाते हैं तो फुदकु अन्य जानवरों को भी काटते हैं—उन को तो खून चाहिये।

---

*भारतवर्ष में सन् १८९६ से १९११ तक ७० लाख मृत्यु प्लेग से हुई है।

चित्र १६४
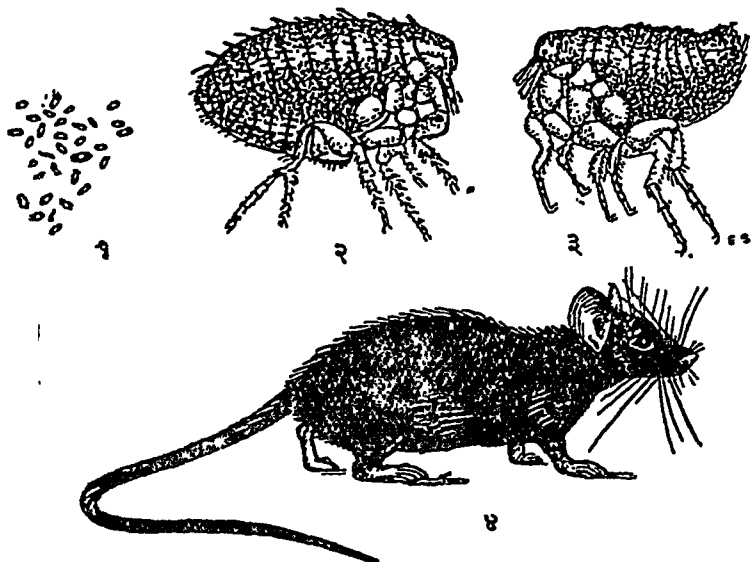
काला चूहा

By courtesy of Wellcome Bureau of Scientific Research from "Fight against Infection"

यदि मनुष्य मिल गया तो कौन बुरा। जब मनुष्य को विषैला पिस्सू काटता है तो उसे रोग उत्पन्न हो जाता है। भूरे और काले दोनों प्रकार के चूहों का प्लेग से सम्बन्ध है; काला चूहा मनुष्य के साथ साथ रहता है इसलिये प्लेग का भी उस से अधिक सम्बन्ध है।

चूहे के अतिरिक्त अन्य जानवरों का प्लेग से सम्बन्ध

चूहे के अतिरिक्त, प्लेग चुहिया; गिलहरी, गिनीपिग, वन्दरों,

गधों और ऊँट को भी होता है। गाय, बैल, सुअर, चिड़िया को नहीं होता। अन्य मुल्कों में और कई जानवर हैं जिन को प्लेग होता है और जिन के द्वारा प्लेग मनुष्य जाति में फैलता है।

प्लेग कई प्रकार का होता है

चार प्रकार का प्लेग माना जाता है—

१. गिल्टी वाला प्लेग

२. बिना गिल्टी का जिस में समस्त शरीर में ज़हर फैल जाता है।

३. प्लेग न्युमोनिया

४. त्वचा में ज़ख्म हो जाता है।

गिल्टी वाला प्लेग

हमारे शरीर में जगह जगह लसीका ग्रन्थियाँ हैं; इन का काम विष और रोगाणुओं को शेष शरीर में जाने से रोक लेना है। हाथ या पैर की अंगुली में या टांगों या हाथों पर फोड़ा फुन्सी होने से बग़ल या जंघासे में गिल्टियाँ निकल आती हैं ये सभी जानते हैं। जब ज़हरीला फुदकु काटता है तो उस का विष (प्लेगाणु) लसीका वाहिनियों द्वारा लसीका ग्रन्थियों में पहुँचता है। इस विष के कारण इन ग्रन्थियों का प्रदाह हो जाता है। फुदकु ज़मीन से ४-५ इंच से अधिक नहीं कूद सकता; इस कारण वह पैरों पर आसानी से काट सकता है; पैरों पर काटने के कारण गिल्टियाँ अकसर जंघासे में निकलती है (६०-७०%) भारतवर्ष में ग़रीब आदमी को चारपाई प्राप्य नहीं है, वे लोग बहुधा भूमि पर सोते हैं, इस कारण फुदकु को हाथों पर काटने का भी मौक़ा मिलता है जिस से गिल्टी बग़ल में निकल आती है (१५-२०%)। जमीन पर सोने वालों को फुदकु ग्रीवा (गरदन) में भी काट सकता है. तब गिल्टी गरदन में निकलती है (१०%)।

इन सभों में सब से अधिक संकट मय गर्दन की गिल्टी, उस से कम बग़ल की और सब से कम जंघासे की होती है।

और लक्षण

विषैले फुदकु के काटने के तीसरे चौथे दिन (कभी कभी ८-१० वें दिन) लक्षण प्रतीत होते हैं। सुस्ती, तबियत का गिरना, बदन में दर्द होना ये मालूमी बातें हैं। एक दम सर्दी लगती है और ज्वर १०२°-१०४° हो जाता है। बहुत बेचैनी होती है, आँखे लाल हो जाती हैं, रोगी लड़खड़ा कर चलता है और अतीव सुस्ती, थकान और कमज़ोरी आजाती है। स्वांस और नाड़ी की चाल तेज़ हो जाती है। हलके प्लेग में पांचवें दिन ज्वर उतरने लगता है। जब गिल्टी पक जाती है तो जब तक वह फूट न जावे थोड़ा थोड़ा ज्वर रहता है। प्लेग में हृदय बहुत कमज़ोर हो जाता है; इस लिये बुखार उतरने पर भी रोगी को परिश्रम न करना चाहिये क्योंकि कभी कभी हृदय एकदम बैठ जाता है और एकदम मृत्यु हो जाती है। प्लेग का मस्तिष्क पर भी बहुत असर पड़ता है—सरसाम हो जाता है जिसमें रोगी बहकी बहकी बातें करता है। कभी कभी गिल्टी वाला प्लेग बहुत ही हल्का होता है, रोगी चलता फिरता रहता है। गिल्टी शीघ्र बैठ जाती है।

प्लेग का न्युमोनिया

सीने में दर्द, खाँसी, ज्वर और बेहोशी, साँस लेने में कष्ट ये साधारण लक्षण हैं। बलग़म पतला और बहुत निकलता है और उस में खून आता है। इसमें मृत्यु बहुत होती हैं। इस प्रकार का प्लेग भारत-वर्ष में कम होता है; ठंढे देशों में अधिक होता है। इस प्रकार के प्लेग में बलग़म में रोगाणु भरे रहते हैं और चूँकि रोगी बेहोशी में

चारों ओर थूकता है रोग भी शीघ्रता से फैलता है। वायु जहरीली हो जाती है।

चिकित्सा

अभी तक कोई सर्वौषधि नहीं बनी। एक प्लेगनाशक सीरम बनाया गया है, कहा जाता है वह फायदा करता है। शिरा-भेद तथा [illegible], और मर्क्युरोक्रोम फायदा करते हैं। रोगी के हृदय का ध्यान रखना चाहिये। हमारी राय में रोगी को अधिक भोजन नहीं देना चाहिये।

बचाने के उपाय

१. प्लेग का टीका कम से कम ६ मास के लिये (और थोड़ा बहुत साल भर के लिये) प्लेग सम्बन्धी रोगक्षमता प्रदान करता है; इसलिये जब प्लेग फैले तो टीका अवश्य लगवाओ।

प्लेग की मौसम ६ मास से अधिक नहीं होती और टीके का असर थोड़ा बहुत ६ मास के बाद भी रहता है इस कारण एक टीका साल भर के लिये काफ़ी है।

२. प्लेग के दिनों में नंगे पैर न फिरो—जूता और मोटे मोज़े पहनो। जिन लोगों को प्लेग के घरों में चिकित्सा या परिचर्या के लिये जाना पड़े उनको बूट जूता पहनना चाहिये।

३. यदि मकान में चूहे मरने लगें विशेष कर प्लेग की मौसम में तो तुरंत मकान छोड़ दो।

४. घर को स्वच्छ रक्खो; नैफथेलीन का प्रयोग करो। चूहे घर में न रक्खो; पिस्सू मारने की औषधियाँ काम में लाओ। रोगी के कपड़ों को धूप में सुखाओ।

५. रोगी को छूने से प्लेग नहीं लगता; फिर भी उसको छूने में सावधानी करनी चाहिये ; संभव है उसके कपड़ों में फुदकु हों।

२. चूहे काटे का ज्वर

यह रोग जापान में बहुत होता है; भारत वर्ष में भी कहीं कहीं पाया जाता है। इस रोग का कारण एक चक्राणु है जो मनुष्य में विषैले चूहे, बिल्ली और कई जानवरों के काटने से पहुँचता है।

मुख्य लक्षण

काटने का ज़ख़म अच्छा हो जाता है; फिर २-६ सप्ताह पीछे काटा हुआ स्थान सूज जाता है और आस पास की लसीका ग्रन्थियाँ भी सूज जाती हैं (गिल्टी निकल आती है) ; सर्दी लग कर बुखार चढ़ आता है; जो तीन, चार दिन में १०३°-१०४° तक पहुँचता है। ज्वर ३-६ दिन रहता है, फिर जाता रहता है और तबियत अच्छी मालूम होती है; ज्वर फिर आता है और तबियत खराब हो जाती है। इस प्रकार कई सप्ताह तक बुखार आता है और जाता है।

चिकित्सा

जहाँ चूहा काटे उस स्थान को कार्बोलिक ऐसिड से जला दो; और कुछ न हो सके तो टिंकचर आयोडीन लगा दो। इस रोग के लिये नव सालवर्सान अमोघौषधि है।

३. एक प्रकार का पांडुर रोग (यर्का, पीलिया)

इसका रोगाणु एक चक्राणु होता है जो मनुष्य शरीर में भोजन या पानी द्वारा जिसमें रोगी चूहे का पेशाब मिल गया हो पहुँचता है। यदि मिट्टी पर चूहे ने पेशाब कर दिया है और मनुष्य इस मिट्टी को अपने शरीर में मले तो रोगाणु त्वचा द्वारा भी घुस सकते हैं। चूहे

के अतिरिक्त कुतिया, खरगोश के मूत्र द्वारा भी रोग पहुँच सकता है यदि उनके मूत्र में रोगाणु हों।

मुख्य लक्षण

एक दम सर्दी लग के ज्वर आ जाता है; सर में दर्द होता है, जोड़ों और पिंडियों में दर्द हो जाता है; कभी कभी दस्त और कै आती है। चार, पाँच दिन के बाद ज्वर कम होने लगता है और ७-१० दिन में जाता रहता है। कभी कभी एक बार उतर के दूसरी बार फिर ज्वर आ जाता है; कभी कभी तीसरी बार भी ज्वर आता है। ज्वर के दूसरे तीसरे दिन आँखें पीली हो जाती हैं और मूत्र पीला हो जाता है। कभी कभी नाक से खून आता है; पाखाने में भी कभी कभी खून आ जाता है। ३०% रोगियों के ३, ४, ५ वें दिन बदन पर खसरा जैसे या पित्ती जैसे दाने भी पड़ जाते हैं। यकृत और प्लीहा बढ़ जाते हैं।

सन् १९३६ में लखनऊ में सैकड़ों लोगों को ज्वर हुआ; इनमें से कुछ मरे भी; संभव है कि यही रोग रहा हो।

चिकित्सा

कोई अमोघौषधि मालूम नहीं है।

बचने के उपाय

चूहों और कुत्तियाओं से बचें; उनके मूत्र को भोजन या जल द्वारा या त्वचा द्वारा अपने शरीर में न जाने दें।

६. कृमि रोग (Trichinosis)

इसका भी चूहे से सम्बन्ध है; भारत में कम होता है इस कारण हम इसके विषय में कुछ न लिखेंगे।

अध्याय १६

जुआँ

दो उपजातियाँ हैं—एक प्रकार के जुएँ सिर और कपड़ों में रहते हैं। (चित्र १६५,१६६) दूसरे प्रकार के वाह्य जननेन्द्रियों के वालों में (विटप देश में; झाटों में) (चित्र १६७) जुएँ अपने पैरों द्वारा जिनमें वारीक नख होते हैं शरीर में चिपट जाते है। जब जुएँ खून चूसते हैं तो उनके मुँह से एक चूसने वाली नली बाहर निकल आती है; इस नली द्वारा जुएँ त्वचा से खून चूसते हैं। चित्र से विदित है कि झाँट वाला जुआँ छोटा और चौड़ा होता है (चित्र १६७) सिर और कपड़े वाला जुआँ लम्बा और कम चौड़ा होता है (चित्र १६५, १६६)। कपड़े वाला जुआँ सिर वाले से वड़ा होता है। यह आवश्यक नहीं है कि एक प्रकार का जुआँ एक ही जगह रहे; अकसर कपड़े वाला जुआँ सिर में और सिर वाला कपड़ों में और झाँट वाला और स्थानों में (जैसे भवों और पलक के वालों में) भी चला जाता है।

जीवनी

यदि भोजन इत्यादि अनुकूल हो तो नारी (जुआँ) दस अंडे रोज़ देती है; अपने जीवन भर में कोई ३०० अंडे दे सकती है। जुएं के अंडे
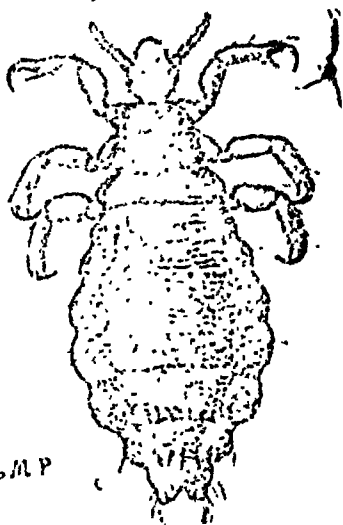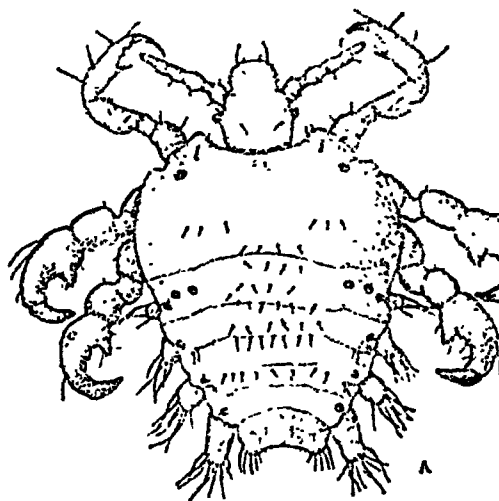
By courtesy of Professor Patton from "Insects, Mites, Ticks and Venomous Animals"

को लीख कहते हैं। ये लीखें बालों में या कपड़ों की सीवन में कपड़े के रेशों से चिपटी रहती हैं। अंडे से कोई ७ दिन में (यदि कपड़े पहने न जावें तो कभी कभी ३५ दिन में) लहर्वा निकलता है जिसकी शकल जुएं जैसी ही होती है। (स्पर्शनी की बनावट में कुछ भेद होता है)। यह छोटा जुआं पैदा होते ही खून चूसने लगता है। यह बच्चा तीन चोली बदल कर (प्रति चोली बदलने में कोई ४–५ दिन लगते हैं) १२ दिन में प्रौढ़ जुआं हो जाता है। दो तीन दिन पीछे (१५ दिन की आयु) यह नारी (जुआं) अंडे देना आरंभ करती है और जब तक जीवित रहती है ४–५–१० अंडे रोज़ देती रहती है। प्रौढ़ नर की आयु कोई ३ सप्ताह की और प्रौढ़ नारी की आयु ४ सप्ताह की होती है (कुल ५–६ सप्ताह की हुई)।

जुआं और रोग

जुएं के द्वारा टाइफस, हेरफेर का ज्वर, ट्रेंच फीवर (Trench fever=ज्वर जो लड़ाई के ज़माने में खंदकों में रहने वालों को होता था) फैलते हैं। शायद जुएं का क्षय रोग, कुष्ठ और प्लेग से भी कुछ सम्बन्ध हो। रोग न भी फैलावे तो भी उसके काटने से खुजली मचना क्या कुछ कम चीज़ है?

बचने के उपाय

जो लोग जल के अभाव से या अज्ञानता के कारण (जैसे यूरोप के दरिद्र लोग) या दरिद्रता के कारण अपने शरीर की और कपड़ों की सफाई नहीं रख सकते और जिनको ग़रीबी के कारण एक ही स्थान में इकट्ठा रहना पड़ता है उन्हीं लोगों के सिर और कपड़ों और झांटों में जुएं रहते हैं। ईसाई क़ौमें (स्त्री और पुरुष दोनों) जननेंद्रियों के पास के बाल नहीं काटतीं; यूरोप में गरम जल भी उतनी आसानी से प्राप्त

नहीं होता कि हर शख्स जब चाहे नहा सके; यूरोप वाले टब में नहाते हैं, उसके लिये जल भी बहुत चाहिये; ठंडे जल में नहाना कठिन होता है। गरम जल बहुत महँगा होता है; इन सब कारणों से यूरोप के दरिद्रों में जुएं बहुत होते हैं। भारतवर्ष में भी जुएं अकसर ही दरिद्रों में ही होते हैं। ईसाई क़ौमों की स्त्रियाँ आज कल सर के बाल छोटे रखने लगी हैं; इनसे सिर की सफाई कम जल से भी हो सकती है।

१. [illegible] दिन कंघे से साफ करो और कम से कम प्रति सप्ताह [illegible] नहा [illegible] और बेसन से बाल धोओ।

२. [illegible] हों जैसे बनयान, उसको हो सके तो प्रति दिन नहीं तो तीसरे दिन बदल दो। जाड़े के दिनों में लोग ऊनी [illegible] पहनते हैं, इन में अकसर जुएँ हो जाते हैं। [illegible] देना चाहिये और दूसरे तीसरे दिन इन को उलट कर उन की सीवनों को खूब ग़ौर से देखो कि उन में जुएँ तो नहीं हैं।

३. झाँट को समय समय पर साबुन लगा कर धोना चाहिये। बग़लों को भी अकसर साबुन लगा कर साफ करो। ईसाई कौमें (यूरोप और अमरीका निवासी) झाँटों और बग़ल के बालों को न कैंची से काटती हैं न अस्तुरे से मूँड़ती हैं; यदि खूब सफाई न की जा सके तो उनको समय समय पर मूँडना ही अच्छा है।

बूढ़े आदमियों की झाँटों में अकसर जुएँ हो जाते हैं; उन को चाहिये कि इस बात का ध्यान रक्खें। जब कभी उस स्थान में खुजली मारे, जुएँ को याद करो और उसको हटाने का प्रबन्ध करो।

४. उबलते हुए पानी से और भाप से जुएँ और उनके अंडे मर जाते हैं। कपड़ों को जिन में जुएँ हों पानी में उबाल कर साफ करो। सिर में जुएँ पड़ जावें तो पहले कंघे से साफ करो और फिर मिट्टी का

तेल या मिट्टी का तेल और कड़ुवा तेल मिला कर मलो और साबुन से फिर बालों को धो डालो। पेट्रोल और तारपीन का तेल भी काम में लाया जा सकता है। याद रक्खो पेट्रोल और मिट्टी का तेल दोनों शीघ्र दहन शील हैं इस लिये देर तक सिर में न लगा रहने दो। और आग या लम्प के पास न बैठो। २% कार्बोलिक का घोल भी सर पर लगाया जा सकता है।

किलनी या चिंचली (Ticks) या चिपट्टु

दो प्रकार की होती हैं। एक स्याही मायल लाल रंग की पतली और चपटी; दूसरी धूसर रंग की मोटी मोटी। पहली वाली कोमल, दूसरी कठिन चिंचली कहलाती है। गाय, बैल, कुत्ते, घोड़े के ऊपर ये जानवर अकसर रहते हैं; जब मनुष्य इन जानवरों को अपने पास रखता है तो कभी कभी ये चिंचलियाँ उस की त्वचा पर चिपट जाती हैं।

प्रौढ़ चींचली के आठ पैर होते हैं। चींचली अंडे देती है; अंडे से लहर्वा निकलता है जिस की शकल प्रौढ़ चीचली से मिलती जुलती होती है परन्तु उस के केवल ६ पैर होते हैं। यह लहर्वा कई चोली बदल कर प्रौढ़ चींचली जिसके ८ टाँगें होती हैं बन जाता है। लहर्वा खून चूस कर रहता है।

चींचली त्वचा में खूब कस के चिपटती है। उस को छुटाना आसान नहीं; कभी कभी छुटाते समय या तो चींचली टूट जाती है या त्वचा का ज़रा सा भाग छिल जाता है। छुटाने की सहल विधि यह है कि जहाँ चिंचली चिपटी हो वहाँ ज़रा सा तारपीन का तेल या पेट्रोल लगा दो, चींचली मर जावेगी और फिर शीघ्र वहाँ से हटा दी जा सकेगी।

चित्र १६८ चिचलियाँ मैथुन कर रही हैं

चित्र १६९ चिचली अंडे दे रही है

From Castellani and Chalmer's Tropical Medicine
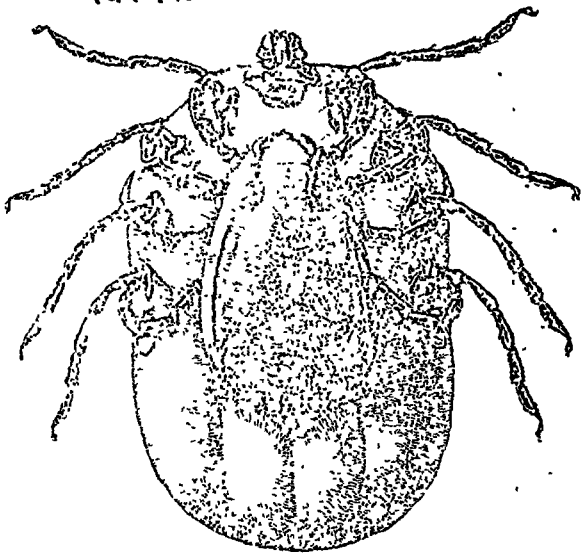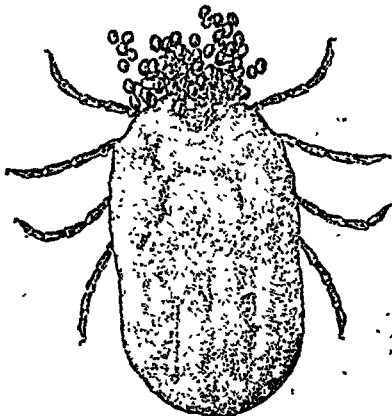
चींचली और रोग

चींचली का इन से सम्बन्ध है:—

टाइफस की तरह का ज्वर; एक प्रकार का हेरफेर का ज्वर।

१. हेर फेर का ज्वर

यह ज्वर शरीर में एक विशेष चक्राणु के प्रवेश करने से उत्पन्न होता है। भारतवर्ष में यह चक्राणु विषैले जुएं के काटने से शरीर में पहुँचता है। अफ़रीका, फारिस, मध्य अमरीका और कई देशों में एक विशेष प्रकार की चींचली के द्वारा यह रोग होता है।

चित्र १७० रक्त में हर फेर के ज्वर के चक्राणु

By permission of His Majesty's Stationery Office from Memoranda of diseases of Tropical areas

मुख्य लक्षण

विषैले जुएं के काटने * के ६-१० दिन पीछे रोग आरंभ होता है। सिर में दर्द, मतली और सर्दी लग के ज्वर आ जाता है। ज्वर १०३°-१०५° तक बढ़ता है। ज्वर दो, तीन, चार दिन ठहरता है और फिर एक दम पसीना आ कर उतर जाता है। ७-८ दिन ज्वर नहीं रहता; फिर दूसरी बार एक दम ज्वर आता है और पहले से कुछ कम समय ठहर कर फिर एक दम उतर जाता है। अब या तो ज्वर नहीं आता; या फिर तीसरी बार कुछ दिनों का अंतर दे कर आ जाता है। इस तरह से दो, तीन बारियों बाद ज्वर जाता रहता है। जब ज्वर होता है रोगाणु रक्त में मिलते हैं; जब ज्वर नहीं रहता रोगाणु भी नहीं मिलते। तिल्ली और यकृत बढ़ जाते हैं; ३०-६० प्रति शत रोगियों को मतली या कै आती है; २०-६०% रोगियों को पांडुर हो जाता है (आँखें पीली और मूत्र पीला); अक्सर खाँसी रहती है। १०-१५% मृत्यु हो जाती है; क़हत के दिनों में जब वबा फैलती है तो ५०% तक मृत्यु होती है।

चिकित्सा

नवसालवर्सान और उसी जैसी और औषधियाँ इस रोग के लिये अमोघौषधियाँ हैं।

---

*जब जुआं काटता है तो मनुष्य खुजाता है; खुजाते समय अकसर जुआं कुचल जाता है; जुएं के काटने से जो ज़ख्म बनता है उसमें कुचले हुए जुएं से निकला हुआ विष घुस जाता है।

बचने का उपाय

जुएं से बचो। रोगी के कपड़ों को उबाल कर साफ करो। रोगी के बिस्तर पर मत बैठो।

२. टाइफस ज्वर

यह शीत प्रधान रोगों का ज्वर है परन्तु भारतवर्ष में भी होता है विशेष कर हिमालय पर्वत पर और पंजाब और पंजाब की उत्तरी और पश्चिमी सरहद पर। भारत में विषैले जुएं (कभी कभी चींचली) द्वारा फैलता है। रोगाणु निश्चित रूप से मालूम नहीं संभव है कोई कीटाणु होगा। विषैले जुएं के काटने के ८-१२ दिन पीछे रोगारंभ होता है। सिर और पीठ में दर्द होता है और एक दम या बड़ी शीघ्रता से सर्दी लग कर ज्वर आ जाता है। कभी कभी ज्वर धीरे धीरे बढ़ता है जैसा कि टायफोयड में होता है। दूसरे, तीसरे या चौथे दिन ज्वर तेज़ हो जाता है और ८-११ दिन तक बराबर बना रहता है और फिर धीरे धीरे घटता है और १२-१६ दिन में उतर जाता है। कभी कभी ज्वर एक दम भी उतर जाता है। चौथे, पाँचवें दिन सीने, उदर और पीठ और शाखाओं पर गुलाबी लाल रंग के दाने दिखाई देते हैं; १० वें दिन ये दाने भूरे पड़ जाते हैं और फिर जाते रहते हैं। ये दाने चेहरे पर कम निकलते हैं। रोगी को नींद न आने की बड़ी शिकायत रहती है; सुस्ती और ग़नूदगी बहुत रहती है और सरसाम अकसर हो जाता है।

चिकित्सा

कोई अमोघौषधि नहीं।

बचने के उपाय

जुएं से बचो।

अध्याय १७

स्पर्श से होने वाले रोग

स्पर्श में चूमना (चुम्बन) और मैथुन भी अंतर्गत हैं। निम्न-लिखित रोग स्पर्श द्वारा होते या हो सकते हैं:—

खुजली या खाज

कुष्ठ

आतशक

सोज़ाक

जननेन्द्रियाँ सम्बन्धी और ज़ख़्म

फोड़े, फुन्सी

त्वचा के कई रोग

१. खुजली (चित्र १७१, १७२, १७३)

वैसे तो यह रोग त्वचा में कहीं हो सकता है साधारणतः हाथों में विशेष कर अंगुलियों की घाइयों में हुआ करता है। पहले मुझी खुजली होती है फिर लाल लाल दाने पड़ते हैं और फिर इन दानों में मवाद पड़ जाता है जिनके कारण फुन्सियाँ बन जाती हैं। खुजाने

को जी चाहता है और रात को खुजली के मारे नींद कम आती है। (चित्र १७१)

इस रोग का कारण एक नन्हा कोई $\frac{1}{60}$ इंच लम्बा चौड़ा ८ टाँग वाला कीड़ा होता है। (चित्र १८२) नर नारी से कहीं छोटा होता है और वह त्वचा में बहुत गहरा नहीं घुसता। नारी त्वचा में घुसकर एक सुरंग बना लेती है (चित्र १७२) और इस सुरंग में कोई ४०-

चित्र १७१ खुजली
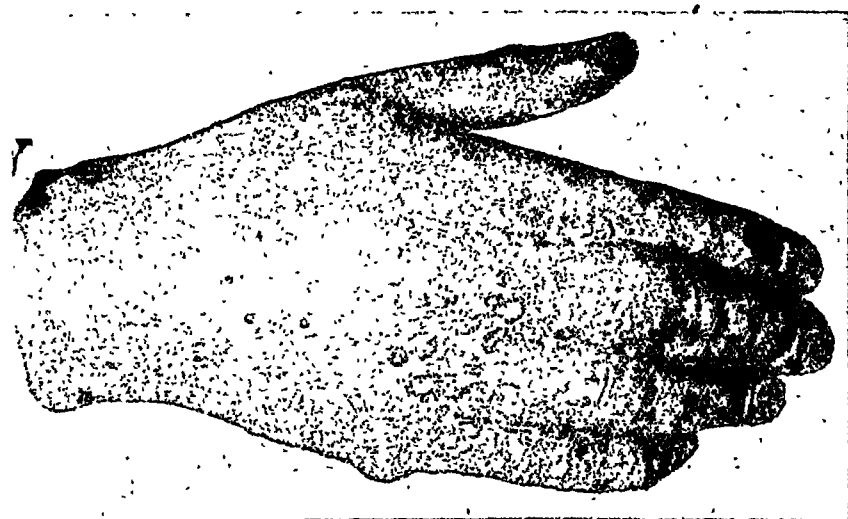
(Sabouraud)

५० अंडे देती है। अंडे से २-३ दिन में लहर्वा निकलता है जिसके केवल ६ टाँगें होती हैं; धीरे धीरे यह लहर्वा चोली बदल कर प्रौढ़ कीड़ा बन जाता है। सुरंग के ऊपर ही मवाद का दाना या पूयक होता है। मवाद में यह कीड़ा नहीं मिलता; यदि सुरंग सुई से खोदी जावे तो

चित्र १७३ त्वचा की सुरंग में कीड़े

By permission of the Trustees of the British Museum
from "Arachnida and Myriopoda"

अच्छे हो जाते हैं। यदि रोग असाधारण हो तो उसकी चिकित्सा डाक्टर से विधि पूर्वक कराओ।

बचने का उपाय

रोगी को अलग रक्खो; उसको चाहिये कि अपने हाथों से कहीं

और न खुजावे क्योंकि जहाँ खुजावेगा वहीं कीड़े घुस जावेंगे। रोगी को न छुओ। जो कपड़े रोगी के काम में आवें उनको खूब उबाल कर साफ करो। रोगी को चाहिये कि कुर्सी और खाट इत्यादि में मवाद न लगावे।

२. कुष्ठ (कोढ़)

इस रोग का कारण एक शलाकाणु होता है जिसे कुष्ठाणु कहते हैं; रँगने पर ये क्षयाणु जैसे दिखाई देते हैं। भेद यह है कि ये पतले होते हैं और कुछ कम लम्बे होते हैं और आम तौर से बहुत से १०-१५-२० एक जगह इकट्ठे पड़े रहते हैं।

रोग के विषय में मोटी मोटी बातें

यह रोग अंगों को इस तरह खराब करता है कि इससे सभी घृणा करते हैं। रोगी अंत में लूला, लुंजा हो जाता है; अंगुलियाँ गिर पड़ती हैं, नाक बैठ जाती है, तालू फट जाता है, जगह जगह ज़ख्म हो जाते हैं; त्वचा जगह जगह पर सुन्न हो जाती है, सुई चुभाइये, चाकू से काटिये, आग से जलाइये, रोगी को कुछ मालूम ही नहीं होता।

आम तौर से दो प्रकार के रोगी दिखाई देते हैं:—

१. वे जिन की त्वचा में अर्बुद या छोटे छोटे गुल्म बन जाते हैं (चित्र १७४, १७५) इसमें यह होता है कि त्वचा में वर्म आता है और जगह जगह लाल लाल धब्बे पड़ जाते हैं; फिर त्वचा जगह जगह मोटी हो जाती है जिसके कारण त्वचा के झोल मोटे मालूम होते हैं (चित्र १७४); फिर या तो त्वचा एक जैसी मोटी हो जाती है या जगह जगह अर्बुद या गुल्म बन जाते हैं (चित्र १७५)।

चित्र २७४ त्वगीया कुष्ठ

त्वचा की झुर्रियाँ मोटी पड़ गयी हैं; कान की लौर कितनी लम्बी और मोटी हो गयी है। सब चेहरा मोटा है। पलक के बाल गिर गये हैं।

२. वे जिनमें कुष्ठाणुओं का आक्रमण नाड़ियों पर होता है। जगह जगह त्वचा में चकत्ते पड़ जाते हैं जिनमें से रंग जाता रहता है; यहाँ त्वचा सुन्न हो जाती है अर्थात् सुई का स्पर्श नहीं मालूम होता,

चित्र १३० [illegible] कुष्ठ)
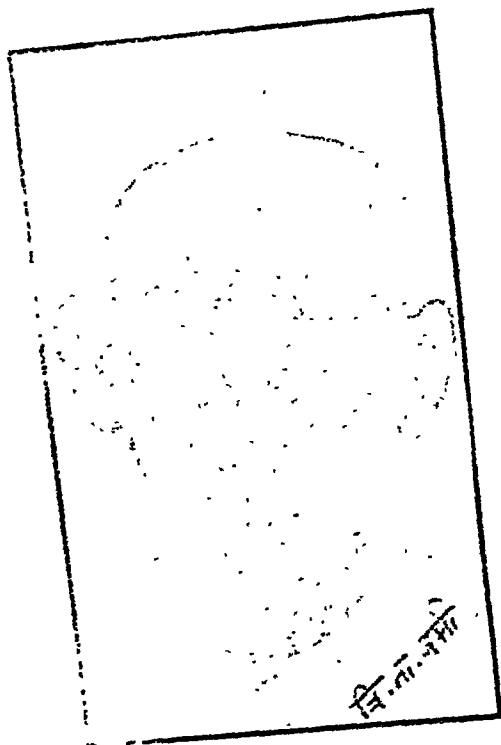
फिर सुन्नता इतनी बढ़ती है कि गर्मी सर्दी और सुई की चुभन भी
नहीं मालूम होती। यहाँ पसीना भी आना बंद हो जाता है; बाल भी
हो जाते हैं और गिर पड़ते हैं। (चित्र १०६)

३—मिश्रित कुष्ठ—इसी प्रकार के रोगी अधिक होते हैं।

चित्र १७८ नाड़ी कुष्ठ—सुन्न स्थान १,२
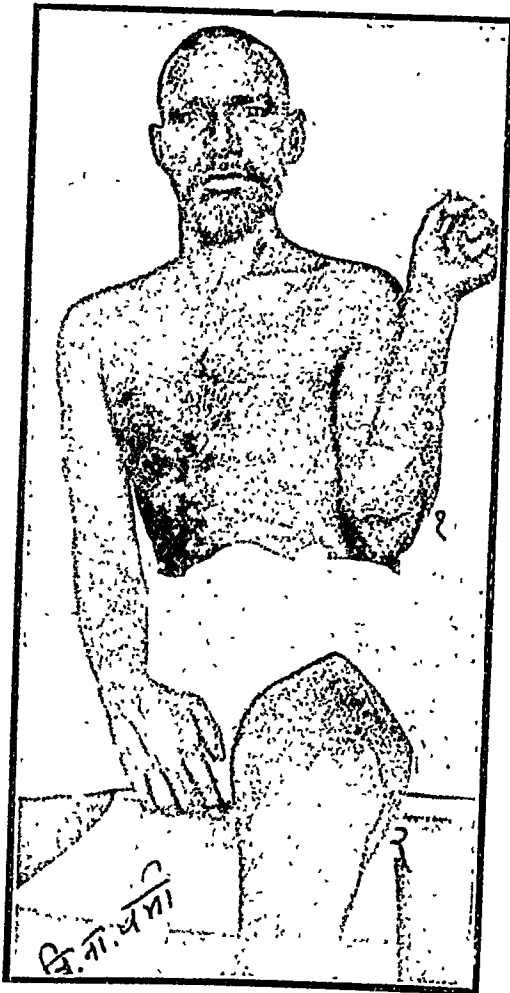
१, २, इन स्थानों का रंग उड़ गया है; यहाँ स्पर्श, गर्मी, सर्दी, दुख कुछ नहीं मालूम होता।

रोग किन किन भागों में होता है

त्वगीय कुष्ठ या | — माथा, चेहरा, कान, ऊपर की शाखाओं के
ग्रन्थि वाला भाग |

त्वचा और नाड़ियों के अतिरिक्त और अंगों का रोग (चित्र १७७)

चित्र १७६ त्वगीय कुष्ठ

नाक बैठ गयी है। तालु में छिद्र हो गया है; भवों के बाल गिर गये

चित्र १७८ नाड़ी कुष्ठ। हथेलियों की पेशियाँ पतली हो गयी हैं (चित्र में १) और हाथ की अंगुलियाँ टेढ़ी हो गयी हैं

पिछले और नीचे की शाखाओं के अगले पृष्ठों पर आम तौर से अर्बुद और लाल चकत्ते पाये जाते हैं। जो भाग कपड़ों से ढका रहता है वहाँ की त्वचा पर असर बाद में पड़ता है।

नाड़ी कुष्ठ:—अग्रबाहु (प्रकोष्ठ); टांग; कान के पीछे भ्रू के ऊपर की नाड़ियाँ पहले विकृत होती हैं और इन्हीं नाड़ियों के देशों में सुन्न आरंभ होता है।

त्वगीया कुष्ठ में नाक की झिल्ली में रोग हो जाता है जिस के कारण सिनक में असंख्य कुष्ठाणु निकला करते हैं। रोग गले और मुँह

में भी हो जाता है। तालु में छिद्र हो जाता है; नाक का पर्दा सड़ जाता है और नाक बैठ जाती है। आँख में कनीनिका में ज़ख़्म हो जाता है जिस से दृष्टि घट जाती है या जाती रहती है। अंड प्रदाह के कारण निष्फलता हो जाती है। औरतों में डिम्ब ग्रन्थियों पर असर नहीं पड़ता इस कारण कोढ़ी औरतें भी बच्चा जनती रहती हैं।

कुष्ठ से और क्या होता है (चित्र १७८,१७९,१८०)

कोढ़ी अकसर जल जाते हैं; उनका पैर आग पर पड़ जाता है उनको पता ही नहीं लगता। हाथ पैरों की अंगुलियों की अस्थियाँ पतली पड़ जाती हैं और पोवें गिर पड़ते हैं जिनके कारण अंगुलियाँ छोटी हो जाती हैं (चित्र १७९,१८०) हथेलियों की पेशियाँ पतली पड़ जाती हैं और अंगुलियाँ जानवरों के पंजों की तरह मुड़ जाती हैं (चित्र १७८) और सीधा करने पर हाथ पूरा नहीं खुलता। पैर के तले में ज़ख़्म हो जाता है जो अच्छा ही नहीं होता और बढ़ बढ़ कर आरमपार हो जाता है (चित्र १८१)। अंत में रोगी सड़ सड़ कर मरता है।

कुष्ठ कैसे होता है

कोढ़ी के साथ रहने से; उस के कपड़े द्वारा, उस के सिनक द्वारा, उस के फोड़े फुंसियों के मवाद द्वारा रोग फैलता है। ख्याल किया जाता है कि रोगाणु त्वचा द्वारा ही शरीर में प्रवेश करते हैं; संभव है कि चींटी, खटमल या अन्य इसी प्रकार के कीड़े भी सहायता देते हों। पुराने अर्बुदीय रोग में से ७०—८० प्रति शत रोगियों के सिनक में रोगाणु रहते हैं; नये त्वगीय और मिश्रित रोग में ३७% रोगियों के

चित्र १७९

चित्र १८०   नाड़ी कुष्ठ । अंगुलियाँ छोटी हो गयी हैं और ठंठ रह गये हैं
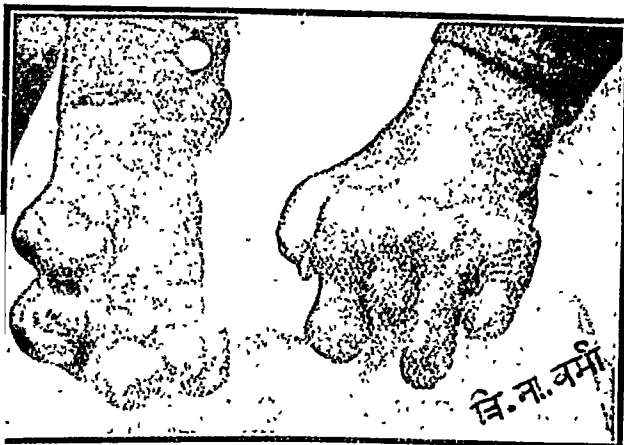
चित्र १८१ मिश्रित कुष्ठ। पंजे में जख्म हो गया है जो ऊपर तक पहुँच कर आरपार हो गया है। अंगुलियाँ छोटी हो गयी हैं

नाक में रोगाणु पाये जाते हैं। नाड़ी कुष्ठ में ३.८% रोगियों के सिनक में पाये जाते हैं।

संभव है चूहे का भी कोई सम्बन्ध हो

चूहे को भी अर्बुदीय कुष्ठ होता है संभव है मनुष्य को रोग उस से किसी प्रकार लग जाता हो।

लक्षण दिखाई देने से कितने समय पहले रोगाणु शरीर में पहुँच लेते हैं

कुष्ठवेत्ताओं के विचार में कम से कम पांच वर्ष पहले रोगाणु शरीर

में पहुँच लेते हैं। वे धीरे धीरे अपना पैर जमाते हैं। कभी कभी रोगाणु अपना असर १० वर्ष और कभी कभी इस से भी अधिक काल बाद (४० वर्ष) दिखाते हैं।

चिकित्सा

जब रोग बढ़ जाता है तो कोई औषधि काम नहीं देती। चालमूगरा तेल और उस से बनाई हुई औषधियाँ इस रोग में बहुत फायदा करती हैं; आरंभिक अवस्था में यथा विधि प्रयोग किया जावे तो रोग रुक जाता है।

बचने के उपाय

१. कुष्ठ परंपरीण रोग नहीं है अर्थात् यह आवश्यक नहीं कि कुष्ठी की सन्तान भी कुष्ठी हो। यदि कुष्ठी की सन्तान को पैदा होते ही कुष्ठी से अलग कर दिया जावे और उस का पालन पोषण भली प्रकार हो तो उस को कुष्ठ न होगा। कुष्ठ तो छूत का रोग है; यदि कुष्ठी की सन्तान उस के पास रहेगी तो उस को कुष्ठ होने की बहुत संभावना है। कुष्ठी को चाहिये कि अपना बिस्तर और कपड़े और खटिया अलग रक्खे; उस का रूमाल, तौलिया इत्यादि भी अलग रहने चाहियें। यदि हो सके तो उस को घर छोड़ कर कुष्ठ रोग के अस्पताल में ही रहना चाहिये; यदि रोग बहुत बढ़ी हुई अवस्था में हो तो उस का घर में रहना उचित है ही नहीं; उस के लिये कोढ़ी खाना ही अच्छा है।

२. वैसे तो कुष्ठ अमीरों को भी होता है, आम तौर से इस का दरिद्रता से घनिष्ठ सम्बन्ध देखा जाता है। जब पौष्टिक भोजन कम मिलता है और जब दरिद्रता के कारण स्वच्छता भी कम रहती है तब

ही यह रोग फैल सकता है। इसलिये दरिद्रता को दूर करना इस रोग की रोक के लिये अत्यंत आवश्यक है।

३. प्रारंभिक अवस्था में चिकित्सा करने से रोग इतना अच्छा हो सकता है कि रोगी से और लोगों को रोग लगने की संभावना बहुत कम हो जाती है; इसलिये रोगी को निदान होते ही इलाज कराना चाहिये। इस रोग की चिकित्सा का बन्दोबस्त सब बड़े सरकारी अस्पतालों में है; भारत में सब से बढ़िया इलाज कलकत्ते के स्कूल आव ट्रॉपिकल मेडिसिन (School of Tropical medicine, Calcutta) में होता है।

४. कोढ़ी से घृणा न करो; ऐसा करने से कोढ़ी अपने रोगों को छिपाते हैं और छिप छिप कर आप से मिलते जुलते हैं और रोग औरों में फैलाते हैं। कोढ़ी पर दया करो और उसके इलाज में सहायता दो; यदि उसके पास धन नहीं तो धन द्वारा उसकी सहायता करो; उसको अस्पताल में जाने और वहाँ चिकित्सा कराने की राय दो।

५. याद रक्खो कि जब किसी के शरीर में कहीं त्वचा सुन्न हो (साधारण बोल चाल में सुन्नाई कहते हैं) तो इस सुन्नता का कारण कुष्ठ रोग होना सम्भव है। ऐसे लोगों को अपनी परीक्षा शीघ्र करानी चाहिए।

६. हमने कुष्ठियों को बढ़ई का काम करते हुए, लोहिया की दूकान करते हुए, मिठाई और चाट बेचते हुए, पनवाड़ी की दूकान करते हुए, घी बेचते हुए, सराफ़ी (चाँदी सोने की दूकान) करते और किताबें और कागज़ बेचते देखा है। हमने कुष्ठी पटवारी और सब जज और वकील और डाक्टर भी देखे हैं। ये सब पेशे ऐसे हैं कि जिनके द्वारा कुष्ठ और लोगों को लग सकता है। इन लोगों को इन पेशों को छोड़ देना चाहिये; जो लोग सरकारी नौकर हैं उनको तो हमारी राय में पेन्शन

मिल जानी चाहिये। जो लोग ग़रीब हैं और अपना पेट अपने आप भरते हैं उनके भोजन इत्यादि का पूरा प्रबन्ध जनहितैषियों को करना चाहिये। मन्दिरों में धन न लुटाओ, उसको इन कुष्ठियों की सहायता में लगाओ। आपको स्वर्ग मिलेगा या नहीं यह तो कोई नहीं कह सकता परन्तु इतना मैं कहता हूँ कि आप सच्चे देश-सेवक अवश्य समझे जावेंगे।

७. जो कपड़े कुष्ठी के काम में आवें उनको बिना उबाले धोबी के यहाँ कदापि न डालो। छोटी कम मूल्य वाली चीज़ों को जला देना ही अच्छा है। ज़ख़्मों पर मक्खी न भिनकने दो; बहुत सम्भव है रोग मक्खी द्वारा भी फैलता हो।

सुफ़ेद दाग़—क्या यह एक प्रकार का कुष्ठ है?

नहीं। बहुत से लोगों की त्वचा पर छोटे या बड़े सुफेद दाग़ पड़ जाते हैं। हमारी उपचर्म (त्वचा का ऊपरी भाग) में एक रंग रहता है; त्वचा इस रंग के कारण ही रंगीन रहती है; गोरी जातियों में रंग कम होता है, काली जातियों में अधिक। जब किसी कारण रंग जाता रहता है तो स्थानीय त्वचा आस पास की त्वचा से हलके रंग की या सुफ़ेद सी हो जाती है। इस रोग को श्वेत चर्मा कहते हैं। कुष्ठ की भाँति इस स्थान में सुन्नता नहीं होती अर्थात् त्वचा में और स्थानों की त्वचा की भाँति सभी चीज़ों का ज्ञान होता है। इस स्थान में कभी भी कुष्ठ के लक्षण नहीं पाये जाते। अकसर देखा गया है कि यह रोग जैसा एक ओर होता है वैसा दूसरी ओर होता है; यदि आरम्भ में न हो तो कुछ दिनों बाद हो जाता है (देखो चित्र १८२, १८३)। बहुत से लोग सुफेद दाग़ वाले से घृणा करते हैं; हम ने देखा है कि ग्रामों में और कभी कभी शहरों में भी मास्टरों ने लड़कों को मदरसे से

निकाल दिया यह समझ कर कि यह रोग कुष्ट है। कभी कभी पब्लिक

चित्र १८२ श्वेत चर्म। ध्यान से देखिये जैसे दाग दाहिनी ओर वैसे ही बाई ओर

ने सरकारी मुलाज़िमों के खिलाफ़ शिकायत भी की कि अमुक पटवारी या कानूनगो को कुष्ठ है; हम को ऐसे लोगों की सहायता करने का कई वार सौभाग्य मिला है। पाठक गण! आज कल युरोप

चित्र १८३ श्वेत चर्म। जैसे दाग एक ओर वैसे ही दूसरी ओर
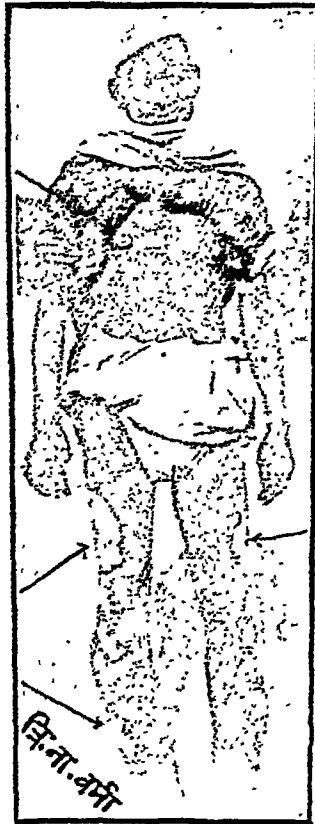
वालों की नक़ल सब लोग करना चाहते हैं, आप समझ लीजिये कि यह व्यक्ति काले से गोरे या यूरोपियन बनते बनते रह गये।

चित्र १८४ श्वेत चर्म

इस बेचारे की त्वचा में कहीं कहीं काले दाग रह गये हैं; यदि ये दाग न रहते तो यह काला आदमी अपने आप को यूरोपियन समझता। इस लड़के की यदि मैं सहायता न करता तो मास्टर इसको स्कूल से निकाल बाहर किये होता।

रोग से हानि और चिकित्सा

कोई हानि नहीं। अभी तक कोई अमोघौषधि नहीं मिली। कभी कभी दाग अपने आप मैले और फिर शेष त्वचा के रंग के हो जाते हैं। सम्भव है वैद्यक में इस की कोई अच्छी चिकित्सा हो।

चित्र १८५ बाबू साहब वेश्या पर मोहित हो गये

चित्र १८६ वेश्या, शराब और बाबू साहब
सुबह को आतशक या सोज़ाक या दोनों रोग लेकर बाबू साहब घर पहुँचेंगे
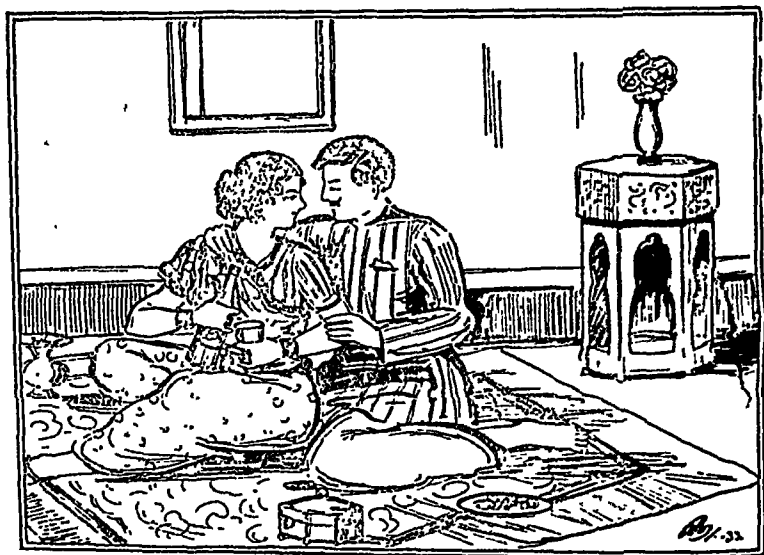
२ आतशक, फिरंग रोग

यह रोग साधारणतः मैथुन द्वारा ही होता है; पुरुष से स्त्री को और स्त्री से पुरुष को लगता है। गुदा मैथुन से पुरुष से पुरुष को (विशेष कर बालकों को क्योंकि बालक ही इस काम में आते हैं) लग जाता है। कभी कभी चुम्बन क्रिया द्वारा भी हो जाता है, ऐसी दशा में इसका पहला ज़ख़म गाल या ओष्ठ पर बनता है। अकस्मती आतशक जैसा कि शल्यशास्त्रियों और व्यवच्छेदकों में कभी कभी हो

चित्र १८७ आत्शक के रोगाणु प्लीहा में

By courtesy of Professor R. Muir

पृष्ठ ४८२ के सम्मुख

जाती है आतशकी विप के अंगुली में मल जाने से या आँख में पहुँच जाने से भी हो जाता है; ऐसी दशा में पहला आतशकी ज़ख़्म अंगुली पर या आँख में होता है। मैथुन करते समय यदि आतशकी माद्दा कहीं और लग जावे जैसे पेड़ू पर तो आतशकी ज़ख़्म वहाँ भी हो सकता है (चित्र १९५)। आतशकी वालक के चूसने से स्त्रियों में आतशकी ज़ख़्म स्तनों पर भी हो जाता है। याद रखने की वात यह है कि यदि ज़ख़्म जननेन्द्रियों पर हो तो वह मैथुनी स्पर्श द्वारा ही होता है।

आतशक की महिमा

पीड़ित व्यक्ति को ही इस रोग से हानि नहीं पहुँचती; वह तो दोज़ख की सज़ा इसी मृत्युलोक में भुगतता ही है; परंपरीण होने के कारण होने वाली सन्तान भी दुख भोगती है। यह क़ौम और देश का नाश करने वाला रोग है। इससे वचना और वचाना प्रत्येक कौमहितैपी का परम धर्म है। यह रोग नशेवाज़ी और वेश्या गमन का एक परिणाम है।

रोग का कारण और उसका शरीर में प्रवेश

इस रोग का कारण एक चक्राणु है जिसको फिरंगाणु कहते हैं (चित्र १८७)। जव कोई आतशकी पुरुप किसी स्वस्थ स्त्री से मैथुन करता है तो स्त्री को और जव स्वस्थ पुरुप किसी आतशकी स्त्री से मैथुन करता है तो पुरुप को रोग के होने की संभावना रहती है। रोगाणु किसी खराश या छिलन द्वारा त्वचा या श्लैष्मिक कला में प्रवेश करते हैं, वालों की रगड़ से खराश हो सकता है या मैथुन में असावधानी की जावे या मैथुन के वाद शिश्न या भग को न धोया जावे और मवाद या मैल उन स्थानों में देर तक लगा रहे।

चित्र १९० मुण्ड खात में व्रण

चित्र १९१ अग्रत्वचा पर व्रण
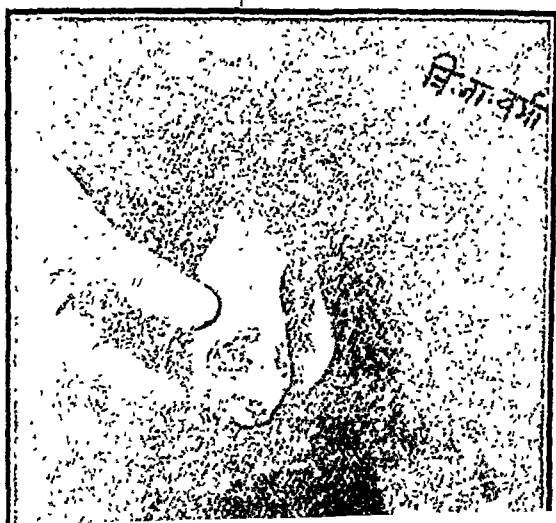
चित्र १९४

चित्र १९५ पेड़ू के नीचे ज़ख्म

आतशक की पहली अवस्था

आम तौर से आतशक का पहला चिह्न यह होता है कि मैथुन के ३ सप्ताह पीछे (कभी कभी कुछ कम या अधिक समय पीछे) दुख्

चित्र १०९
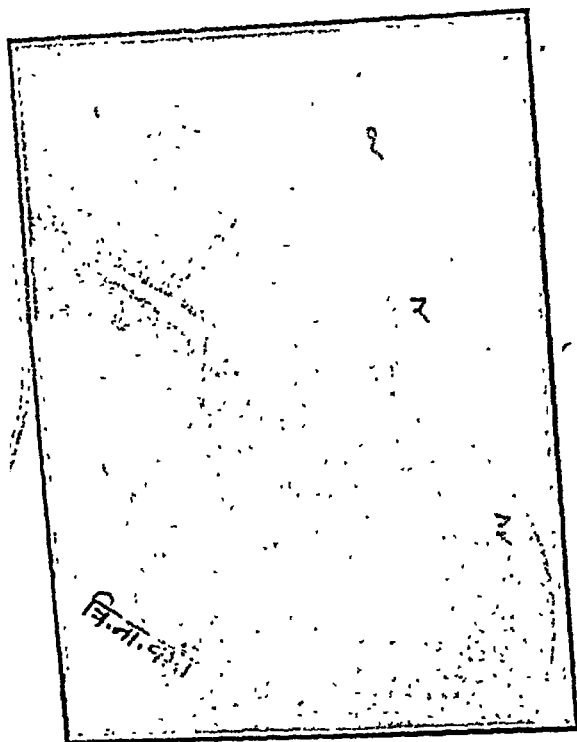
१=वर्म से त्वचा फूल गई है; २=आतशकी ज़ख्म

या स्त्री की जननेन्द्रियों पर एक छोटा सा दाना पड़ जाता है। पुरुष में यह दाना शिश्नाग्र त्वचा पर या शिश्नमुण्ड (मणि) पर पड़ता है; (चित्र १८८, १८९; १९०, १९१) धीरे धीरे यह दाना बढ़ता है और फिर फूट कर वह ज़ख़्म बन जाता है। टटोलने से यह दाना और ज़ख़्म कठोर प्रतीत होते हैं; इस कारण यह कठोर व्रण कहलाता है (कोमल व्रण से भिन्न करने के लिये जो इन्हीं स्थानों में होता है परन्तु जिस का कारण और कीटाणु है)। इस व्रण में फ़िरंगाणु रहते हैं। स्त्रियों में आम तौर से पहला व्रण गर्भाशय के मुख पर होता है; जननेन्द्रियों के किसी और भाग पर जैसे भग, योनि पर भी हो सकता है। कभी कभी आतशकी मादा और जगह

चित्र १९७ गुदा मैथुन द्वारा आतशकी व्रण
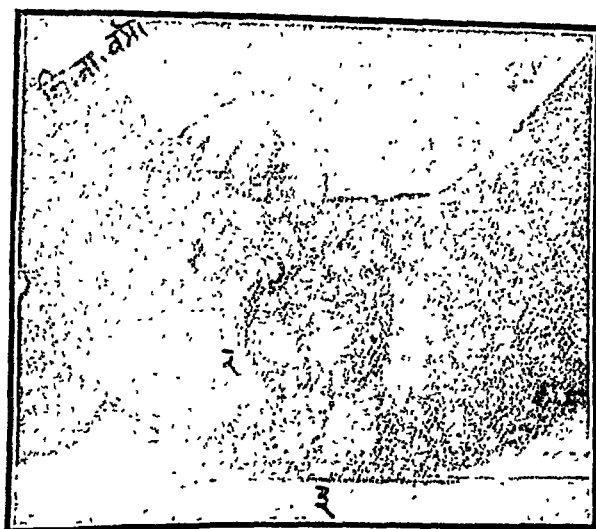
मल जाता है, तो पहला व्रण वहाँ हो जाता है (चित्र १९५)।

जब आतशकी पुरुष किसी कुमार से गुदा मैथुन करता है तो मलद्वार पर जख्म हो जाता है परन्तु इस का रूप कठोर व्रण से भिन्न होता है (चित्र १०७)।

चित्र १०८ गुदा में आतशकी दाने

आतशकी व्रण सामान्यतः एक ही होता है, कभी कभी दो भी

होते हैं (देखो चित्र १९२) खास बात यह होती है कि आतशकी जखम मामूली चिकित्सा से अच्छा नहीं होता; अमोघौषधियों से शीघ्र अच्छा हो जाता है ।

आतशक की द्वितीयावस्था

मैथुन से पाँच सप्ताह पीछे या प्रथम व्रण होने से दो सप्ताह पीछे उस

चित्र १९९ आतशकी दाने
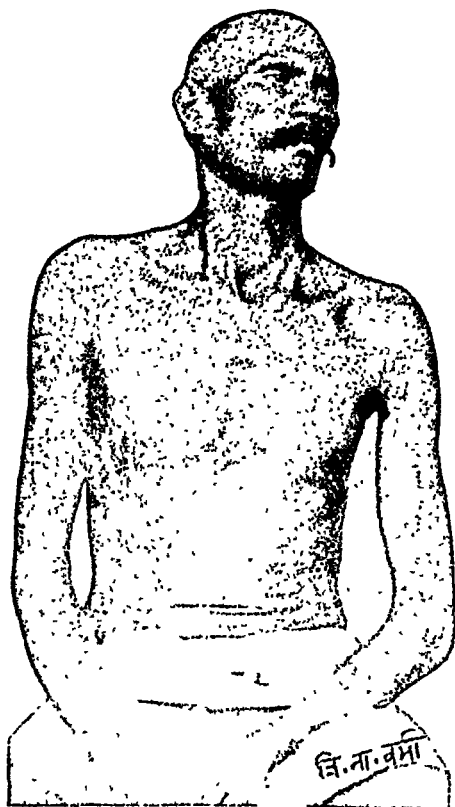
ओर के जंघासे की लसीका ग्रन्थियां जिस ओर व्रण है कुछ बड़ी और सख्त हो जाती हैं। छठे सप्ताह में दूसरे ओर के जंघासे की ग्रन्थियां भी सूज जाती हैं। सातवें सप्ताह में शरीर के और भागों की ग्रन्थियां

चित्र १०७

(जैसे ग्रीवा और कुहनी) बड़ी और सख्त हो जाती हैं। यह सब बातें इस बात को दर्शाती हैं कि विष शरीर भर में पहुँच गया है और विविध अंगों में विकार पैदा करने लगा है। ८ वें, ९ वें सप्ताह में त्वचा में आतशक के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं (देखो चित्र १०८) त्वचा के रोग कई प्रकार के होते हैं; अक्सर ताम्रवर्ण मसूराकार दाने निकलते हैं; कभी कभी ताम्रवर्ण चकत्ते पड़ जाते हैं; कभी कभी मवाद के दाने निकलते हैं (पूयक)। त्वचा की भाँति श्लैष्मिक कलाओं, या झिल्लियों

र जैसे ओष्ठ और गाल, तालू पर भी दाने या चकत्ते पड़ जाते हैं (चित्र २०१)। त्वचा और श्लैष्मिक कलाओं के रोगों के अतिरिक्त

चित्र २०१ होठों की श्लैष्मिक कला पर आतशकी चकत्ते

अब रोगी को ज्वर भी आने लगता है, बाल गिरने लगते हैं; शिर में,

दर्द होता है; जोड़ों और हड्डियों में दर्द होता है; गला पड़ जाता है; रक्त हीनता के कारण उसका रंग बदल जाता है और एक विशेष प्रकार की कमज़ोरी मालूम होती है। ये सब बातें महीनों और कभी कभी वर्षों तक रहती हैं। यदि रोगी सत्य न बोले तो चिकित्सक

चित्र २०२ नाक और ठुड्डी पर दाने

धोखा खा जाता है और ठीक औषधि नहीं दे सकता; अंट शंट इलाज होता रहता है जिससे कोई स्थायी लाभ नहीं होता क्योंकि केवल अमोघौषधियाँ ही इस रोग में स्थायी लाभ पहुँचा सकती हैं।

इसी अवस्था में उन स्थानों पर जहाँ श्लैष्मिक कला और त्वचा मिलती हैं जैसे होठों के किनारों, गालों के कोने और मलद्वार पर विशेष प्रकारके दाने निकलते हैं। नाक, ठुड्डी, (चित्र २०२) मलद्वार के पास, भग पर और फोतों पर चौड़े चौड़े मस्से के रूप में दाने निकलते हैं। इन से बदबूदार स्राव निकला करता है (चित्र २०३, २०४)। आँखें दुखनी आ जाती हैं, उपतारा का प्रदाह हो जाता है और बीनाई घट जाती है।

चित्र २०३ आतशकी मस्से

तीसरी अवस्था

यदि ठीक चिकित्सा न हो तो तीसरी अवस्था के चिन्ह और लक्षण दिखाई देने लगते हैं। आतशक द्वारा अनेक प्रकार की बातें हो सकती हैं; वास्तव में बात तो यह है कि कोई रोग नहीं जिस के चिन्ह

चित्र २०४ [illegible] पर आतशकी दाने
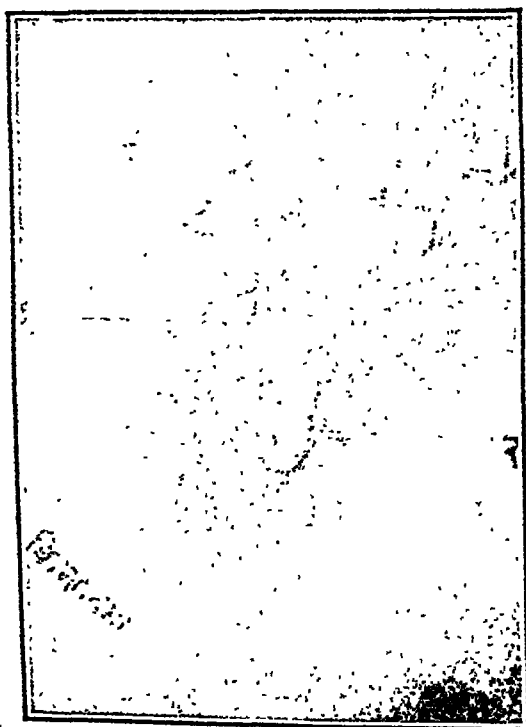
और लक्षण आतशक में न दिखाई दे सकते हों। कभी कभी यह अवस्था ६ मास ही में आरंभ हो जाती है, कभी २०-३० वर्ष पीछे; आम तौर से तीन वर्ष पीछे होती है। हथेलियों और तलवों पर कई प्रकार के

चित्र २०'१ भग पर आतशकी दानें

१=निर्यांसा है; २=यंत्र

३=दानें

चित्र २०४ मन पर आतशकी दाने
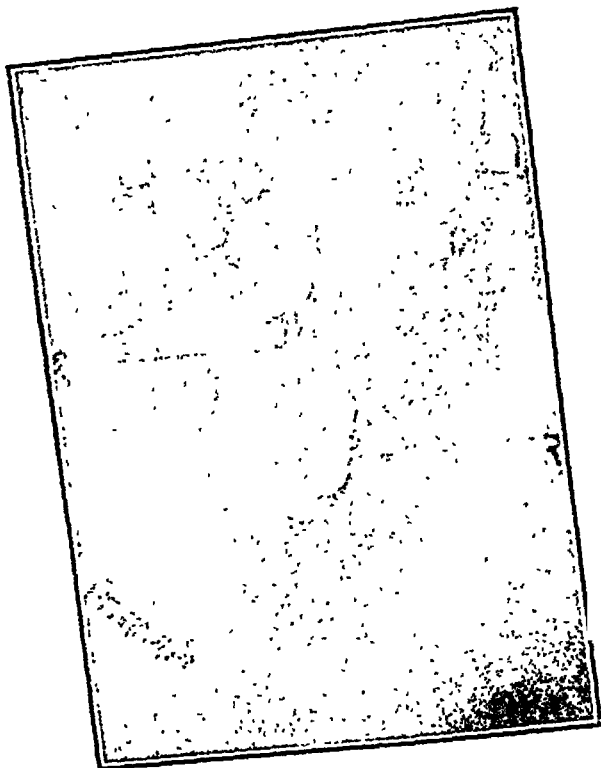
और लक्षण आतशक में न दिखाई दे सकते हों। कभी कभी यह अवस्था ६ मास ही में आरंभ हो जाती है, कभी २०-३० वर्ष पीछे; आम तौर से तीन वर्ष पीछे होती है। हथेलियों और तलवों पर कई प्रकार के

चित्र २०५ भग पर आतशकी दानें

१=निर्यासा है; २=यंत्र
३=दानें

चित्र [illegible] आतशकी मरीज

चकत्ते पड़ जाते हैं; कभी त्वचा मोटी और सख्त हो जाती है; अस्थ्याव-
रक और अस्थियों का प्रदाह होता है जिस के कारण उन पर सूजन आ
जाती है और चलने फिरने में दर्द होता है। अस्थियाँ सड़ भी जाती

चित्र २०७ आतशकी नन्हें नन्हें मस्से
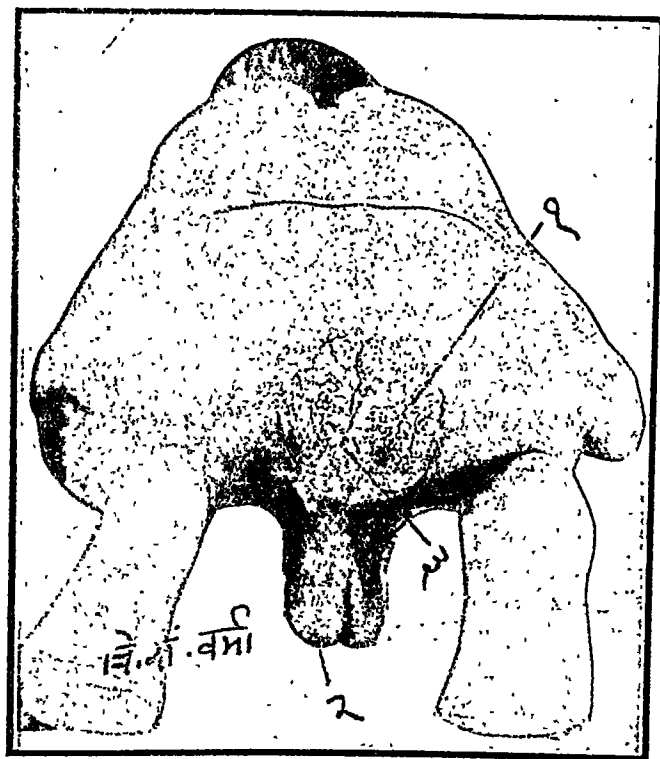
२=फोते ३=मलद्वार

हैं। शरीर के विविध भागों में त्वचा में, लसीका ग्रन्थियों में, पेशियों में, अस्थियों में, मस्तिष्कावरण में, अंड में वा और आंतरांगों में विशेष प्रकार के गुल्म बनते हैं; धीरे धीरे ये सड़ कर मुलायम हो जाते हैं और फोड़े की तरह फूट भी जाते हैं; इन में से एक गोंदीला

चित्र ... का ज़ख़्म
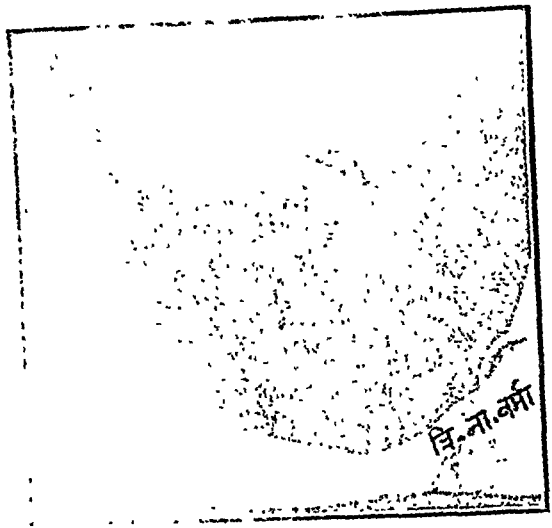
१=शिश्नाग्रत्वचा और फोते पर

२,३=जाँघ पर

चित्र २१० आतशकी दानें
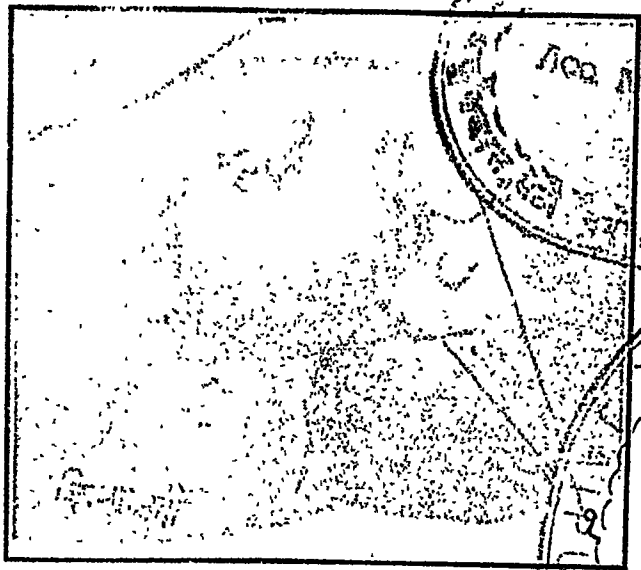
चित्र २११ आतशकी चकत्ते
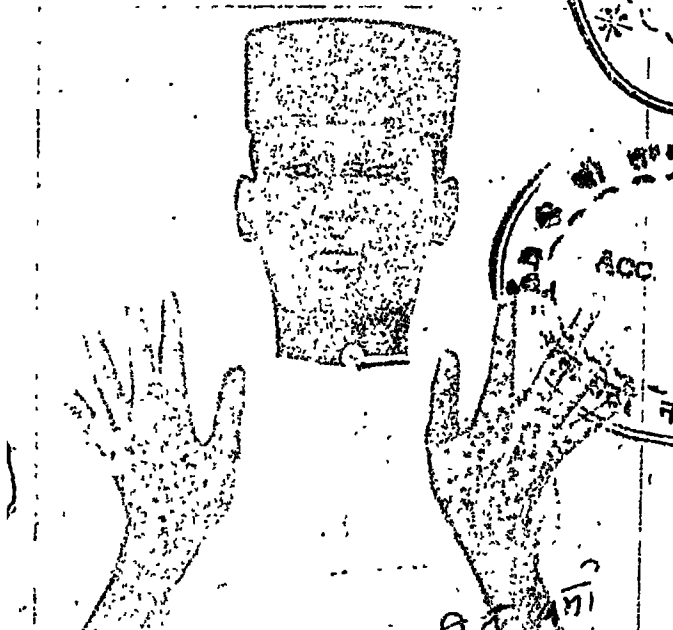
मादा निकलता है इसी कारण इन गुल्मों को निर्यासगुल्मा या केवल निर्यासा कहते हैं। इन निर्यासाओं के बनने से विविध लक्षण पैदा होते हैं जैसे मस्तिष्क में बनने से मिर्गी के लक्षण पैदा हो सकते हैं या फालिज (पक्षाघात) पड़ जाता है; सुषुम्ना में बनने से रोगी दोनों टाँगों से अपाहज हो जावे; नाक में निकलने और फिर फूटने से नाक बैठ जावे; तालू में फूटने से छिद्र हो जाता है और फिर खाना पीना कठिन हो जाता है क्योंकि भोजन नाक में से लौट आता है (चित्र २१२)। त्वचा में बनने और फूटने से व्रण बन जाते हैं जो वर्षों तक अच्छे नहीं होते (चित्र २११, २१२)।

चित्र २१२ — [illegible] निर्यास से नाक बैठ गई; तालु में छिद्र हो गये

रक्त वाहक संस्थानों के बहुत से रोग आतशक की वजह से होते हैं। रक्त वाहिनियों की दीवारें मोटी हो जाती हैं और उन की लचक जाती

चित्र २१३ त्वचा और अस्थियों के आतशकी जख़म
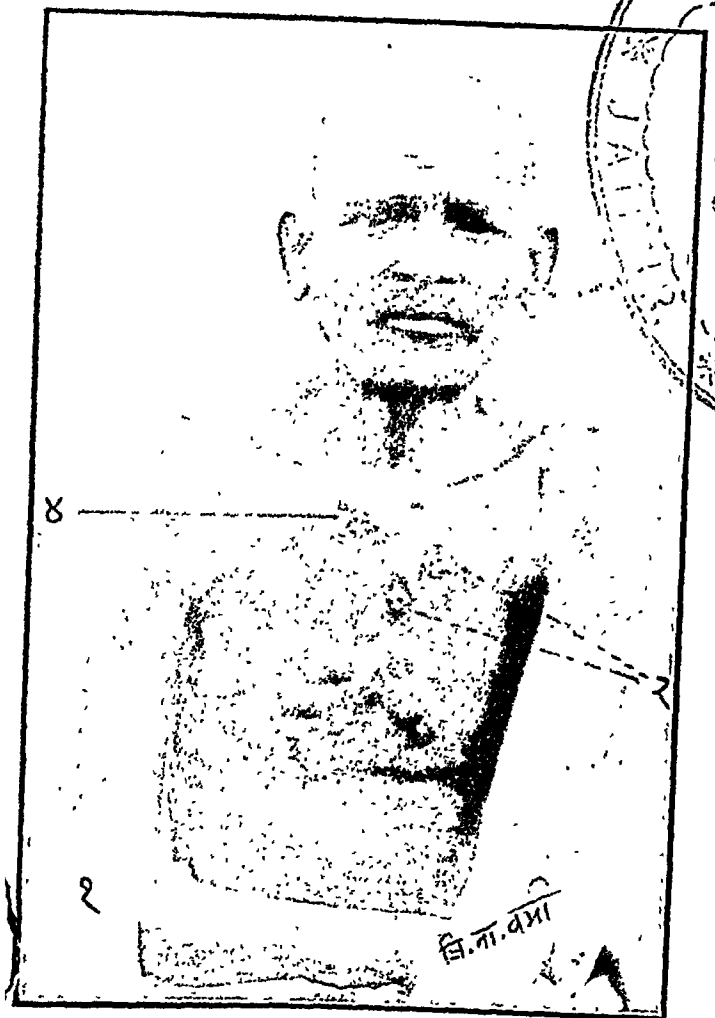
रहती है जिस के कारण पतली पतली रक्तवाहिनियाँ खून का जोर नहीं सह सकतीं और कभी कभी फट जाती हैं या उन के भीतर रक्त जम जाता है। मस्तिष्क की रक्तवाहिनियों के फटने या उन में खून जमने से पक्षाघात (हाथ पैर का मारा जाना) हो जाता है।

कान में दर्द आने से श्रवण शक्ति कम हो जाती है; रोगी बहरा

चित्र २१४ [illegible] और जख्म बन गये थे; [illegible] के प्रयोग से शीघ्र अच्छे हो गये।
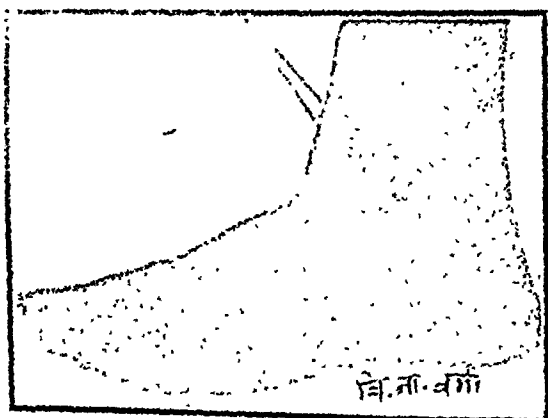
भी हो जाता है। आँखों के अनेक प्रकार के रोग होते हैं जिन के कारण दृष्टि कम हो जाती है या जाती रहती है। सिर के बाल गिर जाते हैं; जिह्वा फट जाती है या उस का ऊपर का तल मोटा हो जाता है और उस पर सुफेद चकत्ते पड़ जाते हैं। अन्न प्रनाली तंग हो जाती है और भोजन निगलने में कष्ट होता है। स्वरयंत्र प्रदाह से आवाज़

बैठ जाती है। फुफ्फुस में रोग होने से क्षय रोग जैसे लक्षण पैदा हो जाते हैं। प्रनाली विहीन ग्रन्थियों के भी रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

चतुर्थावस्था

इस अवस्था में नाड़ी संस्थान पर विशेष असर पड़ता है। रोगी

चित्र २१५ परंपरीण आत्शक

आत्शकी जख्म

चित्र २१७ परंपरीण आतशक । देखो नाक वैठ गई है; कुहनी पर ज़ख़म है

और गर्भाशय की श्लैष्मिक कला जो भूमि के तुल्य है जिस में बीज उपजकर भ्रूण बनता है खराब हो जाती है। इन सब का परिणाम यह होता है कि भ्रूण पात (अस्क़ाते हमल) अक्सर हुआ करता है; २-३ मास का हमल हुआ और गिर गया; दूसरा हमल ४-५ मास में गिर जाता है; तीसरा शायद ७ मासा जिन्दा पैदा होता है या मुर्दा पैदा होता है, फिर चौथा पाँचवा वालक पूरे दिनों का पैदा होता है। पैदा होने पर ज़ाहिरा यह वालक स्वस्थ मालूम होता है। कभी कभी नवजात शिशु के वदन पर ताम्र वर्ण के दाने या

चकत्ते होते हैं या एक सप्ताह के भीतर निकल आते हैं। आम तौर से ये चकत्ते पहले या दूसरे मास में निकलते हैं और चूतड़ों,

चित्र २१८ परंपरीण आतशक १=नाक में छिद्र है; २=पुराने जख़म का निशान
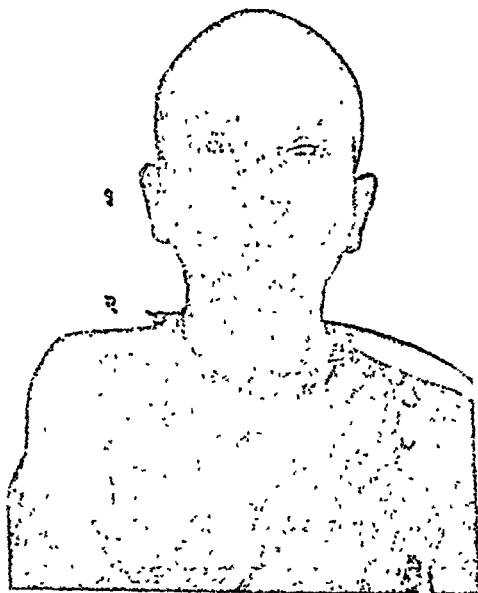
हथेलियों और तलवों और टाँगों पर दिखाई देते हैं। कभी कभी शरीर पर छाले पड़ जाते हैं जिनमें मवाद होता है। एक बात जो आतशकी शिशुओं में अकसर देखी जाती है वह नाक का बहना है—यह पैदा होते ही हो या दो चार दिन या दो चार सप्ताह पीछे आरंभ होती है, नाक के परदे का और नाक की मुड़ी हुई हड्डियों का प्रदाह होता है

जिसके कारण ये शल जाती हैं और नाक से मवादमय सिनक निकला करता है। मुँह के कोनों पर और मलद्वार और भग पर ज़ख़म बन जाते हैं (चित्र २१५)। शिशुओं की तिल्ली बढ़ जाती है; यदि नव-जात शिशु की तिल्ली बड़ी हुई हो या शीघ्र बढ़ जावे तो आतशक का ख्याल अवश्य करना चाहिये। शिशु काल में ४-८ मास में वृक्क प्रदाह के कारण समस्त शरीर पर वर्म* भी आ जाता है ज्यों ज्यों शिशु बढ़ता है और दाँत भी पैदा होती हैं। जोड़ों में वर्म आ जाता है; टाँग की अस्थियाँ टेढ़ी हो जाती हैं; कंधा प्रगंडास्थि के ऊपर के सिरे के वर्म के कारण मोटा हो जाता है और शिशु अपनी भुजा से काम नहीं लेता; खोपड़ी की अस्थियाँ मोटी हो जाती हैं और ललाटास्थि और पश्चादस्थि पर उभार बन जाते हैं। मस्तिष्कावरण प्रदाह हो जाता है जिसके कारण सिर बड़ा हो जाता है। आँख में मध्य पटल का प्रदाह हो जाता है जिसके कारण दृष्टि घट जाती है। फिर जब स्थायी दाँत निकलते हैं (६-१२ वर्ष की आयु में) कनीनिका का प्रदाह होता है और आँखों में बड़ी चौंद लगती है। आतशकी बालकों में अक्सर ऊपर के बीच के स्थायी कर्त्तनक दंत के शिखर पर एक दाँता बन जाता है (चित्र २१६)। बस याद रक्खो पैदायशी आतशक के मुख्य लक्षण ये हैं:—बार बार स्त्री का हमल गिर जावे; जो बच्चा पूरे दिनों का हो वह शीघ्र बीमार रहने लगे; नाक से मवाद जावे त्वचा पर चकत्ते पड़ें या दाने निकलें या मवाद के छाले पड़ें, शरीर पर वर्म आ जावे, मुँह और मल-द्वार पर जख़म बन जावें; बड़े होने पर आँखें खराब हो जावें, खोपड़ी

*यह वर्म जल इकट्ठा होने से होता है और इसको उदकमयता (Oedema) कहते हैं।

में उभार दिखाई दे; टाँगों की अस्थियाँ टेढ़ी हो जावें, ऊपर के बीच के दाँत कटे हुए से हों, अस्थियों पर वर्म हो, नाक बैठ जावे, तालू में छिद्र हो जावे।

चिकित्सा

पारा और पारे के यौगिक; नव सालवर्सान और उसी प्रकार की और औषधियाँ, पोटास आयोडाइड्, बिसमथ इस रोग के लिये अमोघौषधियाँ हैं। आरंभ में यथा विधि चिकित्सा करने से रोग पूरे तौर से अच्छा हो जाने की आशा करनी चाहिए। चौथी अवस्था की चिकित्सा रोगी के शरीर में मलेरियाणु पहुँचा कर मलेरिया ज्वर पैदा करके की जाती है। भारतवर्ष में आतशक की चतुर्थअवस्था बहुत कम पाई जाती है शायद उसका कारण यह है कि यहाँ बहुत कम लोग ऐसे हैं जिनको मलेरिया न होता हो।

बचने के उपाय

१. आतशक छूत का रोग है। यहाँ व्यक्ति एक दूसरे को अपनी जननेन्द्रियों द्वारा छूते हैं अर्थात् आम तौर से रोग मैथुन द्वारा ही उत्पन्न होता है। बस इस रोग से बचने की सहल विधि यह है कि स्वस्थ व्यक्ति आतशकी व्यक्ति से मैथुन न करे। यह रोग करीब करीब हमेशा वेश्या-गमन से होता है; वेश्या को अपनी जीविका प्राप्त करने के लिये सभी प्रकार के लोगों से मैथुन कराना पड़ता है, इस लिये वह कभी पवित्र और स्वस्थ नहीं रह सकती। एक आतशकी वेश्या पचासों पुरुषों को आतशक दे सकती है। यदि लोगों को इस रोग की भयानकता का पूरा ज्ञान हो तो उनका जी वेश्या-गमन को न चाहे। वेश्या गमन को लोग बुरा समझते हैं परन्तु जब वे शराब पी लेते हैं या कोई और नशा कर लेते हैं तो उनकी बुद्धि जाती

रहती है; वह बुरे भले में तमीज़ ही नहीं कर सकते। चित्र २०४ एक ग्राम की आतशकी वेश्या के भग का फोटो है; जननेन्द्रियों से दुर्गन्ध आते हुए भी बीसियों ग्रामी मूर्ख इस स्त्री से आतशक मोल ले गये।

२. आतशकी ज़ख्मों को बड़ी सावधानी से स्पर्श करो और स्पर्श के बाद साबुन और पारे के घोलों से हाथ साफ करो। जहाँ तक हो सके ऐसे व्रणों के छूने के लिये रबर के दस्तनों का प्रयोग करो।

३. आतशकी रोगियों का इलाज होना चाहिये और जब तक खून की परीक्षा से वे रोग-रहित न मालूम हों उनको स्वस्थ स्त्री पुरुषों से मैथुन न करना चाहिये और न उन को सन्तान उत्पन्न करनी चाहिये।

४. चुम्बन द्वारा और आतशकियों के गंदे तोलिये द्वारा मुँह पोछने से भी रोग होने की संभावना है; इसलिये ये दोनों काम न करो। आतशकी के मुँह से लगे हुए बरतन भी त्याज्य हैं।

५. जान बूझ कर आतशकी खानदान में विवाह न करो चाहे आप को कितना ही धन दहेज़ में मिले।

४ सोज़ाक

यह रोग आम तौर से उसी तरह होता है जैसे आत्शक अर्थात् मैथुनी स्पर्श द्वारा। यह रोग परंपरीण नहीं है परन्तु रोगी व्यक्तियों के लिये इसका परिणाम कभी कभी आतशक से भी अधिक खराब होता है। इसका कारण एक कीटाणु है जो मवाद में पाया जाता है; इसको सोज़ाकाणु कहते हैं।

सोज़ाक के लक्षण पुरुष और स्त्री में कुछ अलग अलग होते हैं इस कारण हम पहले पुरुष के रोग का वृत्तांत कहेंगे और फिर स्त्री के रोग का।

चित्र २१०. सोज़ाकाणु: जिस सेल के भीतर ये हैं वह एक श्वेताणु है

पुरुष का सोज़ाक

जब मनुष्य किसी ऐसी स्त्री से मैथुन करता है जिसको सोज़ाक हो तो मैथुन करने के २-५ दिन के अन्दर (कभी इससे जल्दी और कभी इससे देर में) उसके मूत्र-मार्ग में जलन होने लगती है, पेशाब लगता है और शिश्न मुण्ड पर कुछ लाली और सूजन मालूम होती है; फिर मूत्र मार्ग से मवाद आने लगता है कभी कभी मवाद के साथ या उससे अलग रक्त या रक्तमय स्राव निकलता है। मूत्र त्यागने में पीड़ा होती है और शिश्न तन जाता है। धीरे धीरे २-३ सप्ताह में मवाद कम होने लगता है और फिर बंद हो जाता है; परन्तु फिर कभी कभी निकलने लगता है और फिर सोज़ाक पुराना हो जाता है, कभी कभी ज़रा सा चेप सा निकला करता है (देखो आगे)।

रोग पहले मूत्र मार्ग के अगले भाग में (चित्र २२२) रहता है; इलाज नहीं होता तो पिछले भाग में पहुँच जाता है और वहाँ प्रोस्टेट ग्रन्थि में सोज़ाकाणु घुस जाते हैं। मूत्राशय का प्रदाह हो जाता है और वहाँ से रोग वृक्क तक पहुँच जाता है।

यही नहीं, रोगाणु रक्त में पहुँच जाते हैं और शरीर में ज़हर फैल

चित्र २२० सोज़ाक के कारण शिश्न का वर्म
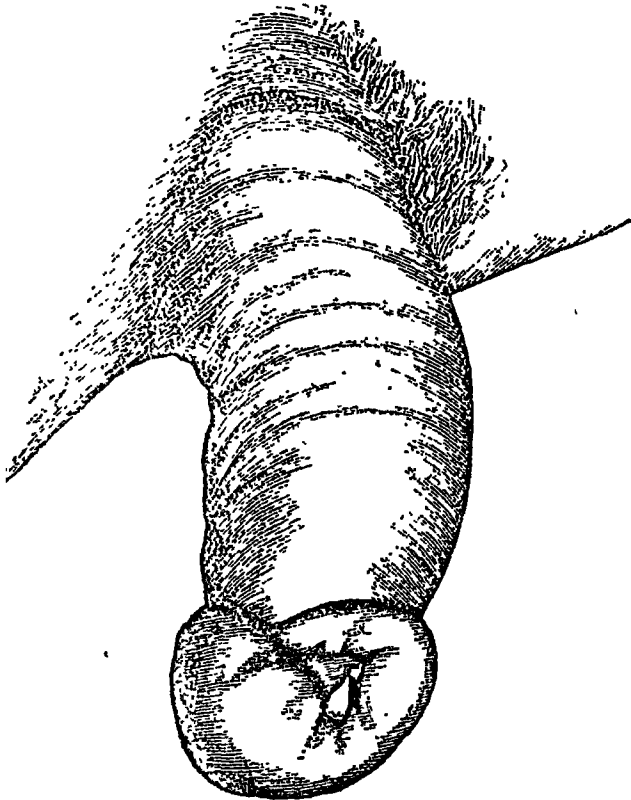
From Dr. Bayly's Venereal diseases, by kind permission

जाता है। जिस अंग में ये रोगाणु ठहरते हैं उसी अंग का रोग हो जाता है। वे हृदय का रोग उत्पन्न करते हैं; फुप्फुस और फुप्फुसावरक कला का प्रदाह हो सकता है। आम तौर से रोगाणु जोड़ों में पहुँच कर वहाँ सूजन पैदा करते हैं—घुटने सूज जाते हैं; पहुँचे,

कुहनी या और जोड़ों पर भी वर्म आ जाता है। गठिया बाई का एक बड़ा कारण सोज़ाक है।

परिणाम

यदि शुरू ही बड़ी कोशिश से इलाज न किया जावे (भारत में कोई शीघ्र इलाज करता ही नहीं) तो इस रोग का अच्छा होना अत्यंत कठिन है। अंट शंट इलाज से (९०% इस रोग का इलाज अंट शंट ही होता है इस अभागे देश में) रोग दब जाता है; रोगी धोखे में रहता है; रोग फिर थोड़े बहुत अंतर से उभरता है और फिर दब जाता है और अंत में पुराना बनकर रह जाता है। जिन लोगों ने इलाज ठीक कर नहीं किया उनमें निम्न लिखित बातें होती हैं:—

१. जब कभी अधिक मैथुन करेंगे या शराब अधिक पियेंगे या गरम मसाले या और उत्तेजक चीज़ों का सेवन करेंगे, मूत्र मार्ग में मवाद या चेप आने लगेगा।

२. कुछ समय बाद गठिया बाई होने का डर है।

३. हृदय के रोग होने का डर है।

४. मूत्र की नाली धीरे धीरे तंग होती जाती है; मूत्र की धार पतली होती जाती है; कभी कभी धार इतनी पतली हो जाती है कि मूत्र त्यागने में दुगना, तिगना समय लगता है। जब ये लोग ठंड खा जाते हैं तो मूत्र मार्ग पर वर्म आ जाता है और मूत्र मार्ग के बंद हो जाने से पेशाब का बंध पड़ जाता है; बिना सलाई डाले पेशाब उतरता ही नहीं; कभी नाली इतनी तंग हो जाती है कि बारीक से बारीक सलाई भी नहीं जा सकती मूत्र का बंध पड़ने से जान जोखों में रहती है। अब या तो मूत्र मार्ग को काटना पड़ता है या मसाने में सूराख करके पेशाब निकाला जाता है। पेशाब देर तक

बंद रहता है तो ज़हर फैलने से मृत्यु हो जाती है।

५. ऐसे लोगों के मूत्र में बहुत बारीक छिछड़े निकला करते हैं; छिछड़े प्रोस्टेट ग्रन्थि के वर्म के साक्षी हैं। उसमें कभी कभी फोड़ा भी बन जाता है।

६. मूत्र मार्ग में फोड़ा भी बन जाता है विशेष कर जब रास्ता बहुत तंग हो (चित्र २२१)।

चित्र २२१ मूत्र मार्ग में फोड़ा बन गया है
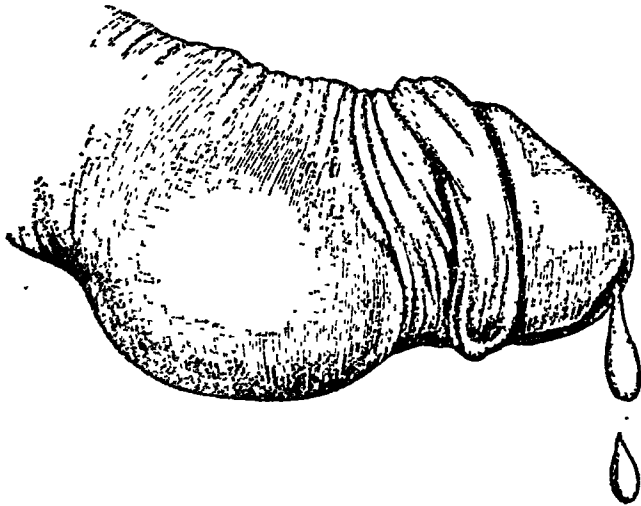
From Dr. Bayly's Venereal diseases, by kind permission

७. अंड और उपांड का वरम आ जाता है और उसमें कभी कभी फोड़ा भी बन जाता है।

८. शुक्राशयों और शुक्र प्रनाली का भी वरम हो जाता है शुक्र प्रनाली और उपांड और अंड के वरम के कारण इन लोगों में अक्सर असफलता

(सन्तान न होना) भी हो जाती है (धनी लोगों की अनपत्यता का एक मुख्य कारण सोज़ाक है)।

दीर्घस्थायी या जीर्ण सोज़ाक

प्रातःकाल जब रोगी सो के उठता है तो मूत्र मार्ग से ज़रा सा चेप और कभी कभी ज़र्द या हलके रंग का मवाद निकलता है या कपड़े में लग जाता है। मूत्रद्वार के ओंठ चिपक जाते हैं। शिश्न में एक प्रकार की नर्मी आ जाती है और वह अक्सर कुछ टेढ़ा हो जाता है और जब मैथुन इच्छा के कारण वह खड़ा होता है तो कुछ पीड़ा भी होती है। पेशाब साफ़ नहीं होता अक्सर उसमें बाल जैसे बारीक कीड़े जैसे ज़र्रे निकला करते हैं।

स्त्रियों का रोग

जब सोज़ाकी पुरुष स्वस्थ स्त्री से मैथुन करता है तो उसके मवाद द्वारा स्त्री को रोग लग जाता है। पहले आम तौर से रोग मूत्र-मार्ग में आरंभ होता है और मूत्रमार्ग प्रदाह के लक्षण अर्थात् मूत्र त्यागने में कष्ट होना, मूत्र द्वार से मवाद आना इत्यादि दिखाई देते हैं। भग पर भी वर्म आ जाता है; भग के पिछले भाग में एक ग्रन्थि होती है उसमें फोड़ा बन जाता है। योनि सूज जाती है और योनि से होकर प्रदाह ऊपर को चढ़ता है और गर्भाशय में पहुँचता है। गर्भाशय से पीला स्राव निकलने लगता है। पेड़ू में दर्द होता है। गर्भाशय से वरम डिम्ब प्रनालियों और डिम्ब ग्रन्थियों और गर्भाशय के इधर उधर के बन्धनों में पहुँचता है। डिम्ब प्रनाली में फोड़ा बन जाता है; या डिम्ब प्रनाली का रास्ता बंद हो जाता है जिसके कारण डिम्ब गर्भाशय में नहीं पहुँच सकता और औरत बाँझ हो जाती है। बेगमों, रानियों, सेठानियों, ताल्लुकेदारनियों या अन्य धनी

लोगों की स्त्रियों के बाँझपन का एक बड़ा कारण उनके गर्भाशय और डिम्ब प्रनालियों का इस रोग के कारण खराब हो जाना है। स्त्रियों में पेट में उदरकला पर वरम आ जाता है और पेड़ू में फोड़ा भी बन जाता है।

शेष अंगों के रोग जैसे जोड़ों का वरम वैसे ही होते हैं जैसे मर्दों में।

क्या स्त्रियों में रोग सदा मैथुन द्वारा ही होता है

आम तौर से मैथुन द्वारा होता है परन्तु और विधियों से भी कभी कभी हो सकता है। जैसे मवाद लगा कपड़ा पहनने से या मवाद की अंगुली भग या योनि में लगने से।

सोज़ाक और आँखें

यदि अँगुली द्वारा या तौलिये द्वारा मवाद आँखों में पहुँच जावे तो आँखें बहुत बुरी तरह से दुखनी आती हैं। कभी कभी ज़ख्म हो जाते हैं और आँखें फूट तक जाती हैं।

नवजात शिशु और माता का सोज़ाक

यदि गर्भवती स्त्री को सोज़ाक हो तो जब बच्चा पैदा होता है तो उसकी आँखों में मवाद लग जाता है और वरम आने के कारण शिशु निपट अंधा हो जाता है। बहुधा पैदायशी सूर वास्तव में सोज़ाकी माता की सन्तान होते हैं। जितने अंधे इस संसार में हैं उनमें से २०% इसी प्रकार अंधे हुए हैं। ऐसी माता के भग को बच्चा जनने से पहले साफ कर लेना चाहिये और जब बच्चा पैदा हो तो उसकी आँखें पोंछ कर उनमें २% सिलवर नाइट्रेट लोशन की दो दो बूँद टपका देनी चाहियें। इस विधि से बालक अंधा होने से बच जावेगा।

बालक और सोज़ाक

लड़कियों को सोज़ाक अधिक तर उन के माता पिता से लगता है। माता पिता का मवाद लगा कपड़ा, तौलिया, रूमाल इत्यादि भग पर लगने से या माता अपनी गंदी अँगुली वहाँ लगा दें तो उन को सोज़ाक हो जाता है। इस तौर से रोग ऊपर गर्भाशय की ओर नहीं बढ़ता केवल भग में ही रहता है परन्तु अच्छा देर में होता है।

लड़कों और लड़कियों को गंदी आया और गंदे नौकरों से भी रोग लग जाता है। याद रखिये कि बहुत कम मुसल्मान नौकर ऐसे मिलेंगे कि जिन को कभी न कभी सोज़ाक न हुआ हो। भारतवर्ष में एक बुरा ख्याल है कि यदि सोज़ाकी पुरुष किसी कुमारी से मैथुन करे तो सोज़ाक अच्छा हो जाता है; ऐसा नहीं होता; सैकड़ों कन्याओं का जीवन इन दुष्ट दुराचारियों ने सत्यानाश कर दिया। ऐसे लोगों को कड़ा दंड मिलना चाहिये। गुदा मैथुन द्वारा लड़कों को गुदा का सोज़ाक हो जाता है। गुदा में वरम आ जाता है और मलत्यागने में बड़ा कष्ट होता है।

बचने के उपाय

वही हैं जो हम आतशक के सम्बन्ध में लिख आये हैं।

१. जो स्त्री एक से अधिक पुरुषों से मैथुन करती है उस को कभी न कभी सोज़ाक आतशक हो जावेगा। बहुत कम वेश्याएँ ऐसी हैं जो इन रोगों से बची रहती हैं। खास बात यह है कि सोज़ाक स्त्री को उतना कष्ट नहीं देता जितना पुरुष को; इसलिये वेश्याएँ पुरुष को धोखा भी दे सकती हैं; दूसरी बात यह भी है कि जब स्त्री में कोई विशेष लक्षण न भी हों और ज़ाहिरा यह मालूम हो कि वह

अच्छी हो गयी है ऐसी दशा में भी उस से मनुष्य को रोग लग सकता है। इन बातों को ध्यान में रख कर मनुष्य को चाहिये कि कभी भी वेश्या-गमन न करे। जितनी कम फीस किसी वेश्या की होगी उतनी ही अधिक संभावना रोग होने की होगी। आम तौर से सोज़ाक, आतशक ।), ॥), १), २) में मिल जाते हैं; कभी कभी बिना मूल्य भी मिल जाते हैं। अधिक फीस वाली वेश्याएं भी पाक नहीं रह सकतीं परन्तु धन होने के कारण वे इलाज भी कर सकती हैं और ऐरे ग़ैरे गंदे मनुष्य की पहुँच भी उस तक नहीं होती। सत्य तो यह है कि जब एक मनुष्य एक ही स्त्री से मैथुन करता है तब ही वह इन रोगों से बच सकता है; जब एक स्त्री एक से अधिक पुरुषों से या एक पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से मैथुन करता है तब अंतिम परिणाम बुरा होता है।

२. दूसरे के तौलिये, रूमाल, पाजामे, धोती का प्रयोग न करो।

३. जननेन्द्रियों में हाथ लगा कर अपने मुँह पर या दूसरे के मुँह और आँखों पर मत लगाओ विशेष कर जब वहाँ कोई रोग हो।

४. छोटी लड़कियों और लड़कों को बदमाशों के पंजे से बचाओ।

५. रोग होने पर तुरंत चिकित्सा करो।

६. वेश्याओं की संख्या कम करने का यत्न करो और जिन को रोग है उन की चिकित्सा के लिये प्रबन्ध करो।

७. नशों को त्यागो।

सोज़ाक की चिकित्सा

कठिन है। रोगी और चिकित्सक दोनों को बहुत मेहनत करनी पड़ती है। यदि होते ही चिकित्सा आरंभ हो जावे तो पूरे तौर पर अच्छे होने की बहुत संभावना है; जितनी देर की जावेगी उतनी ही

अच्छे होने की संभावना कम हो जावेगी। मूत्र मार्ग को यथा विधि पोटाश परमंगनेट के घोल से धोया जाता है; चाँदी के योगिक जैसे प्रोटार्गोल का प्रयोग किया जाता है। रोगाणुओं से बनी हुई औषधियों (जिन को वैक्सीन Vaccine कहते हैं) का प्रयोग त्वचा भेद या शिरा-भेद द्वारा किया जाता है। मुँह से चंदन का तेल, कबाब

चित्र २२२ की व्याख्या

इस चित्र में मूत्रमार्ग (लाल) और शुक्र मार्ग (हरा) दिखलाये गये हैं। मूत्र ऊपर वृक्क से आता है और मूत्राशय में इकट्ठा होता है; वहाँ से प्रोस्टेट ग्रन्थि (१) में से होता हुआ शिश्न में पहुँचता है और शिश्न मुण्ड में जो छिद्र है उससे बाहर आता है। मूत्र मार्ग के तीन भाग माने जाते हैं:—१. वह जो प्रोस्टेट ग्रन्थि में रहता है। २. वह जो दो झिल्लियों के बीच में रहता है; यहाँ पर उसके चारों ओर पेशी रहती है (चित्र में २); ३. वह भाग जो शिश्न में रहता है। शिश्नस्थ भाग का वह भाग जो दूसरे भाग के नीचे है जरा चौड़ा होता है। जहाँ तक सोजाक का सम्बन्ध है मूत्र मार्ग के दो भाग मान लिये जाते हैं एक वह जो झिल्ली और पेशी के नीचे है (अर्थात् शिश्न में) यह अगला मूत्रमार्ग कहलाता है (देखो चित्र २२२) दूसरा वह जो झिल्ली से ऊपर है अर्थात् प्रोस्टेट वाला और झिल्ली और पेशियों के बीच का भाग, यह पिछला मूत्रमार्ग है। झिल्लियों के बीच में रहने वाले भाग के पास दोनों झिल्लियों के बीच में एक ग्रन्थि भी रहती है इसका रस शिश्नस्थ मूत्रमार्ग में जाया करता है और वहाँ शुक्र से मिल जाता है।

सोजाक पहले मुण्ड में होता है, धीरे धीरे ऊपर को फैलता है और समस्त अगले मूत्रमार्ग में फैल जाता है; जब तक यहाँ रहता है उसका अच्छा होना आसान है। जब पिछले मूत्र मार्ग में पहुँचता है तो उस का अच्छा होना कठिन हो जाता है क्योंकि अब दोनों झिल्लियों के बीच में रहने वाली

चित्र २२२ मूत्रमार्ग—शुक्रमार्ग
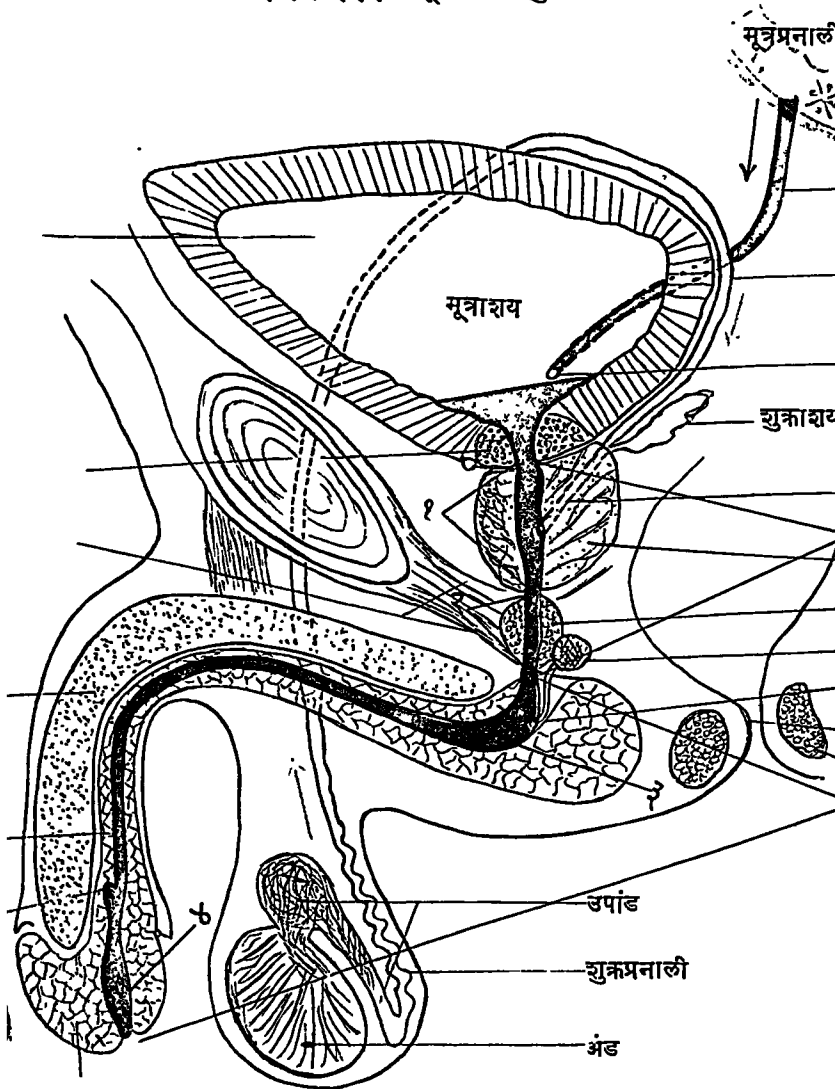
ग्रन्थि का और प्रोस्टेट ग्रन्थि का प्रदाह हो जाता है । यदि ऊपर रोग चढ़ा तो मूत्राशय का भी प्रदाह हो जाता है ।

अब शुक्रमार्ग (हरे) को देखिये । अंड में शुक्र बनता है, यह उपांड और शुक्र प्रनाली में से चढ़ कर पेट के अन्दर जा कर मूत्राशय के पीछे रहने वाली शुक्राशय नाम की थैली में जमा होता है । शुक्राशय की नाली प्रोस्टेट ग्रन्थि में पहुँच कर मूत्र मार्ग में खुलती है । जब मैथुन का अंत होता है तो शुक्र मूत्र मार्ग द्वारा शिश्न मुण्ड से निकलता है ।

शुक्रमार्ग का मूत्र मार्ग से सम्बन्ध है इस कारण जब सोज़ाक प्रोस्टेट ग्रन्थि में पहुँचता है तो शुक्राशय और शुक्र प्रनाली में भी पहुँच जाता है, और उपांण्ड और अंड को भी खराब करता है ।

भोनी इत्यादि चीज़ें खिलाई जाती हैं ।

रोग होने पर रोगी को चलना फिरना न चाहिये । शराब एक दम त्यागनी चाहिये । गोश्त, गरम मसाले, लाल मिर्चें न खानी चाहियें । पानी खूब पिओ; जौ का पानी फायदा करता है; भिंडी को काट कर पानी में उबालो जिस से उस का लस निकल आवे फिर इस लसदार पानी को पी जाओ और भिण्डी भी खाओ ज़ायक़े के लिये ज़रा सा नमक और काली मिर्चें मिलाओ । दूध भी फायदा करता है ।

५. उपदंश (चित्र २२३)

आतशकी व्रण तो मैथुन से कोई २-३ सप्ताह पीछे दिखाई देता है । एक और व्रण होता है जो मैथुन द्वारा होता है परन्तु मैथुन से कोई तीसरे चौथे दिन दिखाई देता है । इस ज़ख्म के किनारों और तली में आतशकी व्रण की भाँति कोई सख़्ती नहीं होती इस कारण उस को कोमल व्रण कहते हैं । कभी कभी एक से अधिक व्रण एक साथ बन

जाते हैं। यह व्रण मामूली औषधियों द्वारा अच्छा हो जाता है। यह रोग परंपरीण नहीं होता। इस व्रण का कारण एक शलाकाणु है।

चित्र २२३ उपदंश (कोमल व्रण)

चित्र २२३ (क) उपदंश

५. एक और ज़ख़्म (Granuloma Inguinale)

ग्रेन्युलोमा इंगुइनेल

मैथुनी स्पर्श द्वारा एक और ज़ख़्म भी बन जाता है। इसका ठीक कारण मालूम नहीं सम्भव है कोई आदि प्राणि हो। शिश्न या भगोष्ठों पर एक दाना पड़ता है जो फूट कर ज़ख़्म बन जाता है। यह ज़ख़्म इधर उधर फैलता जाता है और जंघासों में पहुँच जाता है। ज़ख़्म पर आतशकी चिकित्सा का कोई असर नहीं होता और न

मामूली औषधियों का कोई प्रभाव पड़ता है। ज़ख्म में अधिक दर्द भी नहीं होता है। शकल से कैन्सर का धोखा होता है परन्तु अणुवीक्षण द्वारा ज़ख्म के सूक्ष्म भाग को जाँचने से पता लग जाता है ; आस-पास की लसीका ग्रन्थियाँ जो कैन्सर में बढ़ जाती हैं इसमें नहीं बढ़तीं। ज़ख्म से बदबूदार स्राव निकलता है। ऐन्टीमनी के योगिक इस रोग में बहुत फ़ायदा करते हैं।

चित्र २२४ (Granuloma Inguinale)
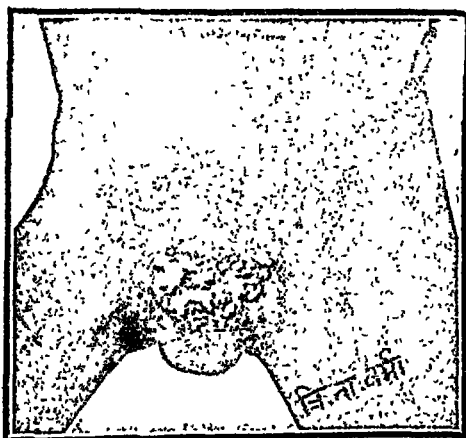
वेश्या गमन से होने वाले रोगों से बचने की विधि

वेश्या के पास जाना बुरा है क्योंकि यह काम आत्मरक्षा और स्वजाति रक्षा दोनों में बाधा डालता है। फिर भी सब लोग व्यभिचार से नहीं बच सकते ; सब लोग अपने कामदेव को वश में नहीं रख सकते। निम्न लिखित विधियों से वेश्यागमन द्वारा रोगों के होने की सम्भावना कम हो जाती है—

चित्र २२५. (Granuloma Inguinale)

१. यदि आप शराब के नशे में बिल्कुल ही बुद्धिहीन न हो गये हों तो गन्दी वेश्या से या ऐसी वेश्या से जिसकी जननेन्द्रियों से किसी प्रकार की दुर्गंध आती हो कभी भी मैथुन न करें।

२. मैथुन से पहले शिश्न पर वैसलीन मल लो। चिकनाई के कारण असावधानी से या बालों की रगड़ से शिश्न पर कोई खराश न होगा। खराश द्वारा रोगाणु अंग में शीघ्र प्रवेश करते हैं।

३. मैथुन करते ही तुरंत या जितना शीघ्र हो सके मूत्र त्याग करो ताकि मूत्र मार्ग में घुसा हुआ मैल या मवाद बाहर निकल जावे।

४. मूत्र त्यागने के बाद साबुन मल कर शिश्न और फोतों को खूब धो डालो। साबुन से रोगाणु धुल जाते हैं और मर भी जाते हैं विशेषकर आतशक के।

५. साबुन से धो कर हो सके तो शिश्न को १;१००० मर्क्युरी लोशन से धो डालो।

६. अब शिश्न को पोंछ कर सुखाओ और उस पर लेनोलीन में बनी हुई ३३% केलोमेल की मरहम ४ माशे लगा दो; १० मिनट तक मलो; शिश्न मुण्ड (शिश्न का अगला भाग), मुण्ड खात (मुण्ड के पीछे का भाग) और शिश्नाग्रत्वचा पर मरहम खूब लगानी चाहिये। इस मरहम को १२ घण्टे लगी रहने दो। कपड़ों को बचाने के लिये पतला चिकना कागज़ अंग पर लगा लो। इस मरहम से आतशक और उपदंश के रोगाणु मर जाते हैं।

७. सोज़ाक से बचने के लिये मूत्र मार्ग में २% प्रोटागोल या १०% आरगिरोल का घोल पिचकारी द्वारा ५, ५ मिनट के अंतर से दो वार दाखिल करो। कुछ मिनटों तक इस घोल को शिश्न में रोकने की कोशिश करो।

अध्याय १८

वेश्या, व्यभिचार, विधवा

वेश्या किसे कहते हैं

जो व्यक्ति* किसी आर्थिक लाभ के लिये अपनी जननेन्द्रियों से दूसरे विरोधी लिंग वाले व्यक्ति या व्यक्तियों को जिनसे उसका पति पत्नी जैसा सम्बन्ध न हो कामानंद प्राप्त करने दे वह वेश्या माना जाता है।

काम

जन्म के पश्चात् सब से पहले तो वे अंग बढ़ते हैं कि जो आत्म रक्षा के लिये आवश्यक हैं—शाखाएँ, पेशियाँ, अस्थियाँ; पाचक, ग्रंथियाँ ज्ञानेन्द्रियाँ मस्तिष्क इत्यादि। जब ये अंग इस योग्य हो जाते हैं कि व्यक्ति साधारण तौर से आत्म रक्षा कर सके तो वे अंग बढ़ने लगते हैं जिनका स्वजाति रक्षा से सम्बन्ध है—ये हमारी जननेंद्रिन्याँ हैं जो दो प्रकार की हैं—एक वे जो बाहर से दिखाई देती हैं, दूसरी वे जो थोड़ी

---

* यह व्यक्ति भारतवर्ष में आम तौर से नारियाँ होती हैं; पाश्चात्य देशों में नर भी होते हैं।

चित्र २२६ खूबसूरत वेश्या पर मीर साहब की नियत टपक पड़ी

बहुत शरीर के भीतर रहती हैं और बाहर से दिखाई नहीं देती। स्त्रियों में बाहर से दिखाई देने वाली इन्द्रियाँ भग कहलाती हैं भग में भगांकुर नामक एक अंग होता है और एक नाली का मुख होता है ; यह नाली

योनि है और इस का मुख योनि द्वार कहलाता है। जो इन्द्रियें बाहर से देख नहीं पड़तीं वे डिम्ब ग्रन्थि, डिम्ब प्रनाली, गर्भाशय और योनि हैं। पुरुष में शिश्न और अंड बाहर से दिखाई देते हैं। शुक्र प्रनाली और शुक्राशय अंदर रहते हैं और देख नहीं पड़ते।

जब जननेन्द्रियां बढ़ने लगती हैं तो साथ साथ और भी कई बातें होती हैं जिनसे बिना इन अंगों के देखे पता चल जाता है कि ये अंग अब परिपक्व होने लगे हैं और व्यक्ति स्वजाति रक्षा करने के योग्य बन रहा है। जैसे कुमारियों में स्तनों का बढ़ना और उभरना, मासिक धर्म का आरम्भ होना; बगलों में और कामाद्रि पर बालों का उगना, चित्त वृत्तियों का बदलना, शरीर का कुछ मोटा हो जाना और शर्म का पैदा हो जाना; कुमारों में मूछों और डाढ़ी का निकलना, बगलों और कामाद्रि पर बालों का उगना, आवाज़ का बदलना। जब ये चिन्ह दिखाई देते हैं तो कहा जाता है कि यौवनारंभ हो रहा है।

यौवनारंभ की आयु

सब देशों और जातियों में यौवन एक ही आयु में आरंभ नहीं होता। ग्रीष्म प्रधान देशों में शीत प्रधान देशों के मुकाबले में यौवन कई वर्ष पहले आरंभ हो जाता है। भारतवर्ष में कन्याओं में यौवन १२ वर्ष की आयु में और कुमारों में १४-१५ वर्ष की आयु में आरंभ होता है।

यौवन में क्या होता है

ज्यों ज्यों व्यक्ति बढ़ता जाता है उस की जननेन्द्रियाँ भी बढ़ती जाती हैं—अंड बड़े हो जाते हैं; शिश्न बढ़ता है। यही नहीं अधिक रक्त आने से शिश्न में कभी कभी दृढ़ता आ जाती है और जब रक्त कम हो जाता है वह फिर शिथिल हो जाता है। जिस वक्त वह दृढ़ हो जाता

है विशेष कर जब मूत्र देर तक न आया हो जैसे रात्रि में पिछले पहरे (२ बजे के बाद) यदि शिश्न में कपड़ों की रगड़ लगे या अकस्मात् हाथ की रगड़ लग जावे तो एक विशेष प्रकार का ज्ञान पैदा होता है; यह अनुभव होने लगता है कि यह अंग ऐसा है कि इस के स्पर्श से या इस की रगड़ से एक विशेष प्रकार का आनंद मिल सकता है।

कन्या को भी यह अनुभव होने लगता है कि उस के भग में कोई चीज़ ऐसी है कि जिस से उस को विशेष प्रकार का ज्ञान होता है और जिस के स्पर्श से उस को विशेष प्रकार के आनंद प्राप्ति की आशा है। उस के स्तन बढ़ने जाते हैं; उन में कपड़ों की रगड़ से भी उस को एक विशेष प्रकार का ज्ञान होता है।

मनुष्य के शिक्षक

जो काम नीची श्रेणी के व्यक्ति करते हैं वही आगे चल कर ऊँची श्रेणी के व्यक्ति भी करते हैं। अब ये युवक और युवतियाँ अपने आस पास रहने वाले जानवरों से शिक्षा लेते हैं; उन में एक विशेष प्रकार का परिवर्तन तो आरंभ हो ही गया है परन्तु वे अभी समझ नहीं पाते कि इन बातों का अभिप्राय क्या है, शिश्न में दृढ़ता क्यों आती है, योनि से प्रति मास रक्त क्यों बहता है और उन दिनों और मासिक स्राव बंद होने पर उस की जननेन्द्रियों में (भग और योनि) क्यों एक विशेष प्रकार का परिवर्तन होता है; छातियाँ क्यों बढ़ती हैं और उन की रगड़ से क्यों उस युवती को एक विशेष प्रकार का ज्ञान होता है ये अभी तक उन की समझ में नहीं आया। और बातें पाठशालाओं में पढ़ाई भी जाती हैं परन्तु इन के सम्बन्ध में उन के गुरु कुछ भी नहीं कहते।

उन्होंने कुत्ते को कुतिया पर, साँड को गाय पर, गधे को गधी पर,

चिड़ोटे को चिड़िया पर बचपन से चढ़ते देखा; कुछ वर्ष पहले वे इस बात को खेल समझते थे; अब वे समझते हैं कि जो काम जानवर करते हैं उसी काम के लिये उनके अंग भी हैं; गधे का शिश्न दृढ़ हो जाता है तो युवक का भी होता है; गधा गधी के पीछे दौड़ता है, युवक को भी अपने विरोधी लिंग वाले से मेल करने की चेष्टा उत्पन्न होती है। युवती भी समझने लगती है कि उस के अंग अन्य नारी जानवरों के अंगों की भाँति ऐसे बने हैं कि उन से नर के अंग मेल करें।

ज्यों ज्यों अंग बढ़ते जाते हैं और उन में कभी कभी अधिक रक्त के कारण दृढ़ता आती जाती है यह चेष्टा बढ़ती जाती है कि जिस तरह जानवर नर नारी से मेल करते हैं वे भी एक दूसरे से मेल करें। यही चेष्टा काम है।

धीरे धीरे कभी मेल करने से पहले कभी मेल के परिणाम देखने के पश्चात् ये व्यक्ति समझ जाते हैं कि इस काम का अभिप्राय क्या है। अर्थात् वे समझ जाते हैं कि इस का मुख्य अभिप्राय सन्तानोत्पत्ति है और सन्तानोत्पत्ति ही स्वजाति रक्षा का मुख्य साधन है।

काम की चेष्टा अत्यंत प्रबल होती है

जब साँड को काम तंग करता है तो वह खाना पीना भूल जाता है और दिन भर गाय के पीछे फिरता रहता है; कुत्ते को जब मैथुन की इच्छा होती है कुतिया के पीछे फिरे जाता है; चिड़िया चिड़ोटे, मुर्गा मुर्गी की काम क्रीड़ा सभी जानते हैं। मनुष्य को जब काम चेष्टा होती है तो वह भी उस को पूरा करने का यत्न करता है। जब तक मनुष्य असभ्य रहा और उसने विवाह सम्बन्धी नियम न बनाये, सब दारोमदार शारीरिक बल पर रहता था। जो बलवान होता था उस को स्त्री शीघ्र मिल जाती थी; जो बलहीन होता था उस की चेष्टा शीघ्र पूरी

न हो सकती थी। चूँकि बल ही से स्त्री प्राप्त होती थी बल को बढ़ाना आवश्यक समझा जाता था, इस कारण यौवन आरंभ से कुछ समय पश्चात् नर नारी की खोज करता था। स्त्री का मिलना बल पर निर्भर था इस कारण छोटी आयु में मैथुन भी न होता था; आज कल भी जंगली क़ौमों में बाल मैथुन नहीं पाया जाता। चूंकि स्त्री को यह डर रहता था कि बलवान पुरुष उस को छीन ले जावेगा इस कारण वह कमज़ोर पुरुष के साथ रहना अपनी बेइज़्ज़ती समझती थी। इस का परिणाम यह होता था और अब भी है कि असभ्यता के ज़माने में बिना क़ानूनों और ईश्वर की सहायता के छोटी उम्र में शादी नहीं होती थीं और न मैथुन की इच्छा छोटी आयु में उत्पन्न होती थी। बलवान एक से अधिक स्त्रियाँ भी रख सकता था। एक से अधिक स्त्रियाँ रखना कोई पाप भी न समझा जाता था। असभ्यता के इस ज़माने में वेश्या न थीं और न इनकी कोई आवश्यकता थी।

धीरे धीरे मनुष्य सभ्य हुआ। अब स्त्री को प्राप्त करना केवल शारीरिक बल पर ही निर्भर न रहा। मनुष्य में बुद्धि और कपट, चालाकी, धोखा देना, इत्यादि बातें बढ़ीं। अब बिना शारीरिक बल हुए परन्तु और चीज़ों के होने से जैसे धन, चालाकी, चतुराई से स्त्री का प्राप्त करना संभव हो गया। चतुर लोगों ने तरह तरह के क़ानून बनाये; विवाह की प्रनाली निकाली गयी। अब मज़हब भी चलाये गये। किसी ने यह बताया कि पुरुष इतनी स्त्रियाँ एक समय में रख सकता है; किसी ने कहा कि एक समय में केवल एक ही स्त्री रक्खी जावे यदि ज़्यादा हों तो वह पुरुष पापी और दंड के योग्य समझा जावे। किसी ने कहा कि कन्या का विवाह इतनी आयु में होना चाहिये और कुमार का इतनी आयु में। किसी ने कहा कि कन्या और कुमार को कम से कम इतनी आयु तक बिना

ने कहा कि हम सब से श्रेष्ठ हैं इस कारण हम चार स्त्रियाँ रखने के अधिकारी हैं; क्षत्री को तीन रखने का अधिकार मिल गया; वैश्य को केवल दो रखने का; शूद्र बेचारे को केवल एक स्त्री रखने का अधिकार मिला। मुसलमान को एक समय में चार स्त्रियों के रखने का अधिकार मिला। ईसाई को एक समय में केवल एक ही स्त्री रखने का अधिकार मिला। इस सब का परिणाम यह हुआ कि स्त्री का प्राप्त करना मनुष्य के बनाये कानूनों और अन्य बातों पर निर्भर हो गया; बल और पुंसकता का कोई विशेष ख्याल न रहा। पहले बलवानों को स्त्रियाँ मिलती थीं, बलहीन बिना स्त्री के रहते थे या उनको रहना पड़ता था; अब दो बातें हुईं एक तो यह कि कुछ लोगों के पास ज़रूरत से अधिक स्त्रियाँ हुईं और कुछ के पास स्त्रियाँ न रहीं; दूसरी बात यह हुई कि कुछ बल-हीन और नपुंसक लोगों को स्त्रियाँ मिल गयीं और बलवान और पुंसक

अपने पास उन सामानों के न रहने से जिनसे इस समय में स्त्री प्राप्त की जा सकती है बिना स्त्रियों के रह गये। कुछ बूढ़े पुरुषों के पास जवान स्त्रियाँ आयीं; कुछ जवान हट्टे कट्टे पुरुष बिना स्त्रियों के रह गये। किसी के पास चार स्त्रियाँ, किसी के पास एक भी नहीं। रोगी के पास स्त्री है, स्वस्थ बिना स्त्री के है। कहीं कहीं मनुष्य के बनाये क़ानूनों ने मने कर दिया कि यदि विवाह के पश्चात् पति मर जावे तब वह स्त्री बिना पुरुष के रहे। कुछ पर्वाह नहीं चाहे उस समाज में सैकड़ों स्वस्थ पुरुष अविवाहित बिना स्त्रियों के हों; दूसरे मज़हब के क़ानून ने मना कर दिया कि चाहे स्त्री कितनी ही कमज़ोर और रोगी क्यों न हो उसके जीते ज़िन्दगी दूसरी स्त्री से विवाह न करना; दूसरे मज़हब के क़ानून ने मना कर दिया कि यदि पति मर जावे तो दूसरे पुरुष से विवाह न करना; एक मज़हबी क़ानून ने कहा कि यदि कन्या इतनी आयु में बढ़ जावे और उसका विवाह न किया जावे तो माँ बाप पाप के भागी होंगे। कुछ क़ानून ऐसे बने कि जिससे यदि जवान स्त्री विवाह होने से पहले किसी पुरुष से मैथुन कर ले तो वह नीच समझी जावे और उससे फिर कोई विवाह न करे; यही नहीं यदि बालिका का विवाह हो जावे और पति से संभोग करने से पहले ही या उसका मुख देखने से पहले ही उसका पति मर जावे तो वह फिर किसी व्यक्ति से विवाह न कर सके चाहे उसका यौवन और कामदेव उसे कितना ही तंग करे; यही नहीं यह क़ानून बना कि कोई व्यक्ति किसी विधवा से विवाह न करे। जब इस प्रकार के क़ानून बने तो समाज में हलचल मची; असंतुष्टता फैली; तरह तरह की कुरीतियाँ चलीं; तरह तरह के काम छिप कर किये जाने लगे। स्वजाति रक्षा का नियम अटल है, कहीं इस तुच्छ कपटी मनुष्य के टाले वह टल सकता है। नपुंसक धनी जब चाहे विवाह कर के नयी स्त्री ले आवे;

पुंसक बलवान अपनी काम चेष्टा को दमन करे; राजा की बीसियों रानियाँ अपनी काम इच्छा को रोके बैठी रहें और पचासों हृष्ट पुष्ट बलवान पुरुष बिना सन्तान पैदा करने के सामान के रहें; विधवाएँ बिना पुरुषों के तड़पें और अविवाहित पुरुषों को स्त्रियाँ प्राप्त न हों; माँ हर साल एक बच्चा पैदा करे, विधवा बेटी से ज़बरदस्ती रँडापा भुगवाया जावे; पति नपुंसक हो तो पत्नी कुछ न कहे अर्थात् बिना बैल के किये ज़िन्दगी बसर करे, पत्नी ठंडी या बांझ हो तो पति शीघ्र दूसरी स्त्री ले आवे। पति बीमार हो जावे तो पत्नी का धर्म है कि चुप चाप रहे; पत्नी गर्भिणी हो कर मैथुन के अयोग्य हो जावे तो पति किसी दूसरी स्त्री से काम निकाल ले। इन सब बातों से यह होता है कि समाज में एक प्रकार की असंतुष्टता हो जाती है; खुल्लम खुल्ला लोग क़ानून के विरुद्ध चल नहीं सकते क्योंकि दण्ड मिलने का डर है; चोरी से ये सब क़ानून तोड़े जाते हैं और इस तरह से तोड़े जाते हैं कि समाज को अत्यंत हानि होती है। चोरी से जिस स्त्री को पुरुष चाहिये वह पुरुष प्राप्त करती है; जिस पुरुष को स्त्री चाहिये वह स्त्री प्राप्त करता है। जब तक मनुष्य असभ्य था अपना पूरा शारीरिक बल प्राप्त करने के बाद स्त्री से मैथुन करने की चेष्टा करता था अब वह शरीर के पूर्ण वर्द्धन होने से पहले ही स्त्री की तलाश में रहने लगता है और उसको प्राप्त कर लेता है।

जन गिनती से पता लगता है कि इस संसार में पुरुषों की संख्या से स्त्रियों की संख्या कुछ अधिक है—बहुत भेद नहीं है। हिसाब से प्रत्येक पुरुष को एक स्त्री और प्रत्येक स्त्री को एक पुरुष मिल जाना चाहिये। यदि न मिले तो समाज में त्रुटियाँ हैं। यदि एक देश में स्त्रियाँ कम हैं तो दूसरे देश से लाई जा सकती हैं; यदि एक जाति में स्त्रियाँ कम हैं तो दूसरी जाति से ली जा सकती हैं; यदि स्त्रियाँ बहुत

हैं और पुरुष कम (जैसे महायुद्ध के बाद पुरुषों के मारे जाने से स्त्रियाँ बढ़ गयीं) तो एक पुरुष एक से अधिक स्त्रियाँ रख सकता है; यदि पुरुष बहुत हैं और स्त्रियाँ कम तो एक से अधिक पुरुषों को एक स्त्री मिल सकती है; जिस स्त्री का पति मर गया है वह दूसरे पुरुष के पास रह सकती है; जो पुरुष नपुंसक है या जिसे काम चेष्टा नहीं है वह स्त्री न रक्खे; जिस स्त्री को काम चेष्टा नहीं है उसके पति को उस की ज़िन्दगी में दूसरी स्त्री प्राप्त कर लेनी चाहिये। ये सब बातें उचित हैं और प्रकृति के नियमानुकूल हैं। यदि ये बातें हों तो किसी समाज में वेश्या की आवश्यकता नहीं है; ये बातें न होंगी तो वेश्या बिना वह समाज नहीं रह सकता।

वेश्या एक आवश्यक व्यक्ति है

यौवन प्राप्त करने के पश्चात् प्रत्येक स्वस्थ पुरुष और स्त्री को अपने विरोधी लिंग वाले से मैथुन करने की इच्छा होती है—यह एक स्वाभाविक बात है, इस में किसी का दोष नहीं। प्रकृति का नियम है कि जो काम आत्मरक्षा और स्वजाति रक्षा के लिये आवश्यक हैं उन के करने से व्यक्ति को एक विशेष प्रकार की ख़ुशी और आनन्द और सन्तुष्टता प्राप्त होती है। इन चीज़ों को प्राप्त करने के लिये वह व्यक्ति इन कामों को अवश्य करता है। जितना आवश्यक कोई काम होता है उतना ही अधिक आनन्द और उतनी ही अधिक सन्तुष्टता उस काम के करने से व्यक्ति को प्राप्त होती है। इस का परिणाम यह होता है कि हम सब लोग इस आनंद प्राप्ति के लालच से उन कामों को बड़े चाव से करते हैं, कभी कभी इस आनंद को बार बार प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। मैथुन बिना सन्तान नहीं हो सकती और सन्तान बिना स्वजाति रक्षा नहीं। यदि मैथुन से स्त्री और पुरुष दोनों को एक

स्त्री और पुरुष दोनों के लिये नियत कर सकता है; परन्तु आयु प्राप्त करने पर भी हर एक पुरुष को स्त्री और हर एक स्त्री को पुरुष प्राप्त नहीं हो सकता। बहुत से पुरुष अपने धन से, विद्या से, बल से, कुलीन होने से वा अन्य बहुत सी बातों से एक से अधिक स्त्रियाँ प्राप्त कर लेते हैं; बाज़ी स्त्रियाँ अपनी सुन्दरता से, अपने और लुभाने वाले गुणों से एक से अधिक पुरुषों को ललचा सकती हैं। मानो विवाह द्वारा एक पुरुष और एक स्त्री का सम्बन्ध हो भी गया, तो यह आवश्यक नहीं कि यह संबन्ध सदा क़ायम रहेगा; पुरुष पहले मर जावे या स्त्री पहले मर जावे; सरकार उनको दण्ड देकर एक दूसरे से उम्र भर के लिये अलग कर दे; या एक फाँसी पा जावे। अब प्रश्न यह उठता है कि जब जवान स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री न मिले और मैथुन की प्रबल इच्छा हो तो वे क्या करें? सैकड़ों आदमी दस वर्ष के लिये जेल खाने में भेज दिये जाते हैं; सैकड़ों को काला पानी हो जाता है; हज़ारों विवाहित पुरुष जीविका प्राप्त करने के लिए अपने घर को छोड़ कर सैकड़ों हज़ारों मील की दूरी पर नौकरी करते हैं और वे दो दो तीन तीन साल तक घर नहीं लौट सकते; लाखों अविवाहित और विवाहित आदमी फौज में नौकर हैं; ये सब हृष्ट पुष्ट तगड़े जवान हैं और पौष्टिक उत्तेजक भोजन प्राप्त करते हैं। जब इन लोगों का कामदेव ज़ोर करे तो ये क्या करें? हज़ारों यूरोपियन भारतवर्ष में ६—७ हज़ार मील से जीविका के लिये आते हैं; ये सब विवाहित नहीं होते इनके पास अधिक धन होता है, वे फिकरी से खूब पौष्टिक और उत्तेजक भोजन खाते हैं, मदिरा का भी खूब प्रयोग करते हैं। क्या ये सब अविवाहित हट्टे कट्टे अत्यंत उत्तेजक भोजन खाने वाले पुरुष ऋषि मुनि हैं? विवाहित यूरोपियनों को देखिये, इन की स्त्रियाँ आरंभ में भारत की गर्मी को सहन नहीं कर सकतीं; या तो बीबी ६ मास विलायत में

रहे या ६ मास पहाड़ पर रहे। क्या ये सब ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी हैं? क्या इन में से किसी को जब वे एक दूसरे से अलग रहते हैं कामदेव नहीं सताता; क्या ये सब नाचने वाले, सिनेमा और थियेटर देखने वाले, नाविल पढ़ने वाले हमेशा काम पर क़ाबू रख सकते हैं? इस संसार में नशीली चीज़ों का प्रचार हमेशा से होता चला आया है। नशे में हम बुरी और भली बातों में पहचान नहीं कर सकते; क्या सब नशे करने वाले ऋषि मुनि हैं? उपरोक्त प्रश्न ऐसे हैं कि हम को उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है; पाठक स्वयं उत्तर देकर अपने मन को समझावें। हम तो केवल इतना बतलाना चाहते हैं कि मनुष्य विचित्र और विशाल मस्तिष्क रखते हुए भी सब काम जानवरों की तरह ही करता है; जहाँ तक काम का सम्बन्ध है समाज के बनाये हुए क़ानून से थोड़ी सी रोक टोक होती है। जब पुरुष का काम ज़ोर करता है तो वह स्त्री को ढूँढ़ लेता है। और जब स्त्री का काम ज़ोर करता है वह पुरुष को ढूँढ़ लाती है। जिनका सम्बन्ध विवाह द्वारा नहीं हुआ है वे बिना विवाह के अनस्थायी सम्बन्ध कर लेते हैं; जो काम खुल्लम खुल्ला समाज के क़ानूनों के डर से नहीं होते वे छिप कर कर लिये जाते हैं। पहले एक स्त्री एक से अधिक पुरुषों से छिप कर मैथुन करती है फिर खुल्लमखुल्ला करती है; पहले एक पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से मैथुन छिप कर करता है फिर खुल्लमखुल्ला करता है। पहले एक स्त्री एक से अधिक पुरुषों से मैथुन केवल काम वश होकर करती है फिर धन और आर्थिक लाभ के लालच में; पहले पुरुष भी एक से अधिक स्त्रियों से मैथुन बिना धन के कर सकता है, फिर उस को धन खर्च करना पड़ता है। जब स्त्री धन के बदले में आप को अपनी जननेन्द्रियों से आनंद प्राप्त करने देती है, तब वह वेश्या कहलाने लगती है।

वेश्याएँ सभी सभ्यताओं में रही हैं, प्राचीन भारतवर्ष में, प्राचीन

मिश्र में, प्राचीन यूनान और रोम में वेश्याएँ थीं। आज कल इस सभ्यता में लाखों वेश्याएँ हैं। यूरोप के कुछ देशों में तो यह एक पेशा माना गया है और जिस प्रकार शराब बेचने की दूकान का लाइसेंस मिलता है उसी प्रकार वेश्याओं को लाइसेंस मिलता है, अर्थात् वेश्या का पेशा कानून विरुद्ध नहीं समझा जाता। जहाँ यह पेशा कानूनन जायज़ नहीं है जैसे इंगलैंड में, वहाँ वेश्याएँ छिप कर काम करती हैं। लंदन में इस प्रकार का छिप कर पेशा करने वाली स्त्रियों की संख्या बहुत ज़्यादा है। जापान जैसे छोटे से देश में १९०७ में कोई ५ लाख वेश्याएं थीं। अमरीका में ३-४ लाख के लगभग वेश्याएं हैं। इतिहासरचक वेश्याओं का मज़हब से भी एक घनिष्ट सम्बन्ध बतलाते हैं; प्राचीन बेबीलोन, असीरिया, रोम में वेश्याओं का उस काल के देवी देवताओं और उनके मन्दिरों से एक विशेष सम्बन्ध था जैसा कि आजकल के हिन्दुओं के देवी देवताओं से है (मन्दिरों की देवदासी); यहाँ भी परमात्मा की जान न बची—रंडीबाज़ी करी तो भी ईश्वर के नाम पर !

व्यभिचार; वेश्याएं क्यों हर समाज में रहती हैं

१. बाल-विवाह और विधवाएं

जितनी कम आयु में विवाह होगा, उतनी ही राँडें और रंडवों की संख्या अधिक होगी। इसमें मतभेद हो ही नहीं सकता। बहुत से रोग अधिकतर बचपन में ही होते हैं जैसे ख़सरा, चेचक, बच्चों के दस्त; इनमे मृत्यु भी अकसर हो जाती है। यदि इन रोगों से बच गये तो और जीवित रहने की आशा हो जाती है; बंगाल में लाखों विधवाएं ऐसी हैं कि जिनके पति १० वर्ष की आयु या इससे कम में मर गये; यदि दस वर्ष तक इन लड़कों की शादी न हुई होती तो इतनी विधवाएं न बनतीं। जब बालक बचपन की मुसीबतों और

रोगों से बच कर १८-२० वर्ष तक पहुँचता है तो यह आशा हो जाती है कि अब यह व्यक्ति मनुष्य की औसत आयु तक पहुँचेगा। इस कारण १८-२० वर्ष से जितनी कम आयु में विवाह होगा उतनी ही अधिक विधवाएं बनने की संभावना होगी। रांडों का वेश्याओं की संख्या से घनिष्ट सम्बन्ध है। जितनी कम आयु में कन्या विधवा बनेगी उतना ही कठिन उसके लिये इस संसार में अनेक प्रकार के लालचों से बचना हो जावेगा। याद रक्खो भारत की सब नारियाँ योगिनी नहीं हैं; यदि जांच पड़ताल की जावे तो भारत में छिपी वेश्याओं की संख्या खुले पेशा करने वालों से कम न मिलेगी। वैवाहिक सम्बन्ध के लिए उचित आयु स्त्रियों में १६-१८ वर्ष, पुरुषों में १८-२५ वर्ष है; जो देर में विवाह करना चाहें वे ऐसा कर सकते हैं। इससे कम आयु में विवाह करना उचित नहीं।

२. विधवा विवाह न होना

जिस जवान स्त्री ने अभी मैथुन के मज़े नहीं चखे वह यदि चाहे और उसके आस पास रहने वाले लोग भी यत्न करें तो थोड़े बहुत समय तक पवित्र जीवन बसर कर सकती है; परन्तु जो जवान स्त्री मैथुन के मज़े ले चुकी है उसके लिये अपने काम को पूरे तौर से बस में रखना अर्थात् अपनी काम चेष्टाओं को दमन कर देना अत्यन्त कठिन है। इस चेष्टा का होना और फिर उसको दबाना हर एक व्यक्ति के लिये अच्छा भी नहीं; ऐसा करने से कई प्रकार के मानसिक रोग भी पैदा हो जाते हैं। यदि विधवा अपनी चेष्टा न दबा सके—सब की सब तो पूर्ण इच्छा बल और मज़बूत आत्मिक बल वाली हैं ही नहीं—तो उसका परिणाम क्या होगा? छिप कर मैथुन करना, हमल गिराना, आत्म हत्या करना या वेश्या बनना।

जो क़ौम विधवा विवाह की विरोधी है वह बहुत समय तक जीवित नहीं रह सकती विशेष कर जब उस क़ौम में बाल विवाह और वृद्ध विवाह की कुरीतियाँ भी हों। ऐसी क़ौमों में वेश्याओं की संख्या प्रति दिन बढ़ती जावेगी और वेश्या से होने वाले रोग भी बढ़ते जावेंगे। जवान विधवाएँ तो शीघ्र बिगड़ जाती हैं; बाल विधवाएँ जवान होने पर बिगड़ती हैं।

३. बड़ी आयु में विवाह होना; जो कारण बड़ी आयु में विवाह करने के हैं वे वेश्याओं की संख्या बढ़ने के भी हैं

जब कन्या और कुमार यौवन प्राप्त करलें तो उचित तो यह है कि वे विवाह करलें। यदि काम तो ज़ोर करे परन्तु पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष विवाह के लिये न मिले तो दो बातें होंगी—या तो ये सब जवान पुरुष और स्त्री योगी, ऋषि, मुनि बन जावें और वे काम पर लात मारें या वे चोरी से मेल करें; पहली बात असम्भव है; दूसरी रोज़ होती है। यूरोप और अमरीका में विवाहित्त जीवन कई कारणों से अत्यंत मँहगा है; इस कारण बहुत लोगों को अविवाहित रहना पड़ता है; अकसर स्त्रियाँ और पुरुष २५-३०-३५-४० वर्ष तक अविवाहित रहते हैं। क्या ये सब धर्मात्मा और ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियाँ हैं? यूरोप में और अन्य ईसाई सभ्यता वाले देशों में अविवाहित अवस्था में मैथुन के मज़े बहुत वर्षों तक चख कर ही लोग विवाह करते हैं। लाखों कुमारियाँ वेश्याओं का जीवन व्यतीत करती हैं; लाखों कुमार बिना विवाह के मैथुन के मज़े लूटते हैं। यदि इन कुमारियों की शादी १८-२५ वर्ष में हो जाती तो उनको छिप कर मैथुन न करना पड़ता। कम आयु की शादी और बड़ी आयु की शादी दोनों ही ख़राब हैं।

४. कमज़ोर इच्छा बल (आत्मिक बल); मैथुन को आनन्द प्राप्ति का साधन समझना

मैथुन का मुख्य अभिप्राय तो सन्तानोत्पत्ति ही है। यदि मनुष्य इस बात को याद रक्खे और नशों के प्रयोग से अपने इच्छा बल को कमज़ोर न करे तो वेश्याओं की संख्या अवश्य कम हो जावें। अविवाहित अवस्था में नशे करना और कामोत्तेजक भोजन का खाना; विवाहित अवस्था में ऐसे समय में नशों द्वारा या कामोत्तेजक भोजनों का सेवन करना जब अपनी स्त्री या अपना पुरुष अपने पास न हो या स्त्री गर्भिन हो; कामोत्तेजक पुस्तकें पढ़ना, चित्र देखना, सिनेमा और थियेटर देखना, गाना सुनना; ये सब बातें ऐसी हैं कि जिससे इनसे पुरुष स्त्री की ओर स्त्री पुरुष की तलाश करने लगती हैं। पहले मैथुन छिप कर होता है फिर खुल्लम खुल्ला होने लगता है।

५. विवाहित पुरुषों में मैथुन ठीक तौर से न होना

जब मैथुन से स्त्री और पुरुष दोनों संतुष्ट न हों और इतने संतुष्ट न हों कि कुछ समय तक उनको फिर मैथुन करने की इच्छा न हो तो समझना चाहिए कि कुछ गड़बड़ है; इन व्यक्तियों को मैथुन करना नहीं आता; या इनमें से एक या दोनों खुदगर्ज़ हैं। आमतौर से अपराध पुरुष का ही होता है; वह बहुत जल्दी करता है और शीघ्र वीर्य त्याग कर अपना मतलब पूरा करता है; वीर्य निकलते ही शिश्न शिथिल हो जाता है और फिर पुरुष स्त्री से अलग हो जाता है; अक्सर ऐसा होता है कि इस समय तक स्त्री को कोई आनन्द प्राप्त नहीं हुआ। स्त्री बेबसी की दशा में रहती है; वह असन्तुष्ट रहती है और अपने दिल में कुढ़ती है; लज्जा के मारे कुछ मुँह से कह नहीं सकती। दो चार बार स्त्री इस बात को सहती

है; यदि मैथुन से उसको कोई आनन्द प्राप्त नहीं होता तो दो बातें होती हैं; एक तो वह मैथुन से घृणा करने लगती है; दूसरे वह अपने दिल में समझने लगती है कि उसके पति में पुरुषत्व कम है; जब तक वह घर की चार दीवारों में बन्द है उस वक्त तक सिवाय मानसिक कष्ट के और इस कष्ट से उत्पन्न होने वाले रोगों के शायद कोई और हानि न हो; परन्तु यदि वह बाहर निकलती है और अन्य स्त्रियों और पुरुषों की संगत में बैठती है तो कभी न कभी उसका जी ऐसे पुरुष से मैथुन करने को चाह जाता है जो इसको सन्तुष्ट कर सके; एक बार आन टूटी, सदा के लिये लज्जा गयी।

याद रखने की बात यह है कि स्त्री स्वाभाविक तौर से कुछ पछेती होती है अर्थात् उसकी काम इच्छा पुरुष के मुक़ाबले में देर में उभरती है। पुरुष को चाहिये कि मैथुन आरम्भ करने से पहले यह निश्चित कर ले कि उसकी स्त्री तैयार है या नहीं; उसको चाहिये कि उसको छाती से चिपटा कर, कौली भर कर, छाती (स्तन) मल कर, चुम्बन करके, उसके भग और कामाद्रि को सहरा कर, चूतड़ और जाँघों को गुदगुदा कर, हथेलियों को मल कर पहले उभार ले। दो चार बार के तजुर्बे से पुरुष यह शीघ्र पहचान सकता है कि स्त्री तैय्यार हो गयी या नहीं जब निश्चय हो जावे कि तैयार है या हो चली है तब मैथुन आरम्भ करे। मैथुन को खतम भी तब करना चाहिये कि जब स्त्री सन्तुष्ट हो चली हो; जिस प्रकार मैथुन के अंत में पुरुष को अत्यंत आनन्द आता है उसी प्रकार स्त्री को भी आना चाहिये, जब नहीं आता तब उस को सन्तुष्टता नहीं होती और वह चाहती है कि मैथुन होता रहे या फ़िर आरंभ हो। सन्तुष्टतादायक मैथुन के अंत में स्त्री का भगांकुर उछलता है; उस में उसी प्रकार की उछलन और कंपन होती है जैसी कि पुरुष के शिश्न में; जब तक यह नहीं होती स्त्रियाँ आम तौर से

असन्तुष्ट रहती है। यह ग़लत बात है कि स्त्री मैथुनी क्रिया में कोई भाग नहीं लेती या उस को कोई भाग लेने की आवश्यकता नहीं है और उस को शिथिल और अचल पड़ा रहना चाहिये। जब स्त्री और पुरुष दोनों मैथुन में परिश्रम करते हैं तब ही दोनों को आनन्द आता है; जब स्त्री मुर्दे की तरह चुप चाप पड़ी रहती है तब पुरुष भी पूरा आनंद प्राप्त नहीं करता और कभी कभी कुसंगत में पड़ कर ऐसी स्त्रियों की तलाश में रहता है जो उस को पूरा आनन्द दे सकें। एक बार आन टूटी और सदा के लिये काम बिगड़ा। हम को कई आदमियों ने बतलाया है कि वेश्या से जो आनन्द उन को मिलता है वह उन की विवाहित स्त्री से नहीं मिलता। वेश्या पुरुष को प्रसन्न करना जानती है, स्त्री नहीं।

कोई कोई स्त्रियां शीघ्र उभरने वाली होती हैं; ये शीघ्र उभर जाती हैं और मनुष्य के वीर्य निकलने से पहले ही सन्तुष्ट हो जाती हैं; ऐसी दशा में भी गड़बड़ होती है; पुरुष का चित्त प्रसन्न नहीं होता। कभी कभी स्त्री का जी ही नहीं चाहता और वह मैथुन कराना नहीं चाहती; कभी कभी पुरुष बहुत कामी होता है और स्त्री कम कामी; कभी कभी स्त्री अत्यंत कामी होती है और पुरुष बहुत कम कामी। इन सब दशाओं में पुरुष दूसरी स्त्री की और स्त्री दूसरे पुरुष की खोज किया करती है या कर सकती है।

६. अनमेल विवाह

पुरुष में मैथुन शक्ति और मैथुन इच्छा १८-४० वर्ष के बीच में खूब रहती है; ४० वर्ष के बाद घटने लगती है; ५० वर्ष के बाद इच्छा चाहे घटे चाहे न घटे परन्तु शक्ति अवश्य कम होने लगती है; जननेन्द्रियाँ विशेष कर शिश्न दुर्बल हो जाता है। स्त्रियों में मैथुन की

इच्छा १६—२५ वर्ष में खूब रहती है फिर घटने लगती है; शक्ति का दारोमदार इस बात पर होता है कि उन के कितने बच्चे हो चुके हैं और उन का स्वास्थ्य कैसा है; ज्यों ज्यों सन्तान होती जाती है त्यों त्यों उन की मैथुनी शक्ति घटती जाती है। ४५ वर्ष के पश्चात् स्त्रियों का मासिक धर्म बंद हो जाता है अब उन को मैथुन की उतनी पर्वाह नहीं होती जितनी उस से पहले होती थी। बार बार बच्चे होने से उन की योनि भी चौड़ी और ढीली पड़ जाती है जिस के कारण वह मैथुन के समय शिश्न को ठीक तौर पर ग्रहण नहीं कर सकती; यदि उस का पति अभी खूब तगड़ा है तो उस को अब अपनी पत्नी में उतना आनन्द नहीं आता जितना पहले आता था। स्त्रियों में मैथुन की इच्छा और शक्ति आयु के हिसाब से पुरुष की अपेक्षा पहले आरंभ होती है और पहले ही ख़तम भी होती है विशेष कर जब समय समय पर सन्तान भी होती जावे। देखा गया है कि पुरुष में थोड़ी बहुत इच्छा और शक्ति ५५-६० और कभी कभी इस से भी अधिक आयु में रहती है; परन्तु यह नहीं होता कि ५०-६५ वर्ष का पुरुष १६-२०-२५ वर्ष की स्त्री को मैथुन द्वारा सन्तुष्ट कर सके; इसी प्रकार २०-२५ वर्ष का जवान पुरुष ४०-४५ वर्ष की स्त्री से प्रसन्न नहीं हो सकता। जब बड़ी आयु वाला पुरुष छोटी आयु वाली स्त्री से विवाह करेगा तो संभव है कि थोड़े दिनों तक दोनों व्यक्ति कुछ खुश रहें; परन्तु ज्यों ज्यों पुरुष बूढ़ा होता जावेगा त्यों त्यों स्त्री उससे अप्रसन्न रहने लगेगी; यदि बूढ़े पति मर गये तो जवान स्त्री की जो दशा होती है वह उस के दिल से ही पूछी जा सकती है। ऐसी स्त्रियाँ अव्वल तो पति के जीते हुए भी पर पुरुष की तलाश में रहती हैं; पति के मरने पर तो वे कभी न कभी कामवश हो कर दूसरे पुरुष से फँस जाती हैं या उस को फाँस लेती हैं। जब कम आयु वाला पुरुष अधिक आयु वाली स्त्री से विवाह

करता है, तो स्त्री शीघ्र बूढ़ी और मैथुन के अयोग्य हो जावेगी, तब
वह जवान पुरुष को सन्तुष्ट न कर सकेगी, ऐसी दशा में पुरुष अन्य
स्त्रियों की तलाश में रहेगा। उपरोक्त से विदित है कि अनमेल विवाह
वेश्यागमन का एक कारण अवश्य है।

इस लिये विवाह हमेशा मेल वाला होना चाहिये। १६-२० वर्ष
की स्त्री के लिये २०-३० वर्ष का पुरुष होना चाहिये (स्त्रियाँ पुरुषों से
पहले जवान होती हैं उन की इन्द्रियाँ भी पुरुषों से २-३ वर्ष पहले पक्की
हो जाती हैं); ३५-४० वर्ष की स्त्री के लिये ४०-४५ वर्ष का पुरुष
होना चाहिये। ५०-५५ वर्ष के पुरुषों को ४०-४५ वर्ष की स्त्रियों से
ही विवाह करना चाहिये। साधारणतः ४५ वर्ष के बाद स्त्री सन्तान नहीं
जन सकती; भारतवर्ष में ५५ वर्ष में पुरुष में भी मैथुन का अधिक
सामर्थ्य नहीं रहता। हमारी राय में इस आयु में पुरुष स्त्रियों को
विवाह न करना चाहिये। यह भी याद रखना चाहिये कि बुढ़ापे की
सन्तान खराब होती है; इस आयु में सन्तान पैदा करने की इच्छा
करना ठीक नहीं; हाँ दिल बहलाने के लिये स्त्री पुरुष का संग
अनुचित नहीं।

७. मज़हबी क़ानून

ईसाई मतानुसार ईसाई लोग एक विवाहित स्त्री के जीवित रहते
हुए दूसरी स्त्री से मैथुन नहीं कर सकते, और न एक बीबी के जिन्दा
रहते हुए दूसरी स्त्री से ब्याह कर सकते हैं; विवाहित स्त्री भी अपने
पति के जीवित रहते हुए किसी दूसरे पुरुष से मैथुन नहीं कर सकती।
यह नियम बहुत उत्तम है इस में कोई सन्देह नहीं; यदि इस का
पालन हो तो बहुत सी कुरीतियाँ दूर हो जावें; परन्तु यह नियम
बनाने वालों ने मनुष्य को अन्य जानवरों से अलग मान लिया है जो
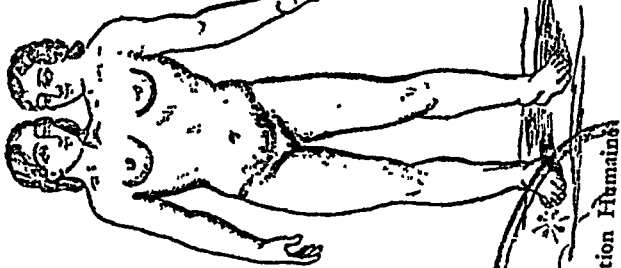
After Wikowski

चित्र २३३

चित्र २३४

From Witkowski's La Generation Humaine

चित्र २३६ अद्भुत बालक
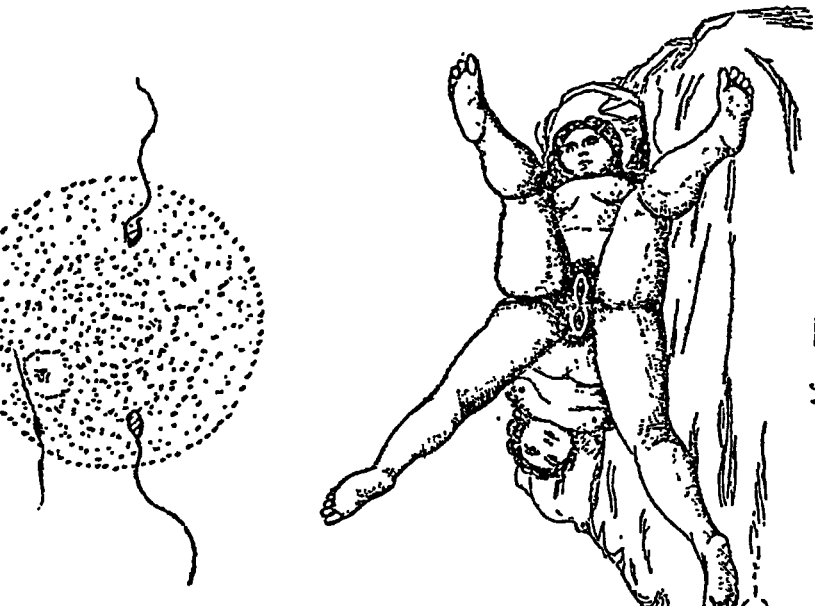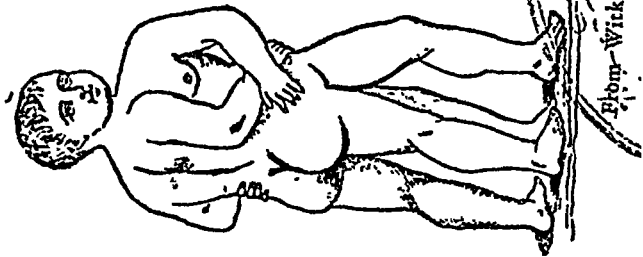
चित्र २३७ अद्भुत बालक

... by permission
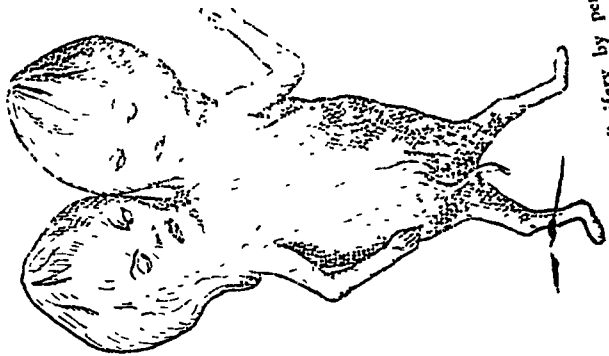
...pical Diseases, by permission

एक असत्य बात है। इसी कारण इस नियम का सब से अधिक उल्लंघन ईसाई लोग ही करते हैं। यदि ध्यान से देखा जावे तो इस में सन्देह नहीं कि जितना व्यभिचार ईसाई देशों में है उतना अईसाई देशों में नहीं। इस्लाम आज्ञा देता है कि पुरुष एक समय में चार स्त्रियाँ तक रख सकता है। हिन्दुओं के हिसाब से एक पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से विवाह कर सकता है यदि आवश्यकता हो*। बहुत कम हिन्दू ऐसे हैं जो एक समय में एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करते हैं; बहुत कम हिन्दू ऐसे हैं जो अपनी स्त्री के रहते हुए अन्य स्त्रियों से मैथुन करते हैं। परन्तु ईसाई देशों में ऐसे विवाहित पुरुष बहुत मिलेंगे जो मौक़ा पाने पर अन्य स्त्रियों से मैथुन करने को तैयार रहते हैं; ऐसी स्त्रियाँ भी वहाँ बहुत हैं जो मौक़ा पाने पर अन्य पुरुषों से मैथुन करने को बुरा नहीं समझतीं। कहते हैं वे ईसाई हैं परन्तु चोरी से ईसाई मत के विरुद्ध काम करते हैं; और चूंकि बहुत लोग ऐसा काम करते हैं उस काम को कोई बहुत बुरा भी नहीं कहता। यही नहीं अविवाहित स्त्री पुरुषों का मेल ईसाई सभ्यता में सब जगह बहुत मामूली बात है! इस सब बात का कारण क्या? ईसाई नियम सृष्टि के नियमों के विरुद्ध है। दोनों व्यक्तियों के लिंग अलग अलग बनाये गये हैं, यह न ईसा के लिये, न मूसा के लिये, न किसी और पैग़म्बर या अवतार के लिये; उस का प्रयोजन केवल एक है—सन्तान उत्पन्न करना। जब तक स्त्री और पुरुष मैथुन कर सकते हैं उन में प्यार बना रहता है; जब इस काम में बाधा पड़ती है, प्यार कम हो जाता है।

---

*जैसे स्त्री पगली हो, या बांझ हो इत्यादि

यदि पुरुष बलवान है, स्वस्थ है, धनी है और उस को किसी बात की फिक्र नहीं है, सन्तान के पालन पोषण का और शिक्षा का प्रबन्ध भली प्रकार कर सकता है तो आवश्यकता हो तो एक से अधिक औरतें क्यों न रक्खे। यह आवश्यक नहीं कि वह इन सब से शादी करे। एक से विवाह करे; जब वह स्त्री किसी कारण से जैसे अधिक देर तक रहने वाला रोग, या अच्छा न होने वाला रोग या किसी और कारण से मैथुन के अयोग्य हो जावे तो वह दूसरी स्त्री रख सकता है परन्तु शर्त यह होनी चाहिये कि वह स्त्री आयु में बहुत छोटी न हो; ऐसी स्त्री आमतौर से वेश्या मिलेगी; इस विधि से यह होगा कि वेश्या स्त्रियाँ अपना जीवन अच्छी तरह से व्यतीत कर सकेंगी; इस स्त्री से जो सन्तान होगी वह उसी मनुष्य की सन्तान कहलावेगी और उस के पालन पोषण और शिक्षा का भार उसी पुरुष पर होगा। इस से फायदा यह होगा कि यह मनुष्य बजाये चोरी छिपे में अपनी काम चेष्टा पूरा करने के खुलम खुला जिम्मेदारी के साथ दूसरे का पालन करते हुए जीवन व्यतीत कर सकेगा। हिन्दू मत तो एक से अधिक शादी करने की आज्ञा देता है—यहाँ बदचलनी इतनी नहीं है जितनी ईसाई मज़हब में, परन्तु इस आज्ञा का पालन जैसे मैंने ऊपर बतलाया है वैसे नहीं होता—यहाँ बिना ज़रूरत भी शादी कर ली जाती है।

अमरीका वाले अपने घमंड के मारे किसी दूसरे को अपने से ऊँचा नहीं समझते और क्यों न ऐसा करें—उन के हाथ में धन है और शरीर में बल है। बलवान् जो कहता है वही ठीक है चाहे वह कितना ही कपटी और बदचलन क्यों न हो। अमरीका वाले बहुविवाह करने वाले हिन्दुओं को नीच समझते हैं। ७० चूहे खा कर बिल्ली चली हज को ! ये लोग अपने घर की हालत को देखें और फिर दूसरों को बुरा कहें।

अमरीका वह देश है कि जहाँ लाखों स्त्रियाँ और पुरुष विना विवाह किये ही मैथुन का मज़ा उड़ाते हैं। एक पुरुष न मालूम कितनी स्त्रियों से और एक स्त्री न मालूम कितने पुरुषों से विवाह करने से पहले मैथुन कर चुकता है। हज़ारों स्त्रियों और पुरुषों को विवाह से पहले ही सोज़ाक और आतशक हो चुकते हैं। लाखों गर्भ हर साल गिराये जाते हैं; लाखों बच्चों को अपने बाप का पता नहीं। जिस प्रकार मुरग़ी के बच्चे को पता नहीं कि वह कौन मुर्ग़े के वीर्य से उत्पन्न हुआ है वैसे ही इस अभिमानी कपटी हिन्दुओं को बुरा कहने वाली क़ौम में बहुत व्यक्तियों को पता नहीं कि उन का बाप कौन है। जो हालत अमरीका की है वही क़रीब क़रीब अन्य ईसाई देशों की है। ये लोग व्यभिचार करते हैं और वह भी चोरी से, हिन्दू यदि एक से अधिक स्त्रियों को घर में रखता है तो खुल्लमखुल्ला क़ानूनन; और न हमल गिराता है न सन्तान को बे-बाप के रहने देता है।

क्या एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करना अच्छा है

नहीं। जहाँ तक हो सके एक समय में एक ही स्त्री रक्खे। परन्तु जब रहा न जावे और धन की कमी न हो तो बजाय वेश्यागमन करने के एक से अधिक स्त्रियाँ रख सकता है। यह पाप नहीं है यदि यह काम चोरी से न हो और होने वाली संतान के पालन पोषण का यथोचित प्रबन्ध हो।

८. कुछ स्त्रियों में स्वाभाविक तौर से काम की इच्छा अत्यन्त होती है। उन की इच्छा कभी पूरी ही नहीं होती; वे हमेशा असन्तुष्ट रहती हैं। कुछ स्त्रियाँ आज़ादी से रहना चाहती हैं; वे एक पुरुष की बँधुवा हो कर रहना पसंद नहीं करतीं। कुछ स्त्रियाँ विना किसी रोक टोक के और विना किसी परिश्रम के अनेक प्रकार के सुख भोगना चाहती हैं।

ऐसी स्त्रियाँ वेश्या का पेशा अख़्यार कर लेती हैं। वेश्याओं ने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्होंने ये पेशा क्यों किया।

९. कुछ कौमें हैं (जैसे पहाड़ों पर) जिन में वेश्या का पेशा परंपरा से होता चला आया है। यह कुशिक्षा का परिणाम है।

१०. कुछ पुरुषों को हमेशा नयी और कुँआरी स्त्रियों से मैथुन करने का शौक़ होता है विशेष कर राजाओं महाराजाओं को। धन का लालच देकर वे स्त्रियों को बिगाड़ते हैं। जब इन से तबियत भर जाती है तो उन को अलग कर देते हैं। इन स्त्रियों के लिये जो आम तौर से जवान होती हैं कोई और चारा नहीं रह जाता सिवाय इसके कि वे वेश्या का पेशा अख़्यार करें। कुछ पुरुषों में काम की इच्छा अत्यन्त होती है और एक स्त्री उस को पूरा नहीं कर सकती; अकसर वेश्याएँ ही इस इच्छा को पूरी कर पाती हैं।

वेश्या गमन कैसे कम हो सकता है

उपरोक्त से विदित है कि वेश्याओं की संख्या और वेश्या गमन कम करने की विधियाँ ये हैं:—

१. बाल विवाह बंद करो

२. बहुत बड़ी आयु के विवाह बंद करो

३. विधवा को विवाह करने की आज्ञा दो

४. शराब और अन्य नशीली चीज़ें जो बुद्धि को बिगाड़ती हैं त्यागो

५. यदि आवश्यकता हो तो एक से अधिक बीबियाँ रक्खो

६. मैथुन विधि पूर्वक करो

७. फौज और पुलिस के सिपाहियों को समय समय पर छुट्टी देने का प्रबन्ध करो जिस से वे बजाये वेश्याओं के पास जाने के अपनी स्त्रियों के पास हो आया करें।

८. शिक्षा प्रणाली को ठीक करो। ऐसी शिक्षा हो जिस से आत्मिक वल (इच्छा वल) वढ़े और लोग अपने काम पर अधिक से अधिक क़ाबू कर सकें। याद रक्खो सिनेमा और थियटरों के कामोत्तेजक गाने और दृश्य अविवाहित व्यक्तियों को वेश्यागमन की शिक्षा देते हैं।

अध्याय १९

पैदायशी रोग

१. कुरचना और अपूर्ण रचना और अति रचना

चित्र २२७ में हमने समझाया है कि भ्रूण कैसे बनता है। एक शुक्राणु (जो पुरुष देता है) और एक डिम्ब (जो स्त्री देती है) के मेल से एक गर्भ (अर्थात् एक व्यक्ति) बनता है। आरंभ में गर्भ एक सेल होती है। एक सेल से दो सेल और दो से चार—इस प्रकार प्राणि बढ़ता है। कितना ही बड़ा प्राणि क्यों न हो (हाथी हो या मनुष्य), आरम्भ में वह एक सेल ही था जो बिना अणुवीक्षण के दिखाई नहीं देती।

एक स्वस्थ शुक्राणु और एक स्वस्थ डिम्ब के मिलने से यदि बढ़ने और पोषण के सामान ठीक हों, एक व्यक्ति बनता है। गर्भ का पोषण स्त्री के गर्भाशय में होता है। गर्भाशय खेत की भूमि समान है। अच्छे फल के लिये जिन सामानों की आवश्यकता है उन्हीं सामानों की अच्छा व्यक्ति बनने के लिये भी है। बीज अच्छा होना चाहिये; बीज बनता है शुक्राणु और डिम्ब के मेल से; शुक्राणु आते हैं पुरुष से;

चित्र २२७
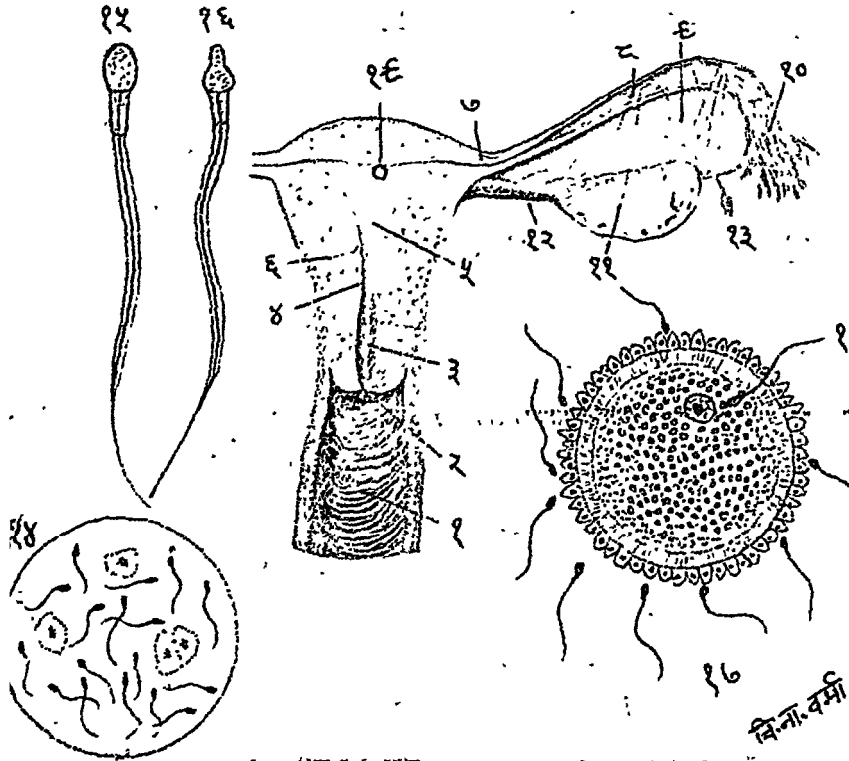
१=योनि; २=गर्भाशय का मुख; ३=गर्भाशय की ग्रीवा; ४=गर्भाशय का ऊपर का मुख; ५=गर्भाशय; ६=गर्भाशय की दीवार; ७=डिम्ब प्रनाली का आरम्भ; ८=डिम्ब प्रनाली; ९=गर्भाशय का पार्श्विक वंधन; १०=डिम्ब प्रनाली का वह भाग जो डिम्ब ग्रन्थि से मिला रहता है; ११=डिम्ब ग्रन्थि; १२=डिम्ब ग्रन्थि का वंधन; १४=शुक्राणु जैसे कि वीर्य को अणुवीक्षण द्वारा देखने से दिखाई देते है; १५=शुक्राणु बढ़ा कर दिखाया गया—ऊपरी पृष्ठ; १६=शुक्राणु पहलु से दिखाया गया, सिर नोकीला है; १७=मैथुन द्वारा वीर्य योनि में गिरता है ; कभी कभी गर्भाशय उस को ऊपर खींच लेता है। बहुत से शुक्राणु डिम्ब से मेल करने का उद्योग करते हैं; १८=केवल एक ही शुक्राणु डिम्ब में घुस पाता है। इसके और डिम्ब के मेल से गर्भ बनता है। १९=गर्भ जो गर्भाशय की दीवार में चिपक रहा है।

चित्र २२८ सेल विभाजन
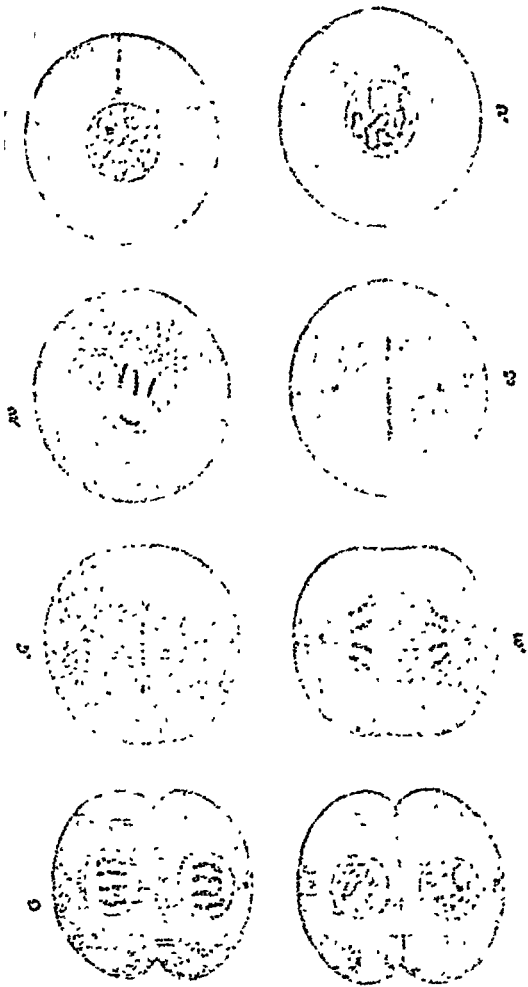
After Leche

एक सेल से दो, दो से चार और चार से आठ इत्यादि सेलें बन
हैं। इस चित्र में सेल की मींगी की विचित्र रचना भी दर्शायी ग...

विषय गंभीर है इस कारण हम और कुछ न लिखेंगे। नं०३ में जो शालाकाएं हैं इन को अंग्रेजी मे क्रोमोसोम (chromosome) कहते हैं। शुक्राणु और डिम्ब के मेल से जो भ्रूण सेल बनी उसके क्रोमोसोम पर ही भविष्य व्यक्ति के समस्त जीवन चरित्र का दारोमदार है। हमने क्रोमोसोम का नाम कर्माणु रक्खा है। यदि पुरुष रोगी है तो शुक्राणु बलिष्ठ न होंगे। डिम्ब आता है स्त्री से; यदि स्त्री रोगी है तो डिम्ब अच्छा न होगा। जब शुक्राणु और डिम्ब दोनों ही ख़राब होंगे या दोनों में से एक ख़राब होगा तो इन दोनों के मेल से जो बीज बनेगा (गर्भ सेल) वह अच्छा न होगा। बीज बन गया, इसका पोषण होता है गर्भाशय में। जैसे बाज़ी भूमि ऊसर होती है वैसे गर्भाशय की कला भी कभी कभी ऐसी होती है कि उसमें बीज पनपने नहीं पाता, भ्रूण उसमें चिपकने ही नहीं पाता या चिपकता है तो दो तीन मास में गिर जाता है (भ्रूणपात या असक़ाते हमल); या आगे चलकर छठे सातवें या आठवें मास में अपूर्ण बालक पैदा होता है। यही नहीं भूमि अर्थात् गर्भाशय में कोई दोष न हो; सिंचाई में दोष हो सकता है; खेत की ज़मीन बढ़िया हो और बीज भी अच्छा हो, बीज जम आवे आप पानी न दीजिये अर्थात् सिंचाई न कीजिये, पौधा मुर्झा जावेगा ; या पानी भी दीजिये पाला या ओले पड़ जावें, अधिक बारिश हो जावे या लू लग जावे या कोई जानवर चर जावे; आग लग जावे सब मेहनत बेकार हो जाती है। इसी प्रकार गर्भ ठहरने के पश्चात् स्त्री का स्वास्थ्य बिगड़ जावे, उसका रक्त कम हो जावे, उसको क्षय जैसा कोई रोग हो जावे, उसको रंज और फ़िक्र रहे तो गर्भ का पोषण भली प्रकार न होगा ; वह कभी कभी मर भी जाता है या कमज़ोर बच्चा पैदा होगा जो इस संसार के संग्राम में न ठहर सकेगा। उपरोक्त से विदित है कि जब स्वस्थ बच्चा पैदा हो तो उसको बड़े भाग्य की बात समझना चाहिये।

एक काल में एक से अधिक बच्चे भी पैदा हो सकते हैं

बहुत से जानवरों में अकसर एक समय में एक से अधिक गर्भ ठहरा करते हैं और एक से अधिक बच्चे माता के पेट से निकलते हैं (चूहा, कुतिया, सूरी, बकरी, बिल्ली, इत्यादि)।

चित्र २२९ बहुसन्तान
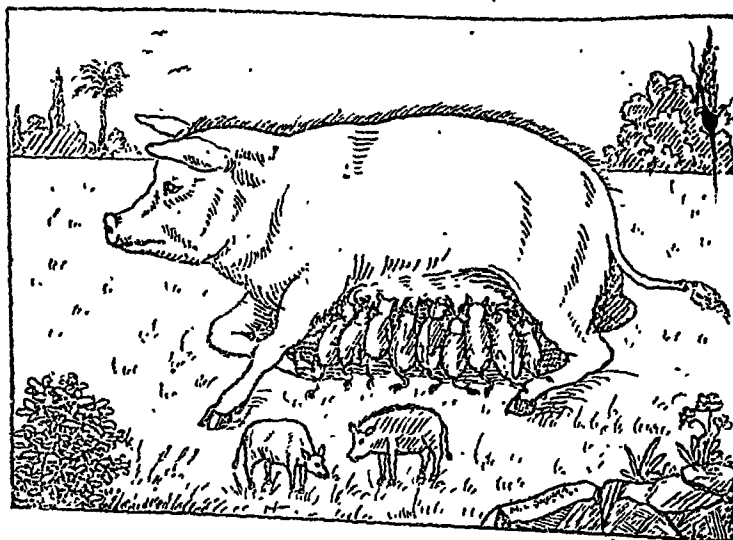
जब एक समय में एक से अधिक शुक्राणु एक से अधिक डिम्बों से अलग अलग मिल जाते हैं तो उसका परिणाम एक से अधिक गर्भों का बनना होता है (चित्र २३१)। मनुष्य जाति में एक समय में दो

चित्र २३७ अद्भुत बालक

Castellani and Chalmer's Manual of Tropical Diseases, by permission

मनुष्य के ही अद्भुत और जुड़े हुए बालक नहीं होते हैं। समस्त सृष्टि में अद्भुत प्राणि होते हैं। यह चित्र २३९ भैंस के बच्चे का है। दो सिर हैं और ८ पैर हैं।

चित्र २३९ अद्भुत भैंस
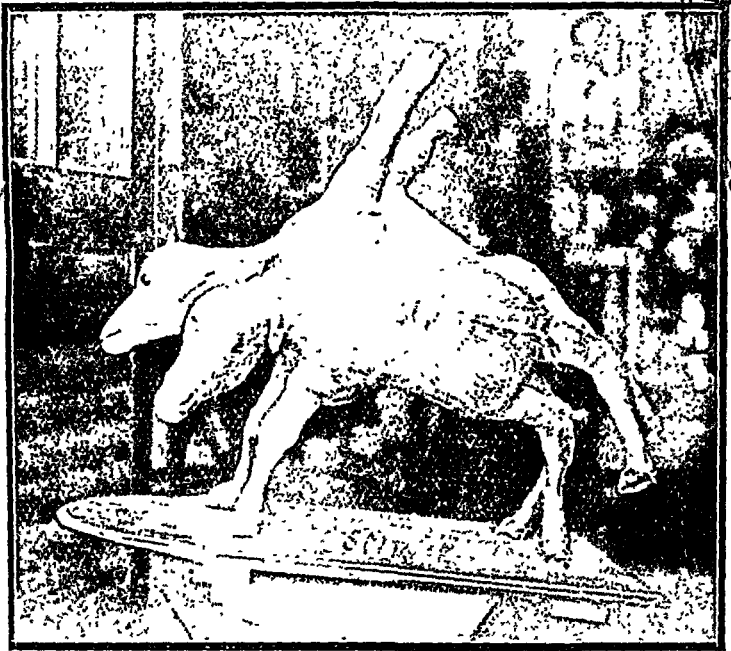
Allahabad Municipal Museum (From The Leader)

क्या जुड़े हुए बालक जी सकते हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर चित्र २४०, २४१, २४२ से मिलता है। वे जी सकते हैं और बहुत वर्षों तक जी सकते हैं। यही नहीं वे सभी काम

By courtesy of Sir John Bland-Sutton Bt. from B. M. J.

वायोलेट—डैजी हिल्टन १८ वर्ष की आयु में। ये सन् १९०९ में ब्राइटन में पैदा हुई। ये त्रिकास्थि के स्थान पर जुड़ी हुई हैं। और दोनों के एक ही मल-द्वार है बाह्य जननेन्द्रियाँ अलग अलग हैं। ये शायद अभी जीवित हैं।

चित्र २४१   श्यामी संयुक्त यमल

By courtesy of Sir John Bland-Sutton Bt. from B. M. J.

श्यामी यमल—चंग और एंग १८ वर्ष की आयु में

कर सकते हैं। उनका विवाह भी हो सकता है और वे मैथुन भी कर सकते हैं।

जुड़े हुए और अद्भुत बच्चों के अतिरिक्त अपूर्ण रचना के बालक उत्पन्न होते हैं। इन में कुछ अंग बनने को रह जाते हैं। कुछ की चिकित्सा शल्य विद्या द्वारा हो सकती है; बहुधा रोग असाध्य होते हैं। हम अपूर्ण अंगों के कुछ चित्र देते हैं।

कटा हुआ होंठ

ऊपर का होंठ कटा हुआ रहता है, कभी कम कटा हुआ कभी अधिक;

चित्र २४३ अपूर्ण ओष्ठ

चित्र २४४ कटा होंठ और फटा तालु
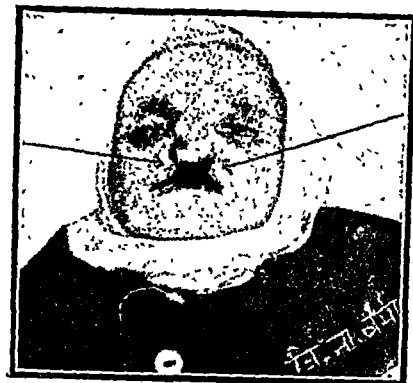
इस कन्या का ऊपर का होंठ दोनों ओर से कटा हुआ था; तालु भी फटा था। मृत्यु हो गया।
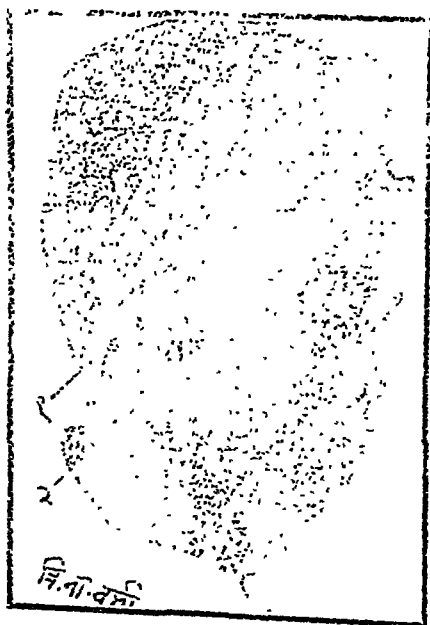
का कान) अपूर्ण है और उस के स्थान में तीन टुकड़े खाल के हैं इन के बीच में छोटा सा छिद्र है। इस कान से सुनाई भी बहुत कम देता है। कोई इलाज नहीं।

अपूर्ण मूत्र मार्ग

कभी कभी मूत्र मार्ग अपूर्ण रह जाता है। बंद नाली की जगह खुली नाली रह जाती है; अकसर नाली नीचे से खुली हुई देखी जाती है; कभी कभी नाली ऊपर से खुली रहती है। कभी कभी शिश्न

चित्र २४६ अपूर्ण मूत्र मार्ग

चित्र २४७ अपूर्ण मूत्र मार्ग

है।(२)। जब अंड पेट से बाहर होता है तो शल्य शास्त्री उसको ठीक स्थान में ऑपरेशन कर के रख सकता है।

अंगुलियों का जुड़ा रहना

चित्र २४९ जुड़ी हुई अंगुलियाँ

बीच की और चौथी अंगुलियाँ त्वचा द्वारा जुड़ी हुई हैं। ऑपरेशन द्वारा ये अंगुलियाँ अलग की जा सकती हैं।

पैरों का मुड़ा हुआ और टेढ़ा होना

चित्र २५० मुड़े पैर
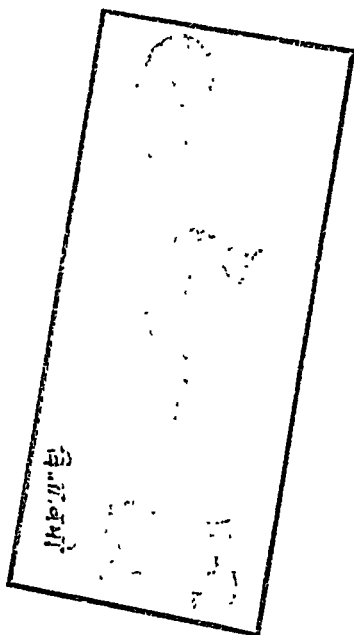
पैर कई प्रकार से मुड़े रहते हैं; कभी एड़ी उठी रहती है; पंजे का अंगूठे की ओर का किनारा मुड़ा रहता है ; कभी कनिष्ठा ओर का किनारा उठा होता है इत्यादि। यदि पैदा होते ही का इलाज किया जावे तो शल्य-शास्त्री कुछ ठीक कर सकता है।

हाथ पैरों में अस्थियों का और अंगुलियों का कम होना

चित्र २५१

इस लड़के (चित्र २५१) की आयु ७ वर्ष की थी जब हमने इसका फोटो लिया।

दहिने पैर में केवल अंगूठा और कनिष्ठा अंगुली हैं।

१. दाहिनी कुहनी अचल है। दाहिनी अग्रबाहु ३" लम्बी है और

उसमें दो छोटी छोटी अस्थियाँ हैं। कुहनी के नीचे एक जोड़ और है और फिर एक अस्थि मालूम होती है जिसमें दो छोटी छोटी अस्थियाँ लगी हैं।

२. बाईं ओर भुजा के नीचे एक ठुंठ सा निकला है और एक अँगुली है जिसमें दो पोवें हैं। अँगुली दो इंच लम्बी है।

३. बायें पैर की रचना भी ठीक नहीं है।

चित्र २५४

देखिये, यहाँ दाहिनी ऊर्ध्वशाखा में अग्रबाहु या प्रकोष्ठ नहीं के बराबर है।

चित्र २५५

यहाँ दाहिनी ऊर्ध्वशाखा में भुजा बहुत छोटी है। १ का १′ से मुकावला करो। दाहिना प्रकोष्ठ (अग्रवाहु) (२) भी वाई (२′) से छोटा है।

चित्र २५६

इस औरत के दाहिने पैर का वाएँ से मुकावला करो। यह पैर वाएँ से करीब करीव $१\frac{१}{२}$ गुना है; सब अस्थियाँ लम्बी और मोटी हैं।

घुटनों की विचित्र आकृति

चित्र २०७ पाली नहीं है

इस बच्चे की टाँग बजाय पीछे को मुड़ने के आगे को मुड़ती है। घुटनों में जो पाली अस्थि होती है वह है ही नहीं। घुटने पीछे को हैं।

अंग कभी कभी अधिक होते हैं

स्तन (छातियाँ) कभी कभी दो से अधिक होते हैं (स्त्री और पुरुष दोनों में) ये अधिक छातियाँ या तो असली के आस पास हो

चित्र २५८ बहु स्तन

From Witkowski's La Generation Humaine

हैं या कहीं और । इस स्त्री के एक छाती जाँघ में है । एक बच्चा को दूध पी रहा है, एक जाँघ की छाती में ।

चित्र २५१   छः अंगुलियाँ

हाथ में दो अंगूठे या दो कनिष्ठाएँ अक्सर देखा जाता है । कभी क बजाय २० अंगुलियों के २४ अंगुलियाँ होती हैं ।

अंगों का बड़ा हो जाना

चित्र २६०

From Witkowski's La Generation Humaine

इस स्त्री के स्तन इतने लम्बे हैं कि वह अपने स्तनों को पीछे लटकाकर अपने बच्चे को दूध पिला सकती है।
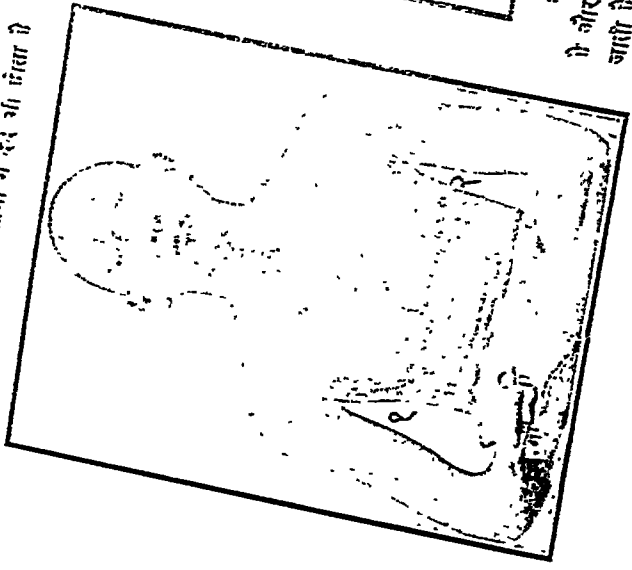
जल मस्तिष्क (Hydrocephalus)

चित्र २६३

यह कन्या पाँच वर्ष की है ; यह अभी अपने सहारे न बैठ सकती है न खड़ी हो सकती है, बोल भी नहीं सकती । शिर कितना बड़ा है। गर्भाशय ही में

रोग हो जाने से इसके मस्तिष्क के कोष्ठों में जल अधिक इकट्ठा हो गया ; मस्तिष्क फैल कर बड़ा हो गया है ; इसके साथ साथ खोपड़ी की पतली हड्डियाँ भी फैल गयी हैं और खोपड़ी बड़ी हो गयी है। रोग असाध्य है।

अपूर्ण कर्पर और मस्तिष्कावरण की रसौली

Meningo-encephalocele

चित्र २९४
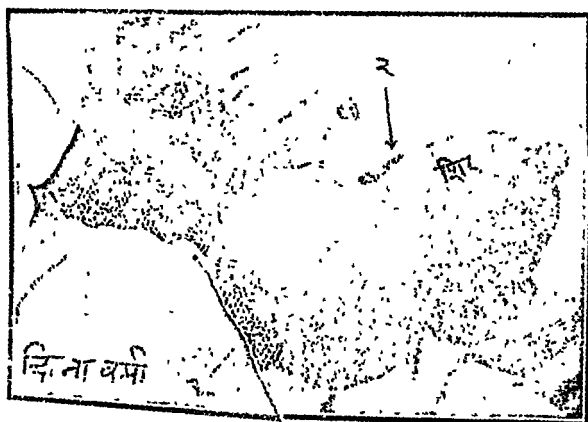
तीन मास का शिशु है ; जितना बड़ा उसका शिर है, उससे कुछ बड़ी रसौली उसके शिर के पीछे है। (१) इसमें से कोई १५ छटांक जलीय द्रव निकला ; २० दिन पीछे फिर रसौली उतनी ही बड़ी हो गयी ; फिर कोई १९ छटांक पानी निकला। मस्तिष्क की झिल्लियाँ खोपड़ी के पिछले भाग से बाहर निकल आई और उनकी थैली में तरल भर गया। सम्भव है शिशु कुछ दिन और जीवित रह कर मर गया होगा। रोग असाध्य है।

अपूर्ण रीढ़ के कारण रसौली (Meningo-myelocele)

चित्र २६५
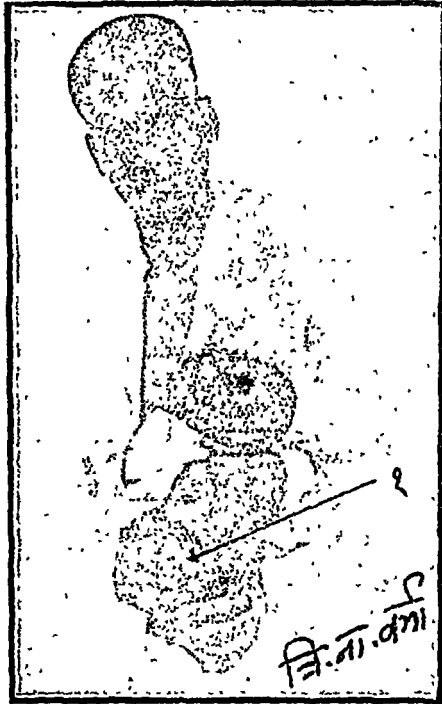
८, ९ मास की कन्या के कटि देश में एक गुल्म है। यहाँ पर रीढ़ की अस्थियाँ अच्छी तरह नहीं जुड़ी हैं इस कारण सुषुम्ना के आवरण इस थैली में आ गये हैं। ऐसे बच्चों के पैर कमजोर रहते हैं और बच्चे बहुत जल्द मर जाते हैं। रोग असाध्य है।

अध्याय २०

रसौली या बतौली; अर्बुद (Tumours)

शरीर के विविध भागों में विविध प्रकार की गाँठें बन जाती हैं। इन को अर्बुद या रसौली या बतौली कहते हैं। जहाँ तक जीवन का सम्बन्ध है रसौलियाँ दो प्रकार की होती हैं :—

१. वे जिन से जान संकट में नहीं रहती अर्थात् जिन के कारण मृत्यु होने का भय नहीं होता। अपने भार से या कुस्थान होने से दुःख देती हैं या बदसूरती पैदा करती हैं। इनकी चिकित्सा सहज है। शल्यशास्त्री इन को ऑपरेशन करके निकाल देता है।

२. वे जो व्यक्ति के जीवन को संकटमय बना देती हैं और जिन के द्वारा मृत्यु हो जाती है।

रसौलियों के कारण

इस प्रश्न का उत्तर अभी कोई नहीं दे सका। कई सिद्धांत हैं। असंकटमय रसौलियों के विषय में हमारा अपना विचार तो यह है कि रसौलियाँ शुक्राणु और डिम्ब दोनों या एक की खराबियों से बनती हैं; हमारा विचार यह भी है कि जब डिम्ब में दो शुक्राणु घुस जाते हैं

तो एक शुक्राणु तो पूरे तौर से डिम्ब में मिल जाता है और उसके मेल से तो पूरा शरीर बनता है और दूसरे शुक्राणु का अंश ही उस डिम्ब में समाता है इस अंश से ही गुल्म या रसौली बना करती हैं।

रसौलियों की चिकित्सा

असंकटमय रसौलियाँ काट कर निकाली जा सकती हैं और वे फिर नहीं होतीं। कुछ संकटमय रसौलियाँ प्रारंभिक अवस्था में काटी जा सकती हैं परन्तु उनके फिर होने का डर रहता है; इस प्रकार की रसौलियों की चिकित्सा एक्स-रे, रेडियम और डायाथर्मी* द्वारा की जाती है परन्तु हमेशा कामयाबी नहीं होती। संकटमय रसौलियों को यमराज का निमंत्रण ही समझना चाहिये।

रसौलियों की रचना और उनकी नामकरण विधि

शरीर में जो तंतु हैं सारी रसौलियाँ उन्हीं से बनती हैं और जिस तंतु से वे बनती हैं बहुधा उसी तंतु से उसका नाम पड़ जाता है। हमने रसौली का प्रत्यय—मया† माना है। यदि रसौली वसा से बनी है तो उसका नाम वसामया होगा। यदि रसौली सौत्रिक तंतु से बनी है तो उसका नाम सूत्रमया होगा। इसी प्रकार मांसमया; ग्रन्थि-मया; अस्थिमया; कारटिलेजमया; नाड़ीमया इत्यादि। कभी कभी रसौली एक से अधिक तंतु से बनती है जैसे सूत्र-ग्रंथिमया; सूत्र-

*Diathermy.

†अंग्रेज़ी में प्रत्यय—oma होता है जैसे Lipoma; Fibroma; Adenoma. etc.

मांसमया। संकटमय रसौलियाँ दो प्रकार की होती हैं उनको अंग्रेज़ी में सार्कोमा और कारसिनोमा (कैन्सर) कहते हैं।

हम नीचे रसौलियों के कुछ चित्र देते हैं।

असंकटमय रसौलियाँ

वसामया (Lipoma)

चित्र २६६ वसामया

चित्र २६७ वसामया

चित्र २६८ वसामया
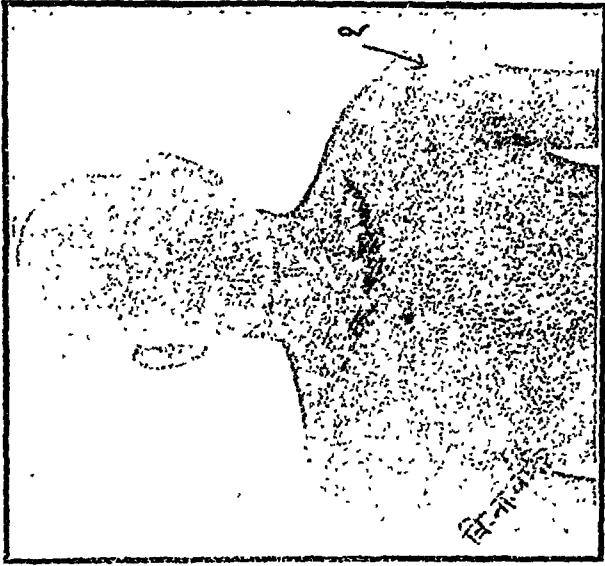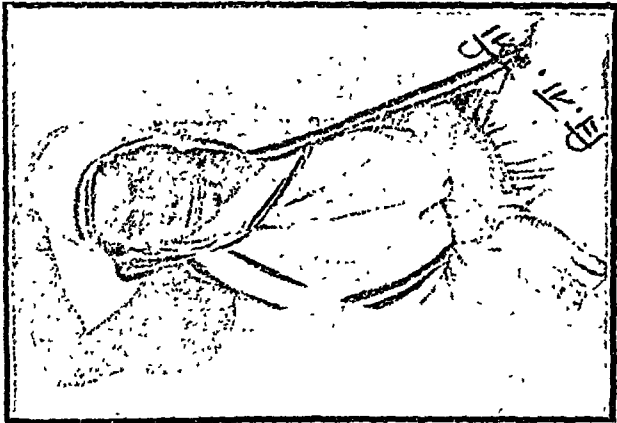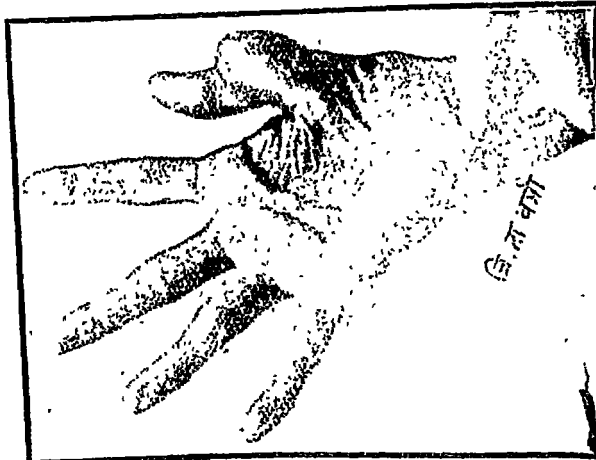
सूत्रमया

चित्र २६९ सूत्रमया

चित्र २७० सूत्रमया
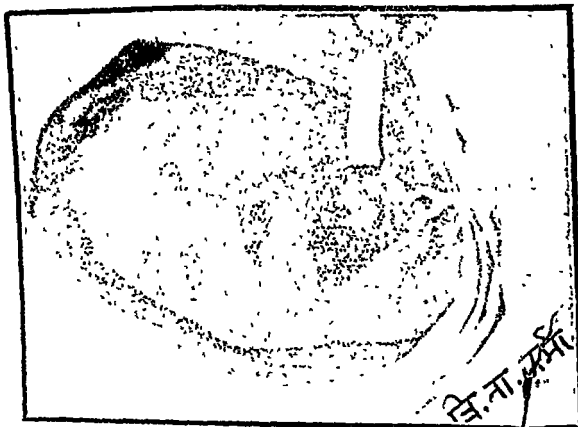
चित्र २७१ सूत्रमया

चित्र २७२ सूत्रमया

चित्र २७३ माँ यशोदा
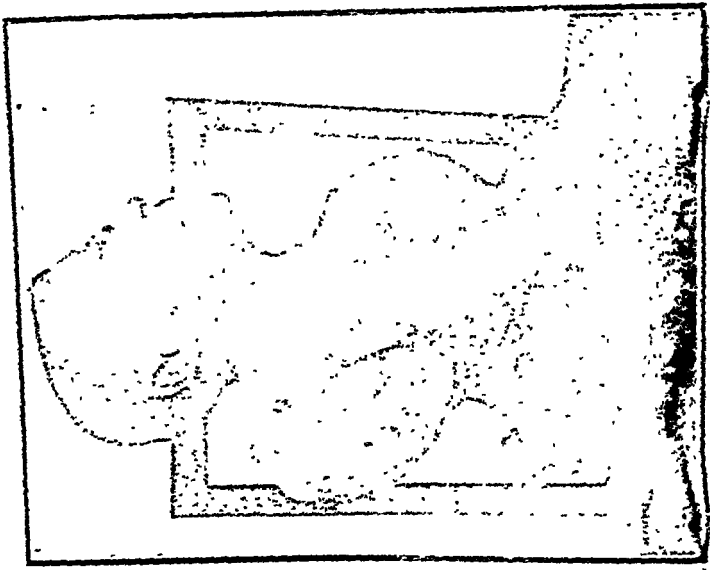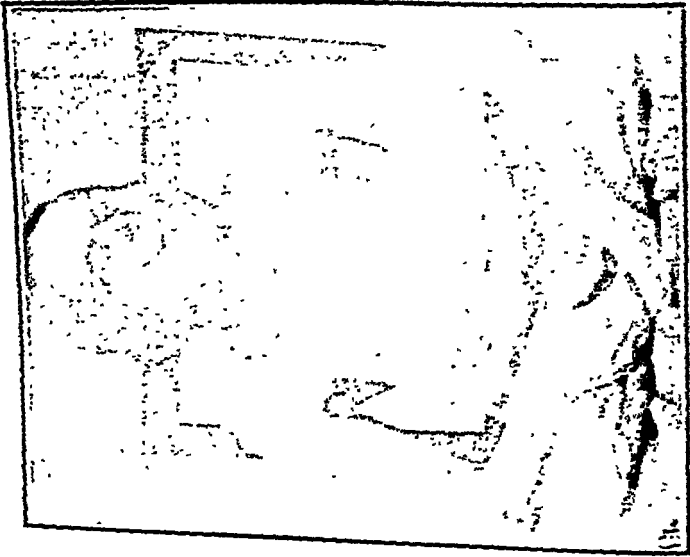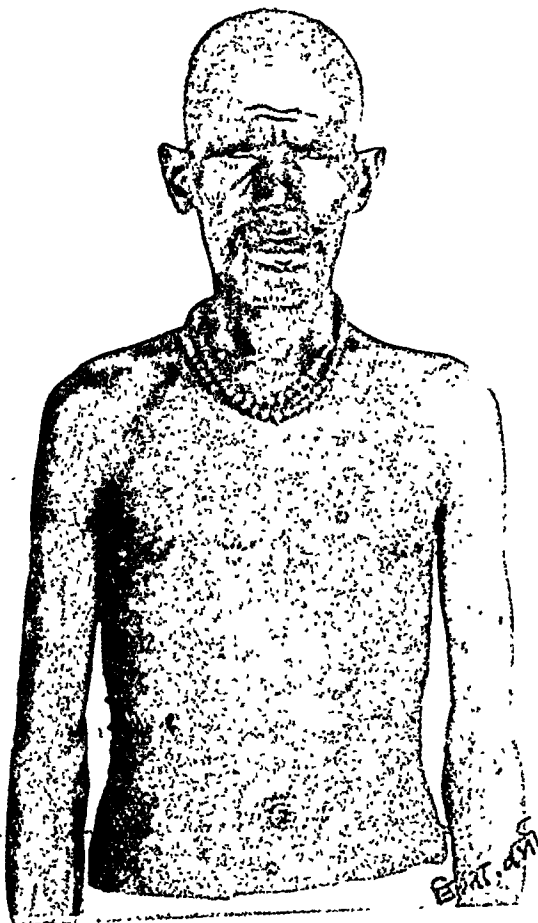
चित्र २७४

चित्र २७५

चित्र २७३, २७४, २७५ में शरीर में सैकड़ों छोटी और बड़ी रसौलियाँ हैं। ये सब सूत्रमया हैं, अंगरेजी में "मौलस्कम फाइब्रोसम Molluscum Fibrosum कहते हैं।

रक्तमया (Naevus; Haemangioma)

चित्र २७६ रक्तमया
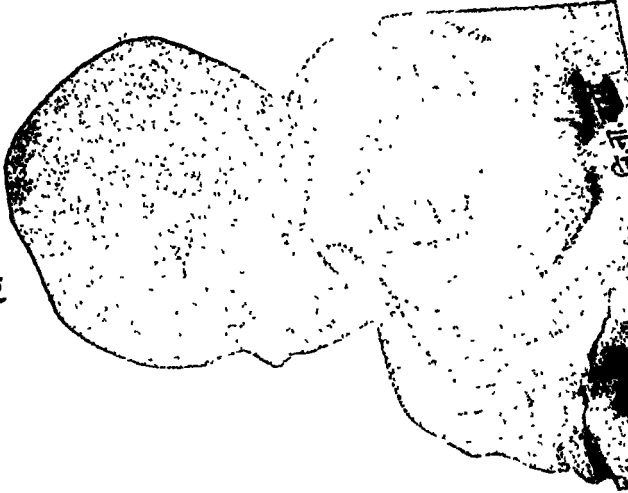
चित्र २७७ रक्तमया

ग्रन्थिमया (Adenoma)

चित्र २७८ ग्रन्थिमया

चित्र २७९ तैलमया

चित्र २८० कोपाकार रसौली

चित्र २८१ डर्मॉयड सिस्ट

कोषाकार रसौलियाँ

इस प्रकार की रसौलियाँ बहुत देखने में आती हैं। ये त्वचा की चिकनाईदार वस्तु बनाने वाली ग्रन्थियों के मुँह बंद हो जाने से बनती हैं। इनमें चिकनाईदार वस्तु निकलती है। कभी कभी ये रसौलियाँ छोटी मटर की बराबर होती हैं कभी बहुत बड़ी हो जाती हैं।

कोष जैसी रसौलियाँ और प्रकार की भी होती हैं। इनमें चिकनाईदार वस्तु के अतिरिक्त कभी कभी और चीज़ें भी होती हैं जैसे नाखून, बाल, कारटिलेज, अस्थि, दाँत इत्यादि। ये रसौलियाँ केवल

त्वचा के नीचे ही नहीं पाई जाती, और स्थानों में जैसे डिम्ब ग्रन्थि इत्यादि के सम्बन्ध में भी पाई जाती हैं। चित्र २८१, २८२, २८३ इसी प्रकार की कोष जैसी रसौलियों के फोटो हैं। ये अकसर त्वचा के नीचे अस्थि से चिपकी रहती हैं। अंग्रेज़ी में ये "डर्मौयड सिस्ट Dermoid cysts" कहलाती हैं।

चित्र २८३ डर्मौयड सिस्ट

चित्र २८२ डर्मौयड सिस्ट

और प्रकार की रसौलियाँ

रसौलियाँ अस्थि की, कारटिलेज की और मांस की भी बनी होती

हैं ; नाड़ियों के सम्बन्ध में भी रसौलियाँ बन जाती हैं। चित्र २८४, २८५, २८६ जो रसौली दिखाई गयी है उसको जब हमने काट कर निकाला तो वह एक अस्थि से बना हुआ एक कोष था जिसमें बहुत से

चित्र २८४

अस्थि के परदे थे जिन से यह रसौली एकुकोणी हो गयी थी। यह रसौली नीचे के जबड़े की हड्डी से जुड़ी हुई थी। चित्र २८४, २८५ रसौली काटने के पहले के चित्र हैं; चित्र २८६ आपरेशन करने के एक साल बाद का चित्र है।

चित्र २८६
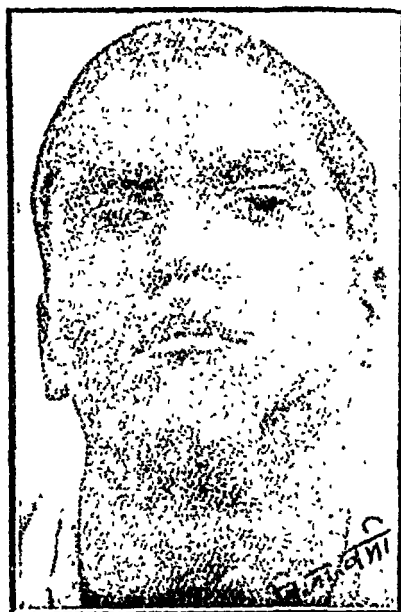
संकटमय या मोहलिक रसौलियाँ

कैन्सर

यह घातक रसौली भारत वर्ष में उतनी नहीं पाई जाती जितनी कि युरोप और अमरीका (ईसाई देशों में) में। उन देशों में लाखों मनुष्य इस रोग से मरते हैं। यह रोग आमतौर से त्वचा में और

श्लैष्मिक कलाओं में होता है; मुँह से लेकर गुदा तक जितना पथ है उस के भीतरी पृष्ठ पर श्लैष्मिक कला रहती है। रोग मुँह में होता है, जिह्वा पर होता है, अन्न प्रनाली में, आमाशय में और क्षुद्र और बृहत् अंत्र में, और गुदा में। हर एक स्थान में कुछ भिन्न भिन्न लक्षण होते हैं स्वरयंत्र में भी होता है; और और अंगों में भी हो सकता है। शिश्न का रोग भारत में काफ़ी पाया जाता है। स्त्रियों में स्तन और गर्भाशय का रोग भी बहुत होता है। जहाँ कहीं भी हो कुछ समय पश्चात् स्लैष्मिक कला में ज़ख़्म बन जाता है जिस से खून बहने लगता है; यदि बाहर हो तो ज़ख़्म शीघ्र बदबूदार हो जाता है। आस पास की लसीका ग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं और उन में भी कैन्सर हो जाता है। व्यक्ति कितना ही खाये, वह पनपता नहीं; क्षीणता और रक्त हीनता दोनों ही बातें इस रोग के बड़े लक्षण हैं। धीरे धीरे रोगी अत्यंत दुःख उठा कर मरता है। ज़बान में होता है भोजन नहीं खाया जाता; अन्नप्रनाली में होता है भोजन निगला ही नहीं जाता; आमाशय में होता है भोजन पचता ही नहीं, कै होती है या मुँह से रक्त की कै हो जाती है; आँतों में होता है बदहज़्मी के अतिरिक्त दस्त और कभी कभी पाख़ाने का बंध पड़ जाता है। स्लैष्मिक के ज़ख़्म से दर्द भी बहुत होता है। कोई औषधि काम नहीं देती। रोग आम तौर से ४० वर्ष की आयु के बाद होता है। जवानों का रोग नहीं है।

स्तन का कैन्सर

बहुधा ४० वर्ष से अधिक आयु वाली स्त्रियों को होता है परन्तु कभी कभी पुरुष के स्तन में भी रोग हो जाता है (देखो चित्र २८८)

चित्र २८८ स्तन का कैन्सर (पुरुष में)

चित्र २८७ स्तन का कैन्सर (स्त्री में)
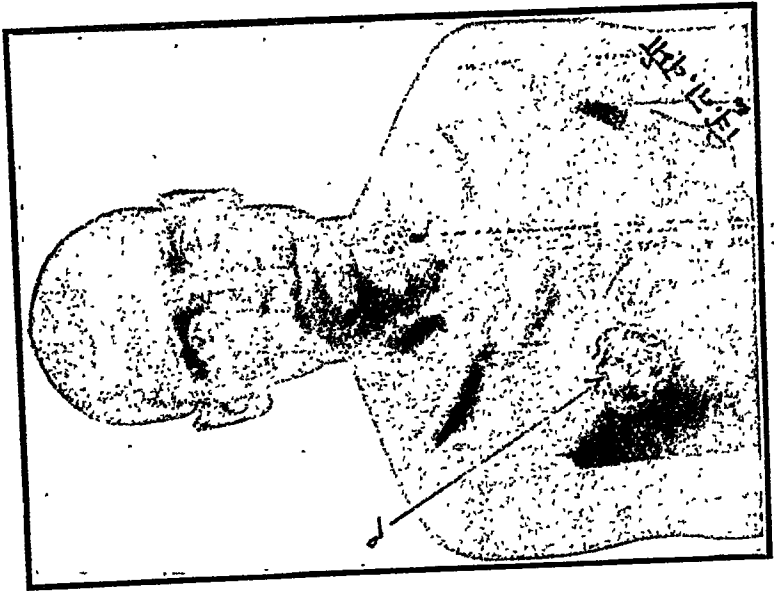
जिह्वा का कैन्सर

राल हर वक्त टपकती रहती है। मुँह से दुर्गंध आती है। जिह्वा की गति कम हो जाती है। गरदन में गिल्टियाँ निकल आती हैं और वे भी फूट जाती हैं। रोगी कुछ खा ही नहीं सकता। दुख उठा कर मर जाता है।

चित्र २८९ जिह्वा का कैन्सर
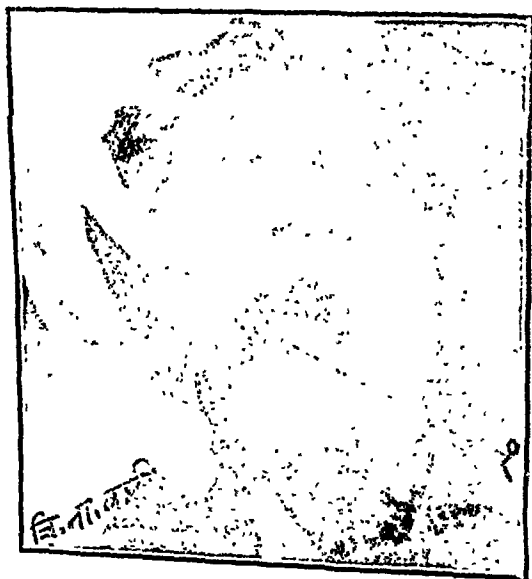
पलक और आँखों का कैन्सर

चित्र २९० चित्र २९१
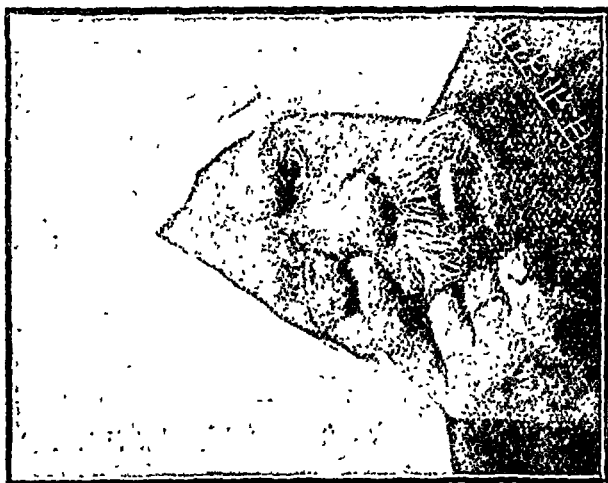
जिस रोगी का फोटो चित्र २९० में है वह रसौली निकलने के ८ मास पीछे मर गया। रसौली काटी गयी, एक्स-रे से चिकित्सा हुई, फिर भी ज़ख़्म अच्छा न हुआ, ज़ख़्म पूरी आँख पर फैल गया और कुछ दिनों पीछे रोगी को इस मृत्यु लोक से उठा ले गया रोडेन्ट अलसर
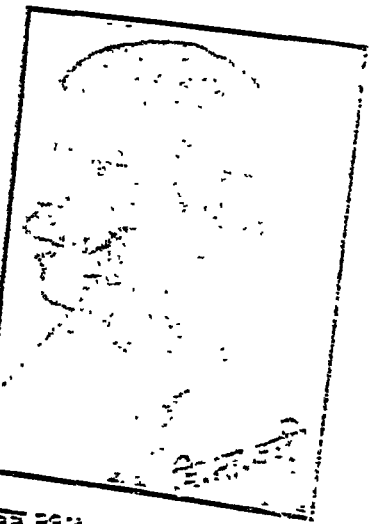
चित्र २९६ एक प्रकार का त्वचा का कैन्सर (Rodent ulcer)

(Rodent ulcer) भी एक प्रकार का कैन्सर ही माना जाता है । ज़ख्म त्वचा में आरंभ होता है और चारों ओर फैलता जाता है और तंतुओं का नाश करता है । मृत्यु इतनी जल्दी नहीं होती जितनी और प्रकार के कैन्सर द्वारा ।

यदि आरंभ होते ही रेडियम से या शस्त्र द्वारा चिकित्सा न हो तो इस का परिणाम भी मृत्यु है। हम कुछ चित्र देते हैं। यह रोग बचपन में और जवानी में होता है।

चित्र २९८ कूल्हे का सारकोमा

चित्र २९९ प्रगंडास्थि और कंधे का सारकोमा
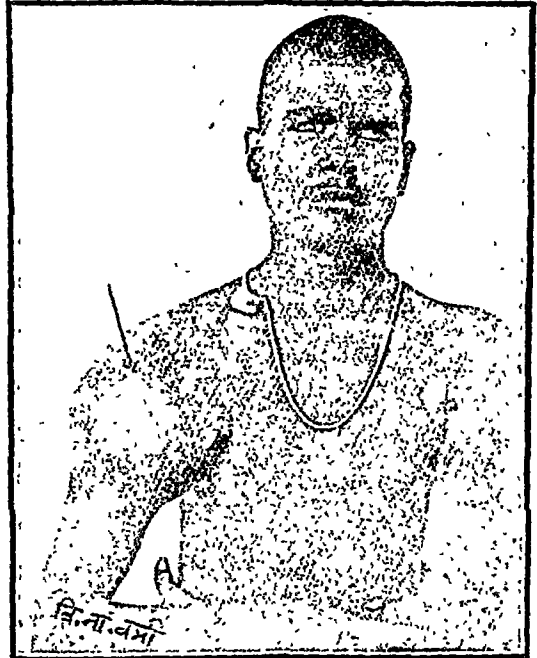
इसकी ऊर्ध्व शाखा काट डाली गई थी और इस व्यक्ति की जान बच गयी

चित्र ३०३ नाक का सारकोमा

यह सारकोमा ऊर्ध्व हन्वस्थि में आरंभ हुआ और फैलते फैलते नाक में आ निकला। इस फोटो के समय रोगी असाध्य था।

चित्र ३०२ ग्रीवा का सारकोमा

(Lympho-Sarcoma)

चित्र ३०४ सारकोमा

यह सारकोमा नाक में है और तालू को भी घेर लिया है। पीछे कान
ओर भी फैला है, कान से खून और मवाद आता है।

चित्र ३०५ सारकोमा
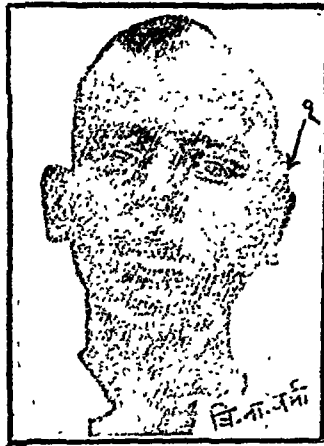
यह रोग गहराई में है। बिना सारकोमा का ख्याल किये ऑपरेशन कर के निकालने की कोशिश की गयी थी; जाँच से सारकोमा मालूम हुआ। रोग चारों ओर फैला। रोगी मर गया होगा।

अध्याय २१

प्रनाली विहीन ग्रन्थियों सम्बन्धी रोग

हमारे शरीर में कुछ ग्रन्थियां ऐसी हैं कि इन में प्रनालियां नहीं हैं; इन का रस सीधा रक्त या लसीका में पहुंच जाता है; कुछ ग्रन्थियां दो प्रकार के रस बनाती हैं। एक वह जो इन को प्रनाली द्वारा किसी विशेष स्थान में पहुँचता है; दूसरा वह जो उस प्रनाली द्वारा नहीं निकलता प्रत्युत सीधा रक्त या लसीका में पहुँच जाता है। ये सीधे रक्त या लसीका में पहुँच जाने वाले रस शरीर के वर्द्धन और स्वास्थ्य के लिये अत्यावश्यक पदार्थ हैं; इन के कम होने से या न होने से रोग हो जाते हैं; यदि किसी ग्रन्थि का रस आवश्यकता से अधिक बने तब भी गड़ बड़ हो जाती है। ये ग्रन्थियां एक दूसरे की सहकारी हैं जब सहकारिता नहीं रहती आपत्ति आती है।

१. चुल्लिका ग्रन्थि (Thyroid)

यह ग्रन्थि गर्दन में स्वरयंत्र के सामने रहती है कन्याओं में यौवन प्राप्ति के समय यह ग्रन्थि कुछ बढ़ जाया करती है; यह स्वाभाविक बात है। इस की चिकित्सा की कोई आवश्यकता नहीं है।

पिट्यूइटरी
चुल्लिका ग्रन्थि
थाइमस
उपवृक्क
क्लोम
डिम्ब ग्रन्थि
अंड
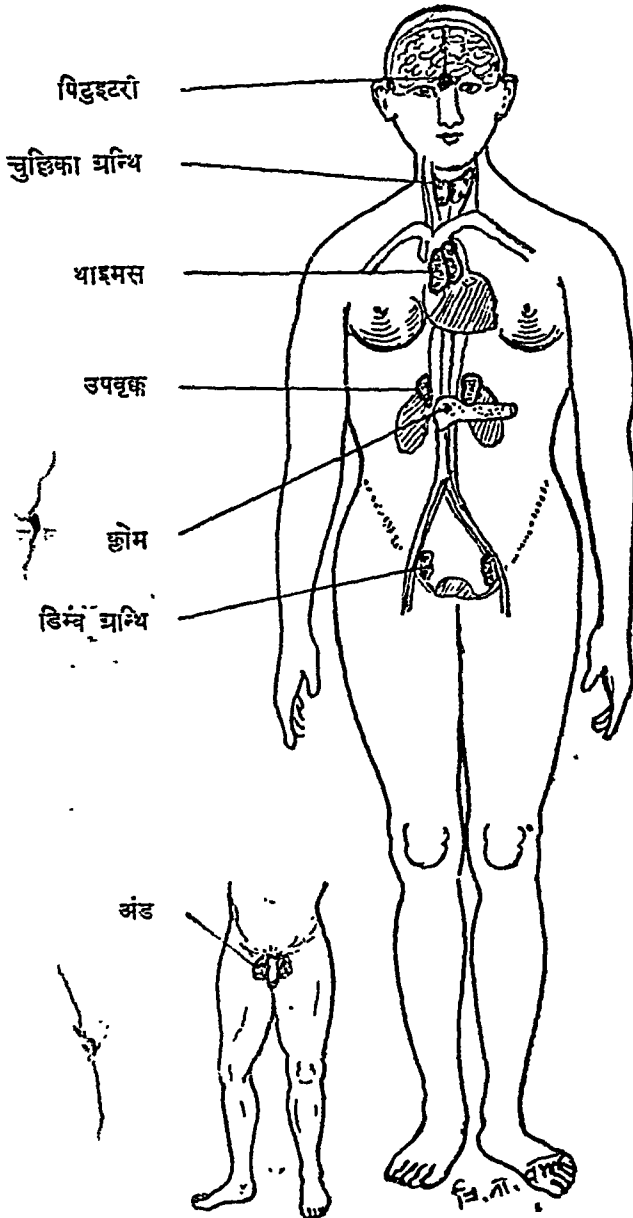
जब जल या भोजन में आयोडीन की कमी होती है और साथ साथ आँतों में कीटाणु-जनक विष बनते हैं तो यह ग्रन्थि बढ़ जाया करती है। गोंडा, गोरखपुर की तरफ और कहीं कहीं पहाड़ों में यह

चित्र ३०७ घेघा चित्र ३०८ घेघा
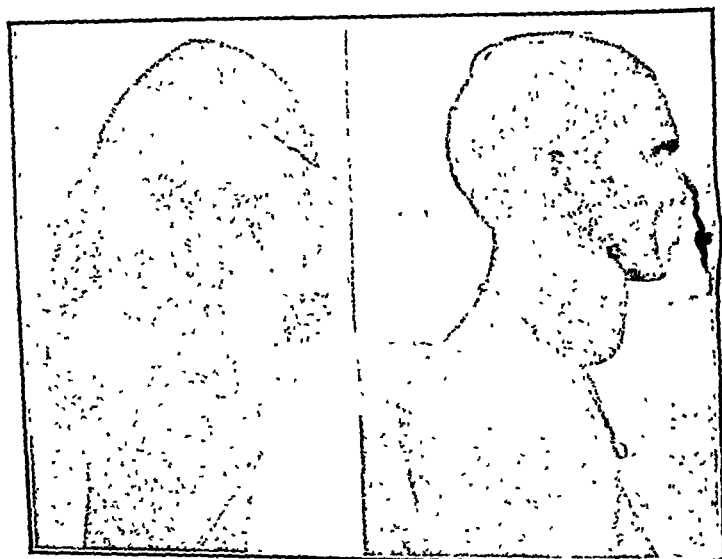
रोग बहुत होता है। ऐसे स्थानों का जल हमेशा उबाल कर पीना चाहिये। कब्ज़ दूर करना चाहिये; पाचन शक्ति ठीक करनी चाहिये और औषधियों द्वारा आयोडीन शरीर में पहुँचाना चाहिये। २-३ ग्रेन सोडियम आयोडाइड प्रति दिन खाना फायदा करता है। जब ग्रन्थि बहुत बड़ी हो जाती है और रोग पुराना हो जाता है तो औष-

शन द्वारा उस का बढ़ा हुआ भाग निकाल डाला जाता है ।

ग्रन्थि के बढ़ने से एक रोग ऐसा होता है कि उस में दिल बहुत तेज़ी से धड़का करता है; नब्ज़ बहुत तेज़ चलती है; आँखें आगे को निकली मालूम होती हैं अर्थात् पलक आँख के सुफेद भाग को पूरे तौर से नहीं ढक पाते और कमज़ोरी मालूम होती है ।

मूढ़ता

जब चुल्लिका ग्रन्थि शिशुपन में काम नहीं करती या बहुत कम करती है या ग्रन्थि होती ही नहीं तो शिशु मूढ़—मूर्ख रहता है । इस बालक का रंग पीला और त्वचा खुर्दरी होती है; बाल रूखे होते हैं; आवाज़ मोटी और जिह्वा बड़ी और मुँह से बाहर निकली रहती है । बालक बहुत सुस्ती से काम करता है और उस में बुद्धि बहुत कम होती है । उस को चलना ही नहीं आता; कई वर्ष की आयु का बालक भी नहीं चल पाता । नाक से साँस लेने में आवाज़ आती है । नब्ज़ बहुत सुस्त रहती है और शरीर का ताप जितना होना चाहिए उस से कम रहता है और हाथ पैर ठंढे रहते हैं । क़द छोटा रहता है (बौना); दाँत देरी से निकलते हैं और उन में जल्दी कीड़ा लग जाता है । ऐसे बालक को अकसर क़ब्ज़ रहता है और थोंद निकली रहती है । नाभि भी अकसर फूली रहती है । ब्रह्म रंध्र (खोपड़ी के अगले भाग में जो गड्ढा होता है) अकसर खुला रहता है ।

चिकित्सा

चुल्लिका ग्रन्थि का रस खिलाने से रोग घट सकता है । रस फायदा करने के लक्षण ये होते हैं—क़ब्ज़ जाता रहता है; त्वचा में सुर्खी आ जाती है;

चित्र ३००. मूढ़ (चुल्लिका ग्रन्थि के काम न करने से)

१० मास की कन्या; नाभि उभरी हुई है	वही कन्या ५ मास इलाज करने के बाद

From Pearson and Wyllie's Recent Advances in Diseases of children

बाल मुलायम और चिकने होने लगते हैं; हाथ पैरों में गरमी मालूम होने लगती है। आवाज़ साफ हो जाती है। बच्चा चैतन्य दिखाई देने लगता है और चलने लगता है। जो वसा जगह जगह इकट्ठी हो गयी थी वह अब कम हो जाती है। बच्चा समझ की बातें करता है। क़द

By courtesy of Dr. Langmead from "The Dictionary of Practical Medicine."
५ वर्ष की कन्या। थोंद निकली है, नाभि उभरी है; कन्धों पर वसा जमा है; जिह्वा बाहर निकली है।

पड़ने लगता है। चुल्लिका ग्रन्थि का प्रयोग उम्र भर करना पड़ता है

चित्र ३११ २८ वर्ष का वृद्ध बच्चा
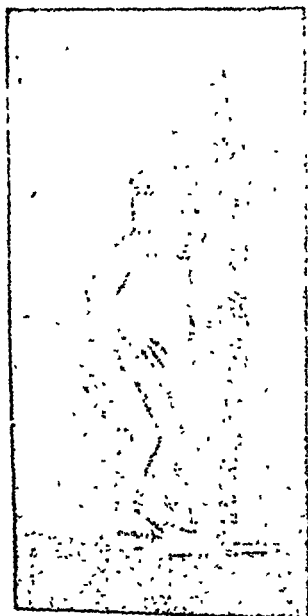
From French's Index of Differential Diagnosis of Main Symptoms—By courtesy of publishers

चुल्लिका ग्रन्थि के अभाव मे इस २० वर्ष के व्यक्ति का कद, बुद्धि दांत व १८ मास के बालक जैसा है। चेहरा फूला सा मालूम होता है।

बड़ों में चुल्लिका ग्रन्थि के कम काम करने से क्या होता है

यदि कमी थोड़ी सी हो तो स्थूलता आ जाती है और व्यक्ति सुस्त रहता है और उसका जी मेहनत करने को नहीं चाहता।

यदि बहुत कमी हो तो एक रोग हो जाता है जिसे अंग्रेज़ी में 'मिक्सइडीमा' (Myxoedema) कहते हैं। यह रोग स्त्रियों में पुरुषों से कहीं अधिक (७ : १) पाया जाता है। मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं—

स्मरण शक्ति का कम होना; शाखाओं में जोड़ों के आस पास पीड़ा होना। त्वचा सूखी और रूखी और मोटी पड़ जाती है; पलक भारी हो जाते हैं, मालूम होता है नींद आ रही है। गालों पर सुरखी; चेहरा भारी और बालों का गिर जाना। व्यक्ति का मस्तिष्क ठीक काम नहीं करता, सोचने, समझने और किसी बात को निश्चय करने की शक्ति घट जाती है। सभी ज्ञानेन्द्रियों के काम खराब हो जाते हैं सुनने की शक्ति घट जाती है; ठीक ठीक बोला नहीं जाता; स्वाद जाता रहता है और सूँघने की शक्ति भी कम हो जाती है। शरीर का ताप सामान्य से कम हो जाता है; भूख कम लगती है; क़ब्ज़ रहता है। मासिक धर्म गड़बड़ हो जाता है। स्त्री आम तौर से बाँझ रहती है।

चिकित्सा

जब जवानी में शरीर स्थूल होता जावे और बजाय फुरती के सुस्ती आवे और परिश्रम करने को जी न चाहे और बुद्धि भी सामान्य से कम हो तो इस बात की जाँच करानी आवश्यक है कि चुल्लिका ग्रन्थि के कार्य्य में कुछ गड़बड़ तो नहीं है। विद्यार्थी जो पहले स्थूल

और निर्बल स्मरण शक्ति के होते हैं चुल्लिका ग्रन्थि के प्रयोग से लाभ उठाते हैं; इसी तरह स्त्रियाँ जो बड़ी तेज़ी से स्थूल होती जाती हैं इसके प्रयोग से लाभ उठाती हैं। मिक्सइडीमा की चिकित्सा इस ग्रन्थि या उसके सत को खिलाने से की जाती है।

२. पिट्यूइटरी (Pituitary)

यह ग्रन्थि खोपड़ी के अन्दर मस्तिष्क की तली में रहती है। इस ग्रन्थि के दो खंड होते हैं और दोनों खंडों के कार्य्य अलग अलग हैं।

१. गर्भावस्था में अगले खंड के अधिक काम करने से एक प्रकार का "देव पन" उत्पन्न होता है। अस्थियों के लम्बे होने से सम्पूर्ण शरीर बहुत बड़ा हो जाता है। पुराने ज़माने के देव और दानवी शायद ऐसे ही व्यक्ति रहे होंगे।

२. जन्म लेने के पश्चात् अगले खंड के अधिक काम करने से एक रोग होता है जिसे "एक्रोमिगेली (Acromegaly) कहते हैं। इसमें हाथ और पैर बहुत बड़े हो जाते हैं; व्यक्ति ऊँचा होता जाता है; नीचे के जबड़े की हड्डी बहुत बड़ी हो जाती है। चेहरा बड़ा हो जाता है; नाक चौड़ी और मोटी हो जाती है; होंठ मोटे हो जाते हैं; नीचे का होंठ कुछ लटक आता है और जिह्वा मोटी और बड़ी हो जाती है; त्वचा मोटी हो जाती है; बाल मोटे और घने हो जाते हैं। दृष्टि कमज़ोर हो जाती है और मूत्र में शकर आने लगती है; रक्त भार कम हो जाता है; शरीर का ताप सामान्य से १ दर्जा कम रहता है।

३. इस ग्रन्थि के कम काम करने से एक प्रकार का ठिगनापन होता है जिसमें शरीर अधिक वसा के इकट्ठे होने से मोटा हो जाता

है। (चित्र ३१२, ३१३)। और जननेन्द्रियों की बढ़ोत्तरी नहीं होती।

चित्र ३१२ पिट्युइटरी का दोष
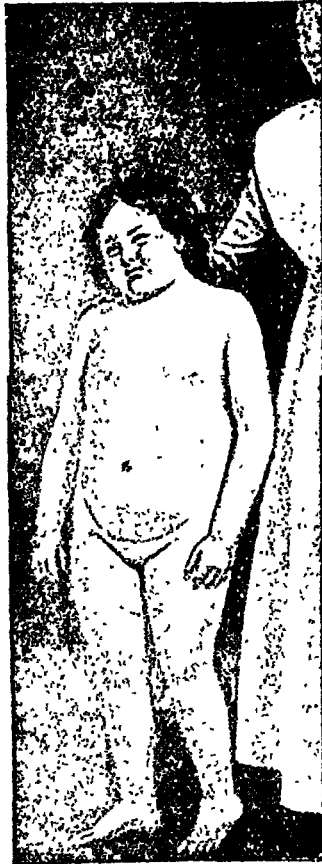
From French's Index of Differential Diagnosis, by courtesy of Publishers

ऊँचाई कम होती है। वसा विशेष कर कूल्हों और स्तनों में जमा होती

है; पेट भी मोटा हो जाता है। जननेन्द्रियाँ नहीं बढ़तीं; नर रोगी में

चित्र ३१३. पिट्यूटरी के दोष से उत्पन्न हुआ मोटापा
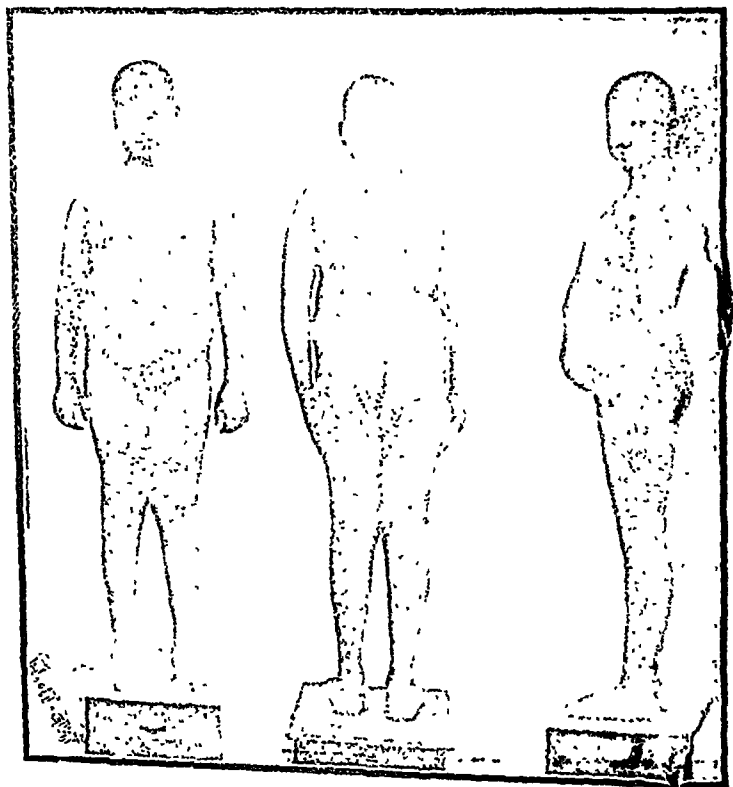
आयु कोई १२ वर्ष; भार बहुत अधिक; चरबी पेट, कूल्हों और खवों पर जमा है। जननेन्द्रियाँ बहुत छोटी हैं।

१२-१४ वर्ष का शिश्न और अंड दो तीन वर्ष के बालक के शिश्न और अंड के बराबर दिखाई देते हैं (चित्र ३१३)। पुरुष में शुक्रकीट नहीं बनते और स्त्री में रजोदर्शन नहीं होता; कभी कभी अंड अंडकोष तक नहीं उतरते। मूत्र बहुत आता है।

३. क्लोम (पैंक्रियास)

इसके बिगड़ने से एक प्रकार का मधुमेह (Diabetes) हो जाता है। रोगी को क्लोम से बनाई गयी इनसूलीन (Insulin) नामक औषधि के प्रयोग से बहुत फायदा होता है।

४. उपवृक्क

इस ग्रन्थि के दो भाग होते हैं एक बहिःस्थ भाग दूसरा अंतःस्थ भाग।

१. बहिःस्थ भाग के बढ़जाने और अधिक काम करने से शरीर स्थूल हो जाता है। बहिःस्थ जननेन्द्रियाँ जल्दी बड़ी हो जाती हैं। ४ वर्ष के बालक का शिश्न १४ वर्ष के लड़के के शिश्न के बराबर दिखाई देता है; कन्याओं में भगांकुर बड़ा हो जाता है और ४ वर्ष की आयु में कामाद्रि पर बाल निकल आते हैं परन्तु गर्भाशय नहीं बढ़ता और रजोदर्शन भी आरंभ नहीं होता।

२. अंतःस्थ भाग के क्षय रोग से बिगड़ जाने से या किसी और प्रकार खराब होने से एक रोग उत्पन्न होता है जिसे अंग्रेज़ी में "एडिसन्स डिज़ीज़" (अर्थात् डाक्टर एडिसन साहब का मालूम किया हुआ रोग) कहते हैं। इसमें ४ बातें होती हैं—रक्तभार बहुत कम हो जाना; त्वचा का रंग गहरा पड़ जाना; रोगी का शक्तिहीन हो जाना; पेशियों का कमज़ोर हो जाना और ज़रा से परिश्रम से बहुत थक जाना। दस्त आते हैं और कभी कभी मतली और क़ै आती है।

५. अंड

१. यदि यौवनारंभ (१४-१५ वर्ष) से पहले किसी व्यक्ति के अंड निकाल दिये जावें अर्थात् व्यक्ति ज़नखा या हीजड़ा कर दिया जावे (आख़ता कहना भी अनुचित नहीं) तो ये बातें पैदा होती हैं—वह व्यक्ति साधारण लोगों से बहुत लम्बा हो जाता है (चित्र २१४) और यह लम्बाई नीचे की शाखाओं के अधिक बढ़ने से बढ़ती है। सिर छोटा रहता है; ठटरी पर बाल कम जमते हैं। चेहरे से कुछ शिशुपन, कुछ ज़नानापन और कुछ बुढ़ापा टपकता है, त्वचा चिकनी, फूली सी और लोमहीन रहती है। वसा स्त्रियों की भाँति उदर, चूतड़, जाँघ और छाती में इकट्ठी रहती है। स्वरयंत्र छोटा ही रह जाता है जिसके कारण यौवन के लक्षण स्वर नहीं बदलता। हीजड़ा आम तौर से मोटा होता है। मैथुन की इच्छा नहीं होती; और वह नपुंसक होता है बुद्धि पर कोई असर नहीं पड़ता।

२. यदि यौवन प्राप्ति के बाद अंड निकाले जावें अर्थात् व्यक्ति हीजड़ा बनाया जावे तो वह व्यक्ति लम्बा नहीं होता, टाँगें बड़ी नहीं होतीं। आवाज़ अधिक ज़नानी नहीं होती अर्थात् मर्दानी ही रहती है चित्र २१४, २१५, २१६। मैथुन की इच्छा थोड़ी बहुत रहती है; शिश्न प्रवेश भी कर सकता है। आम तौर से यह व्यक्ति चिन्ताशील और वहमी होता है। व्यक्ति आम तौर से मोटा होता है।

३. जब अंड रहते हैं परन्तु कम काम करते हैं तो ये बातें होती हैं—

ये लोग अकसर असामान्य बुद्धि वाले (बहुत बुद्धिमान) होते हैं। स्तन स्त्रियों जैसे होते हैं; मोटा पेट, उभरी हुई कामाद्रि

३. अस्थियों के ठीक न बनने से और अस्थियों के सिरों के समय से पहले जुड़ जाने से।

४. अस्थियों के रोगों से।

चित्र ३१७ बौना

चित्र ३१८ बौना

इस बौने की ऊँचाई ४० इंच है ऊर्ध्व शाखा १९″; निम्न शाखा १९½″; धड़=१९″; बाहु=८″; जांघ=१०″, टांग=९½″। धड़ छोटा नहीं है। केवल शाखाएँ छोटी हैं विशेष कर निम्न शाखाएँ। जननेन्द्रियाँ ठीक हैं और जहाँ

तक हमको याद है इस के सन्तान भी है। अस्थियों के सिरों में जब रोग आता है तो अस्थियाँ छोटी रह जाती हैं।

मोटापन—स्थूलता

मोटापा भी एक रोग है, जो शरीर में अधिक वसा (चर्बी) के इकट्ठे हो जाने से पैदा होता है।

वसा शरीर का एक आवश्यक अवयव है। पलक, शिश्न और अंड कोष को छोड़ कर थोड़ी बहुत वसा त्वचा के नीचे हर जगह रहती है। इसके अतिरिक्त वसा बहुत से अंगों के आस पास रहती है जिससे वे सुरक्षित रहें और धक्के आदि से अपने स्थान से न हट सकें अर्थात् यह वही काम देती है जो घास, फूँस, कागज़; जब बोतलें सन्दूक में बन्द की जाती हैं; वसा अंत्र को ढकने वाली झिल्ली में भी रहती है जिससे आँतें सुरक्षित रहें और गर्मी सर्दी से बचें। वसा उष्णता का सुचालक नहीं है इसलिये त्वचा के नीचे रहने वाली वसा हम को कम्बल की भाँति गर्मी सर्दी से बचाती है।

जब तक हमारे शरीर में उतनी वसा है जितनी चाहिये सब काम ठीक रहते हैं, शरीर सुडौल और सुन्दर लगता है और हमारा स्वास्थ्य ठीक रहता है। जब वह आवश्यकता से अधिक हो जाती है अनेक प्रकार की हानियाँ होती हैं।

वसा की आय

वसा हमारे शरीर में इस प्रकार आती है—

१. घृत, मक्खन, चर्बी, तेल के खाने से।

२. अन्य खाद्य पदार्थों द्वारा जैसे गेहूँ, चना, फल, भाँति भाँति की गिरियाँ जैसे बादाम, अखरोट, चिलगोज़ा, पिस्ते, काजू, मूँगफली के खाने से।

३. जो कर्बोज हम खाते हैं (शकर, श्वेतसार जैसे चावल, सागूदाना, आटा) उनसे शरीर के भीतर रासायनिक क्रियाओं द्वारा वसा बन जाती है। जिन लोगों को घी, तेल खाने को प्राप्य नहीं है इन के शरीर में वसा इसी प्रकार बनती है।

वसा का व्यय

१. वसा शक्ति जनक वस्तु है। इसलिये शरीर में उसका दहन होता है और जो शक्ति उत्पन्न होती है उससे शरीर के काम चलते हैं (जैसे कोयला जलने से इंजिन चलता है और बिजली बनती है)।

२. शेष वसा शरीर में इधर उधर उपरोक्त कामों के लिये इकट्ठी हो जाती है। यदि वसा काफी नहीं पहुँचती है तो शक्ति उत्पन्न करने का काम कर्बोज (शकर) से ले लिया जाता है।

आय और व्यय

अब यदि आय कम है और व्यय अधिक तो शरीर मोटा नहीं होता, उतना का उतना ही रहता है या यदि कोई रोग हो (क्षय रोग, टायफौयड् इत्यादि) शरीर की वसा काम में आती है और इस कारण घट जाने से शरीर दुबला हो जाता है; खाल में झुर्रियाँ पड़ने लगती हैं। यदि आय व्यय से अधिक है तो शक्ति उत्पन्न करने के बाद जो वसा का भाग बचता है वह जगह जगह इकट्ठा होता है और शरीर मोटा होता जाता है। उसके सब भाग भरे मालूम होते हैं; गाल भरे रहते हैं, त्वचा तनी रहती है; हँसलियों के नीचे और ऊपर गड्ढे दिखाई नहीं देते हैं; सब शरीर सुडौल हो जाता है।

शरीर एक कोठरी है

शरीर एक कोठरी के तुल्य है। मानों एक व्यक्ति के पास एक कोठरी है; उसमें उसको सब प्रकार का सामान रखना है। खाना

पकाने और शीत से बचने के लिये ईंधन भी रखना है। मानो वह थोड़ा सा ईंधन रोज़ लाता है; वह उसका अधिकांश प्रतिदिन खर्च कर डालता है, थोड़ा सा जब कभी बच गया समय पड़े के लिये (जैसे वर्षा ऋतु के लिये या जब किसी कारण उसे न मिल सके) उठाकर इधर उधर रख देता है। उसके पास स्थान थोड़ा ही है; इस लिये उचित यही है कि केवल इतना ईंधन इकट्ठा करे जो और चीज़ें जो उसमें रक्खी हैं बिना हानि पहुँचाये उस स्थान में समा जावें; यदि अधिक ढेर लगावेगा तो उसकी मेज़, कुर्सी, शैया, पुस्तक, वस्त्र इत्यादि जो ईंधन से अधिक बहुमूल्य हैं खराब हो जावेंगी। उसको चाहिये कि जब बहुत ईंधन हो जावे तो पहला काम तो यह है कि वह अब नया ईंधन लाना बंद कर दे; उसके पश्चात् उसको चाहिये कि जो फालतू हो उसको जलाकर खर्च कर दे, केवल इतना रक्खे कि उसको आवश्यकता के समय काम भी आवे और अन्य चीज़ें खराब भी न होने पावें।

वसा ईंधन है, कोयले, लकड़ी, कंडों, मिट्टी के तेल, इत्यादि जलने वाली चीज़ों की तरह है। शरीर रूपी कोठरी में उसके लिये जितना स्थान है वसा उतनी ही रहनी चाहिये। यदि उससे अधिक वसा शरीर में होगी तो उसको ऐसे स्थानों में रखना पड़ेगा जहाँ उससे कोमल अंगों को हानि पहुँचेगी। जब वसा ज़रूरत से अधिक हो जाती है पहले तो वह त्वचा के नीचे सब स्थानों में बराबर इकट्ठी होती है इससे शरीर मोटा हो जाता है और कोई विशेष हानि नहीं होती है; फिर वह विशेष स्थानों में इकट्ठी होने लगती है जैसे चूतड़ों और कूल्हों में, पेट पर, गर्दन में, फिर पेट के अंदर आँतों को ढकने वाली झिल्ली और आँतों को लटकाने वाली झिल्ली में जमा होती है चित्र ३२०। यदि अब भी आय व्यय से अधिक है तो कोमल अंगों में जैसे हृदय में

जमा होने लगती है। अब वह हानि पहुँचाने लगती है। ईंधन को आप अपने सर पर, पेट पर या कमर पर लादे लादे फिरें तो क्या आपको कष्ट न होगा? जब वसा रूपी ईंधन आँतों और गुर्दे और हृदय इत्यादि अंगों पर बोझ डालता है तो इन अंगों के कार्य्य में रुकावट होती है और स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है। अब यह वसा कीड़े की तरह शरीर को हानि पहुँचाती है (चित्र ३१९ में वसा रूपी कीड़ा हृदय पर चिपटा हुआ पीला दिखाया गया है क्योंकि वसा भी पीली सी होती है)। इस कीड़े से बचना ही बुद्धिमानों का परम धर्म है।

अधिक वसा जमा होने के कारण

१. आय अधिक व्यय कम। घी दूध, मिठाई, चावल, बादाम, हलवा, इत्यादि वसा बनाने वाली चीज़ों का खूब सेवन करना और परिश्रम न करना। सेठ साहूकार और अमीरों की बेटी बहुएँ ऐसा ही करती हैं। भारतवर्ष में ५०% बड़े घरों की स्त्रियाँ निठल्लू रहती हैं; खाना पीना और चारपाई पर लदना ही उनका काम है; खाना भी ऐसा खावेंगी कि जिनसे वसा खूब बने; काम करने के लिये नौकर लगे हैं; नाविल पढ़ने में वसा का व्यय नहीं होता; घर में एक स्थान से उठकर दूसरे स्थान पर जा बैठने में कोई परिश्रम नहीं होता; बाहर गयीं तो सवारी में गयीं। वसा क्यों न इकट्ठी हो; क्यों न प्रति दिन मोटी होती जावें; क्यों न पेट निकले। धनी पुरुष तो मोटे होते ही हैं। जब तक सेठ जी की थोंद इतनी न निकल आवे कि मेज़ का काम दे सके उनको "सेठजी" का नाम नहीं फबता। (चित्र ११६)

२. रोगों के कारण भी मोटापा आ जाता है। चुल्लिका ग्रन्थि और पिटुइटरी ग्रन्थि के रोगों में मोटापा आ जाता है अर्थात् शरीर में वसा का व्यय बंद हो जाता है और वह जगह जगह इकट्ठी होने

लगती है (देखो पीछे इन अंगों के रोग और चित्र ३१२, ३१३, ३२१) म० डैनियल लैम्बर्ट जिनका चित्र ३२१ यहाँ दिया जाता है २२ वर्ष की आयु में ५ मन २४ सेर* के थे; मृत्यु के समय जब उनकी आयु ४० वर्ष की थी उनका भार लगभग ९ मन † था। इनको गलगन पिट्यूइटरी ग्रन्थि का रोग था अर्थात् यह ग्रन्थि कम काम करती थी। इन महाशय को कामदेव भी तनक भर भी दिक़ न करता था। डाक्टरों का विचार है कि नैपोलियन बोनापार्ट ‡ को अंत में इस ग्रन्थि ने जवाब दे दिया था। इस ग्रन्थि से सम्बन्ध रखने वाले मोटापे के ये लक्षण हैं—अत्यंत मोटा हो जाना, शरीर पर से बालों का गिर जाना, जननेन्द्रियों का दुर्बल होना और मुर्झा जाना शरीर नाड़ियों का नर्म हो जाना, त्वचा का कोमल हो जाना और शाखाओं का नाज़ुक हो जाना। अंत में सम्राट नैपोलियन में ये सब बातें दिखाई देती थीं। अधिक भोजन खाने से जो मोटापा आता है वह पेट को अधिक घेरता है और व्यक्ति की पेशियाँ कमज़ोर हो जाती हैं। पिट्यूइटरी के मोटापे में व्यक्ति की पेशियाँ इतनी जल्दी कमज़ोर नहीं होतीं और ये व्यक्ति अकसर अत्यंत परिश्रम करते देखे गये हैं और बलवान भी होते हैं।

मोटापे के सम्बन्ध में फुटकर बातें

१. मोटे व्यक्तियों को पियास अधिक लगती है और वे पानी अकसर बहुत पीते दिखाई देते हैं। उनके शरीर में पानी भी अधिक

---

* २२ स्टोन। † ५२ स्टोन ११ पौंड।

‡ Napolean Bonaparte.

चित्र ३१९
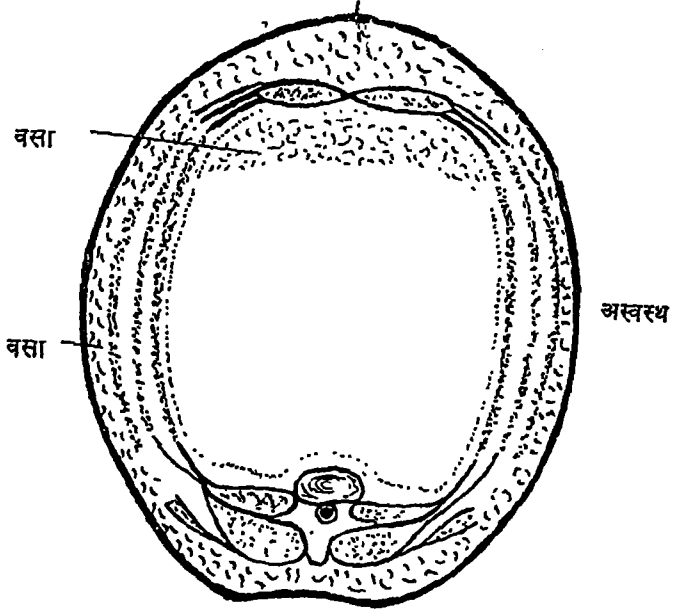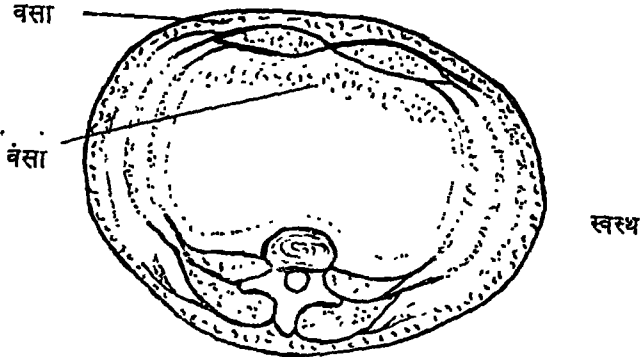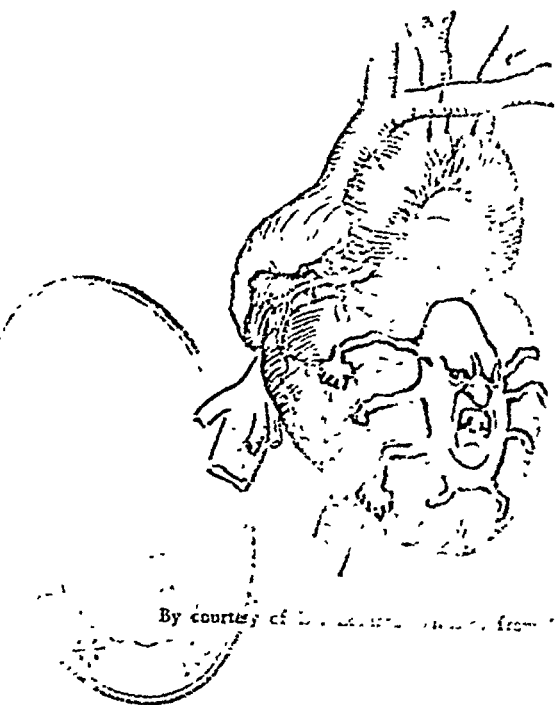
पृष्ठ ६२२ के सम्मुख

चित्र ३२१ पिट्युइटरी जनक मोटापा

MR. DANIEL LAMBERT.

By courtesy of Dr. Leonard Williams from "Obesity"

जमा रहता है। और जब इन लोगों के मोटापे की चिकित्सा की जाती है तो इस पानी को फिर भी शरीर में कोई आवश्यकता नहीं अनेक तदबीरों से निकालने की आवश्यकता पड़ती है।

२. शराब पीने वालों को विशेष कर बीअर, पाइडर इत्यादि पीने वालों को भी मोटापे का रोग अक्सर हो जाता है।

३. अधिक शक्कर वाले [illegible] पदार्थ जैसे चाँवे। सेब, संतरा इत्यादि फलों की शक्कर हानि नहीं पहुँचाती। गन्ने की शक्कर और उससे बनी मिठाइयाँ लड्डू, बरफी इत्यादि से मोटापा बढ़ता है।

४. जल्दी जल्दी बिना अच्छी प्रकार चबाये भोजन का निगलना भी मोटापे का एक बड़ा कारण है। जो लोग भोजन को खूब अच्छा चबा कर खाते हैं वे कभी भी आवश्यकता से अधिक नहीं खा सकते और जितना वे खाते हैं वह खूब पच जाता है; थोड़ा ही भोजन अधिक शक्तिदायक हो जाता है। जब भोजन करते समय बातें होती रहती हैं और भोजन [illegible] होता है तब भी भोजन बहुत जल्दी जल्दी और बिना अच्छी प्रकार चबाये निगला जाता है। जब बातें नहीं होतीं अर्थात् जब भोजन एकान्त में खाया जाता है तो वह ध्यान से चबाया जाता है। जलता हुआ भोजन शीघ्र निगल लिया जाता है।

५. अधिक कपड़ा पहनना, गरम कमरे में रहना, गरम पानी से नहाना और साथ साथ खूब खाना ये मोटापे में सहायता देने वाली आदतें हैं।

६. जब वसा दिन-ब-दिन बढ़ती जाती है तो उसके दबाव से कोमल अंगों को अत्यंत हानि पहुँचती है। हम पीछे बतला चुके हैं कि वसा शरीर में वही काम करती है जो सन्दूक में बोतलें बंद करने के लिये घास फूस। यदि आप घास फूस सन्दूक में भरते चले जावें तो दो बातें होंगी, या तो आप को ज़रूरी चीज़ें निकालनी पड़ेंगी या अधिक ठूसने से वे टूट जावेंगी। शरीर में जब अधिक वसा बढ़ती है

तो अंग निकल तो सकते नहीं; अंगों पर अधिक दबाव पड़ता है और वे पतले हो जाते हैं—जहाँ मांस रहना चाहिये वहाँ वसा आ जाती है; रक्तवाहिनियाँ पतली पड़ जाती हैं और इसलिये रक्त कम मिलने से अंगों के काम ख़राब हो जाते हैं। कोमल अंग जैसे जिगर (यकृत) और हृदय पर वसा का बोझ पड़ने से या मांस के स्थान में वसा इकट्ठी होने से हाज़मा बिगड़ता है और चलने फिरने में दम फूलने लगता है। आरंभ में रक्तभार बढ़ जाता है; अंत में रक्तभार कम हो जाता है दोनों ही बातें खराब हैं।

७. बहुत से मोटे आदमियों को दमा भी हो जाता है।

८. मोटे आदमियों को मधुमेह अकसर होता है। मधुमेह एक भयानक रोग है।

९. मोटे लोगों को कब्ज़ भी रहता है और इनको अकसर बवासीर का रोग तंग करता है। टाँगों की शिराएँ भी फूल कर गँठीली हो जाती हैं।

१०. मोटे व्यक्तियों में जंघासों में, छातियों के नीचे, बग़ल में अकसर त्वचा की आपस की रगड़ से स्थान छिल जाया करते हैं।

११. मोटे मनुष्यों के मूत्र में कभी कभी श्वेतज (अलब्युमेन) भी निकला करती है।

१२. जोड़ों का सूजना और उनमें दर्द होना भी मोटापे में होता है।

१३. वैसे तो मोटे मनुष्यों के शरीर का ताप अकसर सामान्य से कम होता है। कभी कभी इन लोगों को बिना किसी विशेष कारण के ज्वर आ जाता है।

१४. इन लोगों की रोगनाशक शक्ति कम होती है और यह लोग रोगों और चोटों को भली प्रकार नहीं सह सकते।

तालिका (३)

मध्य प्रदेश और संयुक्त प्रान्त के हिन्दुओं के औसत भार (पौंडों में)

आयु वर्ष	फु० इं० ४—१०	फु० इं० ५—०	फु० इं० ५—१	फु० इं० ५—२	फु० इं० ५—३	फु० इं० ५—४	फु० इं० ५—५	फु० इं० ५—६	फु० इं० ५—७	फु० इं० ५—८	फु० इं० ५—९	फु० इं० ५—१०	फु० इं० ५—११	फु० इं० ६—०
२०	१०२	१०६	१०८	११०½	११३	११५½	११८½	१२१	१२४	१२८	१३२	१३६	१४०	१४५
२५	१०५	१०९	१११	११४	११६	११८½	१२१	१२४	१२७	१३१	१३५	१३९	१४४	१४९
३०	१०९	११३	११५½	११८	१२१	१२४	१२७	१३०	१३३	१३६	१४०	१४४	१४९	१५४
३५	११२	११६	११९	१२२	१२४	१२७	१३०	१३३	१३६	१४०	१४५	१५०	१५५	१६०
४०	११६	१२०½	१२३	१२६	१२९	१३२	१३५	१३८	१४१	१४६	१५१	१५६	१६१	१६६
४५	१२०	१२५	१२७	१३०	१३३	१३६	१३९	१४२½	१४६	१५०	१५४	१५८	१६२	१६७
५०	१२१	१२६	१२९	१३२	१३५	१३८	१४१	१४५	१४९	१५४	१५९	१६४	१६९	१७३

Experience of the Oriental Government Security Life Assurance Co. Ltd.

तालिका (५)

वर्द्धन तालिका*

आयु पिछले जन्म दिन को	बालक			बालिका		
	उँचाई		भार	उँचाई		भार
	फुट	इञ्च		फुट	इञ्च	
१ वर्ष	२	५½	१८½ पौंड	२	३½	१८ पौंड
२ ,,	२	८½	२२½ ,,	२	७	२५½ ,,
३ ,,	२	११	३४ ,,	२	१०	३१½ ,,
४ ,,	३	१	३७ ,,	३	०	३६ ,,
५ ,,	३	४	४० ,,	३	३	३९ ,,
६ ,,	३	७	४४½ ,,	३	६	४१¾ ,,
७ ,,	३	१०	४९¾ ,,	३	८	४७½ ,,
८ ,,	३	११	५५ ,,	३	१०½	५२ ,,
९ ,,	४	१¾	६०½ ,,	४	०¾	५५½ ,,
१० ,,	४	३¾	६७½ ,,	४	३	६२ ,,
११ ,,	४	५½	७२ ,,	४	५	६८ ,,
१२ ,,	४	७	७६¾ ,,	४	७½	७६½ ,,
१३ ,,	४	९	८२½ ,,	४	९¾	८७ ,,
१४ ,,	४	११¼	९२ ,,	४	११¾	९६¾ ,,
१५ ,,	५	२¼	१०२¾ ,,	५	१	१०६¼ ,,

*From Leonard Williams' Obesity.

मोटेपन की चिकित्सा और उससे बचने के उपाय

१. तालिकाओं को देख कर अनुमान करो कि आप का भार सामान्य भार से कितना अधिक है। १०% ज्यादा से कोई विशेष हानि नहीं। परन्तु यदि भार बड़ी शीघ्रता से बढ़ता जावे और उकड़ू बैठने में कष्ट हो या चलने फिरने में या ऊपर चढ़ने में साँस फूले तो चिकित्सा आरंभ करने में विलम्ब न करना चाहिये।

२. पहला काम भोजन की जाँच पड़ताल करना है। जो चर्बी बनाने वाली चीज़ें हैं उनको कम करो।

३. भोजनों की तादाद भी कम करो। यदि रात को सोते समय दूध पीते हो तो फ़ौरन बन्द करो। यह एक अत्यन्त हानिकारक आदत है मालूम नहीं भारतवासियों ने कहाँ से सीखी। यदि चार बार भोजन करते हो तो तीन बार कर दो। पेट को भरने के लिये फल और सब्ज़ तरकारियों का अधिक सेवन करो।

४. उपवास करने की आदत डालो। पहले केवल दिन भर में से एक बार का भोजन कम करो; फिर दो बार का; फिर ऐसी आदत डालो कि प्रति सप्ताह दिन भर कुछ भी न खाया जावे; पानी पीने में कोई हर्ज नहीं।

५. प्रति सप्ताह एक पूर्ण उपवास करने की जब आदत हो जावे तो फिर प्रति मास दो दिन और हो सके तो तीन दिन लगातार उपवास करना चाहिये; केवल पानी पी कर रहो; न रहा जावे तो रसीले फल जैसे संतरा इत्यादि खा कर रहो।

६. उपरोक्त से अवश्य लाभ होगा। जो लोग बहुत मोटे हो गये हैं उनको चारपाई पर लद जाना चाहिये। यह ग़लत ख्याल है कि इन लोगों को एक दम अनेक प्रकार के व्यायाम आरंभ कर देना

चाहिये। इन लोगों का हृदय कमज़ोर हो जाता है; व्यायाम उनको हानि पहुँचावेगा। भोजन कम करने और प्रति सप्ताह या प्रति मास उपवास करने के अतिरिक्त मोटे आदमियों को यह काम और करना चाहिये:—प्रति सप्ताह या सप्ताह में दो बार या तीन बार यथाविधि भाप का स्नान (तुर्की स्नान) या गरम पानी में भीगे हुए कपड़ों के बीच में लेट कर और कम्बल ओढ़ कर पसीना* निकालना चाहिये। इससे पसीना खूब आता है और शरीर का ताप भी थोड़ी देर के लिये बढ़ जाता है। यह सभी जानते हैं कि ज्वर से रोगी दुबला हो जाता है।

यदि मोटापन इतना अधिक न हो कि जिसका असर हृदय पर पड़ गया हो तो भोजन कम करते हुए और उपवास करते हुए थोड़ा सा व्यायाम भी करना चाहिये (जैसे भागना); यदि हृदय कमज़ोर हो गया हो तो व्यायाम उस समय तक आरंभ न करना चाहिये जब तक कुछ भार न घट जावे। भार घटने पर व्यायाम धीरे धीरे आरंभ करो। पेट की पेशियों को मज़बूत करने वाली लेट कर करने वाली कसरत करनी चाहिये (देखो व्यायाम का अध्याय) ज्यों ज्यों पेशियाँ मज़बूत होंगी उदर में रहने वाले अंग भी अपना काम ठीक ठीक करने लगेंगे। इन कसरतों के अतिरिक्त दौड़ना भी अत्यन्त लाभदायक है।

८. ऊपर के काम करने के लिये इच्छा बल (आत्मिक बल) की आवश्यकता है; दूसरी बात यह है कि रोगी को जल्दी न करनी चाहिये। न वह एक दम मोटा हुआ और न वह एक दम पतला हो सकता है और एक दम पतला हो जाना ठीक भी नहीं है। अब रही औषधि की बात, चुल्लिका (थायरोयड) ग्रन्थि और पिट्युइटरी ग्रन्थि के सतों का सेवन फायदा करता है। डाक्टर जो उचित समझे उसका प्रयोग करावे; कभी कभी दोनों चीज़ें मिलाकर देने से ज़्यादा फायदा होता है।

---

*इसकी विधि डाक्टर से पूछो

अध्याय २२

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ

आत्म रक्षा के लिये हमारे पास पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं:—

१. त्वचा या खाल

२. चक्षु या आँख

३. कर्ण या कान

४. नासिका या नाक

५. जिह्वा या ज़बान

जब तक ये सब ठीक हैं हमको आत्म रक्षा करने में पूरी सहायता मिलती है; जब इनमें से किसी का काम बिगड़ जाता है तो आत्म रक्षा ठीक ठीक नहीं हो सकती। उदाहरण:—आँख से दिखाई न दे तो सड़क पर चलना कठिन हो जाता है कहीं गाड़ी से टकराने का, कहीं दीवार से टकराने का, कहीं नाली में गिरने का डर है; कान से न सुनाई दे तो भी जान जोखों में रहती है; मोटर का भोंपू आप को सुनाई ही न दे और आप झट उससे टकरा जावें; या गाड़ी वाला पीछे से कहता हो, हटो, आप सुनते ही नहीं और गाड़ी से टकरा कर गिर पड़ते हैं। त्वचा सुन्न है, काँटा लगा, चाकू लगा और ज़ख़म हो

गया; या आग पर पैर आ गया और पैर जल गया; नासिका से आप को गंध प्रतीत होनी बन्द हो गयी, गंदा पानी पीने से आप को घृणा ही नहीं आती और उससे होने वाले रोगों को झेलना पड़ता है। जिह्वा मसाले मिर्च से खाने को मना करती है परन्तु आप नहीं मानते और अजीर्ण से पीड़ित हो कर अपनी आयु को कम करते हैं।

१ त्वचा

त्वचा स्नान द्वारा साफ़ और स्वस्थ रहती है।

स्नान जल का ताप

ठंढा जल—६५° से ८०° फ़ारनहाइट तक

गर्म जल—८०° से ९०°-९८° तक

बहुत गर्म जल—९८° से अधिक

स्वस्थावस्था में शरीर का ताप (त्वचा का) ९८·४° के लगभग होता है; जब जल का ताप इससे कम होता है तो वह ठंढा और अच्छा मालूम होता है; जब जल का ताप इससे अधिक होता है तो वह गरम मालूम होता है और त्वचा उसको पसंद नहीं करती।

ठंढा जल उत्तेजक होता है और शरीर को बल प्रदान करता है। गर्म जल सुस्ती लाता है।

कैसे जल से नहाना चाहिये

जहाँ तक हो सके ठंढे जल से ही नहाना चाहिये। यदि स्नान करने पर त्वचा में गर्मी मालूम हो, उसमें सुर्खी सी आ जावे, शरीर में फुरती उत्पन्न हो, चित्त प्रसन्न हो तो समझना चाहिये कि जल का ताप ठीक है। यदि नहाने के बाद सर्दी लगे, तबियत गिरने लगे,

त्वचा में गर्मी न आवे तो समझना चाहिये कि जल का ताप ठीक नहीं है।

स्नान का समय

सब से अच्छा समय विशेष कर गर्म देशों में प्रातः काल है। खाने के बाद स्नान किया जावे तो भोजन और स्नान में कम से कम तीन घन्टे का अन्तर होना चाहिये ताकि भोजन के पचने में बाधा न पड़े। ठंढे देशों में रात को सोते समय नहाने का रिवाज है वे लोग अकसर गर्म जल से ही नहाते हैं और नहाने के बाद सो जाते हैं।

कमज़ोर आदमी कैसे पानी से नहावें

जो लोग ठंढे पानी को नहीं सह सकते वे पहले गर्म पानी से स्नान करें फिर उसका ताप धीरे धीरे कम करते जावें। यदि ठंढे पानी को न सह सकें तो गर्म से ही नहावें। गर्म पानी का स्नान थकावट को दूर करता है। जिन लोगों को नींद न आने का रोग हो वे रात को सोते समय गर्म जल से स्नान करें, उनको नींद आने लगेगी।

देशी और विलायती विधियाँ

नहाने की दो विधियाँ हैं—

(१) जल लोटे इत्यादि किसी पात्र से शरीर पर डाला जावे या जहाँ नल लगे हों वहाँ नल के नीचे बैठ जावे।

(२) नाँद या टब में पानी भर लिया जावे और उसमें बैठ कर या लेट कर स्नान किया जावे।

भारतवासी पहली विधि से ही नहाते हैं। पाश्चात्य सभ्यता वाले दूसरी विधि से नहाते हैं। नवीन फैशन के स्नानागारों के और टब के चित्र हम पीछे दे चुके हैं। नांद में नहाया जावे तो

पहले पानी को जिसमें मैल और साबुन लगा होगा फेंक देना चाहिये और फिर दोबारा साफ़ पानी भर कर नहाना चाहिये। नांद के साथ फुव्वारा भी लगाया जा सकता है (देखो चित्र ८४, ८५) यदि गर्म पानी से स्नान किया जावे और अंत में शरीर पर ठंडे पानी की फुव्वार पड़े तो शरीर को अत्यन्त लाभ पहुँचता है।

त्वचा और रगड़, मालिश

चाहे गर्म पानी हो चाहे ठंडा, नांद हो या कुँआ, त्वचा को तौलिये से अवश्य रगड़ना चाहिये। इस रगड़ से त्वचा में रक्त भ्रमण खूब होता है जिससे बहुत लाभ पहुँचता है।

साबुन

वैसे तो गर्म जल और तौलिये की रगड़ से थोड़ा बहुत मैल उतर हो जाता है, मैल को भली प्रकार उतारने के लिये साबुन का प्रयोग करना चाहिये। जो साबुन कपड़े धोने के लिये बनाये गये हैं उनमें क्षार अधिक होता है; यह अधिक क्षार त्वचा को अत्यन्त हानि पहुँचाता है; इस लिये इन साबुनों का प्रयोग त्वचा की सफाई के लिये न करना चाहिये। त्वचा के वे साबुन सब से उत्तम होते हैं जिनमें अधिक ग्लीसरीन रहने दिया जाता है और क्षार फालतू नहीं रक्खा जाता। ये साबुन महँगे आते हैं। बाज़ार में जो एक एक दो दो पैसे की टिकियाँ बिकती हैं वे तो अत्यन्त हानिकारक होती हैं। हम को खेद के साथ लिखना पड़ता है कि जितने साबुन अभी तक भारतवर्ष में बने हैं (हमने बनारस, बम्बई और कलकत्ते के बने हुए महँगे से महँगे साबुन बरते हैं) उनमें से कोई भी उत्तम श्रेणी में रखने योग्य नहीं हैं। ये मिलते भी बहुत हैं और अंततः विदेशी साबुनों से महँगे पड़ते

हैं। विदेशी साबुनों में 'पीयर्स ग्लीसरीन सोप', 'लेनोलीन सोप', 'राइट्स कोल टार सोप,' 'लेवूरीन सोप'* सब से उत्तम हैं। इनके प्रयोग से त्वचा नरम हो जाती है और उसमें खुश्की नहीं आती। याद रखने की बात यह है कि सस्ते मूल्य के साबुन का प्रयोग त्वचा के लिये न करना चाहिये। साबुन के साथ गर्म जल का प्रयोग करना चाहिये। बड़े बड़े शहरों में जहाँ धुआं बहुत होता है या गरमी की मौसम में जब पसीना बहुत आता है और धूल बहुत उड़ती है प्रति दिन हाथ पैर और मुँह साबुन से धोना चाहिये; जब धुआं और धूल कम हों या सर्दी की मौसम हो तो प्रति दिन साबुन लगाने की आवश्यकता नहीं है; प्रति सप्ताह या सप्ताह में दो तीन बार साबुन से स्नान करना काफ़ी है।

बाल

त्वचा और बाल की साधारण बनावट चित्र ३२२ में दिखलाई गयी है। त्वचा में चिकनाई बनाने वाली ग्रन्थियाँ रहती हैं (चित्र ३२२ में ९) इस चिकनाई से बाल चिकने और चमकदार रहते हैं। जब साबुन से बाल साफ़ किये जाते हैं तो यह चिकनाई धुल जाती है और बालों की चमक कम हो जाती है और वे रूखे से दिखाई देने लगते हैं। साबुन से धोने के पश्चात् बालों में ज़रा सा तेल लगाना चाहिये। तेल लगाकर फिर पानी से धो डालने चाहियें और तौलिये से पोंछ डालने चाहियें क्योंकि बहुत देर भीगे रहने से बाल कमज़ोर हो जाते हैं और वे शीघ्र टूटने लगते हैं।

बालों में प्रति दिन साबुन लगाने की आवश्यकता नहीं है; यदि व्यक्ति को अधिक धूल मिट्टी में काम न करना पड़ता हो प्रति सप्ताह साबुन

*Pears' Glycerine Soap; Lanoline Soap; Wright's Coal Tar Soap; Levurine Soap.

चित्र ३२२ त्वचा और बाल की बनावट
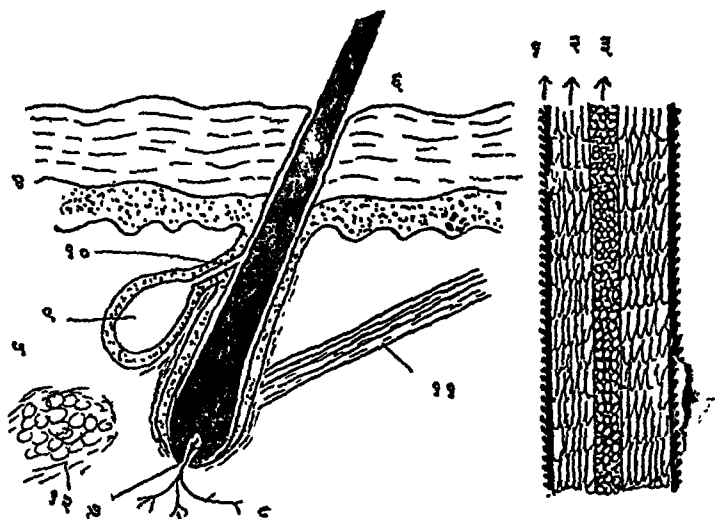
क=बाल का काट लम्बाई के रुख; १=बहिस्थ भाग; २, मध्य भाग; ३=अंतःस्थ भाग; ४=उपचर्म; ५=चर्म; ६=बाल; ७=बाल की जड़; ८=रक्त-वाहिनियाँ; ९=चिकनाई बनाने वाली ग्रन्थि; १०= ग्रन्थि की नली; ११=मांस जिसके द्वारा बाल खड़ा हो जाता है; १२=चर्वी

से धोना काफ़ी है। साबुन के अतिरिक्त दही और मुलतानी मिट्टी या रीठे भी बालों को खूब साफ करते हैं।

बालों का पोषण रक्त द्वारा ही होता है; चित्र ३२२ में बाल की जड़ में पतली पतली रक्तवाहिनियाँ घुसती दिखाई देती हैं। जब रक्त-भ्रमण ठीक ठीक होता है बाल शीघ्र बढ़ते हैं और लम्बे और चमकदार रहते हैं। ठटरी और त्वचा को धीरे धीरे रगड़ने से रक्त-भ्रमण बढ़ता है। अस्तुरे

की रगड़ से भी रक्त-भ्रमण बढ़ता है यही कारण है कि जो लोग प्रति दिन हजामत बनाते हैं उनकी डाढ़ी के बाल दूसरे ही दिन बढ़े मालूम होते हैं। जब बालों को जड़ों में कोई रोग हो जाता है तो वे कमज़ोर हो जाते हैं और शीघ्र टूटने लगते हैं; रक्तहीनता से और आतशक इत्यादि रोगों में भी गंज हो जाता है।

बालों की जड़ों में पतले पतले मांस के रेशे भी लगे रहते हैं (चित्र २२२ में ११)। इन्हीं के सिकुड़ने से (जैसे भय से या शीत से) बाल खड़े हो जाते हैं।

बालों का काम

बाल उष्णता के कुचालक हैं। शिर के बाल खोपड़ी की अधिक सर्दी गर्मी, वर्षा से और आघात (चोट) से रक्षा करते हैं। भवें पसीने को आँखों में जाने से रोकती हैं। पलकों के बाल आँखों की रक्षा करते हैं। कानों के बाल कान में धूल और कीड़ों को जाने से रोकते हैं। नाक के बाल भी इसी प्रकार नाक की रक्षा करते हैं। मूछें भी धूल इत्यादि को मुँह में जाने से रोकती हैं। डाढ़ी का काम गर्दन और गले की रक्षा करना है।

त्वचा और तेल

हम पीछे लिख आये हैं कि यदि त्वचा में तेल मला जावे और फिर थोड़ी देर धूप में बैठा जावे तो खाद्योज ४ बन जाती है और इस तेल द्वारा शरीर में प्रवेश कर जाती है। इसलिये कभी कभी विशेष कर शीत ऋतु में छोटे बालकों को धूप में लिटाकर उनके शरीर पर तेल (सरसों का तेल अच्छा है) मलना अत्यंत लाभ-दायक है। तेल मलकर नहा डालना चाहिये ताकि शरीर चिकना न रहे और कपड़े गंदे न हों।

बालों का काटना

सभ्य मनुष्य को, जो टोपी या अन्य शिर-वस्त्र का प्रयोग करता है, शिर पर अधिक लम्बे बालों के रखने की आवश्यकता नहीं है; जितने लम्बे बाल होंगे उतना ही उनको साफ रखना कठिन होगा। हमारी राय में महीने में दो बार उनको कटाकर छोटा करा देना चाहिये। शिर पर १½ इंच से अधिक लम्बे बालों की आवश्यकता नहीं है।

क्या स्त्रियाँ भी बाल कटावें ?

यह प्रश्न सौन्दर्य्य से सम्बन्ध रखता है। नवीन ईसाई सभ्यता की स्त्रियाँ कहती हैं कि उनमें और पुरुष में कोई भेद नहीं (लिंग भेद को छोड़कर); वे हर एक बात में पुरुष के तुल्य हैं; वे फौज में, पुलिस में वा अन्य मरदाने पेशों में भरती होने लगी हैं; वे कहती हैं कि कोई वजह नहीं कि जो काम पुरुष करता है वे काम वे क्यों न करें। महायुद्ध के दिनों से यूरोप और अमरीका (अर्थात् ईसाई सभ्यता वाली) की स्त्रियों ने बाल कटाना आरंभ कर दिया है और वे पट्टे रखने लगी हैं; कोई कोई तो बिलकुल मर्दों की तरह ही बाल रखती हैं। हमारी राय में बाल रखने ही से कोई व्यक्ति स्त्री और न रखने से कोई व्यक्ति पुरुष नहीं हो सकता; यदि यही होता तो जितने सिख हैं वे सब औरतों के से काम करते। सत्य यह है कि लम्बे बालों की सफाई रखना कठिन काम है; यदि स्त्री को अपनी जीविका के लिये पुरुषों की तरह परिश्रम करना पड़े जैसा कि आजकल ईसाई देशों में करोड़ों स्त्रियों को करना पड़ता है (इन में से लाखों का तो विवाह ही नहीं हो पाता) तो उस को अपने बाल कटा कर छोटे ही रखने चाहियें। यूरोप में गरम जल भी दुर्लभ है; करोड़ों व्यक्तियों को महीनों में भी नहाना नहीं मिलता, शिर में जुएं पड़ जाते हैं; बाल कटाने से इन लोगों को अत्यन्त सुख हो गया।

भारतवर्ष में जल हर जगह मिल सकता है, गरम करने की आवश्यकता नहीं, वालों की सफाई आसानी से हो सकती है; लगभग सभी स्त्रियों के विवाह हो जाते हैं और उन को बहुत कम (ग़रीबों को छोड़ कर) अपनी जीविका के लिये पुरुष की तरह परिश्रम करना पड़ता है, इस लिये यहाँ स्त्रियों को बाल कटाने की आवश्यकता नहीं हैं; जो कटाना चाहें वे शौक़ से कटावें परन्तु यह याद रक्खें कि स्त्री स्त्री है और उस को पुरुष के तुल्य बनने की चेष्टा न करनी चाहिये; यदि ऐसा करेगी तो यूरोप की स्त्रियों की तरह उन की भी वेक़दरी होने लगेगी (आज कल ईसाई देशों में स्त्रियों का वह मान नहीं है जो महायुद्ध से पहले था) ।

कंघा, ब्रुश

यदि बालों में खुजली मचे तो जुएं को ढुंढवाओ । बालों में अकसर फयास (भूसी) हो जाती है; यह चिकनाई और मृत सेलों से बनती है; अधिक फयास का बनना एक रोग है । कंघा और ब्रुश से बाल साफ हो जाते हैं । कंघे के दाँते इतने बारीक न हों और ब्रुश के बाल इतने सख्त न हों कि त्वचा छिल जावे और उस में दर्द हो । बच्चों के लिये मुलायम ब्रुश का प्रयोग करो । लोहे या पीतल के कंघों का प्रयोग न करो क्योंकि इन से त्वचा को हानि पहुँचने का डर है । ब्रुश और कंघे की हलकी रगड़ से रक्त भ्रमण अच्छा होता है ।

डाढ़ी

डाढ़ी रखने का रिवाज कम होता जाता है । यदि डाढ़ी न रक्खी जावे तो हजामत अपने आप ही बनानी चाहिये । अपना अस्तुरा दूसरे को न दो और न दूसरे के अस्तुरे से अपनी हजामत बनाओ । यदि नाई अपने अस्तुरे से हजामत बनावे तो आप को चाहिये कि उस के

अस्तुरे को (और कैंची और अन्य चीजों को) "रेक्टी फाइड् स्पिरिट्स Rectified spirits" में ५ मिनट भिगो दें। गंदे अस्तुरे के प्रयोग से डाढ़ी पर मवाद के दाने निकल आते हैं जो बड़ी कठिनता से अच्छे होते हैं। ब्रुश और साबुन भी अपना अपना अलग रखना चाहिये। अस्तुरे दो प्रकार के विकते हैं—एक मामूली दूसरे असावधान पुरुषों के लिये। दूसरे प्रकार के अस्तुरे "सेफ्टी रेज़र Safety razor" कहलाते हैं। मामूली अस्तुरे से कटने का डर रहता है; दूसरे प्रकार के अस्तुरों से कटने का डर कम रहता है (यह असत्य है कि इन से कटना असंभव है)। सेफ्टी रेज़र अंततः बहुत मँहगे पड़ते हैं और क्यों न पड़ें? चतुर लोगों ने ये अस्तुरे लोगों का धन लूटने ही के लिये बनाये हैं। सेफ्टी रेज़र का प्रयोग करने वाले मेरी बात से क्रुद्ध न हों; ज़रा सोचें और समझें कि मैं यह बात उन के हित के लिये कहता हूँ कि नहीं।

बग़ल

ईसाई सभ्यता वाले बग़लों को नहीं बनवाते। हमारी राय में गर्म देशों में बग़लों को महीने में एक या दो बार बनवा देना चाहिये।

विटप देश और कामाद्रि (झाँट) के बाल

ईसाई सभ्यता में यहाँ के बाल भी न मूँड़े जाते हैं न काटे जाते हैं यदि बाल रक्खे जावें और सफाई न हो सके तो जुएं होने का डर है। जो लोग बाल रखना चाहें वे रोज़ साबुन का प्रयोग करें। भारतवर्ष में तो स्त्री और पुरुष दोनों ही बाल काट डालते हैं या मूँड़ डालते हैं या विशेष विधियों से उखाड़ डालते हैं। हमारी राय में यह रिवाज ठीक है। एक बात याद रखने की यह है कि जब बाल कभी भी काटे न गये हों या जब तक अस्तुरा न लगाया गया हो, बाल छोटे और मुलायम रहते हैं और मैथुन के समय ये बाल एक दूसरे के चुभते नहीं;

जैसे मूँडे जाते हैं तो जो बाल नये निकलते हैं वे मोटे और कड़े होते हैं और मैथुन के समय चुभते हैं। जहाँ तक पति पत्नी का सम्बन्ध है हमारी राय यह है कि बाल रहें तो दोनों के, मुड़वावें तो दोनों।*

शिर-वस्त्र

बालों के होने के कारण शिर पर किसी चीज़ के पहनने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी अधिक धूप, वर्षा और शीत के कोप से बचने के लिये सभ्य मनुष्य प्राचीन काल से किसी न किसी प्रकार का वस्त्र शिर पर धारण करता चला आया है। उत्तम शिर-वस्त्र के ये लक्षण हैं:—

१. सूर्य्य के कोप से आँखों, शिर और गुद्दी की रक्षा करे
२. शिर को वर्षा और शीत से बचावे
३. हलका हो परन्तु हवा के ज़ोर से उड़ न जावे
४. शिर पर थोड़ी थोड़ी हवा लगने दे
५. शिर के रक्त भ्रमण को न रोके।
६. समय पड़े पर शिर पर चोट न लगने दे।

चित्र ३२३ शोला टोपी
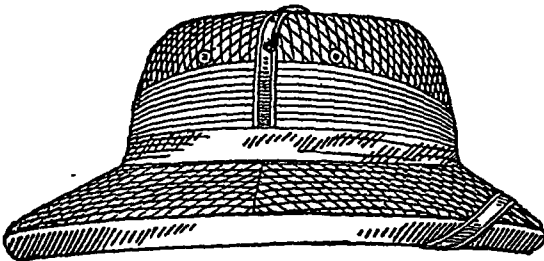
* बाल उड़ाने वाली औषधियाँ भी बनी हैं।

जितने शिर-वस्त्र सभ्य मनुष्य ने अब तक बनाये हैं उन में सब से उत्तम "शोला टोपी" है; इतिहास की दृष्टि से देखा जावे तो यह "शोला टोपी" साफे या दुपट्टे से ही विकास द्वारा उत्पन्न हुई है; इस लिये इसको भारत ही की चीज़ समझनी चाहिये। सिवाय भारतवर्ष के (और अफ्रीका इत्यादि गर्म देशों के) यूरोप में यह टोपी नहीं पहनी जाती; इस को विलायती पोशाक समझना अत्यंत भूल की बात है। शोला टोपी भारत में बनती है और इस कारण सोलह आने स्वदेशी चीज़ है। यह टोपी बहुत हलकी होती है; शिर को हवा लगती रहती है; आँखों, शिर और गुद्दी को धूप से बचाती है; वर्षा में खराब नहीं होती; कितना ही पानी पड़े ज़रा खूँटी पर टाँग दीजिये फिर ज्यों की त्यों हो जाती है; बहुत सस्ती होती है; २) की टोपी दो वर्ष तक बड़े मज़े से चल जाती है; हवा से उड़ नहीं सकती और यह अफ़सरों की पोशाक है। प्रातःकाल और सायं काल शोला टोपी लगाने की कोई आवश्य-कता नहीं; इस समय या तो नंगे शिर रहना चाहिये या हलकी दो पलड़ी टोपी जिसे आजकल 'गाँधी टोपी' कहते हैं लगाओ। लखनऊ, आगरा, दिल्ली वाली फूँक से उड़ने वाली टोपी से कोई फायदा नहीं परन्तु यदि नाम मात्र के लिये लगाई जावे तो कोई हानि भी नहीं। यूरोप में हर समय 'फेल्ट हैट' जैसी कि अँग्रेज लोग यहाँ शाम को लगाते हैं लगाई जाती है। यह बहुत गरम होती है। विलायत जैसे सर्द देश में सही जा सकती है, भारतवर्ष में इसका प्रयोग सर्वथा त्याज्य है।

भारतवर्ष में "कुली फेल्ट टोपी" का रिवाज बहुत रहा है, अब कुछ कम होता जाता है। इस टोपी के विषय में सत्य बात तो यह है कि यूरोप के चतुर लोगों ने यह टोपी गुलाम कौमों के लिये ही बनाई है; वास्तव में यह टोपी गुलामी का बड़ा भारी चिह्न है। इस टोपी से

चित्र ३२४ भाँति भाँति के शिर-वस्त्र

१ २ ३

६

७ ८ ९

इनमें सबसे उत्तम कौमी शिर-वस्त्र बनने योग्य नं २ और नं ६ हैं। नं २

सुबह और शाम के लिये, नं ६ दोपहर के लिये। नं ४, ९, गुलामों की टोपियाँ हैं। नं ५ गरम देशों में नहीं सही जा सकती; नं ७ स्कूल के विद्यार्थियों के लिये अच्छी है।

कोई भी तो फायदा नहीं; वेहद गरम, बहुत भारी, धूप, वर्षा से न रक्षा करने वाली, बहुत महँगी। उत्तम प्रकार की सब टोपियाँ बाहर से आती हैं; एक बार बारिश में खूब भीगने के बाद दो कौड़ी की हो जाती हैं। यह टोपी बाबू लोगों का शिर-वस्त्र है।

टोपी के विषय में एक बात याद रखनी चाहिये वह यह कि वह तंग न हो। तंग टोपी से शिर के रक्त भ्रमण में गड़बड़ हो जाती है। और गंज हो जाता है और तंग टोपी पहनने से सिर में दर्द भी हो जाता है।

जो कुछ हमने 'क्रिस्टी फेल्ट टोपी' के विषय में कहा है उसको मुसलमानी 'टर्किश कैप' (जो लाल होती है और जिसमें फुंदना लगा रहता है) के विषय में भी समझना चाहिये। जब तक टर्क लोग इस प्रकार की टोपी लगाते रहे उनकी गिनती छोटी कौमों में होती रही; जब से इस टोपी को त्यागा यूरोप की और क़ौमें उन से डरने लगीं।

पोशाक

अन्य जानवरों की तरह असभ्य मनुष्य अपने शरीर को ढकने की आवश्यकता नहीं समझता; पुरुष और स्त्री दोनों ही नंगे फिरते हैं। उनको सभ्य मनुष्य की तरह न सर्दी दिक़ करती है, न गर्मी न वर्षा। धीरे धीरे ज्यों ज्यों कुछ समझ आती है वे अपनी जननेन्द्रियों को कुछ ढँकने लगते हैं। यदि हमारा स्वास्थ्य ठीक है और यथावश्यकता भोजन प्राप्य है और हमारी आदतें बिगाड़ी नहीं गयी हैं तो हमारी त्वचा और बाल में गर्मी और सर्दी से बचने का पूरा प्रबन्ध है; हम को कपड़े

पहनने की कोई आवश्यकता ही नहीं। त्वचा के नीचे चरबी होती है जो उष्णता का कुचालक होने के कारण कोमल अंगों को अधिक शीत और गर्मी के बुरे असरों से बचाती है। आजः कल भी भारतवर्ष में लाखों ग़रीब जाड़ों की मौसम में, जब अमीर लोग लिहाफों और कम्मलों में भी अकड़ते हैं, एक पतली सी चादर में रात काट देते हैं। यही नहीं, यूरोप में हमने सैकड़ों सभ्य और उच्च श्रेणी की स्त्रियों को एक ऊनी बनियान और एक हलका कोट पहने सड़कों पर फिरते देखा है जब मैं बड़े मोटे ओवर कोट पहने भी सर्दी से अकड़ता था। भारतवर्ष में भी लाखों हिन्दू स्त्रियाँ एक पतली बंडी और सूती धोती पहन कर दिन काट देती हैं जब कि पुरुष पाँच पाँच कपड़े पहने भी ठिठरा करते हैं। कारण क्या? अधिक कपड़ा पहिनने की एक आदत होती है जो कुशिक्षा, आलस्य और अधिक धन द्वारा सीखी जाती है। जितना कपड़ा हम लोग जाड़ों में पहनते हैं वास्तव में हमको उससे आधा कपड़ा पहनने की आवश्यकता नहीं है यदि हमारा स्वास्थ्य ठीक हो।

कपड़े क्यों पहने जाते हैं

१. गर्मी, सर्दी और वर्षा से बचने के लिये

२. जननेन्द्रियों को ढँकने के लिये

३. दूसरों पर रौब गाँठ कर उनको अपने आधीन करने के लिये। कपड़ों द्वारा मनुष्य अपने को दूसरे से अधिक सभ्य, अधिक बुद्धिमान अधिक धनवान, अधिक फुर्तीला, अधिक होशियार, अधिक बलवान बतलाने की कोशिश करता है। यही फैशन का मुख्य अभिप्राय है।

४. कपड़ों द्वारा सभ्य मनुष्य यह भी दर्शाने का यत्न करता है कि वह किस ईश्वर, या खुदा, या देवी देवता का उपासक है।

ईसाइयों की पोशाक में 'नेकटाइ' क्रोस का चिन्ह है। ऐसे ही टर्किश कैप, शिया लोगों की काली टोपी; पार्सियों की टोपी और अन्य पोशाक इत्यादि।

५. पोशाक द्वारा मनुष्य अपने देश और जाति को भी बतलाता है जैसे कोट पतलून, यूरोपियन जूता, हैट ये यूरोप वालों की पोशाक हैं। बर्मा वाले एक विशेष प्रकार की धोती बाँधते हैं; पेशावरी लोग सलवार पहनते हैं; हिन्दू धोती बाँधते हैं; मुसलमान पाजामा पहनते हैं इत्यादि।

६. कपड़े सौन्दर्य्य बढ़ाने और शरीर के दोष छिपाने के लिये भी पहने जाते हैं।

चित्र ३२५ नेकटाई, क्रौस
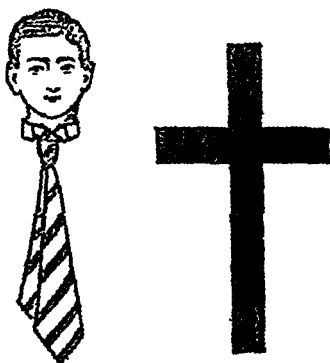
इस चित्र से स्पष्ट है कि नेकटाई क्रौस का चिह्न है

कपड़े किन चीज़ों के बनते हैं

कपड़े बनाने के लिये वानस्पतिक, जान्तविक और खनिज तीनों प्रकार के पदार्थ काम में लाये जाते हैं।

वानस्पतिक पदार्थ जैसे रुई, सन, खड़।

जान्तविक पदार्थ जैसे रेशम, चमड़ा, ऊन, पर।

खनिज पदार्थ जैसे सोना, चाँदी के तार (गोटा, लैस इत्यादि)।

भारतवर्ष जैसे गर्म देश में हमको रुई, रेशम, ऊन और सन के अतिरिक्त और किसी चीज़ के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। गर्मियों में रुई और रेशम से काम चल जाता है; सर्दी में ऊन के प्रयोग की भी आवश्यकता पड़ती है।

पहनने वाले कपड़ों में ये गुण होने चाहियें :—

१. हलके हों जिससे शरीर पर बोझ न पड़े।

२. जो कपड़ा त्वचा के निकट हो वह ऐसा होना चाहिये कि वह पसीने को सोख सके। वह कपड़ा त्वचा में चुभे नहीं और कोई रोग उत्पन्न न करे।

३. कपड़े ऐसे न हों कि पसीना न उड़ सके; अर्थात् वह ऐसे बिने और बने हों कि उन में थोड़ी बहुत वायु अवश्य जा सके।

४. ऊनी कपड़े फूले हुए हों तो अच्छा है; छिद्रों में हवा रहती है और हवा भी उष्णता का कुचालक है; इसलिये हलका फूला हुआ कपड़ा पतले और गुंजान बिने कपड़े से अधिक गर्म मालूम होता है।

५. काला और रंगीन कपड़ा श्वेत की अपेक्षा गर्मी को अधिक सोखता है; जाड़ों में रंगीन और गर्मियों में श्वेत कपड़े पहनने चाहियें। काले कपड़ों पर धूल बहुत चमकती है; हमारी राय में भारतवर्ष में काले कपड़ों की अपेक्षा और रंग के ही कपड़े पहनना अच्छा है।

६. कपड़ा तंग न हो ; उस से शरीर का कोई अंग भी न भिचे ।

७. जहाँ तक हो सके कपड़ा ऐसा बना और सिला हो कि जब आवश्यकता हो शीघ्र खुल सके ।

८. चलने फिरने और काम करने में कपड़ा किसी प्रकार की रुकावट न डाले ।

ऊनी और सूती कपड़े

जो कपड़ा शरीर से मिला रहता हो वह हमारी राय में ऊनी न होना चाहिये ; सूती हो या रेशमी हो ; इसके ऊपर ऊनी पहना जा सकता है । यदि ऊनी बनियान पहना जावे तो उसके नीचे सूती बनियान भी पहनना चाहिये । ऊन त्वचा में चुभती है और कभी कभी उससे त्वचा में प्रदाह भी हो जाता है । कुछ नक़लची काले साहब लोग गर्मियों में भी पैरों में ऊनी लम्बे मौज़े पहनते हैं ; यह न करना चाहिये ।

हलके और भारी कपड़े

कपड़े इतने भारी न हों कि शरीर पर बोझ सा मालूम हो । जाड़ों में एक भारी और मोटे कपड़े की अपेक्षा दो हलके कपड़े पहनना अच्छा है ; दो हलके कपड़े भारी की अपेक्षा अधिक गर्म रहेंगे क्योंकि कपड़ों के बीच में जो हवा की तह रहती है वह उष्णता का कुचालक होने के कारण एक कपड़े का काम देती है ।

ओढ़ने बिछाने वाले कपड़े

१. जहाँ अधिक शीत के अतिरिक्त शीत ऋतु में वर्षा भी होती हो और तेज़ धूप का अभाव रहता हो वहाँ ऊनी कपड़ों का ही रिवाज ठीक है जैसा कि यूरोप में और भारतवर्ष के पहाड़ी स्थानों

में है। कम्बल शीघ्र भीगता नहीं और भीग कर शीघ्र सूख भी जाता है।

२. जो कपड़े रंगीन हों वे पक्के रंग के होने चाहियें।

३. दरी, क़ालीन, तोशक, नमदा शीघ्र न धुलने वाले बिछाने वाले कपड़ों के ऊपर चादर बिछानी चाहिये जो सुफेद हो। इस चादर को मैली होने पर या प्रति सप्ताह बदल देना चाहिये।

४. लिहाफ, कम्बल, गुदमा ओढ़ने वाले कपड़ों के नीचे भी एक चादर लगानी चाहिये जिससे ये शीघ्र न धुलने वाले कपड़े मैले न हों। चादर को मैली होने पर या प्रति सप्ताह बदल देना चाहिये।

५. जहां जाड़ों में वर्षा कम होती है अर्थात् ओढ़ने बिछाने के कपड़ों के भीगने का डर कम रहता है वहाँ हमारी राय में लिहाफ और तोशक (जो दो सूती चादरों के बीच में रुई भर कर बनाये जाते हैं) कम्बलों की अपेक्षा अधिक गर्म, सुखदायक और सस्ते रहते हैं। एक या दो साल पुराना होने पर लिहाफ का रुअड़ दरी बनाने के काम में आ सकता है। एक मामूली कम्बल से सर्दी नहीं जा सकती; कई कम्बलों का प्रयोग करना पड़ता है; बरसात और गर्मी में इनको कीड़ों से बचाना कठिन काम है और जहाँ दो चार छिद्र हुए कम्बल फिर बेकार हो जाता है।

६. प्रतिदिन ओढ़ने बिछाने के कपड़ों को दो घन्टे के लिए धूप में फैलाना चाहिये ताकि वे दुर्गन्ध और कीटाणु रहित हो जावें।

कपड़े और धोबी

भारतवर्ष में कपड़ों पर बहुत धन नाश किया जाता है। तड़तों

चित्र ३२६ लखनऊ का धोबी घाट । पीट पीट कर कपड़ों की जान निकाली जा रही है और कपड़े ज़मीन पर सुखाये जा रहे हैं
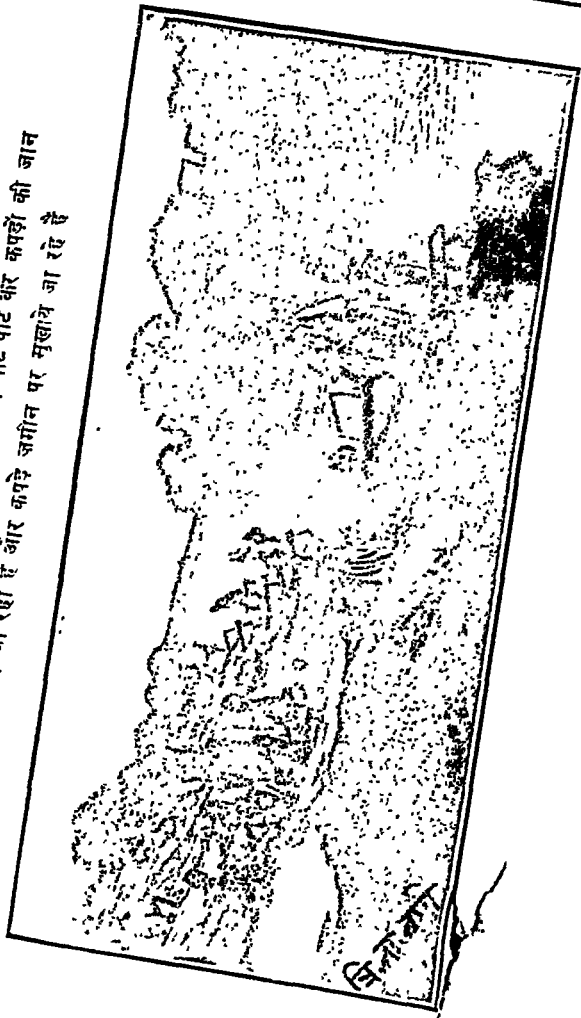
पर पीट पीट कर धोबी अच्छे कपड़ों का सत्यानाश कर देता है। रेशमी और ऊनी कपड़े तख़्तों पर न पीटने चाहियें; इनके धोने की विशेष विधियाँ हैं; विशेष प्रकार के साबुनों से धोने से कपड़ा बहुत दिन तक चलता है और सुकड़ता भी कम है।

प्रत्येक बुद्धिमान म्युनिसिपैलिटी का कर्त्तव्य है कि वह धोबियों को गंदे तालाबों में कपड़े धोने की आज्ञा न दे। कपड़ों के सुखाने का स्थान भी साफ होना चाहिये। जहाँ तक हो सके कपड़े डोरी पर सुखाने चाहिये, ज़मीन अकसर गंदी होती है। पाख़ाना पड़ा रहता है और काँटों से कपड़ों के फटने का भी डर है।

धोबी अकसर औरों के कपड़े पहना करते हैं, यह बुरी बात है। धोबी द्वारा चेचक, दाद, खुजली रोग भी फैलते हैं, जब किसी घर में छूत का रोग हो तो धोबी के पास कपड़े भेजने से पहले यह उचित है कि रोगी के कपड़े घर ही में एक बार उबाल डाले जावें। जिस तालाब में गाय भैंसें लोटें और मनुष्य आबदस्त लें वहाँ कपड़े धोना ठीक नहीं। जब धोबी के घर से कपड़े आवें तो उनको पहनने से पहले दो घंटे कड़ी धूप में रक्खो।

वस्त्र

१. शिर—सबसे अच्छा वस्त्र शोला टोपी है; जब धूप न हो उस समय दो पलड़ी टोपी लगाई जावे। सर पर साफा बाँधना स्वास्थ्य दायक नहीं है। फ़ेल्ट कैंप हानिकारक है। ऊनी टोपी की कोई आवश्यकता नहीं। कानों को ढकने की कोई आवश्यकता नहीं। जो शिर को अधिक ढकते हैं और गलबंद इत्यादि से गले और कानों को बाँधा करते हैं उनको ज़ुकाम अकसर दिक़ किया करता है। यूरोप में जहाँ सर्दी बहुत पड़ती है हमने कान बाँधते किसी को नहीं

देखा इससे स्पष्ट है कि भारतवर्ष में कानों का बाँधना और भी कम

चित्र ३२७ ग्रीवा की रचना

Sobotta's Atlas

१=स्वरयन्त्र २,३,४=चुल्लिका ग्रन्थि; ५,६ ७,८,९,१०,११,१२,१३,१४,१६,१७,१८,२०,२२,२७=रक्तवाहिनियां ४,१५,२१,२४=नाड़ियाँ २३=टेंटुवा

ज़रूरी है। शिर को जहाँ तक हो सके ठंढा ही रखना चाहिये।

२. ग्रीवा—यह शरीर का एक अत्यंत आवश्यक भाग है और मर्मस्थान है। यहाँ पर स्वरयंत्र और टेंटवा हैं जिनका खुला रहना और दबे न रहना स्वांस लेने के लिये अत्यावश्यक है; इनके दबने से मृत्यु भी हो जाती है; टेंटवे के पीछे अन्न-प्रनाली है। टेंटवे के सामने एक अत्यंत आवश्यक अंग चुल्लिका ग्रन्थि है। इन अंगों के अलावा ग्रीवा में बहुत सी नाड़ियाँ और रक्तवाहिनियाँ हैं; मस्तिष्क से जो रक्त आता है और जो वहाँ जाता है इन्हीं में से आता जाता है (चित्र ३२७)।

ग्रीवा पर यदि किसी प्रकार का दबाव पड़ेगा तो अत्यंत हानि होगी। मस्तिष्क का रक्त-भ्रमण ठीक तौर से न हो पावेगा; नाड़ियों पर दबाव पड़ने से और चुल्लिका ग्रन्थि पर दबाव पड़ने से स्वास्थ्य बिगड़ जावेगा। तंग गले का कोट, कुर्ता और कमीज़ और तंग कौलर—विशेष कर तंग सख्त कौलर (चित्र ३२८ में ९,१०,११) कभी भी न पहनने चाहियें; कालर का जो बटन होता है (जिसे 'स्टड' कहते हैं) उसके दबाव से भी हानि होती है यदि कालर तंग है। सख़्त कालर कोमल कालर से अधिक हानि पहुँचाता है। बंद गले का कोट खुले गले से खराब होता है; इसी कारण चपकन या अचकन स्वास्थ्य के लिये कोट से कम अच्छी हैं। खुले गले के कोट के साथ कौलर और टाई लगाना आवश्यक नहीं। ठंढे देशों में सर्दी से बचने के लिये कौलर का प्रयोग है, भारत जैसे गर्म देश में कौलर की कोई आवश्यकता नहीं यदि कोट का गला जैसा हम बतलाते हैं वैसा हो। कौलर कोट के गले को गर्दन के मैल से बचाता है; जाड़े के ऊनी कपड़े शीघ्र नहीं धोये जा सकते और बार बार धोने से वे जल्दी खराब भी हो जाते हैं, इस लिये मँहगे ऊनी खुले गले के कोट और बंद गले की अचकन के साथ

कॉलर का प्रयोग अर्थशास्त्र की दृष्टि से कुछ आवश्यक मालूम होता है। यदि कोट का कॉलर दोहरा (लौट कोलर) न बनाया जावे और वह ऊँचा भी न रक्खा जावे और वह पीछे से ऐसा हो कि कमीज़ या कुर्ते के कालर से नीचा रहे, तो कॉलर की कोई आवश्यकता नहीं; जहाँ तक स्वास्थ्य का सम्बन्ध है सब से अच्छा गला वह है जैसा कि "कोट स्वेटर" में होता है (चित्र ३२८ में ७,८) इस प्रकार के गले के साथ कमीज़ और कुरता सभी खप जावेंगे। इस प्रकार के कमीज़, कुर्ते और कोट से गरदन को बहुत आराम मिलता है—आप पहन कर देखें; और फैशन में भी कोई गड़बड़ नहीं होती। इस प्रकार के कोट के साथ आप पोलो या टेनिस कालर वाला कमीज़ बड़े मज़े से पहन सकते हैं। जो हाकिम या ज़बरदस्त पहने वही फैशन हो जाता है; भारतवर्ष में हज़ारों अंग्रेज़ गर्मियों भर कॉलर और टाई नहीं लगाते; खुले गले का कमीज़ पहनते हैं और कोट का कॉलर बचाने के लिये कमीज़ के चौड़े कॉलर को उसके ऊपर चढ़ा लेते हैं (चित्र ३२८ में ६); ज़रा और बुद्धिमानी से काम लिया जावे तो कोट का कौलर चित्र ३२८ नं० ७ और ८ की तरह बनाया जा सकता है; फिर न अलग कौलर लगाने की आवश्यकता, न टाई लगाने की। कोट के कौलर कोट के शेष भाग की अपेक्षा जल्दी फटते हैं (धोबी और दर्ज़ी सलामत चाहियें!) यदि कोट रेशमी है तो कोट फिर पहनने योग्य नहीं रहता क्योंकि यदि कौलर बदलवाया जावे तो रंग में फर्क पड़ जाता है कपड़ा उस मेल का नहीं मिलता। जिस प्रकार का कोट का गला ऊपर बतलाया गया है उससे आप न केवल अपने शरीर को सुख देते हैं प्रत्युत धोबी और दर्ज़ी के पंजों से भी बचते हैं और अपना धन भी बचाते हैं।

कोट, चपकन, अचकन, अंगरखा

अब रहा प्रश्न कोट और अचकन का। अचकन या चपकन तो ग़ुलामों की पोशाक हैं। इस का गला बंद रहता है और शीघ्र मैला हो जाता है और अक्सर तंग हो कर गरदन को दबाता है; अधिक लम्बे होने के कारण इसमें शरीर उतना चुस्त नहीं रहता जितना छोटे कोट में; कपड़ा भी अधिक लगता है; भागने दौड़ने में रुकावट डालता है; आजकल सिवाय पराधीन क़ौमों के इनको कोई और नहीं पहनता; इसमें किसी प्रकार का सौन्दर्य भी नहीं है। हमारे ख़्याल में इसको एक दम त्यागना चाहिये। अचकन या चपकन से कहीं अच्छा अंगरखा है; इससे गरदन को बहुत आराम मिलता है; बटनों की आवश्यकता नहीं; यदि कम लम्बा बनाया जावे तो लम्बे कपड़े के जो दोष होते हैं वे निकल जावेंगे (चित्र ३२८ में २)।

धोती, पाजामा, पतलून, निकर (शोर्टस्)

धड़ से नीचे के भाग को कैसे ढका जावे? तंग पाहुँचे का पाजामा उतना ही ख़राब है जितना तंग गले का कुर्ता या कोट। पाहुँचे हमेशा चौड़े होने चाहियें। कमर को कसना भी हानि कारक है विशेष कर किसी पतली चीज़ों से जैसा कि कमर बंद या नाड़ा या पेटी। चौड़ी पेटी कमर बंद से कम हानि पहुँचाती है। पेटी और कमर बंद दोनों से अच्छी गेलिस (ब्रेसेस) है जो कंधों के ऊपर रहती है, इससे पेट भिचने नहीं पाता। ग्रीष्म ऋतु और वर्षा ऋतु के लिये धोती को छोड़ कर सब से बढ़िया वस्त्र जो बना है वह निकर या शोर्टस् है। इसमें चलने फिरने, भागने दौड़ने और बैठने में सभी तरह आराम है; लागत बहुत कम लगती है; चुस्ती रहती है। केवल

चित्र ३२८ भाँति भाँति के वस्त्र
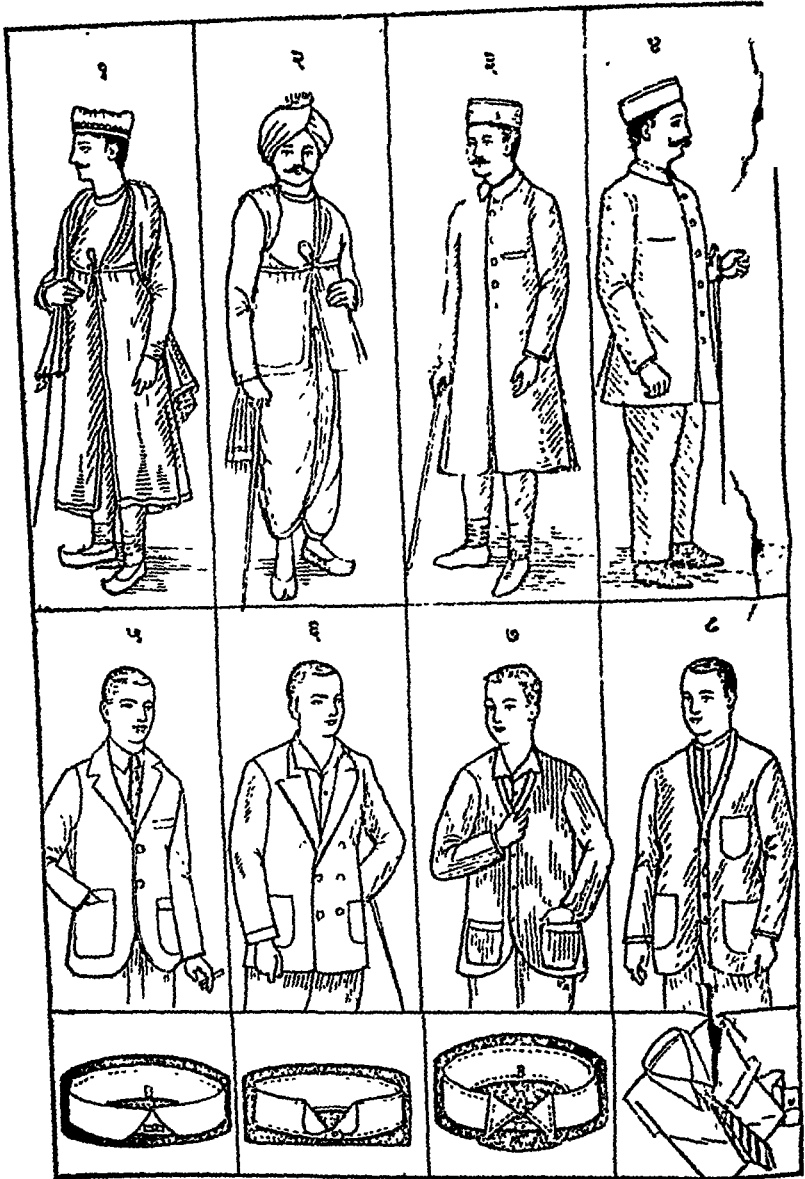
एक खराबी यह है कि यदि ध्यान न दिया जावे तो घुटनों में मच्छर काट लेते हैं।

मोज़े

गर्म ऋतु में घर पर मौज़े पहनने की कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती, हाँ इतनी बात है कि मोज़ों से मैले कुचैले पैर ढक जाते हैं और बुरे जूते पहनने से जो अंगुली अगूंठे टेढ़े हो जाते हैं या अंगुलियों पर गाँठें पड़ जाती हैं नहीं दिखाई देतीं। जहाँ तक हो सके सूती मोज़े ही पहनने चाहियें। मोज़े तंग न होने चाहियें और प्रति दिन नहीं तो दूसरे तीसरे दिन तो अवश्य धोने चाहियें, धोबी के यहाँ धुलवाने की आवश्यकता नहीं है, घर पर साबुन से अपने आप धो डालो। निकर के साथ लम्बे मोज़े पहने जाते हैं, यह भी गर्मियों में सूती होने चाहियें। मोज़ें बाँधने के लिये रबड़ या इलास्टिक के मोज़े बंधों का प्रयोग किया जाता है, यह तंग न होना चाहिये, तंग होगा तो रक्त का बहाव ठीक न होगा और बंध के नीचे की शिराएं गँठीली हो जावेंगी (चित्र ३२९ गँठीली शिराएं कैसी होती हैं केवल यही दिखाने के लिये दिया गया है; यह न समझो कि इस रोगी को रोग मोज़े बंध से हुआ है); डोरा बाँधना भी ठीक नहीं।

संक्षेप

हमारी राय में भारतवर्ष की क़ौमी पोशाक इस प्रकार होनी चाहिये —

१. शिर के लिये दो पलड़ी टोपी और शोला टोपी।

२. गर्दन में कौलर न पहना जावे; टाई की कोई आवश्यकता नहीं।

३. पोलो कालर या खुले गले का चौड़े कालर वाला कमीज़

या कुरता जिसमें बटन गरदन में न लगें; या टेनिस कॉलर वाला व
जो गरदन में खुला रहे। (चित्र ३२१ में ६,७,८)

चित्र ३२०. गंठीली शिराएं

इस रोग की चिकित्सा इंजेक्शन द्वारा हो सकती है।

४. छोटा अंगरखा या कोट स्वेटर के नमूने वाले गले का
यदि लौट कौलर वाला कोट ही पहना जावे तो उसके गले को

के लिये चौड़े कालर वाला कमीज़ पहना जावे (चित्र २२१में ६,७,८)

५. धोती या निकर। धोती के साथ छोटे मोज़े; निकर के साथ लम्बे मोज़े। जो लोग चाहें वे पतलून पहनें। चौड़ी मोरी के पाजामे में कोई दोष नहीं।

६. पैरों में जूता।

वस्त्र सम्बन्धी स्वच्छता बरतने वालों की पहचान

मनुष्य कपट और पाखंड से भरा हुआ है; कहता है कुछ करता है कुछ। बड़े बड़े व्याख्यान देकर लोग समाज में हलचल मचा देंगे; जब वही काम खुद करना पड़ता है तो मुँह छिपाते हैं।

किसी व्यक्ति की स्वच्छता इन वस्त्रों को देख कर जानी जा सकती है—रूमाल, तौलिया या अंगोछा, बनियान, पलंग की चादर और मोज़े। यदि ये वस्त्र साफ हैं तो समझ लेना चाहिये कि वह व्यक्ति वस्त्र सम्बन्धी स्वच्छता बरतता है। हम को बड़े से बड़े और छोटे से छोटे व्यक्तियों से सम्बन्ध पड़ा है; बड़े खेद के साथ लिखना पड़ता है कि यदि ऊपर की कसौटी द्वारा जाँचा जावे तो बहुत कम हिन्दू और मुसलमान स्वच्छ वस्त्र धारण करते मिलेंगे। क्या यह सत्य नहीं है कि बहुत से सब जजों, और हिन्दुस्तानी जजों, डिपटी कलक्टरों, सेठों, कौन्सिल के बहुत से मेम्बरों, वकीलों, पंडितों, मुल्लाओं और हकीमों और डाक्टरों की जेब में मैला रूमाल रहता है; क्या वे इसी मैले रूमाल से अपने रोते हुए बच्चों का मुँह नहीं पोंछ देते; क्या कभी कभी इसी नाक पोंछने वाले रूमाल में खाने की चीज़ें नहीं बाँध लेते; क्या कभी कभी इन्होंने इसी रूमाल से (अपने अफसर से मिलने के पहले) जूते नहीं झाड़े। क्या यह सत्य नहीं है कि ये लोग पढ़े लिखे और धन की कमी न होने पर भी अपने घर में काफी तौलिये या अंगोछे नहीं

रखते; क्या यह सत्य नहीं है कि इन लोगों के घरों में एक ही तौलि
से कई व्यक्ति मुँह पोंछ लेते हैं। क्या यह सत्य नहीं है कि ये लोग अ
अतिथि को भी अपने बदन पोंछने वाले तौलिये को हाथ पोंछने
लिये दे देते हैं। क्या यह सत्य नहीं है कि यह लोग साफ बनियान
कुरता पहनना उतना आवश्यक नहीं समझते जितना ऊपर से दि
देने वाला कोट या अचकन। क्या यह सत्य नहीं है कि मोज़ों को
बदलना उतना ज़रूरी नहीं समझा जाता जितना चमकदार जूता
अच्छा कॉलर टाई लगाना; क्या यह सत्य नहीं है कि जो लोग बा
खूब बने ठने रहते हैं उनके पलंग की चादर और तकिये का गिल
गंदा रहता है। साफ कोट पहनो; उमदा जूता पहनो, बढ़िया
लगाओ—ये सब बातें करो परन्तु ये काम स्वास्थ्य के लिये उ
आवश्यक नहीं हैं जितना साफ रूमाल, साफ तौलिया, साफ मो
साफ चादर और साफ बनियान। बड़ी बड़ी आमदनी वाले हिन्दू
तौलियों पर धन खर्च करना बुरा समझते हैं; स्वास्थ्य की दृष्टि
तौलिये, रूमाल अत्यंत आवश्यक चीज़ें हैं, यह धन वृथा नहीं जाता
घर में हर एक व्यक्ति का तौलिया अलग होना चाहिये और ये ची
इतनी हों कि हर समय साफ तौलिया रहे और अतिथि के लिये
समय पड़े पर साफ तौलिया अलग रहे।

पैर—जूते

यूरोपियन सभ्यता ने मनुष्य के पैरों को अत्यन्त हानि पहुँचा
है। आजकल (सन् १९२२ में) भी जब कि यूरोप वाले अपने
को प्राचीन सभ्यों से अधिक बुद्धिमान समझते हैं वे लोग अपने पै
को तंग पंजे का और ऊँची एड़ी का जूता पहन कर खराब करते न
शर्माते। बलवान् और राजा की नक़ल सभी करते हैं; गुलाम आ

वासी भी अपने हाकिमों की नक़ल करते हैं और अपने पैरों को विगाड़ते हैं; यही नहीं भारत की पढ़ी लिखी महिलाएँ भी तंग पंजे का ऊँची एड़ी का जूता पहन कर काली खाल रखते हुए भी मेम साहिवा वनने की दिलोजान से कोशिश करती हैं। अज्ञानता! तेरा सत्यानाश हो। नलक़चीपन! तुझे देश निकाला मिले।

प्राचीन हिन्दू पहले किस प्रकार का जूता पहनते थे यह कोई नहीं जानता। सलेमशाही जूता खराव होता है क्योंकि इसका भी पंजा तङ्ग होता है; इस जूते को पहन कर हम आजकल वहुत से काम नहीं कर सकते जैसे टेनिस खेलना, फुट वाल खेलना, अधिक दूर चलना या भागना। पैर पर धूल भी जम जाती है; मोज़े भी मैले हो जाते हैं; कीचड़ से भी वचाव नहीं हो सकता। वह केवल घर में या दफ़्तर में वही काम दे सकता है जो चट्टी या स्लीपर। हमारे ख़्याल में वह त्याज्य है। (चित्र ३३० में ७) चौड़े पंजे के देशी जूते में वे सव दोष हैं जो सलेमशाही में। (चित्र ३३० में ६) जूता पैर की आकृति के अनुसार होना चाहिये; पैर का पंजा चौड़ा होता है; पंजे का अन्दर का भाग (चित्र ३३० में १,२) सीधा होता है; वाहर का भाग गोलाई लिये चौड़ा (चित्र ३३० में १,४) जव हम सीधे पंजे मिला कर खड़े होते हैं तो पंजे के अंदर के किनारे (१,२) एक दूसरे के समांतर रहते हैं और मिल जाते हैं। जूता भी ऐसा ही होना चाहिये; जव हम पैर मिला कर खड़े हों तो दोनों जूतों के अंदर के किनारे (अंगूठों की ओर के किनारे) सीधे हों और एक दूसरे से मिल जावें; वाहर का भाग (कनिष्ठा की ओर का किनारा) महरावदार होना चाहिये। जूते का पंजा इतना चौड़ा हो कि उसमें पैर की अंगुलियाँ भली प्रकार गति कर सकें; एक दूसरे के ऊपर न चढ़ें। तंग और नोकदार जूते में पंजा कस जाता है; अंगुलियाँ एक दूसरे के ऊपर चढ़ जाती हैं; अंगूठा दूसरी अंगुली के ऊपर चढ़

चित्र ३३० पैर, जूते

जाता है; अंगुलियों पर ठेक और गट्टे पड़ जाते हैं जिनमें कुछ समय बाद अत्यन्त पीड़ा होने लगती है (चित्र ३३० में ११,१२ तङ्ग जूता, १२ तङ्ग जूते से अंगुलियाँ टेढ़ी हो जाती हैं); यही नहीं अंगुलियों के बीच में खाल छिल जाती है और वहाँ उकौता का रोग हो जाता है; कभी कभी अंगूठा इतना टेढ़ा हो जाता है (हमने विलायत में बहुत देखा है) कि ऑपरेशन की आवश्यकता होती है। चित्र ३३१ एक्स-रे चित्र है; तङ्ग और नोकीला जूता पहनने से पैर की

चित्र ३३१ जूते पहने हुए पैरों का एक्स-रे चित्र
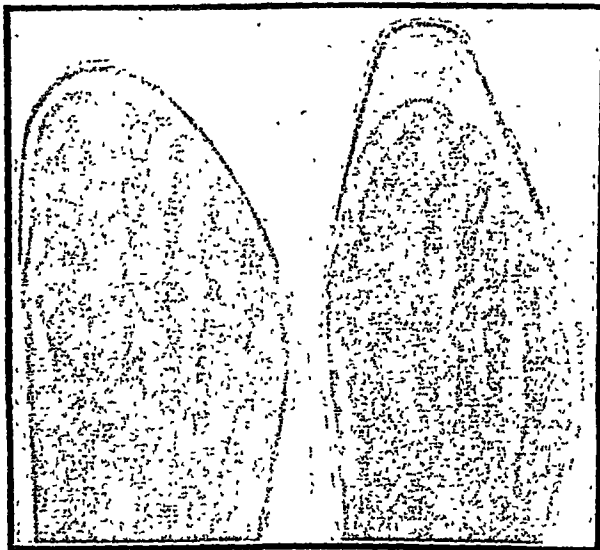
अच्छा जूता बुरा जूता

क्या दशा होती है यह दाहिने चित्र में दिखाया गया है; बायाँ चित्र अच्छे चौड़े पंजे वाले जूते का है; इसमें अंगुलियाँ ठीक स्थान पर हैं।

अमेरीकन टो; औक्सफोर्ड टो; डर्बी टो

अमरीका वाले फैशन के इतने गुलाम नहीं हैं जितने अंगरेज़ और यूरोप वाले। वे लोग अपने पैर की नाप का जूता बनवाने का यत्न किया करते हैं; "अमरीकन टो" का जूता चौड़े पंजे का होता है। अब विलायत में एक फैशन है जिसे 'औक्सफोर्ड टो' कहते हैं; धनवान् लोग जैसे बड़े बड़े लार्ड, जो फैशन के गुलाम हैं इसी प्रकार का जूता पहनते हैं; और वह लोग उन लोगों को जो चौड़े पंजे का जूता पहनते हैं कम सभ्य समझते हैं; यह जूता तंग पंजे का होता है और पैर को अत्यंत हानि पहुँचाता है। इन लोगों को हानि से क्या? जूता पहनकर बड़े तो कहलावें उनकी बला से यदि पैर खराब हो जावें। विलायत में 'डर्बी टो' भी पहना जाता है; यह कम फैशनेबल और ग़रीब लोगों का जूता है; यह चौड़े पंजे का होता है परन्तु इतना चौड़ा नहीं जितना होना चाहिये। कुछ समय पहले चीनी लोग अपनी स्त्रियों के पैर जन्म से ही तंग जूता पहना कर छोटा कर देते थे, विलायत वाले उन पर हँसते थे और उनको असभ्य समझते थे; इन लोगों को दूसरों पर हँसते शर्म नहीं आती, वे अपने और अपनी स्त्रियों के पैर देखें कितने भद्दे और मुड़े हुए मालूम होते हैं। सच है जो बलवान कहे और करे वही ठीक है।

स्त्रियों का जूता

तङ्ग और नोकदार पंजा और ऊँची एड़ी दोनों ही स्वास्थ्य को बिगाड़ते हैं; इसलिये भारत की महिलाओं को विदेशी मेमों की नक़ल न करनी चाहिये। चट्टी अच्छी चीज़ है; अधिक चलने फिरने का काम हो तो चौड़े पंजे का और नीची एड़ी का जूता पहनो।

बच्चों का जूता

वर्धन काल में पैर को तङ्ग जूते में कस कर खराव न करो। चित्र ३३० में नं० १४ अच्छे और पैर की आकृति के जूते की तसवीर वनी है।

स्त्रियों की पोशाक

स्त्रियाँ आमतौर से बहुत कम कपड़े पहनती हैं। छातियों (स्तनों) को लटकने से रोकने के लिये उनको एक विशेष प्रकार के वस्त्र की आवश्यकता है। कमर को कस कर तंग करने का रिवाज ईसाई सभ्यता से भी उड़ता जाता है, डाक्टरों की चल गई और वह स्वास्थ्य को विगाड़ने वाला निन्दनीय फैशन अब कुछ दिनों में असभ्यता का चिह्न समझा जावेगा। भारत की महिलाएँ इस वात को याद रक्खें और अपनी कमर को कौरसेट वाँध कर (कमर पतली सुराहीदार गर्दन) पतली करने की कोशिश न करें। साड़ी से वढ़ कर औरतों के लिये अब तक कोई और पोशाक नहीं वनी; इसी को रखना ठीक है। भारत की स्त्रियाँ मेमों की देखा देखी अपने कपड़ों में वटन पीछे (पीठ पर) लगाती हैं; यह ठीक नहीं; वटन आगे ही लगने चाहिएँ। लहँगे का रिवाज अब कम होता जाता है; उसमें कपड़ा भी अधिक ख़र्च होता है।

बच्चों की पोशाक

ढीली होनी चाहिये; वचपन ही से वच्चों को अधिक कपड़े लादने की आदत न डालो; परन्तु इस वात का ख़्याल रक्खो कि उनको ठंढ न लग जावे और लू भी न मारे।

नाखून

त्वचा से ही निकलते हैं। ईसाई देशों में स्त्रियाँ लम्बे लम्बे नाखून रखती हैं; बहुतों के नाखून तो गंदे रहते हैं; जो फैशन की गुलाम हैं वे अनेक विधियों से उनको सफा कराती हैं और इसमें धन खर्च करती हैं। हम नाखूनों को बड़ा रखना असभ्यता का चिह्न समझते हैं। कितनी ही सफाई की जावे लम्बे नाखून पूरे तौर से साफ नहीं रक्खे जा सकते। जो लोग नंगे पैर चलते हैं या हाथों से मेहनत करते हैं उनके नाखून प्रति दिन घिस जाते हैं; जिनके नाखून न घिसें उनको समय समय पर काटना चाहिये।

२. आँख

धूल, मिट्टी, धुआँ, गन्दी वायु, बहुत गर्म जल, बहुत ठंढा जल, हवा का झोंका, लू, आँधी और तेज़ चीज़ें जैसे मिर्चों का धुआँ इत्यादि चीज़ें आँखों के लिये हानिकारक हैं। प्रतिदिन धोकर आँखों को साफ रखना चाहिये; यदि धूल मिट्टी में काम करना पड़े तो दिन भर में कई बार धोना चाहिये। आँख के गड्ढे में ऊपर के भाग में एक आँसू बनाने वाली ग्रन्थि होती है; थोड़े बहुत आँसू हर समय बनते रहते हैं, इन आँसुओं की तरी से जो कुछ धूल मिट्टी आँख में पड़ जाती है वह अपने आप बह कर निकल जाती है या आँख के कोयों में इकट्ठी हो जाती है।

आँख में धूल, मिट्टी, भुनगा, कोयला

आँख में अकसर छोटे छोटे भुनगे पड़ जाया करते हैं; इस समय आँख को मलना न चाहिये क्योंकि इस से वह और भीतर को घुस जाते हैं; ऐसी दशा में आँख खोलो और पलकों को झपकाओ; आँसुओं

द्वारा वह शीघ्र कोये में चला आवेगा और फिर आप सहज में निकाल सकते हैं। यदि इस विधि से न निकले तो चुल्लू में पानी भर कर आँख उसमें रख कर झपकाओ; अब भी न निकले तो किसी चिकित्सक को दिखलाओ।

रेल में सफ़र करते हुए रेल की खिड़की में से न झाँको विशेष कर उस ओर को जिधर से धुआँ आता हो। हवा के झोंके से कोयला या धूल आँख में गिर पड़ती है। जब कोयला या धूल इस प्रकार गिर पड़े तो भी आँख को मलना ठीक नहीं क्योंकि इससे कोयला और भीतर को घुस जाता है; और उसकी रगड़ से ज़ख़्म बन जाते हैं। धीरे धीरे पलक झपकाओ; यह कोयला आँसुओं द्वारा निकल जावेगा; न निकले तो चुल्लू में पानी भर के उसमें आँख झपकाओ; अब भी न निकले तो अच्छे चिकित्सक को दिखलाओ। कोयले, पत्थर, लोहे इत्यादि से कनीनिका (सामने का स्वच्छ भाग) में अक्सर ज़ख़्म हो जाते हैं और कभी कभी आँख फूट भी जाती है। बाज़ार में आँख धोने का गिलास बिकता है यह आँखें धोने के लिये बहुत अच्छा होता है।

पढ़ना लिखना

पढ़ने के समय पुस्तक लगभग १३-१५ इंच की दूरी पर रक्खो। यदि इस दूरी पर पढ़ने में कठिनता हो तो समझना चाहिये कि आँख में कोई ख़राबी है। जो लोग पुस्तक को आँख के बहुत निकट रखते हैं उनको 'निकट दृष्टि' रोग होता है; ये लोग दूर की चीज़ साफ़ नहीं देख सकते। यह रोग युगलनतोदर ताल के चश्मे से दूर हो जाता है। बहुत से लोगों के पढ़ते पढ़ते सिर में या आँखों में दर्द होने लगता है; ये लोग नज़दीक की चीज़ देख लेते हैं और दूर की भी परन्तु अधिक मेहनत करने में आँखों पर ज़ोर पड़ता है; यह अक्सर

'दूर दृष्टि' रोग होता है और युगलोन्नतोदर चश्मे से दूर हो जाता है। २० वर्ष के बाद, कभी कभी इस से पहले भी बहुत से लोगों को बारीक काम करने में या पढ़ने में चीज़ को १३-१५ इंच से अधिक दूरी पर रखना पड़ता है; नज़दीक रहने पर चीज़ साफ़ नहीं दिखाई देती या केवल मोटी ही चीज़ दिखाई देती है; ऐसे लोगों को भी चश्मे का प्रयोग करना चाहिये।

आँख और प्रकाश

आँख का एक रोग होता है जिसे कहते हैं 'मोतिया बिन्दु'। वैसे तो वृद्धावस्था में यह रोग थोड़ा बहुत सभी देशों में होता है; भारतवर्ष में यह बहुत होता है विशेष कर पंजाब और पंजाब के आस पास। इस रोग में आँख का ताल धुँधला हो जाता है जिसके कारण दृष्टि धीरे धीरे कम हो जाती है। यह रोग ऑपरेशन द्वारा अच्छा हो जाता है; यह धुँधला ताल निकाल डाला जाता है और फिर मोटे उन्नतोदर चश्मे द्वारा व्यक्ति सब काम कर सकता है। यह रोग भारत में क्यों अधिक होता है इसका ठीक कारण मालूम नहीं परन्तु सूर्य्य का तेज़ प्रकाश और खाद्योज पूर्ण भोजन का न मिलना ये दो सहायक कारण अवश्य हैं।

पढ़ने लिखने के समय प्रकाश किस ओर से आना चाहिये

प्रकाश चाहे सूर्य्य का हो चाहे लैम्प का या तो पीछे से आना चाहिये या बाएँ हाथ की ओर से। सामने से आँखों पर चौंध इतनी अच्छी नहीं, आँखें शीघ्र थक जाती हैं। लिखते समय (उन लिपियों के लिखने को छोड़ कर जो दाहिनी ओर से बाईं ओर को लिखी जाती
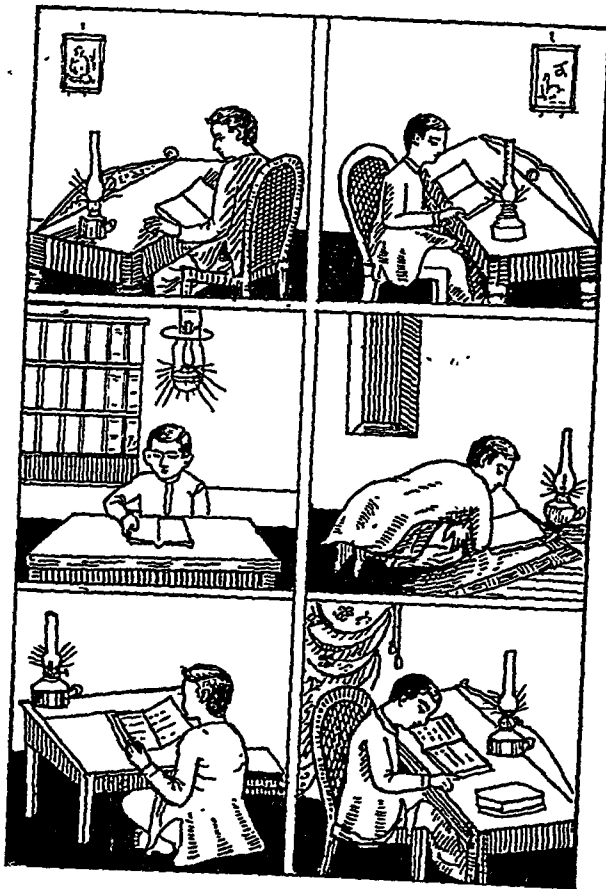
१, २, ३—पढ़ने की ये तीनों विधियाँ ठीक हैं। प्रकाश बाएँ हाथ की ओर से आता है या पीछे से या ऊपर से आता है।

४, ६—इस प्रकार न पढ़ना चाहिये क्योंकि प्रकाश या तो दाहिनी ओर से आता है या सामने से।

५—बहुत झुक कर पढ़ने से पेट से अंग भिच जाते हैं।

हैं) प्रकाश का बाईं ओर से आना अच्छा है क्योंकि यदि वह दाहिनी ओर से आवेगा तो कागज़ पर हाथ की परछाईं पड़ेगी और ठीक ठीक दिखाई न देगा।

शिर को नीचे को झुका कर पढ़ने न बैठना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से गरदन में रहने वाले अंग भिच जाते हैं और मस्तिष्क का रक्त भ्रमण भली प्रकार नहीं हो पाता। जब पढ़ते पढ़ते आँखों को थकान मालूम होने लगे तो खुले मैदान में जा कर दूर की चीज़ों को देखना चाहिये ; इससे आँख की पेशियों की थकान दूर हो जाती है।

पढ़ना आरम्भ करने की आयु

हमारी राय में ७ वर्ष से पहले आँखों पर अधिक ज़ोर न डालना चाहिये। इससे पहले एक दो साल की शिक्षा केवल खेल खिलौनों, चित्रों, मौडलों द्वारा होनी चाहिये ; बारीक अक्षरों का काम न होना चाहिये।

अक्षर, छापा

अधिक छोटे और बारीक अक्षर भी दृष्टि को बिगाड़ते हैं। जिस टाइप में यह पुस्तक छपी है वह ठीक है ; जो बारीक और छोटा टाइप इस पुस्तक में है उससे छोटा टाइप न होना चाहिये।

पाठशालाओं की मेज़ कुर्सियाँ

मेज़, कुर्सी और बेंचों की उँचाई का भी आँखों पर बहुत असर पड़ता है। यदि मेज़ नीची है और बैठक (कुर्सी, बेंच, स्टूल) ऊँची तो चीज़ें आँखों से बहुत दूर हो जावेंगी और विद्यार्थी को या तो आगे को झुकना पड़ेगा और टेढ़ा बैठना पड़ेगा या पुस्तक ऊपर को उठानी पड़ेगी। आगे झुकने में रीढ़ पर ज़ोर पड़ता है और पेट और सीना

दोनों के अंग सिकुड़ते हैं और साँस ठीक तौर पर नहीं आ सकती (चित्र ३३३ में १)। यदि मेज़ ऊँची है और कुर्सी नीची तब पुस्तक आँख से बहुत नज़दीक आ जाती है और पढ़ना लिखना ठीक तौर से नहीं बनता। मेज़ों और कुरसियों की उँचाई विद्यार्थियों के क़द के हिसाब से होनी चाहिये ताकि उनको टेढ़े तिर्छे हो कर पढ़ना लिखना न पड़े और उनकी आँखों पर ज़ोर न पड़े। जैसे पढ़ने लिखने में पुस्तक और कापियाँ आँख के बहुत निकट या बहुत दूर न रखनी चाहिये इसी प्रकार काढ़ने और सीने के समय भी चीज़ को बहुत दूर या निकट न रखना चाहिये और कमर को बहुत झुका कर न बैठना चाहिये (चित्र ३३३)।

जिन विद्यार्थियों की आँखें कमज़ोर हैं या स्वास्थ्य अच्छा नहीं है उनको काढ़ना, बिनना, क्रूशे से काम करना हानि पहुँचाता है। जो विद्यार्थी पाठशाला में 'काले वोर्ड' पर लिखी चीज़ भली प्रकार न पढ़ सके उसको अपनी आँखों की जाँच करानी चाहिये। बहुत चिकने और चमक दार कागज पर छपी हुई पुस्तकों के पढ़ने से आँखों पर चौंद पड़ती है जिस से हानि पहुँचती है।

पढ़ने लिखने के समय शरीर की ठीक स्थिति

शरीर सीधा रहना चाहिये और पुस्तक आँखों के सामने रहनी चाहिये—आँखें सामने को रहनी चाहियें; यदि पुस्तक आँखों से नीचे रहेगी तो आँखों को नीचे को घुमा कर रखना पड़ेगा, इससे उन पेशियों पर जिनका काम आँखों को नीचे (पृथिवी) की ओर घुमाना है अत्यंत ज़ोर पड़ता है। इसके अतिरिक्त गरदन की रक्तवाहिनियाँ और चुल्लिका ग्रन्थि भी भिच जाती हैं जिससे मस्तिष्क को अत्यंत हानि होती है। इसका तात्पर्य्य यह है कि सामने रक्खी हुई मेज़

चित्र ३३३

१ २

३ ४
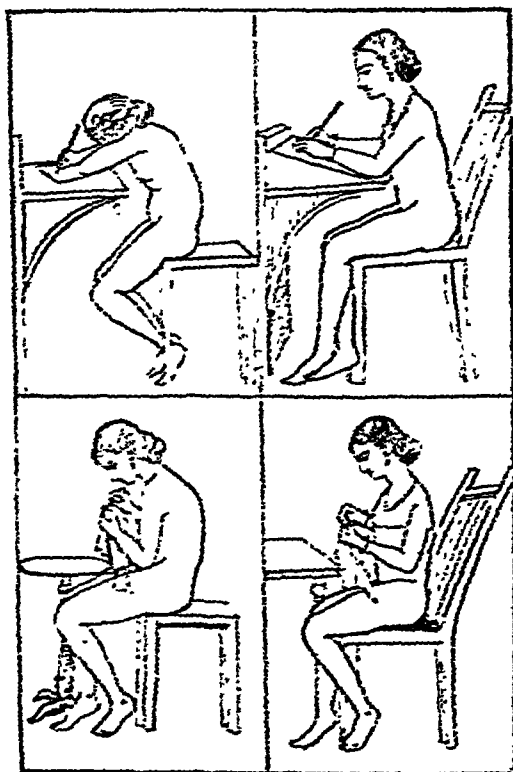
१-३—बैठने की खराब विधि।

२-४—बैठने की ठीक विधि।

ढालू होनी चाहिये अर्थात् डेस्क मेज़ से अच्छा है। लेट कर पढ़ना भी ठीक नहीं इससे भी आँख की नीचे वाली पेशियाँ शीघ्र थक जाती हैं। चलती गाड़ी और रेल में पढ़ना भी ठीक नहीं क्योंकि पुस्तक और शरीर के हिलने से दृष्टि का स्थिर रखना असंभव हो जाता है और पेशियों पर अत्यंत ज़ोर पड़ता है। कम प्रकाश उतना ही हानि पहुँचाता है जितना अधिक प्रकाश।

तम्बाकू और दृष्टि

तम्बाकू पीना और खाना दृष्टि को बिगाड़ता है; विद्यार्थियों के लिये तम्बाकू (सिग्रेट, बीड़ी, सिगार) विष के समान है।

आँख उठना; आँख आना

जब बच्चों के दाँत निकलते हैं तो उनकी आँखें अकसर आ जाती हैं, दाँत निकलते ही आँखें अच्छी हो जाती हैं।

आँख की श्लैष्मिक कला का प्रदाह कई प्रकार के कीटाणुओं द्वारा होता है। मामूली प्रदाह बोरिक लोशन (१० ग्रेन बोरिक ऐसिड एक औंस या आधी छटाँक उबला हुआ जल या गुलाब जल), जस्ते का पानी (ज़िंक लोशन=१ या दो ग्रेन जिंक सल्फेट और एक औंस उबला हुआ जल) या केवल गुलाब जल के दिन में दो या तीन बार टपकाने से अच्छा हो जाता है।

आँखों का एक विशेष रोग होता है जिसे "रोहे" या "कुथरू" कहते हैं। इसमें पलकों के नीचे की झिल्ली में दाने पड़ जाते हैं। छोटे बच्चों में कभी कभी पपोटे इतने फूल जाते हैं कि आँखें खुलती नहीं। भारी पलकों और इन दोनों की रगड़ से कनीनिका (सामने का स्वच्छ भाग) पर ज़ख़्म हो जाते हैं जिन के अच्छा होने पर आँख में

सफेद तिल पड़ जाते हैं—इसी को माड़ा कहते हैं। यह रोग छूत का रोग है, बड़ों से बच्चों को और बच्चों से बड़ों को लगता है; बड़ी देर में अच्छा होता है। जब पपोटे फूल जावें तो उन पर गीला सेंक करना चाहिये। जैसे गरम बोरिक लोशन में भिगोकर साफ रुई को पोटली या फाये से सेंक करना; पोस्ते का सेंक बहुत फायदा करता है। आधी छटाँक पोस्ते के डोडे (या बुड्डी) पानी में उबाल लो; छोटी सी पोटली बनाओ और फिर दो दो घन्टे बाद इस पोटली को सहते सहते पोस्ते के पानी में भिगो कर पपोटों पर सेंक करो। जब आँख खुलने लगे तो पलक उलट कर दवा लगवाओ। इस रोग में "चाकसू", सिलवर नाइट्रेट, और तूतिया का प्रयोग होता है। चाकसू अच्छी चीज है यह हमने खुद आज़मा कर देखा है।

जब रोहों का रोग किसी बच्चे को हो जावे (भारतवर्ष में यह रोग बहुत होता है) तो जब तक जड़ न टूट जावे उस समय तक उसका इलाज करते रहना चाहिये। यदि बचपन में इलाज में कोताही होगी तो जन्म भर दिक्क करेगा।

"रोहे" छूत का रोग है। जब यह रोग घर में किसी को हो जाता है तो उस घर में बहुत कम व्यक्ति बचते हैं। पति से पत्नी को और पत्नी से पति को; माता से बच्चों को; एक बच्चे से दूसरे बच्चे को इत्यादि। कारण यह है कि साधारण स्वच्छता भी नहीं बरती जाती। आम तौर से एक ही अंगोछे से बहुत से लोग मुँह और आँखें पोंछ लेते हैं, जो जल आँख से निकलता है उसमें रोगाणु रहते हैं, ये रोगाणु एक अँगोछे या रूमाल या धोती द्वारा और लोगों की आँखों में पहुँच जाते हैं।

बचपन की लापरवाही से या आगे चलकर कुशिक्षा के कारण हाथ मुँह पोंछने में छूत न मानने से भारतवर्ष में सैकड़ों विद्यार्थियों की

आँखें खराब रहती हैं; एक ज़िले में हमने दो स्कूलों के लड़कों की आँखों की जाँच की; पता लगा कि एक स्कूल में (जहाँ कंगालों के लड़के थे) ८०% और दूसरे स्कूल में ६०% लड़कों की आँखों में यह रोग किसी न किसी अवस्था में था। भारतवर्ष में दृष्टि ख़राब होने का एक मुख्य कारण यह रोग है। जब किसी व्यक्ति के ऊपर के पलक कुछ लटके से और भारी मालूम हों और उसकी आँखें सुबह को उठते समय चिपक जावें या उसकी आँखों से पानी आवे तो इस रोग को याद करना चाहिये।

रोहों से बचने के उपाय

१. कभी भी दूसरे की आँखों और मुँह पोंछे हुए कपड़े से अपनी आँखें और मुँह न पोंछो। अपना रूमाल, अपना तौलिया या अंगोछा अलग रक्खो। बहुत से स्त्री और पुरुष अपनी धोती से बच्चों के मुँह पोंछ दिया करते हैं, यह गंदी आदत है। कोई ग़रीब आदमी ऐसा करे तो वह क्षमा किया जा सकता है; हमने तो बड़े बड़े वकीलों, वैरिस्टरों, जजों, डिप्टी कलक्टरों और सेठ साहुकारों को रूमाल और तौलिये के विषय में अत्यंत कंजूसी करते देखा है, उनका यह काम अत्यंत निन्दनीय है। आज कल भारतवर्ष में लक्ष्मी और स्वच्छता साथ साथ कम रहती हैं। भारतवर्ष में विद्या और स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान भी साथ साथ रहते कम देखे जाते हैं; हमने अँगरेज़ों को (विशेष कर मेमों को) भी अपनी नाक पोंछने वाले रूमाल से अपने रोते बच्चे की आँखें पोंछते देखा है।

२. जब रोहे पुराने हो जाते हैं तो जब तक वे अच्छे न हो जावें जम कर चिकित्सा करनी चाहिये। चक्षुरोगवेत्ता कहते हैं कि यदि जमकर चिकित्सा की जावे तो रोग दो वर्ष में अच्छा हो सकता है।

२. धूल, मिट्टी, धुआँ, तेज़ धूप इस रोग को बढ़ाते हैं। मक्खी द्वारा भी यह रोग फैलता है।

दृष्टि बिगाड़ने वाले मुख्य कारण

१. रोहे और रोहे से होने वाले और रोग

२. मोतिया बिन्द

३. सोज़ाक (२०% अंधे, विशेषकर जन्म के सूर इसी रोग द्वारा होते हैं)

४. आतशक

५. तम्बाकू

६. आँखों में कोयला, लोहा, मिट्टी पड़ने से ज़ख़्म हो जाना

७. खाद्योज पूर्ण भोजन की कमी

८. पैदायशी आँख की खराब बनावट

९. पढ़ने लिखने में ठीक स्थिति का न होना

१०. बहुत बारीक अक्षर; अधिक काढ़ना, सीना; छापेखाने का काम; अधिक पढ़ना; अन्य काम जिन में आँखों पर बहुत ज़ोर पड़े।

३. कान

कान का एक नली द्वारा हलक़ (गले) से सम्बन्ध है। जब हलक़ खराब हो जाता है तो सुनने में फ़र्क़ आ जाता है और कान में दर्द भी हो जाता है बच्चों में जब तालव ग्रन्थियाँ बड़ी हो जाती हैं तो कान पक भी जाता है और बहने लगता है। कान के तीन भाग हैं; एक बाहर का जिस को मास्टर लोग पकड़ा करते हैं, जिस में से मैल निकला करता है और जिस को अंगुली से या सींक से खुजाया करते हैं; एक सब से अन्दर का जिस में एक विचित्र यंत्र रहता है जिस का सुनने की शक्ति से विशेष सम्बन्ध है; इन दोनों के बीच में जो भाग है उस में

तीन छोटी छोटी अस्थियाँ रहती हैं, इसी भाग का एक नली द्वारा गले से सम्बन्ध होता है। बाहर के और बीच के भाग में एक परदा लगा होता है; जब बीच के भाग में पीप बनती है तो बड़ा दर्द होता है; यह मवाद परदे को फाड़ कर बाहरी कान से बाहर आता है। बाहर के कान की नली में भी फुड़िया बन जाती हैं विशेष कर उन लोगों के जो मैली सींक या लकड़ी या कील इत्यादि से कान को खुजाया करते हैं; इस से अत्यन्त पीड़ा होती है और जब तक यह फुड़िया फूट न जावे या बैठ न जावे रोगी को अत्यन्त कष्ट होता है। यदि दूध पीता बच्चा अत्यन्त रोवे और अपना हाथ कान के पास ले जावे तो उस के कान की परीक्षा तुरंत होनी चाहिये; संभव है कि उस का कान पक रहा हो।

कान को सींक, पेन्सिल, क़लम, कील इत्यादि बारीक चीज़ों से कभी भी न खुजाना चाहिये। अंगुली यदि वह साफ हो तो उस को कान में दे कर कान को हिलाने में कोई हर्ज नहीं, ऐसा करने से थोड़ा सा मैल बड़ी आसानी से बाहर आ जाता है। कान का मैल पानी लगने से फूल जाता है, इसी लिये जब तालाब, या दरिया में ग़ोता लगाने से कान में पानी भर जाता है और वर्षा ऋतु में जब वायु में बहुत तरी रहती है तो मैल अकसर फूल जाया करता है; यदि मैल थोड़ा हो तो कोई विशेष कष्ट नहीं होता। कान में ज़रा सा भारीपन मालूम होता है: यदि मैल ज़्यादा है तो बहुत पीड़ा होती है और सुनाई में भी फ़र्क़ आ जाता है। ऐसी हालत में सब से अच्छा इलाज तो कान को पिचकारी द्वारा हलके गर्म जल से जिस में ज़रा सा बोरिक ऐसिड या सोडा बाइकार्ब पड़ा हो धुलवा देना है, मैल निकलते ही दर्द जाता रहता है। कान में ज़रा सा हलका गर्म कड़ुवा तेल या लिक्विड पैराफीन* डालना भी उपयोगी है, मैल घुल जाता है और

*Liquid paraffin.

पतला हो कर बाहर आ जाता है। आज कल के कनमैलिये बहुत बेवकूफ होते हैं, उन के हाथ और औज़ार गंदे होते हैं, इन लोगों से

चित्र ३३४

कनमैलिये से बचो; कान एक बहुत पेचीदा यंत्र है, यह बेचारा उस को नहीं समझ सकता

बचना चाहिये; कभी कभी ये कान के परदे तक को फाड़ डालते हैं; यदि परदा पहले से फटा हो तो मध्य कर्ण की छोटी छोटी अस्थियों को मैल समझ कर बाहर खींच लेते हैं।

कान में अनाज, मोती इत्यादि डालना

कुछ छोटे बच्चों को अपने छिद्रों में विशेष कर नाक और कान में अनेक प्रकार की चीज़ों के डालने का बहुत शौक़ होता है, मोती, चना, गेहूँ, मटर, पेन्सिल का टुकड़ा इत्यादि निकालने का हम को अकसर अवसर मिला है। माता पिता इन चीज़ों को निकालने की कोशिश करते हैं और जितनी कोशिश वे करते हैं उतनी ही ये चीज़ें और भीतर को घुसती जाती हैं। जब बच्चा इस प्रकार की चीज़ें कान में डाले तो तुरंत डाक्टर के पास ले जाना चाहिये, वह पिचकारी द्वारा, या यन्त्रों द्वारा उस को सुगमता से निकाल देगा। जब चना या मटर भीगने से फूल जाती हैं तो अत्यंत पीड़ा होती है और उन को निकालना सहज भी नहीं। यदि कान में कोई भुनगा या कीड़ा घुस जावे तो तेल डालने से वह शीघ्र बाहर आ जाता है या मर जाता है; यदि कीड़ा अभी घुसा हो तो कभी कभी बिजली की 'टोर्च' के प्रकाश से एक दम बाहर लौट आता है।

कान बिन्धवाना

हिन्दुओं में कान की लौर स्त्री और पुरुष दोनों में बिंधवाई जाती है; क्यों ? यह कोई नहीं जानता। कहते हैं कि कान की लौर बिंधवाने से अंडकोष के रोग नहीं होते; हमारी राय में यह एक मिथ्या विचार है; भारतवर्ष में जितने अंडकोष के रोग हिन्दुओं को होते हैं उतने अहिन्दुओं को नहीं होते। कान बींधने के समय तार या सुई को स्पिरिट द्वारा या पानी में पका कर या लम्प की लौ में रख कर रोगाणु रहित कर लेना चाहिये; जब तार मैला होता है तो कान पक जाता है और फिर बड़ी देर में अच्छा होता है। समस्त संसार की स्त्रियाँ कान

बिंधवाती हैं और बालियाँ और आभूषण पहनती हैं; हम इस को स्त्रियों को गुलाम बनाने का एक अच्छा तरीक़ा समझते हैं।

मास्टर लोगों को कान पर थप्पड़ मारने का बहुत शौक़ होता है; कभी कभी कान का परदा फट जाता है और कभी कभी मस्तिष्क को भी हानि पहुँचती है; ऐसा करना ठीक नहीं।

४. नाक

साँस नाक द्वारा ही लेनी चाहिये। जो लोग मुँह से साँस लेते हैं या जिनका मुँह सोते समय थोड़ा बहुत खुला रहता है उन के गले या नाक में बहुधा कोई रोग होता है। नाक द्वारा हम को गंध का बोध भी होता है।

जब हम नाक द्वारा साँस लेते हैं तो वायु नाक की झिल्ली की तरी और गरमाई से तर और गर्म हो जाती है; इस के अतिरिक्त वायु नाक के बालों की छलनी में से छन कर जाती है; धूल और कीटाणु भीतर नहीं घुसने पाते। नाक की झिल्लियों में जो सिनक बनता है उस में कीटाणु-नाशक शक्ति भी होती है। जब हम मुँह से साँस लेंगे तो धूल और कीटाणु मुँह और साँस लेने की नालियों में चले जावेंगे और हानि पहुँचावेंगे। अंदर जाने वाली वायु तर और शरीर के ताप के अनुकूल भी न हो सकेगी। जब मुँह से साँस लिया जाता है तो न्युमोनिया, इन्फ्लुएंज़ा, खाँसी, दिक़ के कीटाणु शरीर में पहुँच कर रोग उत्पन्न करते हैं।

जब जुकाम होता है तो नाक की झिल्ली में वरम आ जाता है (नासाह हो जाता है); फिर धीरे धीरे गले और कभी कभी स्वर यंत्र की झिल्ली में भी वरम आ जाता है। झिल्ली के वरम से पहले तो खुश्की और भारीपन उत्पन्न होता है, फिर वहाँ तरी आ जाती है और पानी

सा निकलता है, फिर गाढ़ा वलग़म निकलने लगता है। इस सब का अभिप्राय यह है कि रोगाणु शरीर से वाहर निकल जावें।

नाक की झिल्ली कोमल होती है, वह मौसम की ऐसी तब्दीलियों को जो एक दम हुआ करती हैं वरदाश्त नहीं कर सकती। एक दम ठंढे कमरे से गर्म कमरे में या गर्म से ठंढे कमरे में जाना उस झिल्ली को हानि पहुँचाता है। जो लोग वंद कमरे में सोते हैं उन को ज़ुकाम शीघ्र हुआ करता है क्योंकि उन को गर्म वायु से ठंडी वायु में आना पड़ता है। सोने के लिये सव से अच्छी जगह वरांडा है क्योंकि वहाँ की और वाहर की वायु के ताप में उतना अंतर नहीं रहता जितना कमरे की और वाहर की वायु में रहता है।

नाक खुजाना

नाक में वार वार अंगुली देना ठीक नहीं, इससे वाल टूट जाते हैं और फिर वहाँ कीटाणुओं के आक्रमण से फुन्सी वन जाती है। नाखूनों के परदे में लग जाने से वहाँ भी ज़ख़म हो जाते हैं और वहाँ से कभी कभी वहुत खून वहने लगता है (नकसीर फूटना)। यदि नाक में खुश्की हो तो ज़रा सा घी या वैसलीन चुपड़ लेनी चाहिये।

नकसीर

जव नकसीर फूटे तो गरदन को आगे को नहीं झुकाना चाहिये क्योंकि इससे गर्दन की रक्त वाहिनियों पर दवाव पड़ता है और रक्त अधिक वहेगा। गरदन का कपड़ा ढीला कर दो और रोगी को आराम से विठाओ और गर्दन पीछे को झुकाओ; नाक पर ठंढ पहुँचाओ मिल सके तो वरफ की पोटली या ठंढे पानी का कपड़ा लगाओ। यदि इस मामूली विधि से रक्त तुरंत न वन्द हो तो डाक्टर को दिखलाना

चाहिये। जिन लोगों की नकसीर फूटा करती है उनको नाक में कोई रोग होता है और इसकी जाँच होनी ज़रूरी है। एक रोगी की नकसीर वार वार फूटा करती थी, जाँच से मालूम हुआ कि इसका कारण एक संकटमय रसौली का बनना था।

हलक (कंठ) गला

नाक और जिह्वा के पीछे का भाग हलक या कंठ या गला है। कंठ में इधर उधर दो गाँठे होती हैं यह "तालव ग्रन्थियाँ" या टौन्सिल (Tonsils) हैं। बच्चों में यह अक्सर बढ़ जाया करती हैं। इनके बढ़ने से हलक में दर्द होता है और निगलने में तकलीफ होती है। तालव ग्रन्थियों के अतिरिक्त गले में नाक के पीछे के भाग में नन्हे-नन्हे कुछ और छोटे छोटे "ग्रन्थि समूह' होते हैं (चित्र ३२५ में २) इनको 'एडिनौयड्स (Adenoids) कहते हैं, ज्यों ज्यों बालक बढ़ता है। ये अपने आप छोटे होते जाते हैं। परन्तु कुछ वालकों में यह बड़े रहते हैं और यदि तालव ग्रन्थियाँ भी बढ़ी रहें जैसा कि आम तौर से होता है तो सांस लेने में तकलीफ होती है। नाक में हवा जाने को रास्ता नहीं रहता (चित्र ३२६)। वालक को मुंह से सांस लेना पड़ता है। मुँह से सांस लेने से जो रोग हो सकते हैं वह तो होते ही हैं, उनके अतिरिक्त वालक की शकल बदल जाती है। चेहरा देखने से वालक बेवकूफ सा मालूम होता है; वह पाठशाला में और वालकों से पिछाड़ी रहता है। वायु के ठीक तौर पर न पहुँचने से रक्त भली प्रकार साफ नहीं हो सकता; वालक को खाँसी अक्सर रहा करती है और ज़रा सी असावधानी से जुकाम हो जाता है और गला आ जाता है; कभी कभी मन्द ज्वर भी रहने लगता है और वह कुछ बहरा भी हो जाता है और उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता।

चित्र ३३५ स्वस्थ व्यक्ति चित्र ३३६ बढ़े हुए टौन्सिल और एडिनौयड्स
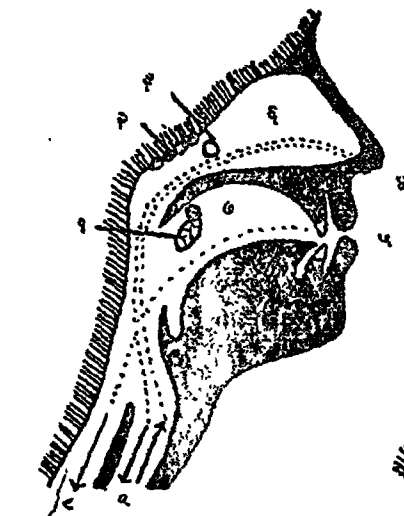
चित्र ३३५

१=टौन्सिल ६=नाक का रास्ता
२=ऐडिनौयड्स ७=तालू
३=कान की नाली का मुख
४,६,९=नाक से हवा जा रही है
५,७,८=मुँह से भोजन जाता है
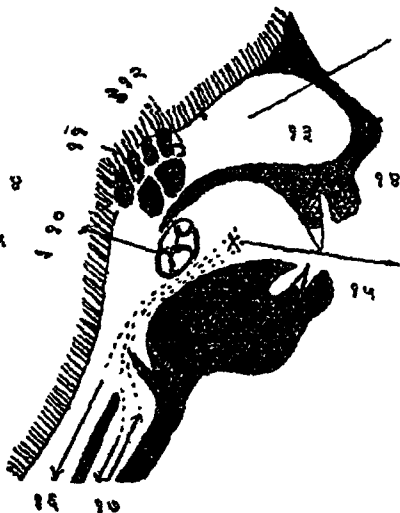
चित्र ३३६

१०=टौन्सिल बड़ा हो गया है और दोनों मिलकर हलक के रास्ते को छोटा कर देते हैं। ११=एडिनौयड्स बढ़ गये हैं और नाक के पीछे के रास्ते को छोटा कर देते हैं १२=एडिनौयड्स कान की नली पर दबाव डालते हैं जिसके कारण सुनाई में फर्क पड़ जाता है। १४,१३=हवा जाने का रास्ता जिस से अब काम नहीं लिया जाता। १५,१७=वायु मुँह से जाती है आर मुँह खुला रहता है; दाँत आगे को निकल आते हैं। १५,१६=भोजन का रास्ता। देखो तालू ऊँचा हो गया है।

कंठ का कान से सम्बन्ध है। ऐसे बच्चे अकसर कम सुनते हैं और उनके कान भी वहा करते हैं।

उपाय

बन्द कमरे में सोना, मुँह ढाँक कर सोना, मुँह में अंगुली और अँगूठा दिये रहना, बहुत गर्म कपड़े पहनना, गर्म वायु में रहना—ये सब बुरी आदतें हैं। अधिक खटाई और मिर्चों का प्रयोग भी ठीक नहीं। यदि मामूली चिकित्सा से ये कम न हों और चिकित्सक यह निश्चय करे कि इनके रहने से स्वास्थ्य को हानि हो रही है तो ऑपरेशन द्वारा टॉनसिलों और एडिनॉयड्स को निकलवा देना चाहिये। भोजन में खाद्योजों और आयोडीन की कमी से भी ये अंग विकृत हो जाते हैं; इसलिये ऐसे लोगों को भोजन सुधार की भी आवश्यकता है।

५. जिह्वा

यह स्वादेन्द्रिय है। जब बदहज़मी होती है या कब्ज़ रहता है या पेट और आँतें मैली रहती हैं और उनमें सड़ाव होता है तो जिह्वा मैली हो जाती है और मुँह से बदबू आती है। यदि जिह्वा गंदी हो तो पेट इत्यादि को और मुँह को साफ करने का शीघ्र यत्न करो।

मुंह

यदि मुँह साफ़ न रक्खा जावे तो दुर्गंध आने लगती है। हम थोड़ा बहुत थूक हर समय निगलते रहते हैं; यदि दुर्गंध और कीटाणु मय थूक पेट में जावेगा तो कभी न कभी वह अवश्य हानि पहुँचावेगा।

प्रातः काल मुँह को साफ़ करो; जब कुछ खाओ तब खाने के बाद मुँह साफ़ करो, फिर सोते समय मुँह को साफ़ करो।

दाँत

बाज़े बच्चों के दाँत पैदायशी तौर पर कमज़ोर होते हैं और उनमें शीघ्र कीड़ा लग जाता है (सड़ जाते हैं)। जब भोजन में खटिक, फौस्फोरस और खाद्योज ४ की कमी होती है तो दाँत मज़बूत नहीं बनते। यदि माता का स्वास्थ्य गर्भावस्था में अच्छा नहीं रहा, और दूध पिलाने के काल में इसका दूध उसके अस्वास्थ्य के कारण या पौष्टिक खाद्योज पूर्ण भोजन के अभाव से अच्छा नहीं बनता तो उसके बच्चे के दाँत ठीक समय पर न निकलेंगे और मज़बूत न बनेंगे। आतशकी बच्चों के दाँत जल्दी निकलते हैं, कभी कभी पैदा होते ही एक दो दाँत दिखाई देने लगते हैं, ऐसी दशा में दूध पिलाने वाली को कष्ट होता है क्योंकि कभी कभी बच्चा छाती में दाँत चुभा देता है। ऐसे दाँतों को निकलवा देना चाहिये। रिकेट्स रोग में दाँत देर में निकलते हैं। दाँतों के निकलने का समय चित्र में दिया गया है।

दाँतों की सफ़ाई

६-७ मास की आयु तक दूध पीने वाले शिशुओं में केवल दूध पीने के बाद मुँह को शुद्ध जल से धीरे से पोंछ देना चाहिये और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। स्तनों को भी दूध पिलाने के बाद और पहले शुद्ध जल से पोंछ डालना चाहिये ताकि उसमें जो थूक या दूध या मैल लगा हो वह शिशु के मुँह में फिर न जावे। शिशु के मुँह में गंदी अंगुली भी न देनी चाहिये क्योंकि इससे न केवल मुँह ही आता है जो एक भयानक बात है प्रत्युत कृमि रोग

चित्र २३७ दूध के (अनस्थायी) दाँतों के निकलने का समय
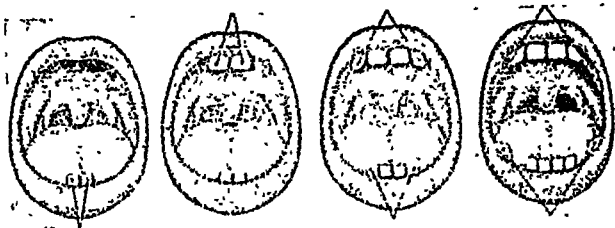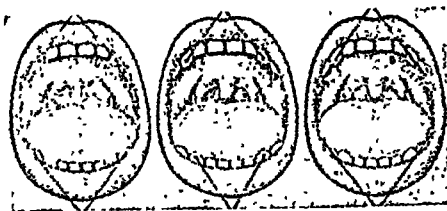
चित्र २३८ स्थायी दाँतों के निकलने का समय

From the Home Doctor. (The Amalgamated Press Ltd., London).

के होने का भी डर रहता है। बच्चों को अपना अँगूठा और अंगुलियाँ चूसने की आदत भी न डालनी चाहिये, चुसनी भी खराब चीज़ है। चुसनी कभी भी साफ़ नहीं रक्खी जा सकती, इधर उधर पड़ी रहा करती है और उसके द्वारा शिशु के मुँह में गंदगी पहुँचने की बहुत संभावना रहती है। गंदगी के अतिरिक्त बच्चे को मुँह से साँस लेने की आदत पड़ जाती है; उसके दाँत भी टेढ़े हो जाते हैं; अक्सर ऊपर के दाँत आगे को और नीचे के दाँत पीछे को हो जाते हैं।

जब दाँत निकलने पर शिशु कुछ अन्न खाने लगे तो पहले से अधिक सफ़ाई की आवश्यकता है; अब हर समय लार टपका करती है; इसको साफ कपड़े से पोंछ देना चाहिये और मक्खी न बैठने देनी चाहिये।

जब बालक को कुछ समझ आवे तो उसको दिन में कई बार विशेष कर खाने के पश्चात् कुल्ली करने की आदत डालनी चाहिए। मीठी चीज़ों के बाद मुँह अवश्य साफ़ कराना चाहिये क्योंकि मीठे के सड़ने से दाँत गल जावेंगे और इसी को कीड़ा लगना कहते हैं।

दाँतों का काम भोजन चबाने का और उसको खूब बारीक करने का है। प्राकृतिक नियम है कि जिस अंग से काम लिया जाता है वह अंग बढ़ता और मज़बूत होता है, जिस अंग से काम नहीं लिया जाता वह अंग पतला और कमज़ोर हो जाता है। जब बच्चा चबाने लगे तो उसको गिलगिली और मुलायम चीज़ों (हलवा, मिठाई) के खाने की चाट न डालनी चाहिये। उससे कहो कि वह हर एक चीज़ को खूब चबाकर खावे; भोजन में ऐसी चीज़ें अवश्य होनी चाहियें कि जिनको चबाना आवश्यक हो। आटा जहाँ तक हो सके हाथ की चक्की का पिसा हो, ज़्यादा न छाना जावे। मैदा तो कभी भी न खाना चाहिये। भोजन में कुछ ताज़े फल भी होने चाहियें

जिससे दाँतों को काम करना पड़े। भोजन के साथ कम पानी पीने की आदत डालो। मदरसे जाने से कम से कम एक घंटा पहले लड़कों को भोजन मिल जाना चाहिये ताकि जल्दी के कारण वह अध-चबा भोजन पानी द्वारा न निगल जावें। जितना भोजन चबाया जावेगा उतना ही शीघ्र वह पचेगा और उतनी ही दाँत और जबड़ों की पेशियाँ मज़बूत बनेंगी और मसूड़े दृढ़ होंगे।

छोटे बच्चों को अपने दाँतों में कोई चीज़ ऐसी न मलनी चाहिये जिससे मसूड़े छिल जावें। अंगुली की रगड़ मसूड़ों को बहुत फायदा पहुँचाती है। दाँतों की संधों को कुरेदना भी अच्छा नहीं। यह ठीक है कि यदि साफ सींक का प्रयोग किया जावे तो भोजन के टुकड़े निकल जाते हैं, परन्तु साफ सींक मिले कहाँ से। आम तौर से झाड़ू की सींक का प्रयोग किया जाता है; यह अक्सर गंदी होती है और गन्दी सींक से हानि पहुँचती है, मसूड़ों में चुभने से खून निकल आता है, जैसे त्वचा में किसी गंदी चीज़ के चुभने से फोड़ा बन जाता है वैसे मसूड़ों में गंदी चीज़ों के चुभने से रोगाणु घुसकर रोग उत्पन्न करते हैं।

कुल्ली करने के लिये वैसे तो स्वच्छ जल अच्छा है ही, यदि किसी घोल की आवश्यकता हो तो सब से अच्छी चीज़ खाने वाले नमक का घोल है। एक गिलास (½ सेर) पानी में चाय की चम्मच भर (४ माशे) नमक घोलकर इस पानी से कुल्ले करो। इस घोल में ½ रत्ती मेन्थोल या थाइमोल मिलाने से वह सुगंधित हो जाता है।

दाँतों पर गर्मी और सर्दी का प्रभाव

भली प्रकार कुल्ला न करना, गिलगिले भोजन खाना, भोजनों को ठीक तौर पर और देर तक न चबाना और अधचबे भोजन को पानी

द्वारा निगल जाना, मीठा खाकर मुँह न साफ करना—ये तो दाँतों को खराब करने वाली बातें हैं ही; इनके अतिरिक्त खाद्य पदार्थों के ताप का भी उन पर बहुत असर पड़ता है। अधिक गर्म (चाय, दूध) खाने पीने की चीज़ों से दाँत खराब हो जाते हैं; अधिक ठंडी चीज़ों से (जैसे बरफ) भी दाँतों को हानि पहुँचती है। एक ही साथ एक दूसरे के पीछे बहुत गर्म और बहुत ठंडी चीज़ों का खाना भी ठीक नहीं, (जैसे खूब गर्म चाय के बाद बरफ या आइस क्रीम*); अधिक गर्म चीज़ खाने के बाद ठंढे जल से कुल्ला करना भी हानिकारक है। ऐसी क्रियाओं से दाँतों में अनेक बारीक दरारें पड़ जाती हैं और फिर दाँतों में पानी और मिठाई लगने लगती है। खट्टी चीज़ों का बहुत प्रयोग जैसे सिरका, भाँति भाँति के अचार दाँतों के लिये अच्छे नहीं।

दाँतों का मंजन, दतौन, ब्रुश

ईसाई क़ौमों में खाने के बाद कुल्ला करना असभ्यता का चिन्ह समझा जाता है। क्या इससे भी अधिक मूर्खता की कोई बात हो सकती है। यूरोप और अमरीका में बहुत कम लोग ऐसे हैं कि जिनके मुँह में दो चार सड़े हुए दाँत न हों या जिनके मुँह में थोड़े बहुत मसनुई दाँत न हों। हम पहले अध्याय में समझा आये हैं कि जैसा राजा करता है वैसा प्रजा भी करती है। भारतवर्ष में भी लाखों नक़लची भारतवासी ऐसे हैं जो खाने के बाद कुल्ला नहीं करते, उनको डर लगता है कि कहीं असली साहब लोग उनको असभ्य न कह दें या उनके नौकर उनको काला साहब न समझें। यूरोप और अमरीका में जब अच्छे चमकते हुए दाँत वाले भारतवासी या अफरीका के हब्शी जाते हैं तो वहाँ के रहने वाले उनके सुफेद चमकते दाँतों को

---

* Ice Cream.

देखकर अचम्भे में रह जाते हैं और इन दांतों के साफ़ रखने का भेद पूछने लगते हैं। विलायत वाले अपने हाथ दिन में बहुत कम बार धो पाते हैं और इस कारण ये गंदे रहते हैं। गंदे हाथों के कारण वे खाना पीना भी छुरे काँटों से खाते हैं। मुँह में अंगुली देना बुरा समझते हैं। सत्य तो यह है कि मुँह और दांत और मसूढ़े साफ़ करने की सब से अच्छी चीज़ जल और अंगुली (प्रदेशनी) है। अंगुली से मसूढ़े और दाँत खूब मले जावें तो किसी ब्रुश की बहुत आवश्यकता नहीं है विशेष कर खाने के बाद।

हमारी राय में दतौन ब्रुश से अच्छी है। दतौन नीम की हो चाहे बबूल की। दतौन ताज़ी होनी चाहिये। पहले उसको दांतों में कुचल कर एक बारीक कूँची बनालो; इस क्रिया से जावड़ों की पेशियां भी मज़बूत होती हैं। जितनी बारीक कूँची होगी उतना ही अच्छा होगा। फिर इस कूँची से दाँतों को साफ करो; सामने के (होठों के पास) और पीछे के (जिह्वा के पास) दोनों तलों को साफ करो; कूँची को ऊपर से नीचे को और नीचे से ऊपर को फेरो; दाहिनी ओर से बाईं ओर को और बाईं ओर से दाहिनी ओर को फेरो। सख्त सूखी दतौन की कूँची ठीक नहीं बनती, और वह मसूढ़ों में चुभ जाती है जिस से मुलायम मसूड़ों में से खून निकलने लगता है।

यदि दतौन न मिले तो मंजन लगाना चाहिये। मंजन सूखे भी होते हैं और मलाई जैसे भी होते हैं जो कुप्पियों में बिकते हैं। सूखे मंजन दरदरे न होने चाहियें; यदि मोटे होंगे और उनमें कड़ी चीज़ होगी तो दाँतों में अति सूक्ष्म गड्डे पड़ जावेंगे। कोई मंजन हो वह बारीक से बारीक छने हुए मैदा से भी बारीक पिसा होना चाहिये। अधिकतर मंजन खड़िया मिट्टी से बनते हैं जिनमें खुशबूदार चीज़ें मिला दी जाती हैं। अत्यंत बारीक पिसा और बार बार छाना गया अच्छी

चित्र ३३९ दतौन से दाँतों को सब तरफ से साफ करना चाहिये
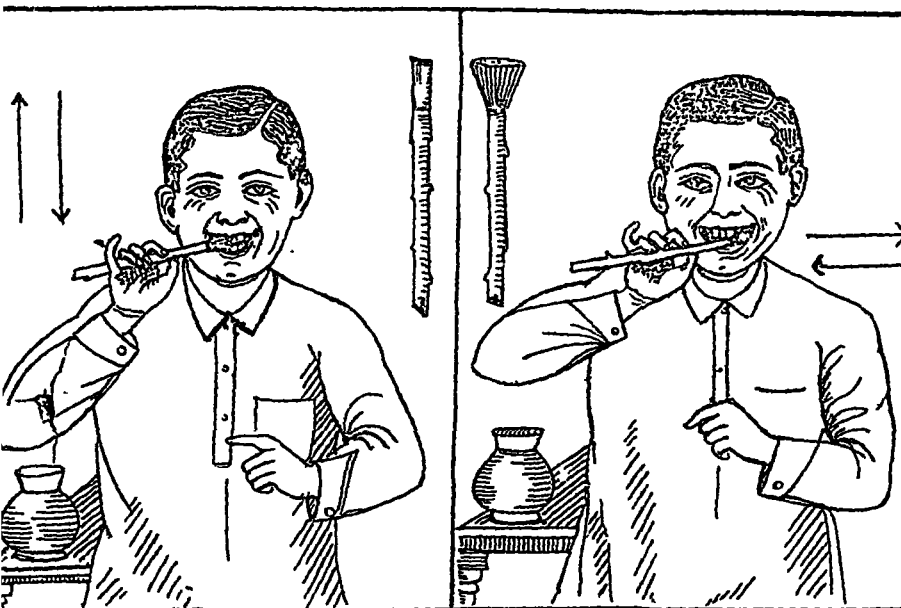
चित्र ३४० दाँतों के दोनों तल साफ करो
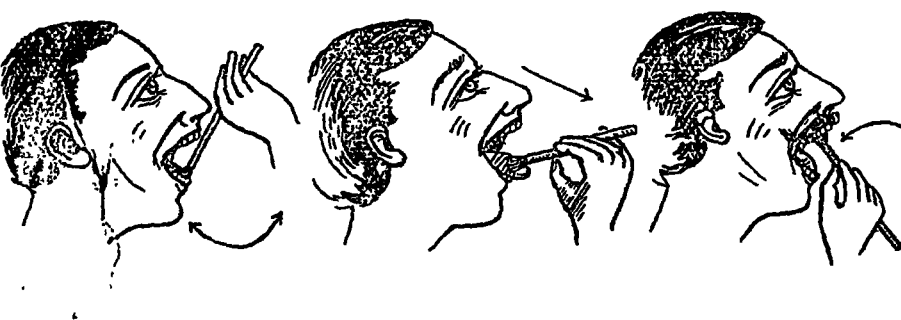
लकड़ी का कोयला भी मंजन का काम दे सकता है; उसमें ८ भागों में एक भाग नमक भी मिला रहना चाहिये। जो मंजन त्रिफला, त्रिकुट, लौंग, नौन और माजूफल (बराबर बराबर भाग) को बारीक पीस कर बनाया जाता है वह भी अच्छा होता है। कम्पनी के जो मंजन आते हैं उनमें साबुन भी होता है, उसके अतिरिक्त मेन्थोल या थाइमोल इत्यादि चीज़ें भी मिली रहती हैं। यदि हो सके तो इनमें से किसी का भी प्रयोग न करना चाहिये। ये दतौन का मुकाबला नहीं कर सकते। दाँतों के साफ करने के लिये एक अत्यंत उपयोगी चीज़ कड़ुवा तेल और नमक है। तेल इतना चाहिये जिससे नमक भीग जावे। हमने इसको सब विदेशी कम्पनियों के मंजनों से अच्छा पाया है।

ब्रुश

हम ब्रुश के प्रयोग को अच्छा नहीं समझते। बहुत बार दतौन का मिलना कठिन होता है; ऐसी जगह ब्रुश का प्रयोग कभी कभी आवश्यक हो जाता है। ब्रुश सम्बन्धी नियम इस प्रकार हैं—

१. दूसरे का ब्रुश अपने मुंह में न दो।

२. ब्रुश करने के बाद उसको पानी से खूब धोओ और उसको ऐसी जगह रक्खो जहाँ धूल मिट्टी न हो।

३. दूसरी बार उसको काम में लाने से पहले या तो पानी में उबाल लो या किसी रोगाणुनाशक घोल में थोड़ी देर रक्खो। रेक्टीफाइड स्पिरिट में पाँच मिनट रख सकते हो।

४. देखते रहो कि बालों की संधों में मैल तो जमा नहीं हो रहा।

५. ब्रुश के बाल मेहराबदार क्यों होने चाहियें।

६. एक महीने से अधिक एक ब्रुश का प्रयोग ठीक नहीं।

दाँतों का सड़ना (कीड़ा लगना)

जो लोग मुँह को साफ नहीं रखते उनके दाँतों में सूराख और गड्ढे बन जाते हैं और ऐसे दाँतों में कभी कभी अत्यंत पीड़ा हुआ करती है। ऐसे खोखले दाँतों में भोजन इकट्ठा हो जाया करता है और वह सड़ा करता है। ईसाई देशों में दाँत और देशों की अपेक्षा अधिक गलते हैं, वे लोग खाने के बाद मुँह साफ नहीं करते। यदि ऐसे दाँत बहुत दिक़ करें अर्थात् पीड़ा बहुत हो तो उनको उखड़वा देना चाहिये। बहुत से अज्ञानी दाँतसाज़ दाँतों की खो में सोना, चाँदी भर देते हैं; यह भूल है और ऐसा कभी न कराना चाहिये क्योंकि अकसर इस खोखले भाग में कीटाणु रहते हैं जो अनेक प्रकार के रोग फैला सकते हैं। इन दाँतों में कोई बड़ा कीड़ा नहीं होता। "कीड़ा लगना" यह सर्व साधारण का मिथ्या विचार है; वे समझते हैं कि जैसे लकड़ी घुन लगने से खोखली हो जाती है उसी तरह दाँत भी किसी कीड़े से खोखला हो जाता होगा। खाद्योज ४ का न होना और मुँह को साफ न रखना और भोजन में खटिक और फौस्फोरस उचित परिमाण में न होना इस रोग के कुछ कारण हैं।

दंतशूल—खोखले दाँत में लौंग का तेल लगाने से दंत शूल अच्छा हो जाता है; आस पास के मसूढ़ों पर टिंकचर आयोडीन चुपड़ना भी अच्छा है; पोटाश परमेंगनेट के हलके गर्म घोल से भी फायदा होता है।

मसूड़ों में मवाद (दंतोलूखल पूयाह)

Pyorrhoea alveolaris

इसका भी मुख्य कारण मुंह की सफाई न रखना है; इसके अतिरिक्त स्वाभाविक रोगनाशक शक्ति का कम होना और दाँतों

को दुरदुरे मंजनों से मांजना जिससे मसूड़े छिल जावें, मुँह और दाँत साफ करने के लिये गंदी मिट्टी का प्रयोग करना, खाद्योज पूर्ण भोजन का न खाना और समय समय पर गंदी सीकों से दाँतों की संधों को कुरेदना है। मुंह मे दुर्गंध आती है; जो पीप निगली जाती है वह पेट में जाकर या रक्त में पहुँचकर हानि पहुँचाती है। जिन लोगों के मसूड़ों से मवाद आता है उनके जोड़ों में दर्द भी हो जाता है। आजकल बहुत से आराम तलब डाक्टरों के लिये "मसूड़ों से मवाद आना" हव्वा से भी बढ़कर है। जहाँ किसी रोगी के मुँह में उन्होंने ज़रा सा मवाद देखा या मवाद का शुबहा भी हुआ उनके होश उड़ गये और उन्होंने झट बे-सोचे समझे उस रोगी को दाँत के डाक्टर के हवाले किया और कहा कि जितने रोग उसके शरीर में हैं वे सब उस मवाद के कारण हैं। हमारा यह कहने का मतलब नहीं है कि शरीर में रोग इस मवाद से नहीं हो सकते; हो सकते हैं परन्तु इतने नहीं जितने कुछ डाक्टर बतलाया करते हैं।

चिकित्सा

दाँतों को साफ रक्खो; नमक के पानी से खूब कुल्ली किया करो; स्वास्थ्य को खाद्योज पूर्ण भोजन खाकर ठीक करो; अंगुली से मसूड़े मला करो। थूक को कभी न निगलो; यदि मवाद बढ़ता जावे और दाँत हिलने लगें तो उसको निकलवा दो और चीनी का दाँत लगवा लो।

दाँत और पान

कोई प्रमाण इस बात का नहीं है कि पान खाने से मसूड़ों में मवाद बनता है या दाँत सड़ जाते हैं। दाँत के सड़ने का तो कोई सम्बन्ध ही नहीं है, यूरोप और अमरीका में पान नहीं खाया जाता

वहाँ ७०-८०%लोगों के दाँत सड़ते हैं। हमारी राय में दिन रात में दो बार पान चबाने में कोई हानि नहीं। अधिक चूना और सुपारी हानि पहुँचाती हैं; तम्बाकू तो हानिकारक है ही। जब पान चबाया जावे तो पहली पीक थूक देनी चाहिये विशेष कर जब वह भोजन के बाद खाया जावे। अच्छा पान उत्तेजक होता है और मुँह की दुर्गंध को भी दूर करता है। जिस विधि से पान ऊँची श्रेणी के हिन्दू खाते हैं उससे "कैन्सर" रोग होने का भी कोई प्रमाण नहीं, लाखों हिन्दू पान खाते हैं उनमें मुँह का 'कैन्सर' बहुत ही कम होता है। हाँ चूना, सुपारी और तम्बाकू को पीस कर गाल में भरकर रखना और बात है जैसा कि नीची श्रेणी के मुसलमान करते हैं विशेष कर मुसलमानी स्त्रियाँ; इस मसाले की जलन से कैन्सर का सम्बन्ध हो सकता है। जो लोग पान खाते हैं उनको जगह जगह थूकने की आदत पड़ जाती है, यह एक महा गंदी आदत है और एक दम छोड़नी चाहिये। पान खाने वालों को चाहिये कि वे अपने दाँतों को रंगीन न होने दें।

अध्याय २३

भोजन पचाने वाले अङ्गों के विषय में कुछ आवश्यक ज्ञान

१. भोजन कै बार खाना चाहिये

जब भूख लगे तब भोजन खाओ। हमारी राय में भारतवर्ष में २४ घंटे में तीन बार से अधिक भोजन करने की आवश्यकता नहीं है। तीनों भोजनों के बीच में ५—६ घंटे का अंतर रहना चाहिये। प्रातः काल का भोजन ६—८ बजे के बीच में; दोपहर का १२—२ बजे के बीच में, सायंकाल का ६—८ बजे के बीच में। भोजन के साथ कम से कम पानी पिओ। भोजन के १ घंटे पीछे और दो भोजनों के बीच में जितना चाहे पानी पिओ। सोने से २ घंटे पहले कुछ न खाओ। प्रातः काल मुँह हाथ भली प्रकार धोये बिना भी न खाओ। सुबह और दोपहर का भोजन हलका परन्तु शक्ति दायक होना चाहिये; शाम का भोजन भारी हो सकता है।

२. क्या भोजन नियत समय पर खाना चाहिये

असभ्य मनुष्य और जानवरों को जब मिलता है तभी खा लेते

हैं; उनको पढ़ना लिखना, दफ़्तर का काम करना, इत्यादि काम तो करने नहीं पड़ते, वे जब चाहे खा सकते हैं, जब चाहे हग सकते हैं। सभ्य मनुष्य को कामों के लिये समय नियत करना पड़ता है क्योंकि मनुष्य समाज में कोई व्यक्ति अलग अलग नहीं रह सकता ; मनुष्य मिलकर काम करते हैं, इसलिये मनुष्य यह नहीं कर सकता कि जब चाहे खा ले और जब चाहे हग ले। भोजन का समय नियत करने की आवश्यकता होती है। जहाँ जहाँ सभ्यता ऊँचे दर्जे की है और बहुत से मनुष्य एक दूसरे से मिलकर काम करते हैं (जैसे यूरोप, अमरीका, औस्ट्रेलिया इत्यादि में) वहाँ सभी काम नियत समय पर किये जाते हैं; खाना समय पर, काम करना समय पर, सोना समय पर, खेलना कूदना समय पर। यह नहीं होता कि एक खाना १० बजे खाता है, दूसरा १२ बजे, तीसरा २ बजे, चौथा रात को १२ बजे या दो बजे इत्यादि। हर एक काम का समय नियत हो जाने से काम अच्छी तरह होता है और अंत में किफायत होती है और समाज के सभी लोगों को (कहार, रसोइया, नौकर,) आराम मिलता है। यही नहीं जब भोजन एक नियत समय पर खाया जाता है तो पाचक अंग भी ठीक ठीक काम करते हैं; और उनको समय समय पर आराम भी मिल जाता है। जब चाहे खा लेने से सभ्य मनुष्य रोगी हो जाता है और वह कोई भी काम ठीक ठीक नहीं कर सकता। जिस समाज में काम नियत समय पर नहीं किये जाते वह कभी भी उन्नति नहीं कर सकता; मानों किसी अधिवेशन के लिये ८ बजे का समय नियत किया गया; यदि उस समय कोई खाता है, कोई नहाता है, कोई शौच जाता है, कोई सोता है, कोई सैर करने जाता है, तो वह अधिवेशन नियत समय पर नहीं हो सकता; कोई आवेगा कोई नहीं आवेगा, कोई देर में आवेगा इत्यादि। जो काम एक घंटे में हो जाता वह कई घंटों

में होगा। जो कौमें निठल्लू हैं, जो समय का मूल्य नहीं जानतीं, जो समझती हैं और कहती हैं कि ठीक समय पर काम करने से क्या फायदा एक दिन तो सब को मरना ही है वे बिना दोज़ख में जाये इसी जन्म में पराधीन रह कर दोज़ख की सब मुसीबतें झेल लेती हैं। भारतवासियों के खाने का समय नियत नहीं और यह भारत की दरिद्रता का एक कारण है। नवीन सभ्यता वाले देशों में से किसी में भी जाइये वहाँ आप देखेंगे कि हर एक काम का समय नियत है; भोजन का भी समय नियत है, यदि आप ने उस समय पर खाना न खाया तो भूखे रहिये। इस दुर्भाग्य देश में तो खाने पीने का कोई वक्त ही नहीं। जब कोई अतिथि किसी के पास आवे झट खाने पीने का बन्दोबस्त करना पड़ता है। चाहे वह दिन के तीन बजे आवे चाहे रात को दस बजे आवे; एक स्त्री दूसरी से मिलने जावे झट खाना पीना, मिठाई मौजूद है चाहे वह घंटा भर पहले ही पेट भर के आई हो; बच्चा किसी के घर जावे झट उसके हाथ में कुछ खाने की चीज़ पकड़ा दी जाती है। आप खाना खावें १२ बजे, पाठशाला में जाने वाले के लिये सुबह नौ बजे चाहिये; लड़का मदर्से से लौटे ४ बजे, उसे भूख लगी उसे खाना उस समय चाहिये, आप काम से लौटें ७ बजे आप को खाना उस समय चाहिये। या तो दिन भर चूल्हा जले, या बासी कूसी खाना खाया जावे या बाज़ार के आलू कचालू पर गुज़ारा किया जावे। इन सब बातों के कहने का मतलब यह है कि समस्त क़ौम के लिये (एक सभ्यता और एक समाज के सब व्यक्तियों के लिये) भोजन का समय एक होना चाहिये; जब भोजन समय पर बनेगा और समय पर खाया जावेगा तो तरह तरह के फ़ज़ूल खाने खाने की कोई आवश्यकता न होगी। जो समय हमने (१) में बतलाये हैं वे भारतवर्ष के लिये ठीक हैं।

३. भोजन और अध्ययन

भोजन करते ही विशेष कर भारी भोजन करते ही मानसिक परिश्रम जिसमें अधिक ध्यान से काम करना हो न करना चाहिये। दोनों ही काम खराब होंगे—न भोजन पचेगा, न पढ़ने में ध्यान लगेगा। सब से अच्छी बात तो यह है कि भोजन करने के बाद एक घंटा पढ़ाई लिखाई न हो, हँसी दिल्लगी की बातें करना और सुनना या अखबार इत्यादि पढ़ने में कोई हर्ज नहीं। परन्तु ऐसे काम जैसे विद्यार्थियों को करने पड़ते हैं अर्थात् ध्यान लगा कर पढ़ना ठीक नहीं। कारण यह है कि हर एक काम के लिये रक्त की आवश्यकता है, भोजन के पश्चात् पाचक अंगों को रक्त की आवश्यकता है, दिमाग़ी मेहनत करने के लिये दिमाग़ को पवित्र रक्त की आवश्यकता है, एक दम दोनों स्थानों में रक्त उतना नहीं जा सकता जितना जाना चाहिये, या तो दोनों काम देर में होंगे या एक काम में विलम्ब पड़ेगा।

हमारी राय में अध्ययन भोजन के (विशेष कर दोपहर और शाम के भोजनों के) कम से कम एक घंटे बाद होना चाहिये।

४. भोजन और स्कूलों का समय

भारतवासी नक़लची हैं और वे अपने नफ़े नुक़सान को नहीं देख सकते; देखें कैसे, एक हज़ार वर्ष की ग़ुलामी करते करते उन में सोचने समझने की शक्ति ही नहीं रही। जब यूरोपियन लोग यहाँ आये और उन्होंने मदर्से और कोलिज खोले तो उन्होंने वह समय नियत किया जो वह अपने देश में रखते थे। विलायत में मदर्सों का समय ९ बजे से ३/४ बजे तक है। विलायत वाले स्वाधीन हैं और वह ९ बजे काम आरंभ कर देते हैं; यहाँ पर अंगरेज़ लोग ९ बजे सो कर उठते हैं, इस-लिये वक्त मदर्सों का दस बजे रक्खा गया। यहाँ तक तो ठीक है;

विलायत में प्रातः काल नाश्ता किया जाता है, भारी खाना नहीं खाया जाता और अंगरेज़ी खाना हिन्दुस्तानी खाने से हलका भी होता है; लड़के हलका नाश्ता करके मदर्से जाते हैं। बीच में १२-१ बजे छुट्टी होती है, इस अंतर में उन के भोजन का प्रबन्ध स्कूल और कालिजों में होता है, इस के बाद फिर थोड़ी सी पढ़ाई होती है और फिर छुट्टी हो जाती है, चार बजे चाय का वक्त हो जाता है और फिर ६-७ बजे पूरा भोजन मिलता है। भारतवर्ष में छूत छात की वजह से लड़कों के भोजन के लिये किसी स्कूल और कोलेज की ओर से कोई बन्दोबस्त नहीं है; १५-२० मिनट का जो अंतर होता है वह घर आकर भोजन करने के लिये काफ़ी नहीं। भूख लगती है तो आलू कचालू खाकर पेट भरा जाता है। सुबह भोजन भली प्रकार तैयार नहीं हो सकता और होता भी है तो कच्चा पक्का खा कर स्कूल में देर हो जाने के डर से भागते हुए जाना पड़ता है, यह भोजन हलका नहीं होता इस कारण वह सहज में हज़म भी नहीं होता। इस भोजन से पहले कुछ खाना ठीक नहीं क्योंकि फिर नाश्ते और नौ बजे के भोजन में काफी अंतर नहीं रहता। इस सब का परिणाम यह होता है— प्रातः काल नाश्ता करने का समय नहीं, यदि नाश्ता किया तो नौ बजे भूख न लगेगी और यदि खा भी लिया तो भोजन पचेगा नहीं और अजीर्ण होगा। नौ बजे भोजन जो खाया जावेगा उस को भली प्रकार चबाने का समय नहीं मिलता और उस के बाद मदर्से को भाग कर जाना हानि पहुँचाता है। यदि पेट भर के भोजन खा भी लिया तो उस के पश्चात् पढ़ने में ध्यान न लगेगा; परिणाम यह होता है कि गर्मी के दिनों में लड़का ऊँघता है और मास्टर बकते हैं, या वह भी ऊँघते हैं; जो बात लड़के को ½ घन्टे में सीखनी चाहिये थी वह एक घन्टे में भी नहीं सीख सकता; समय बेकार जाता है। जो बात

मदर्से में ही याद हो जानी चाहिये थी अब उस को घर पर घोटना पड़ता है। विलायत में इतनी ठंड होती है कि लोग दोपहर को अच्छी तरह काम कर सकते हैं, भारतवर्ष में दोपहर को काम करना कठिन है और विद्यार्थियों के लिये तो बुरा भी है। जिन लोगों ने भारतवर्ष में १० बजे का समय नियत किया उन्होंने अपने खाने का समय नहीं बदला, वे अपने आप सुबह ९ बजे नाश्ता करते रहे, दोपहर को १२-१ बजे के बीच में दोपहर का खाना खाते रहे, शाम को चाय पीते रहे और फिर रात को ठीक समय पर खाना खाते रहे। उन को तो कोई कष्ट न हुआ, भारतवासियों के कष्ट से उन्हें क्या मतलब।

भारतवर्ष में मदर्सों का समय वह नहीं रक्खा जा सकता जो विलायत जैसे ठंडे देशों में। यहाँ सब से अच्छा समय पढ़ने का (दिन भर में जो सब से ठंढा समय है उसी समय मस्तिष्क ठीक काम करता है) सुबह १२ बजे तक है, इस लिये मदर्से सुबह के ही होने चाहियें। गर्मियों में सुबह ६ बजे नाश्ता किया जावे, ७ बजे से मदर्सा हो ११ बजे छुट्टी हो जावे ४ घन्टे पढ़ाई के लिये बहुत काफी हैं। जाड़ों में ७-७½ बजे नाश्ता किया जावे १२ बजे छुट्टी हो जावे, यदि आवश्यकता हो तो फिर दो बजे के बाद एक दो घन्टे की पढ़ाई हो सकती है। खाने पीने का समय ठीक रहेगा, भोजन भली प्रकार पचेगा, पढ़ाई ऐसे समय होगी जब मस्तिष्क ठीक काम करेगा, थोड़ी सी पढ़ाई से विद्यार्थी अधिक लाभ उठावेगा, स्वास्थ्य अच्छा रहेगा तो पराधीनता घटेगी। और क्या चाहिये ?

५. भोजन और दफ़्तर

यदि इस कमबख़्त देश से कपट वाली छूत छात जाती रहे तो

बहुत से कष्ट दूर हो जावें। कचहरियों का वक्त वही होना चाहिये जो मदरसों का। यहाँ चूँकि ऐसी आयु के लोग काम करते हैं जिन का वर्णन हो चुका है, ये लोग अधिक देर तक काम कर सकते हैं। अंगरेज़ हाकिम अपने भोजन के समय को नहीं टालता; चाहे कलक्टर हो चाहे जज वह दोपहर का खाना उसी समय खाता है जिस समय विलायत में। कचहरी की सब मुसीबत झेलनी पड़ती है काले आदमी को, विशेष कर बाबू लोगों को (क्लर्कों को)। उनको सुबह कचहरी भागना, शाम को ४-५-६ बजे वापस आना। दोपहर को भूख लगे तो अंट शंट खा लो। यदि छूत छात न रहे तो दोपहर को एक घन्टे के लिये कचहरी बन्द हो जावे और कचहरी के अहाते में ही अच्छे भोजन की दुकानों पर थोड़ा सा हलका भोजन खा लिया जावे। कचहरी के रगड़े से बाबू लोगों का स्वास्थ्य बिगड़ता है इस में कोई सन्देह नहीं। हमारी राय में दो ही इलाज हैं (१) जो समय मदरसों का है वही इन का भी हो—एक घन्टा अधिक रह सकता है अर्थात् गर्मियों में ७—१२ तक; जाड़ों में ८ से १ तक। (२) यदि इससे काम न चले तो छूत छात दूर करो और दोपहर को अच्छा भोजन मिलने का बन्दोबस्त कचहरी के मैदान में ही करो जैसा कि यूरोप के सभी शहरों में होता है। १२ या एक का घंटा बजा और काम बंद हुआ और सब लोग होटल या भोजन घर में पहुँचे; एक या दो बजे फिर काम आरंभ हुआ।

६. भोजन और चौका

प्राचीन काल में जब हिन्दू पाखंडी नहीं थे चौके से मतलब यह था—जैसे भोजन तैयार हो वैसे ही परोसा जावे अर्थात् बहुत देर तक न रक्खा रहे; सब लोग भोजन को न छूवें ताकि भोजन दूषित न

हो; जहाँ भोजन खाया जावे वह स्थान किसी और काम में न आवे ताकि वहाँ भोजन दूषित न हो सके; मक्खी भोजन पर न बैठे। साफ बरतनों में साफ़ हाथों से भोजन परोसा जावे और भोजन के समय गंदे कपड़े न पहने जावें, हाथ पैर धोकर और शरीर को साफ करके भोजन खाया जावे ये सब बातें बिना पाखंड के आजकल भी हो सकती हैं। पाखंडी लोग जो मतलब चौके से समझते हैं वह ठीक नहीं है। आजकल चौके में खाने से मतलब यह है कि मक्खी भिनकती जावें; धुएँ के मारे आँखों से पानी निकले; तरकारी इत्यादि गंदे हाथों से परोसी जावे; कीचड़ में बैठा जावे; गंदा मनुष्य भोजन बनावे इत्यादि।

७. दावत

बड़ी दावतों में जैसी कि विवाह आदि के अवसर पर होती हैं भोजन गंदी रीति से बनाया जाता है और गंदी रीति से परोसा जाता है। तरकारियाँ बजाय चमचे के हाथ से परोसी जाती हैं और हाथ गंदे रहते हैं। मैदा का प्रयोग होता है जो बुरी चीज़ है। जहाँ भोजन करने बैठते हैं वे सब स्थान गंदे रहते हैं। इन सब कुरीतियों के सुधार की आवश्यकता है।

८. भोजन और स्नान

भोजन करने के कम से कम तीन घन्टे बाद नहाना चाहिये। भोजन करते ही नहाने से भोजन के पचाव में बाधा पड़ती है। नहाते ही भोजन न करना चाहिये; कम से कम ½ घन्टा बाद भोजन खाना चाहिये।

९. भोजन और व्यायाम

भोजन के बाद व्यायाम कभी न करना चाहिये। कम से कम तीन घन्टे का अंतर रहना चाहिये। व्यायाम करने के पश्चात् भी एक

दम भोजन पर न बैठना चाहिये। जब तक स्वाँस ठीक ठीक न चलने लगे और हृदय की गति मामूली न हो जावे भोजन न खाना चाहिये। भारी भोजन खाना हो तो व्यायाम से कुछ देर बाद खाना चाहिये।

१०. भोजन और मैथुन

भरे पेट पर मैथुन करना अत्यंत हानिकारक है। भोजन और मैथुन में कम से कम दो घन्टे का अंतर रहना चाहिये।

११. भोजन और पोशाक

तंग कपड़े पहन कर भोजन कभी न करो। जितने कम कपड़े हों उतना ही अच्छा है। जो कपड़े काम करने के समय पहने जाते हों उन को भोजन के समय न पहनना चाहिये, दो बातें हैं एक तो वे पवित्र न होंगे दूसरे ज़रा सी असावधानी से उनके खराब होने का डर है।

१२. भोजन के समय हमारी स्थिति

लेट कर खाना बुरा है; खड़े खड़े खाना भी अच्छा नहीं। चौकड़ी मारकर बैठो या मेज़ कुर्सी पर भोजन खाओ। थाली मुँह से बहुत दूर होगी तो आगे झुकना पड़ेगा जिससे पेट भिचेगा। यदि पटरे पर बैठो या आसन पर बैठो तो थाली भी किसी ऊँची चीज़ पर जैसे ऊंचा पटरा या तिपाई पर रक्खो।

१३. भोजन और बाज़ार

बाज़ार में हलवाइयों की दूकान पर नालियों के पास बैठकर भोजन खाना ठीक नहीं।

१४. भोजन और तौलिया

जिन के पास धन की कमी नहीं है वह अपने साथ एक तौलिया या अँगोछा रक्खें जिस को भोजन खाते समय अपने कपड़ों पर डाल लें

इस से कपड़े बचे रहते हैं। जिस तौलिये से आप मुँह पोंछे उस से दूसरे को हरगिज़ मुँह न पोंछने दो। दावतों में एक तौलिया पचासों आदमियों के लिये होता है; कुछ लोग इस से हाथ पोंछते हैं और मुंह पोंछते हैं और इस में सिनक भी देते हैं। यह तौलिया केवल हाथ पोंछने के लिये ही रखना चाहिये; मुँह और नाक कभी न पोंछो; यदि आवश्यकता हो तो अपना रुमाल काम में लाओ।

१५. भोजन और ताज़े फल

फलों के खाने के लिये अलग समय की आवश्यकता नहीं है; दोपहर और शाम के भोजन के साथ ही (पश्चात्) फल खा लेने चाहियें। फल सुवह भी खाये जा सकते हैं।

१६. भोजन और निद्रा

भोजन के वाद थोड़ी देर—१५-२० मिनट—शय्या पर या आराम कुरसी पर आराम करना अच्छा है; ज़रा झपकी आजावे तो कोई हर्ज नहीं। जहाँ तक हो सके भोजन खाते ही रात को न सो जाना चाहिये; एक घन्टा और हो सके तो दो घन्टे पीछे सोना चाहिये।

१७. भोजन के वाद दाहिनी कर्वट लेटें या बाईं

दाहिनी ओर यकृत होता है, वाईं ओर हृदय; हृदय के नीचे ही आमाशय या पेट होता है; वाईं कर्वट लेटने में आमाशय और हृदय दोनों पर कुछ दवाव पड़ता है; इसलिये या तो चित्त लेटो या दाहिनी कर्वट; थोड़ी देर पीछे जिधर अच्छा मालूम हो उधर लेटो।

शौच और क़ब्ज़

जानवरों और असभ्य मनुष्य के शौच जाने का कोई समय नियत नहीं होता। सभ्य मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता; वह हर जगह

और हर समय मल नहीं त्याग सकता; इस कारण उस को अपने शौच जाने का समय भी नियत करना पड़ता है। यह समय नियत होने पर भी मनुष्य को चाहिये कि जब उस को शौच की आवश्यकता मालूम हो वह मल को तुरंत त्यागने का यत्न करे क्योंकि उस को शरीर के भीतर बहुत देर तक रखने से सिवाय हानि के लाभ नहीं।

बहुत लोग सुबह शाम दो वक्त मल त्यागते हैं। ऐसा करने में कोई हर्ज नहीं, आप दो तीन चार बार खाते हैं तो मल क्यों न कम से कम दो बार त्यागें। बहुत लोग एक ही बार शौच जाते हैं। यह सब आदत पर निर्भर है। ख़ास बात यह है कि मल शरीर में अधिक देर न ठहरे, २४ घन्टों में कम से कम एक बार आँतें अवश्य साफ़ हो जानी चाहियें। जब मल आँतों में जमा रहता है या थोड़ा सा निकल जाता है और थोड़ा सा शरीर में रहता है तब कहा जाता है कि क़ब्ज़ हो गया। कभी कभी ऐसा हो जावे तो कुछ बहुत हानि की बात नहीं, जब प्रति दिन थोड़ा सा मल अंदर रह जावे तो वह सड़ता है और अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न करता है। बहुत कम सभ्य मनुष्य ऐसे हैं जिन को थोड़ा बहुत क़ब्ज़ न रहता हो।

क़ब्ज से बचने के उपाय

१. बचपन से ही नियत समय पर शौच जाने की आदत डालनी चाहिये।

२. कम्मोड पर न हगो। खुड्डी पर उकड़ू बैठना ही अच्छा है; इस तरह बैठने में पेट पर जाघों का दबाव पड़ता है और मल के निकलने में आसानी होती है।

३. जिस दिन भली प्रकार पाखाना न आवे और चित्त गिरा

सा मालूम हो, उस दिन खाना कम खाओ, एक समय टाल जाओ और केवल पानी पी कर रहो।

४. भोजन के साथ पानी कम पिओ, भोजनों के बीच में खूब पिओ। कम पानी पीने से भी क़ब्ज़ रहता है।

५. भोजन ऐसा खाओ कि उस में पत्तेदार तरकारियाँ खूब हों। मैदा और मैदा की डवल रोटी (नान पाव) क़ब्ज़ करने वाली चीज़ें हैं। पत्तेदार तरकारियों के रेशे (अर्थात् काष्ठोज) आँतों की गति के उत्तेजक हैं; मैदा, चावल, मिठाई, मलाई, खीर, हलवा इत्यादि चीज़ें क़ाविज़ हैं क्योंकि इन में आँतों की गति कराने वाली चीज़ काष्ठोज नहीं है।

६. अधिक वसा खा कर और मोटे वन कर पेट की पेशियों को कमज़ोर न करो। यदि स्थूलता वढ़ती जावे तो उस की चिकित्सा करो (देखो पीछे 'मोटापन')। व्यायाम कर के पेट की पेशियों को मज़बूत वनाओ।

७. अच्छी नींद सोओ।

८. नियत समय पर भोजन करो।

९. कभी कभी उपवास किया करो।

उपवास

कभी कभी आमाशय और अन्य पाचक अंगों को आराम देना स्वास्थ्य के लिये अत्यंत आवश्यक है। जितने मज़हव अव तक चले हैं उन सव में उपवास करने की आज्ञा दी गयी है। उपवास से स्वास्थ्य अवश्य सुधरता है; इस में सन्देह नहीं। हो सके तो सप्ताह में एक वार या दो वार भोजन न खाया जावे और केवल पानी पर निर्वाह किया जावे। महीने में एक वार पूर्ण उपवास अर्थात् दिन भर

में केवल जल के अतिरिक्त कुछ न खाया जावे। हिन्दुओं में जो व्रतों का रिवाज है वह अच्छा है।

फल आहार

कभी कभी मामूली खाना जिस को बारह मास खाते हैं अर्थात् आटा, दाल, दूध, चावल, गोश्त इत्यादि को छोड़ कर फल ही खाये जावें। इससे भी लाभ होता है।

शौच सम्बन्धी नियम

१. यदि अपने आप धुलने वाला पाखाना न हो तो शौच जाते हुए अपने साथ एक कागज़ में या बरतन में २ छटाँक राख या पिसी हुई मिट्टी ले जाओ और पाखाना फिरने के बाद उस पर डाल दो। इससे मक्खी नहीं भिनकती और उसी टट्टी पर दूसरे व्यक्ति को मल त्यागने के लिये जाने में दुर्गन्ध और घृणा नहीं आती।

२. पानी ले जाने के लिये एक बरतन अलग रक्खो। जहाँ तक हो सके उन बरतनों का जो खाने पीने के काम में आते हैं प्रयोग न करो।

३. हाथ इस प्रकार धोने चाहियें—यदि मिट्टी ही काम में लाई जावे तो जिस हाथ से चूतड़ धोये हैं पहले उस हाथ में मिट्टी लो और कम से कम दो बार उस हाथ को अकेला धो लो। उसके बाद दोनों हाथों को मिलाओ। मिट्टी से अच्छा साबुन है, दाहिने (अर्थात् साफ) हाथ में साबुन की बट्टी लो और उस पर पानी डाल कर उसको मलो और इस घोल को दूसरे हाथ पर टपकाओ दो तीन बार इस बाएँ हाथ को इस साबुन के पानी से धो लो, फिर दोनों हाथ मिलाओ और धोओ। मतलब यह है कि गंदे हाथ को दूसरे हाथ में एक दम मिलाने से दूसरा हाथ भी गंदा हो जाता है।

४. बहुत लोग पाख़ाने में ले जाने वाले लोटे को इस प्रकार माँजते हैं—बिना हाथ साफ़ किये पहले लोटे को मिट्टी से मल लेते हैं, इससे गंदे हाथ पर जो मल का अंश लगा होता है वह लोटे पर भी मल जाता है। ठीक विधि यह है कि पहले उपरोक्त विधि से हाथ साफ़ करो, फिर लोटे को माँजो।

अध्याय २४

रक्त संचालक और रक्तशोधक अंगों के विषय में कुछ आवश्यक ज्ञान

हृदय रक्त संचालक अंग है; फुप्फुस द्वारा रक्त की शुद्धि होती है; त्वचा और वृक्क भी रक्त की शुद्धि करते हैं। जब हृदय या फुप्फुस या दोनों काम करना बंद कर देते हैं, तब मृत्यु हो जाती है; यह बात सभों ने सुनी होगी कि अमुक मनुष्य का 'हार्ट फेल'* हो गया अर्थात् हृदय के काम न करने से मृत्यु हो गयी।

फुप्फुस

के विषय में ये बातें याद रखनी चाहियें—

१. इन के द्वारा रक्त वायु से ओपजन ग्रहण करता है। ओपजन जीवन के लिये अत्यंत आवश्यक चीज़ है।

२. जितनी ज़्यादा पवित्र वायु होगी उतनी ही अच्छी वह फुप्फुसों के लिये और स्वास्थ्य के लिये होगी।

---

*Heart failure.

३. उथला स्वाँस लेने से फुप्फुस पूरे तौर से नहीं फैल सकते; उनके कुछ भाग विशेष कर उनकी चोटियाँ वग़ैर फूले रह जाती हैं, यही स्थान है जहाँ क्षय रोग पहले आरंभ होता है। गहरा स्वाँस लेने से सब भाग खूब फैल और फूल जाते हैं, रक्त सब जगह खूब पहुँचता है और वायु भी सभी भागों में प्रवेश करती है, क्षय के होने की संभावना कम हो जाती है और रक्त भी शीघ्र पवित्र और ओषजन पूर्ण हो जाता है।

४. सीने को ज़बरदस्ती फैला कर और देर तक फैला कर स्वाँस लेना भी बुरा है क्योंकि इससे फुप्फुस के तंतुओं पर और हृदय पर ज़ोर पड़ता है और दोनों के रुग्ण हो जाने का भय रहता है।

५. मुंह से स्वाँस लेना फुप्फुसों और श्वास पथ के और भागों के लिये हानिकारक है क्योंकि इस प्रकार वायु बिना छने और गरम हुए (या शरीर के ताप के बराबर गर्म हुए) रोगाणु सहित शरीर में पहुँचती है।

६. सीने को सर्दी गर्मी से बचाना चाहिये परन्तु अधिक कपड़े भी न लादने चाहियें। जो अधिक कपड़े लादते हैं उनके सीने पर शीघ्र ठंढ लग जाती है।

७. फुप्फुसों और हृदय का एक दूसरे से सम्बन्ध है; जिनका हृदय कमज़ोर है या फुप्फुसों का रोग है वे अधिक व्यायाम न करें।

हृदय

यह पम्प है जो गंदे रक्त को समस्त शरीर से इकट्ठा करता है और फिर उसको फुप्फुसों में शुद्ध करने (ओषजन ग्रहण करने और कर्बन-द्विओषिद् त्यागने) को भेजता है और फिर फुप्फुसों द्वारा पवित्र किये रक्त को ग्रहण करके उसको समस्त शरीर में पहुँचाता है।

जब किसी समय किसी विशेष अंग मे मामूल से ज़्यादा काम लिया जाता है तो उस अंग को मामूल मे अधिक रक्त की आवश्यकता होती है; यह काम भी हृदय को ही करना पड़ता है। व्यायाम के समय हृदय और फुफ्फुस दोनों ही की मेहनत बढ़ जाती है। भागने, दौड़ने, ऊपर चढ़ने, बोझ उठाने, मैथुन करने, तैरने, इत्यादि कामों में अधिक रक्त की आवश्यकता होती है, इस समय अधिक ओपजन का व्यय होता है इस कारण रक्त को अधिक शीघ्रता से शुद्ध करने की आवश्यकता हो जाती है, अधिक ओपजन ग्रहण करने के लिये रक्त शीघ्रता पूर्वक फुफ्फुसों में जाता है और फुफ्फुस भी शीघ्रता से फैलने और सिकुड़ने लगते हैं। हृदय और फुफ्फुस दोनों की चाल बढ़ जाती है। श्वास ज़्यादा आने लगते हैं और दिल अधिक धड़कने लगता है, नब्ज़ तेज़ चलने लगती है।

स्वस्थ मनुष्य वह है कि जिस के हृदय की चाल व्यायाम से शीघ्र ही नहीं बढ़ जाती, अर्थात् ज़रा से परिश्रम मे हृदय धक धक नहीं करने लगता; जब ऐसा हो तो समझना चाहिये कि हृदय बहुत मज़बूत नहीं है। ज़रूरत पड़ने पर यह होना चाहिये कि हृदय खूब फैल कर अधिक रक्त ग्रहण करे और फिर खूब संकोच कर के अधिक रक्त को फुफ्फुसों में भेज सके; इसी प्रकार फुफ्फुसों को भी चाहिये कि खूब फैल कर जितना रक्त हृदय से आवे उसे शुद्ध करें और फिर खूब संकोच करके अधिक से अधिक वायु को बाहर निकाल दें। घोड़े को कुछ दूर जाना हो तो दो विधियों से जा सकता है—१. छोटे छोटे क़दम रख कर, इस में बहुत से क़दम रखने पड़ेंगे। २. बड़े बड़े क़दम रख के, इस में थोड़े से क़दम रखने पड़ेंगे। स्वस्थ मनुष्य के हृदय और फुफ्फुस की गति अधिक परिश्रम से बढ़ तो जाती है परन्तु उतनी नहीं जितनी कमज़ोर अंग वालों की। जब चाल एक

दम बढ़ जाती है तो साँस फूलने लगता है और ऐसे लोग मेहनत का काम अधिक देर तक नहीं कर सकते और शीघ्र थक जाते हैं।

हृदय और भय

हृदय इच्छाधीन अंग नहीं है। फुप्फुस भी इच्छाधीन अंग नहीं हैं। यदि ये अंग इच्छाधीन होते तो जीवन कठिन हो जाता। आप कितना ही चाहें कि हृदय धड़कना बंद कर दे, वह कभी न करेगा; इसी प्रकार आप चाहें कि फुप्फुस साँस लेना बंद कर दें तो वे ऐसा थोड़ी ही देर करेंगे और फिर शीघ्र काम करना आरंभ कर देंगे। ये अंग आत्म रक्षा के लिये परमावश्यक हैं इस कारण इच्छाधीन नहीं रक्खे गये।

मस्तिष्क का सम्बन्ध हृदय और फुप्फुस दोनों से नाड़ियों द्वारा है। जिस प्रकार घुड़सवार अपने घोड़े की चाल लगाम को खींचकर या ढीला करके घटा बढ़ा सकता है उसी प्रकार मस्तिष्क भी हृदय और फुप्फुस की गति को इन नाड़ियों द्वारा घटा बढ़ा सकता है। भय में यह होता है कि मस्तिष्क के हृदय-केन्द्र का दबाव हृदय पर से कम हो जाता है, हृदय बड़ी तेज़ी से धड़कने लगता है; भय में निर्णय करने और सोचने विचारने की शक्ति रहती ही नहीं; होश उड़ जाते हैं भय बहुधा कुशिक्षा और अज्ञान से उत्पन्न होता है।

जिन लोगों का हृदय ज़रा से परिश्रम से उछलने लगे उन को डाक्टर से सलाह लेनी चाहिये; कभी कभी तो हृदय में रोग होता है; अक्सर इसका कारण कुशिक्षा और भय होता है। जब किसी अजनबी आदमी को देखकर या अफ़सर को देखकर हृदय उछलने लगे तो इसका कारण भय है; भय दूर करो और हृदय अपने आप ठीक हो जावेगा।

रोगों से विशेष कर ज्वरों में हृदय कमज़ोर हो जाता है और उसकी चाल तेज़ हो जाती है; इसी कारण हृदय पर विशेष ध्यान दिया जाता है और आवश्यकतानुसार ऐसी औषधियाँ दी जाती हैं जिनसे उसमें ताक़त आवे। जब तक वह ठीक चलता है मृत्यु नहीं हो सकती।

अधिक मोटा होना हृदय के लिये बुरा है। हृदय पर चरबी इकट्ठी होने लगती है और हृदय में मांस की जगह चरबी हो जाती है। ऐसी दशा में हृदय कमज़ोर हो जाता है।

अधिक व्यायाम से भी हृदय में रोग उत्पन्न हो जाता है। पहलवानों का हृदय अधिक मोटा और बड़ा हो जाता है परन्तु वह बहुत दिनों तक काम नहीं कर सकता। कभी कभी एक दम जवाब दे देता है।

गुर्दे और त्वचा

ये दोनों भी रक्त शोधने वाले अंग हैं। गुर्दे रक्त से मलिन पदार्थ ले लेते हैं और उन को मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकाल देते हैं। त्वचा में पसीना बनाने वाली ग्रन्थियाँ होती हैं; ये पसीने द्वारा मलिन पदार्थों को निकालती हैं।

जब गुर्दों का प्रदाह हो जाता है तो मलिन पदार्थ शरीर से ठीक तौर पर नहीं निकल पाते और मूत्र कम आता है; मूत्र में अलब्युमेन भी आया करती है। मलिन पदार्थों और जल के शरीर में जमा होने से शरीर में सब जगह विशेष कर त्वचा के नीचे जमा होने से शरीर फूल जाता है—इस को उदकमया* कहते हैं। गुर्दों और त्वचा का

---

*उदकमया का संक्षिप्त रूप उदमया हो सकता है। यह इडीमा (Oedema) से बहुत मिलता जुलता है।

घनिष्ट सम्बन्ध है। जब त्वचा से पसीना अधिक निकलता है तो गुर्दा से मूत्र कम और गाढ़ा निकलता है (जैसा गर्मियों में होता है); विपरीत इसके जब पसीना कम आता है जैसा जाड़ों में तब गुर्दे अधिक काम करते हैं और मूत्र पतला और अधिक आता है।

ज्वरों का असर गुर्दों पर भी पड़ता है। गुर्दों का भी हृदय से घनिष्ट सम्बन्ध है। जब रोग के कारण गुर्दे सख़्त हो जाते हैं तो हृदय को उनमें रक्त पहुँचाने के लिये अधिक परिश्रम करना पड़ता है, हृदय मोटा और बड़ा हो जाता है। यदि गुर्दों की सख़्ती बढ़ती गयी तो अंत में हृदय थक जाता है और फिर मृत्यु निकट रहती है।

अधिक सील और ठंढ गुर्दों को हानि पहुँचाती है। अधिक ओपजनीय भोजन (जैसे गोश्त) भी उसको हानि पहुँचाते हैं।

जलोदर

जब हृदय, वृक्क (गुर्दा) या यकृत के रोगों में उदर के अंदर पानी जमा हो जाता है तो उसे जलोदर कहते हैं। यह पानी पतले दस्त करा के या पसीना निकाल कर या मूत्र की मात्रा बढ़ा कर निकाला जाता है। जब इन विधियों से नहीं निकलता तो पेट में यंत्र भोंक कर निकाला जाता है। कभी कभी १०-१५-२५ सेर पानी निकलता है।

कुछ और अंग

यकृत या जिगर

यह एक अत्यंत आवश्यक अंग है; इसके बिगड़ने से भोजन भली प्रकार नहीं पचता; क़ब्ज़ हो जाता है; पांडुर रोग हो जाता है। (जिस में आँखें और त्वचा पीली हो जाती हैं, मूत्र पीला हो जाता है; पाख़ाना मटीला या सुफ़ेद सा आने लगता है)। इसके रोग से

चित्र ३४१. [illegible]

बवासीर भी हो जाती है; और रक्त की शुद्धि भली प्रकार नहीं हो पाती। यकृत हमारी रोगनाशक शक्ति के लिये भी अत्यंत आवश्यक अंग है। शराब, अधिक शक्कर और वसा का प्रयोग, कब्ज़ और बदहज़मी, निठल्लुपन, पानी कम पीना, बहुत खा जाना और व्यायाम न करना इत्यादि बातें यकृत को बिगाड़ती हैं। यकृत का मधुमेह रोग से भी घनिष्ट सम्बन्ध है।

१. अधिक रक्त भार

High Blood pressure

पढ़े लिखे भारतवासियों को मधुमेह की भाँति यह रोग भी बहुत सताने लगा है। आमतौर से यह रोग खूब खाने पीने और मौज करने वालों का है; कभी कभी कम खानेवाले और सात्विक भोजन करने वालों को (जैसे महात्मा गाँधी) भी दिक्क करता है। रक्त का दबाव बढ़ जाता है; जैसे रबड़ के गुब्बारे में यदि आप हवा फूँकते जावें तो

वह फट जाता है, इसी प्रकार जब रक्तवाहिनियों (धमनियों) की दीवारों पर रक्त का भार बहुत अधिक हो जाता है तो उनमें से जो सूक्ष्म और कोमल हैं जैसे मस्तिष्क और चक्षु की उनके फट जाने का डर रहता है। इन सूक्ष्म रक्त-वाहिनियों के फटने से और उस स्थान में रक्त बहने से उस भाग का कार्य्य जाता रहता है; अर्धांग (पक्षाघात) हो जाता है। क्या लक्षण होंगे, यह मस्तिष्क के उस भाग के कार्य्य पर निर्भर है जहाँ की रक्त-वाहिनियाँ फटी हैं; पक्षाघात तो अकसर हो ही जाता है, कभी कभी बोलना बंद हो जाता है; व्यक्ति जो भाषा या भाषाएँ जानता था वह सभों को भूल जाता है मालूम होता है कि उसने उनको कभी सीखा ही नहीं; अपने बच्चों को पहचान नहीं सकता, उनके नाम भूल जाता है इत्यादि। आँख पर असर पड़ता है तो अंधा हो जाता है, बाहर से आँख ज्यों की त्यों दिखाई देती है। रक्त भार का कुछ अन्दाज़ा नब्ज़ देखने में हो जाता है। परन्तु ठीक अन्दाज़ा 'रक्त भार मापक यन्त्र' द्वारा ही हो सकता है; हकीम और वैद्य अपने आप को नब्ज़ परीक्षा में कितना ही निपुण समझें परन्तु हमने उनको बार बार धोखा खाते देखा है; इस यन्त्र बिना ठीक अन्दाज़ा नहीं हो सकता है। आमतौर से अधिक रक्त भार का बुरा परिणाम मध्य आयु या वृद्धों में देखा जाता है, कभी कभी जवानों पर (२५-३५ वर्ष) भी उसका असर पड़ता है।

सामान्य रक्तभार (संकोच रक्त भार)*

रक्तभार आयु के साथ बढ़ता जाता है। जवानी के आरंभ में

---

*Systolic blood pressure. प्रसार रक्तभार को Diastolic blood pressure कहते हैं। प्रसार रक्त भार ८०-९० के लगभग होता है; १०० से अधिक होना बुरा है।

२०-३० वर्ष) रक्त भार १२०-१३० मिलीमीटर (पारा) होता है; ३० से ५० वर्ष के वीच में १३५-१४५ तक होना चाहिये; ५० वर्ष के वाद १४५-१५५ के लग भग। कुछ ही आयु हो १७० से अधिक होना बुरा है।

रक्तभार कितना हो सकता है

रक्तभार वढ़ कर ३२० तक हो सकता है; २०० से अधिक में जान जोखों में रहती है। कभी कभी १९० में ही पक्षाघात हो जाता है।

अधिक रक्तभार के मुख्य लक्षण

सिर भारी रहना; सिर में विशेष कर पिछले भाग में दर्द होना; सिर में धमक; कानों में भनभनाहट; आँखों के सामने चिनगारियाँ दिखाई देना; चक्कर आना; नींद न आना; दिल धड़कना और घवराहट का पैदा होना।

कारण

वहुत से हो सकते हैं; कभी कभी जाँच पड़ताल से उसका कोई कारण नहीं मालूम होता। अपने चिकित्सक से शरीर की जाँच कराओ। संभव है गुर्दे का रोग हो, यकृत विगड़ा हो; हृदय का और रक्तवाहिनियों का रोग हो; आतशक भी एक कारण है। इनके अतिरिक्त रंज, फिक्र, क्रोध से भी रक्तभार वढ़ जाता है। पेट के मैले रहने से भी कई प्रकार के विष शरीर में पहुँचते हैं और रक्तभार वढ़ाते हैं।

चिकित्सा

१. यदि कारण मालूम हो जावे तो उसको दूर करने का यत्न करो।

२. मांस भोजन रक्त भार को वढ़ाता है; इसलिये यदि रोगी मांसा-

हारी है तो उसको मांस को त्यागना या कम करना चाहिये; फलाहारी बनना चाहिये। मांस के शोर्वे अत्यंत हानिकारक होते हैं।

३. याद रक्खो कि जब रक्तभार अधिक हैं तो रक्तवाहिनियाँ तनी हुई हैं; यदि उनमें रक्त अधिक भरेगा तो उनके फटने का डर है; यदि अधिक तरल शरीर में पहुँचेंगे तो रक्त के तरल भाग के बढ़ने की संभावना है; इसलिये बहुत पानी पीना या दूध पर ही रहना ठीक नहीं है। कुछ लोग मांस और अन्य भोजन छुड़ाकर रोगी को दूधाहारी बना देते हैं; उससे भी रक्त भार नहीं घटता।

४. नमक हानि पहुँचाता है; इसलिये कुछ समय के लिये नमक त्याग दो।

५. जहाँ तक संभव हो रंज और फिक्रों को त्यागो। क्रोध करना बंद करो। उत्तेजक दृश्य न देखो और उत्तेजक पुस्तकें न पढ़ो और इस प्रकार के समाचार न सुनो। शांति रक्तभार के लिये अमृत समान है।

६. उपरोक्त बातें करने के बाद शय्या पर लेट जाओ। शय्या पर आराम करने से रक्त भार शीघ्र घटता है। इस प्रकार का आराम एक अत्यंत उपयोगी औषधि है।

७. ऐसी औषधियों का सेवन करो जिनसे यकृत ठीक हो और पतला पाख़ाना आवे जिससे शरीर से मल भी निकले और पानी भी निकले। कैलोमल (Calomel) थोड़ी मात्रा में और जुल्लाबवाले नमक जैसे मग्नेशिया सल्फेट (Magnesia Sulphate) अत्यंत उपयोगी हैं।

८. उपवास बहुत लाभदायक है।

९. ठंढे जल से स्नान न करो। अधिक रक्त भार वालों को गर्म जल का स्नान फायदा करता है।

१०. ऐसे चिकित्सक से कदापि चिकित्सा न कराओ जो यंत्रों

द्वारा रक्त भार जाँचना नहीं जानता या जो केवल नब्ज़ देखकर रक्तभार बतला देने का दावा करता है। समझ लो कि या तो वह कपटी है या मूर्ख है।

११. कोई अमोघौषधि नहीं है; चिकित्सक जो आवश्यक समझता है वह देता है।

१२. याद रक्खो कि अधिक रक्तभारवाले को अपनी जान सदा जोखों में समझनी चाहिये। बीमा कम्पनियाँ ऐसे लोगों की जान का बीमा नहीं करतीं। इसलिये ऐसे लोगों को सावधान रहना चाहिये।

२. न्यून रक्तभार

सामान्य से कम रक्तभार होना भी हानिकारक है, इतना नहीं जितना अधिक रक्त भार।

कारण

हृदय रोग; उपवृक्क, पिटुइटरी और चुल्लिका ग्रन्थियों के रसों की कमी; रक्तवाहिनियों सम्बन्धी नाड़ियों के रोग; रोग जैसे इन्फ्लुएंज़ा, टायफौयड, न्युमोनिया, तपेदिक़, पेचिश, दस्त, हैज़ा, कैन्सर, मस्तिष्क रोग जैसे वहम; अधिक तम्बाकू पीना।

मुख्य लक्षण

शीघ्र थक जाना; कमज़ोरी; चक्कर आना; ग़श आ जाना; वहम; बेहिम्मती; नींद न आना; चिड़चिड़ापन; सर्दी अधिक महसूस करना; हाथों पैरों का ठंढा रहना; शरीर का ताप सामान्य से कम होना; लेटी हुई दशा से एकदम खड़े हो जाने में नब्ज़ की चाल प्रति मिनट १० से भी अधिक हो जाना (मानो लेटे हुए गति ७० है, खड़े होने में बजाय ७५-८० होने के ९०-१०० हो जाना); लेट कर एक दम खड़े होने

में चक्कर आना और आँखों के सामने अँधेरा सा आना। मज्जातन्त्री तालीम का भी रक्त भार पर असर पड़ता है; कट्टर निया मज्जातन्त्रवालों में न्यून रक्तभार का रुझान रहता है (यह ध्यान में अपने तजुर्बे से कहता हूँ)।

चिकित्सा

डाक्टर से जाँच कराओ। कारण दूर करो; अधिक परिश्रम न करो। उत्तेजक औषधियों और भोजनों का सेवन होना चाहिये। शरीर की मालिश अत्यंत उपयोगी है। जब कारण गलत मज्जातन्त्री तालीम हो तो उसका इलाज कठिन है। इच्छा बल बढ़ाने का यत्न उचित शिक्षा और इच्छा बल वाले व्यायाम द्वारा करना चाहिये। जब रोग अंगों की खराबी से हो तो उन अंगों की चिकित्सा कराओ। मछली का तेल, लोहा, फॉस्फोरस, संखिया, कुचले का सत इत्यादि चीजें लाभदायक हैं।

अध्याय २५

व्यायाम

असभ्य मनुष्य और जानवरों को अपना भोजन प्राप्त करने के लिये बहुत चलना फिरना, भागना, दौड़ना पड़ता है; यही नहीं उनको अपने शत्रुओं से बचने के लिये भी अकसर बहुत परिश्रम करना पड़ता है; उनको अपने अंगों को ठीक रखने के लिये किसी व्यायाम की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उनके सब अंग बराबर काम करते रहते हैं और उनमें कहीं भी मलिन पदार्थ इकट्ठे नहीं होते और कोई अंग निठल्लू नहीं रहता। सभ्य मनुष्य का हाल विचित्र है; वह किसी अंग से कम काम लेता है, किसी से अधिक; कोई अंग निठल्लू रहता है उदाहरण—अध्यापक और वकील और डाक्टर अपने मस्तिष्क से अधिक काम लेते हैं, अपनी पेशियों से कम; मज़दूर लोग अपनी पेशियों से अधिक काम लेते हैं, मस्तिष्क से कम; हाकिम लोग और सेठ जी बैठे बैठे ही अपनी जीविका कमाते हैं; उनको जीविका के लिये शारीरिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। वही मनुष्य स्वस्थ रह सकता है जो थोड़ा बहुत काम सभी अंगों और इन्द्रियों से ले; यदि कुछ इन्द्रियाँ बहुत कम काम करें और कुछ बहुत ज़्यादा तो गड़बड़ होती है जैसे आप खूब खावें और अपनी पेशियों से काम न लें तो परिणाम बदहज़मी, मोटापन और

मधुमेह होगा, यकृत, क्लोम, आमाशय और अंत्र और वृक्क खराब हो जावेंगे; इसी तरह आप दिन भर डण्ड पेलें, पेशियों से काम लें कुश्ती लड़ें, तो आप का हृदय अधिक ज़ोर पड़ने से बिगड़ जावेगा; ऐसे ही आप दिन भर कुर्सी पर चूतड़ जमाये बैठे रहें और मस्तिष्क से काम लेते रहें तो आप के पोषण संस्थान के अंग बिगड़ जावेंगे।

चूँकि सभ्य मनुष्य को अपना भोजन प्राप्त करने के लिये यथोचित परिश्रम नहीं करना पड़ता और उसके सब अंगों को काम नहीं करना पड़ता इसलिये यह आवश्यक है कि वह किसी और विधि से उन अंगों से काम ले। यह विधि व्यायाम है।

व्यायाम किन लोगों को करना चाहिये

मेहनत मज़दूरी पेशा करने वालों को जैसे पल्लेदार, कहार, चपरासी; मल्लाह, सेवक इत्यादि को व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि इनमें से बहुत कम ऐसे हैं जिनको भर पेट भोजन भी सुगमता से प्राप्त होता है। इनका शरीर कभी कभी तो थक भी जाता है और इनको थकान दूर करने के लिये कभी कभी पूरा समय भी नहीं मिलता।

छोटे बच्चों को (पाठशाला जाने की आयु से पहले) व्यायाम की आवश्यकता नहीं क्योंकि उनको खेल कूद, रोने हँसने, कूदने फांदने में काफ़ी शारीरिक परिश्रम हो जाता है।

जब बालक पाठशाला में जाना आरंभ करता है तब से उसको व्यायाम की आवश्यकता होती है। जो व्यक्ति ६—७ घंटे एक स्थान में बैठा रहेगा और केवल मस्तिष्क से काम करेगा उस की पेशियाँ और अस्थियाँ ठीक ठीक न बनेंगी और न बढ़ेंगी; उसकी और इन्द्रियाँ भी ठीक ठीक न बन पावेंगी।

व्यायाम कै प्रकार का होता है

१. ऐसा व्यायाम जिस को एक से अधिक व्यक्ति मिल कर करें; इस में जीत, हार का प्रश्न रहता है। जीत हार के प्रश्न के कारण व्यक्ति पेशियों के अतिरिक्त और अंगों से भी काम लेते हैं; इस कारण पेशियों और फुप्फुसों और हृदय के अतिरिक्त कान, चक्षु, मन इत्यादि से भी काम लिया जाता है; मन की कुछ ताक़तें जैसे किसी वात का शीघ्र निर्णय करना, दूर से एक दम किसी चीज़ को देख लेना इत्यादि भी वढ़ती हैं। जितने खेल हैं वे इसी प्रकार के व्यायाम हैं जैसे फुटवाल, क्रिकेट, हौकी, टेनिस, वैडमिन्टन, कवड्डी, गिल्ली डंडा, गेंद टोरा, नाचना इत्यादि। इन सव खेलों में एक प्रकार का मनोरंजन होता है। वहुत से व्यक्ति इकट्ठे रहते हैं इस लिये उन को मिल कर काम करने की आदत पड़ती है; भय कम होता है और शर्म भी छूट जाती है। इस प्रकार के व्यायाम में 'इच्छा वल' को वहुत काम नहीं करना पड़ता, वहुत से काम 'परावर्तित क्रिया' द्वारा अर्थात् विना इच्छा की सहायता के होने लगते हैं।

२. ऐसा व्यायाम कि जिस में 'इच्छा' से अधिक क़ाम लिया जाता है। व्यक्ति इस व्यायाम को अलग अलग कर सकते हैं। इस में समस्त शरीर की पेशियों से एक दम काम नहीं लिया जाता; जिस अंग को मज़वूत करना हो उसी की पेशियों का संकोच और प्रसार (सिकोड़ना और फैलाना) किया जाता है। इस प्रकार के व्यायाम के लिये किसी यंत्र की विशेष आवश्यकता नहीं है। राममूर्ति, सैंडो, (Sandow) मूलर (Muller) की कसरतें इसी प्रकार की हैं। यह 'इच्छा वल' वाला व्यायाम है।

व्यायाम में क्या होता है

जितनी गतियाँ हमारे शरीर में होती हैं वे सब मांस (पेशी) के काम करने अर्थात् उस के सिकुड़ने और फैलने से होती हैं। जब हम चलते हैं तो हमारी नीचे की शाखा की पेशियाँ सिकुड़ती और फैलती हैं; जब हम बोलते हैं तो हमारी जिह्वा और स्वरयंत्र और मुख की पेशियाँ सिकुड़ती और फैलती हैं; जब हम स्वांस लेते हैं तो हमारे सीने (वक्ष) की पेशियाँ काम करती हैं; जब हम मैथुन करते हैं तो हमारे चूतड़ और जाँघ इत्यादि की पेशियाँ काम करती हैं। पेट और आँतों में जो गति होती है, मल (भोजन का मथा जाना, भोजन का नीचे को सरकना, मल त्यागना) वह भी मांस द्वारा होती है। हृदय भी मांस से बना एक अंग है; रक्त संचालन भी मांस द्वारा होता है।

जहाँ तक व्यायाम का सम्बन्ध है मांस दो प्रकार का है—(१) वह जो हमारी इच्छा से गति कर सकता है जैसे शाखाओं और सीने और उदर का मांस; हम पेशियों को संकोच कर के हाथ उठा सकते हैं और चल फिर सकते हैं और सीना फुला सकते हैं, पेट को भींच सकते हैं। (२) वह जो हमारी इच्छा के आधीन नहीं है जैसे हृदय का धड़कना, आँतों में गति का होना, पुतली का छोटा बड़ा हो जाना। व्यायाम द्वारा इच्छाधीन मांस मज़बूत होता है। यह एक नियम है कि जिस अंग से ज़्यादा काम लिया जाता है वह अंग बड़ा और मज़बूत हो जाता है यदि उस का पोषण भली प्रकार हो। पेशियों से जब काम लिया जाता है तो वे बड़ी और मज़बूत हो जाती हैं; यही नहीं वे आज्ञा ठीक ठीक पालन करने लगती हैं। पोषण का सब काम अनैच्छिक मांस द्वारा होता है (हृदय, आमाशय, अंत्र); जब ऐच्छिक मांस से काम लिया जाता है तो वे अधिक भोजन (शक्ति उत्पादक पदार्थ) मांगते हैं;

इस लिये उन के पोषण के लिये हृदय, फुप्फुस और पाचक अंगों को ज़बरदस्ती काम करना पड़ता है । इस प्रकार व्यायाम का असर समस्त शरीर पर पड़ता है ।

जब आप पेशियों को संकोच करते हैं तो वहाँ मलिन पदार्थ पैदा होते हैं ओषजन का व्यय होता है और कर्बनद्विओषद् गैस बनती है; यही नहीं शक्ति उत्पन्न करने के लिये पौष्टिक पदार्थों का भी व्यय होता है । ओषजन और पौष्टिक पदार्थ रक्त द्वारा हर स्थान में पहुँचते हैं और रक्त द्वारा ही मलिन और अनावश्यक पदार्थ सब स्थानों से हटा कर रक्त संशोधक अंगों में (फुप्फुस, यकृत, वृक्क, त्वचा) पहुँचाये जाते हैं । इन सब काम करने के लिये, रक्त के शीघ्र आने जाने की आवश्यकता है ; हृदय को तेज़ी से अर्थात् जल्दी जल्दी सिकुड़ना और फैलना पड़ता है; फुप्फुसों को शीघ्रता पूर्वक फूलना और खाली होना पड़ता है; वृक्क और त्वचा को अधिक काम करना पड़ता है । इसका परिमाण यह होता है :—

१. नब्ज़ तेज़ हो जाती है ।

२. स्वाँस जल्दी जल्दी आते हैं ।

३. त्वचा में अधिक रक्त आने के कारण उसका रंग पहले से अधिक लाल हो जाता है और पसीना अधिक आता है ।

४. अधिक पसीना निकलने के कारण और अधिक मलिन पदार्थों के बनने से मूत्र कुछ गाढ़ा और गहरे रंग का हो जाता है ।

व्यायाम के बाद क्या होता है

व्यायाम के बाद थकान मालूम होती है और आराम करने को जी चाहता है; प्यास लगती है क्योंकि पसीने द्वारा रक्त का जल भाग कम हो गया है; भूख लगती है क्योंकि पौष्टिक पदार्थों का व्यय हो

गया है। रक्त को ओपजन खूब मिली है; वह पवित्र हो जाता है और अब पवित्र रक्त सब अंगों में पहुँचता है और मस्तिष्क इत्यादि अंग पहले से अच्छा काम करने योग्य हो जाते हैं।

किस आयु में कितना और कैसा व्यायाम करना चाहिये

१. जन्म से ६-७ वर्ष की आयु तक अर्थात् पाठशाला में जाने की आयु तक। इस आयु में चलना, फिरना, भागना, कूदना, शरीर की स्थिति ठीक रखने वाली गतियों मे अधिक व्यायाम की आवश्यकता नहीं। ये सब काम बालक को प्रसन्नता पूर्वक करने चाहियें; किसी प्रकार का उस पर ज़ोर न डाला जावे अर्थात् उसको इन के करने में किसी प्रकार का कष्ट न उठाना पड़े।

२. ६ से ११-१४ वर्ष तक। इस समय उसके शरीर का वर्द्धन बड़ी तेज़ी से होता है; उसका भार और उसकी लम्बाई दोनों बढ़ती हैं। भार विशेप कर पेशियों के बड़े और मज़बूत होने से बढ़ा करता है; पेशियों के मज़बूत और बड़ी होने से अस्थियाँ भी बढ़ती हैं। इस आयु में खेलों के अतिरिक्त कुछ थोड़ी सी "इच्छा बल वाली" कसरतें भी करनी चाहियें परन्तु व्यायाम अधिकतर खेलों द्वारा ही होना ठीक है।

३. १४ वर्ष से २४ वर्ष तक। इस आयु में पेशियों के बढ़ने के अतिरिक्त मन की शक्तियाँ भी बढ़ती हैं। अब इच्छा बल को बढ़ाना चाहिये। इसलिये 'इच्छा बल' वाली कसरतों पर खेलों से अधिक समय देना चाहिये। जो अंग कमज़ोर हों उनको विशेप कसरतों द्वारा मज़बूत करने का यत्न करना चाहिये।

४. २४ वर्ष के बाद व्यक्ति तरह तरह के पेशे अख्त्यार करते हैं। अपने पेशे के अनुसार व्यायाम करना चाहिये। यदि उनको अपनी जीविका के लिये अधिक शारीरिक परिश्रम करना पड़ता है तो उनको

किसी विशेष व्यायाम की आवश्यकता नहीं, केवल थोड़ी देर पवित्र वायु में बैठना या टहलना काफ़ी होगा। यदि उनको बैठने का काम अधिक है तो जैसी कसरत उनको पसंद हो वैसी करें।

अति व्यायाम

व्यायाम उतना करना चाहिये जिस से अधिक थकान न हो। थोड़ी सी थकान होना तो आवश्यक है। थकान इस बात को बतलाती है कि "बस करो"। जिस प्रकार अधिक भोजन (चाहे जितना ही स्वादिष्ट हो) हानिकारक है उसी प्रकार अधिक व्यायाम भी। यदि व्यायाम करने से हृदय की चाल अत्यंत तेज़ और क्रमविरुद्ध हो जावे या बहुत देर तक हँपनी आती रहे तो समझना चाहिये कि व्यायाम अत्यधिक हुआ और उस को घटाना चाहिये। अति व्यायाम हृदय को हानि पहुँचाता है।

व्यायाम और वायु

चाहे खेल कूद हों और चाहे कसरतें, व्यायाम हमेशा सब से पवित्र वायु में करना चाहिये। खेल कूद तो घर के अंदर हो ही नहीं सकते क्योंकि अधिक स्थान चाहिये; सड़क के निकट जहाँ धूल उड़ती है या ऐसी जगह जहाँ कूड़ा पड़ता हो खेल कूद न होना चाहिये। व्यायामागार भी जहाँ तक हो सके आबादी से दूर बनाने चाहिये। जो लोग बाहर नहीं जा सकते वे कसरतें अपने घर में करें। इस काम के लिये घर का वह भाग चुनना चाहिये जहाँ धुआँ और धूल न हो; यह स्थान पाखाने से दूर हो। जो कमरा सोने के काम में आता हो वह कसरत करने के लिये अच्छा नहीं है; यदि उसी कमरे में कसरत करनी पड़े तो उसकी सब खिड़कियाँ और किवाड़ खोल कर उसकी

वायु को पहले शुद्ध करलो; यदि पंखा हो तो पंखे द्वारा उसकी वायु की अदला बदली कर लेनी चाहिये। जिस कमरे में अभी झाड़ू लगी है वह व्यायाम करने के लिये ठीक नहीं है क्योंकि उड़ी हुई धूल सब फुप्फुसों में चली जावेगी। अधिक सरदी न हो तो छत के ऊपर जाकर कसरत करो।

व्यायाम और भोजन

भोजन करने के कम से कम तीन घन्टे बाद व्यायाम करना चाहिये। व्यायाम खतम करते ही भोजन न करना चाहिये; पानी या शर्बत या चाय पीने में कोई हर्ज नहीं; भोजन व्यायाम से आध पौन घन्टे बाद करना चाहिये।

व्यायाम के समय वस्त्र

व्यायाम करते समय बहुत कपड़े पहनने की आवश्यकता नहीं, जो कपड़े पहने जावें वे तंग न हों; टांगों के कपड़े ऐसे हों कि भागने दौड़ने में कष्ट न हो; खेल कूद के कपड़े बहुत लम्बे और ढीले ढाले नहीं होने चाहिये क्योंकि इन से भागा नहीं जाता। कसरत करने के समय या तो केवल जांघिया या लंगोट रक्खो; या छाती को बनियान से ढको और लंगोट या जांघिया पहनो। टांगें और हाथ नंगे रहने चाहियें क्योंकि कसरत के बाद बदन को मलने में आसानी होती है और अपनी पेशियों को सिकुड़ते और फैलते देख कर चित्त भी प्रसन्न होता है और ध्यान भी लगा रहता है। खेल कूद के बाद जब पसीना खूब आता है शरीर को ठंड न लगनी चाहिये; जाड़े के दिनों में ऊनी स्वेटर या जाकट का प्रयोग करना चाहिये; गरमियों में कोई अधिक कपड़ा पहनने की आवश्यकता नहीं।

व्यायाम और स्नान

जब तक स्वांस और हृदय की चाल पहली जैसी न हो जावे और पसीना सूख न जावे, व्यायाम के बाद नहाना ठीक नहीं।

व्यायाम का सब से अच्छा समय

सब बातों का (पढ़ने लिखने, दफ्तर का काम इत्यादि) खयाल कर के खेल कूद का सब से अच्छा समय सायंकाल ही है। इच्छा बल वाली कसरतों का अच्छा समय प्रातःकाल है, यदि प्रातःकाल समय न मिले तो सायंकाल की जावें।

व्यायाम के बाद आराम

व्यायाम में शरीर को थोड़ा बहुत थकान अवश्य होता है; थोड़ी देर आराम करने से जैसे आराम कुर्सी या शैया पर लेटने से यह थकान दूर हो जाती है। व्यायाम के बाद हँसी दिल्लगी से भी थकान शीघ्र दूर हो जाती है।

मानसिक परिश्रम और व्यायाम

अधिक दिमाग़ी मेहनत करने के बाद इच्छा बल वाली कसरतें करना ठीक नहीं; घूमने, फिरने से कोई हानि नहीं; खेल कूद में भी कुछ अधिक हर्ज नहीं। यदि मानसिक परिश्रम के बाद थोड़ी देर आराम करके व्यायाम किया जावे तो शरीर को अधिक लाभ पहुँचता है। व्यायाम के बाद ही अध्ययन करना ठीक नही क्योंकि पढ़ने लिखने में ध्यान ही न लगेगा; जब थकान दूर हो जावे तभी पढ़ना लिखना चाहिये।

व्यायाम और शरीर की मालिश

चाहे किसी प्रकार का व्यायाम क्यों न हो, बदन की मालिश (बिना तेल के) थकान को शीघ्र दूर करती है, और शरीर को लाभ भी पहुँचती है।

चित्र ३४२ कबड्डी
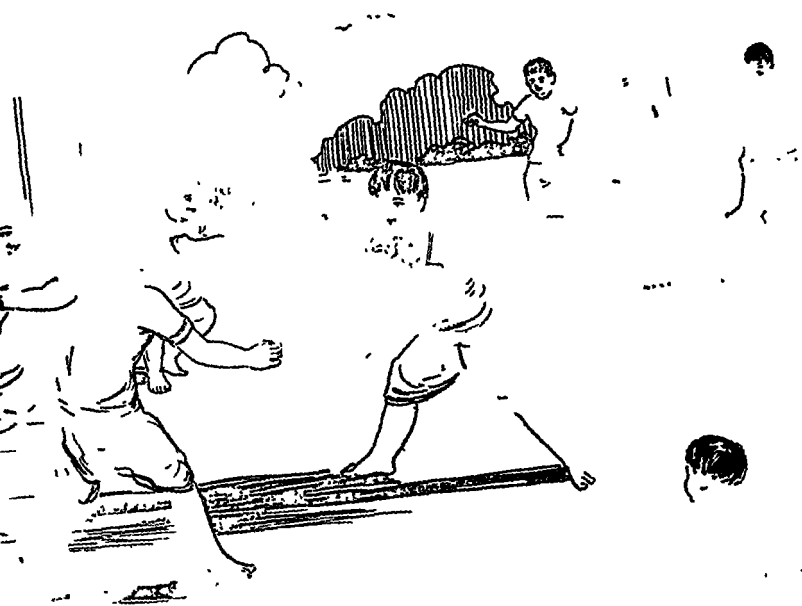
१. खेल कूद

१. कबड्डी—अत्यंत लाभ दायक है; इस का रिवाज आज कुछ कम है; पढ़े लिखे लोग इस को नहीं खेलते, क्यों खेलें ? वे तो

गुलाम हैं और नक़लची हैं; वे तो वही काम करना चाहते हैं जो उन के अफ़सर करते हैं। हमारी राय में यह खेल स्कूलों में खिलाना चाहिये। इस से समस्त शरीर की थोड़ी बहुत कसरत होती है। यह खेल थोड़े से स्थान में खेला जा सकता है और थोड़े से लड़के भी खेल सकते हैं।

२. फुटबाल, क्रिकेट, हौकी—ये सब बहादुरी के खेल हैं। इन के लिये बड़ा मैदान चाहिये और थोड़े व्यक्ति नहीं खेल सकते।

३. टेनिस—यह हलके खेलों में से है। शिक्षित और नौकरी पेशा वालों को पसंद है। एक ऐब यह है कि ज़रा महँगा खेल है। अच्छा रैकेट, अच्छी गेंदें और अच्छा कोर्ट—सभी में धन व्यय होता है। जिस को धन की पर्वाह न हो उन के लिये अच्छा व्यायाम है। भारत में रैकेट बनते हैं परन्तु रैकेट बनाने वाले लूटते हैं; यदि ये लोग कम नफ़ा लें तो कोई वजह नहीं कि सर्व साधारण इस खेल को क्यों न खेल सकें।

४. बैड मिन्टन—हलका खेल है; स्त्रियों के लिए और वृद्धों के लिये अच्छा खेल है। इस में अधिक खर्चा नहीं पड़ता। यदि इस की चिड़िया (शटल कौक) बनाने वाले ज़्यादा हो जावें तो कोई वजह नहीं कि एक अच्छी चिड़िया -), =) से अधिक क्यों बिकें। मैदान भी बहुत नहीं चाहिये।

५. गौल्फ—इस के लिये बड़ा मैदान चाहिये; आम तौर से एक साथ दो तीन चार व्यक्ति खेल सकते हैं। बहुत महँगा खेल है। हर मौसम में खेला भी नहीं जा सकता है। इस में इतनी ही कसरत होती है जितनी दो चार छः मील घूमने में; समय भी बहुत लगता

चित्र ३८२ ख
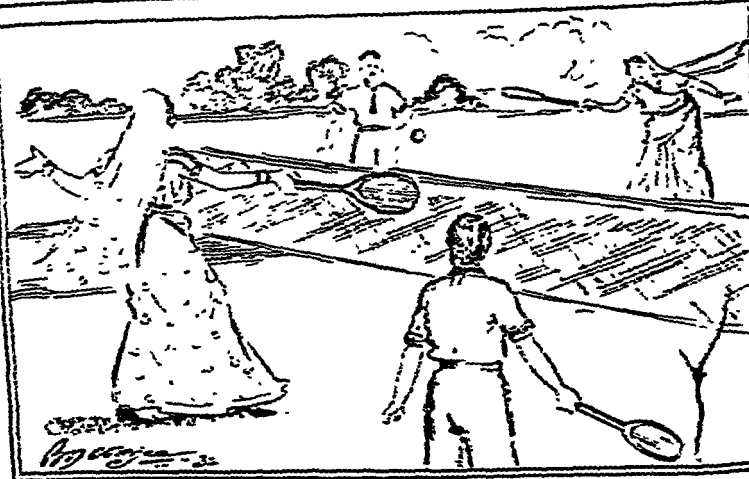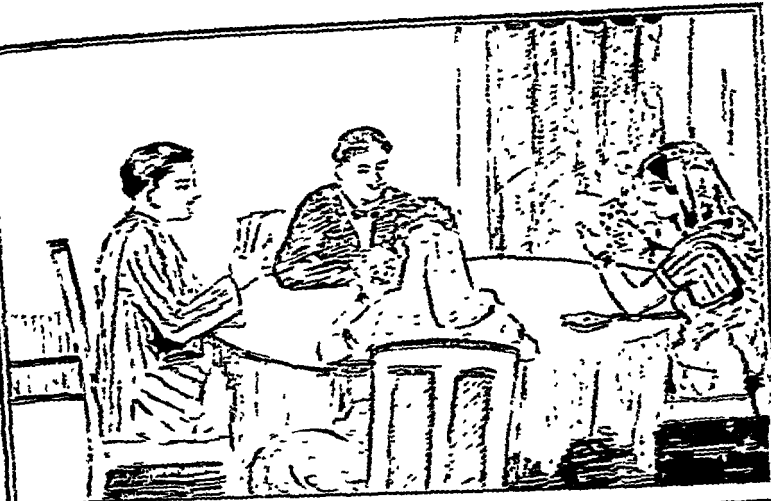
है। बहुत खर्चीला खेल है। जिनके पास धन और समय बहुत है उनके लिये अच्छा है।

२. कसरतें

ये सब कसरतें बिना डम्बेल के करनी चाहियें सब से अच्छा समय प्रातःकाल है। सब कसरतें करने की आवश्यकता नहीं है। १५-३० मिनट प्रतिदिन कसरत करना काफ़ी है। जो अंग कमज़ोर है उस पर अधिक ध्यान दो। यदि सांस फूलने लगे तो ज़रा सा आराम करने के बाद दूसरी कसरत आरंभ करो। कसरत करते समय हो सके तो एक शीशा अपने सामने रक्खो और अपनी पेशियों की गति को देखते जाओ।

ये सब कसरतें इच्छा बल द्वारा करनी चाहियें। याद रक्खो कि आप इनमें से बहुत सी कसरतें बीसों बार बहुत थके बिना कर सकते हैं यदि इच्छा बल से काम न लें और जल्दी जल्दी करें; परन्तु इच्छा बल से काम लेने से दो तीन के बाद ही थकान मालूम होने लगेगी।

एक प्रकार की कसरत करने के पीछे उस भाग को अपने ही हाथों से ज़रा मल लेना चाहिये इससे थकान शीघ्र दूर हो जाती है।

कसरत करते हुए नाक से ही साँस लेना चाहिये। जिस कमरे में कसरत की जावे उसकी खिड़कियाँ और किवाड़ सब खुले रहने चाहियें परन्तु शीत ऋतु में हवा के झोंके से बचना चाहिये और कसरत खतम करने पर शरीर को ढक लेना चाहिये या गर्म कपड़ा पहन लेना चाहिये। खड़ा इस प्रकार होना चाहिये कि दोनों ऐड़ियाँ मिली रहें, पंजे अलग अलग रहें; हाथ लटके रहें; सीना उभरा रहे, पेट दबा

चित्र ३४४ मांसल व्यक्ति

(Quain's Atlas)
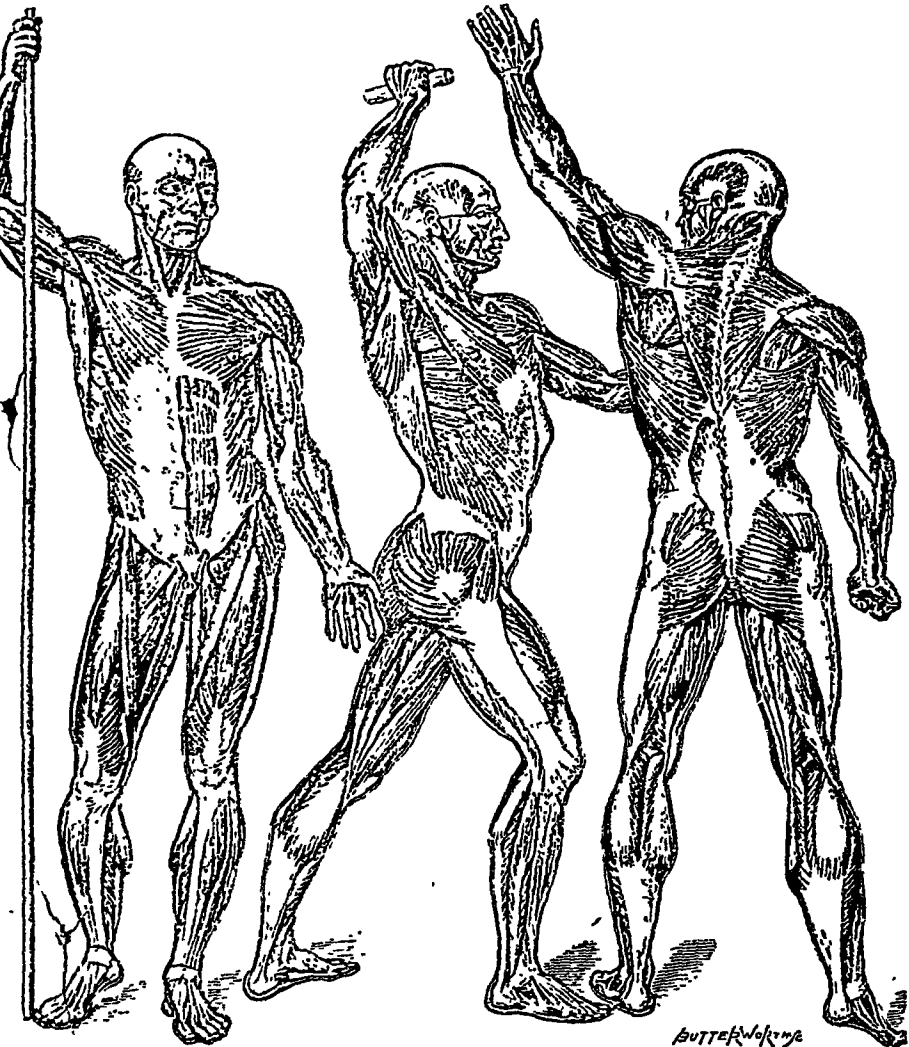
चित्र ३४५ पेशियाँ

१. ऊर्ध्व शाखा की कसरत (१) चित्र ३४७
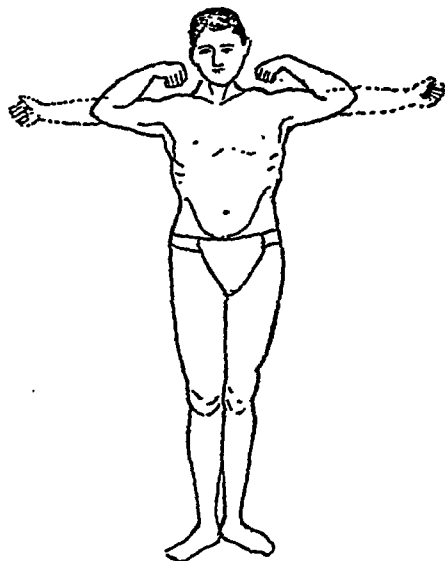
चित्र ३४७ चित्र ३४८
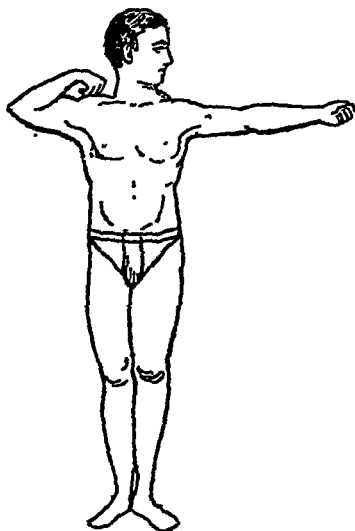
१. चित्र ३४६ की तरह खड़े हो।

२. दोनों हाथ सीधे अर्थात् धड़ से समकोण बनाकर फैलाओ।

३. अब दाहिनी ओर की कुहनी मोड़ो और शिर दूसरी ओर करो।

४. दाहिनी ओर की कुहनी को सीधा करो और जैसे उसको सीधा करते जाओ उसी प्रकार बाईं कुहनी को मोड़ते जाओ और शिर को दूसरी ओर मोड़ो।

ऊर्ध्व शाखा की कसरत (२) चित्र ३४८

(१) प्रथम स्थिति वही जो नं० १ में।

(२) दोनों ओर की कुहनी एक साथ मोड़ो और फिर धीरे धीरे एक साथ फैलाओ।

जब कुहनी मोड़ो मुट्ठी बंद करलो और जब हाथ फैलाओ मुट्ठी खोल दो। कसरतें बहुत धीरे धीरे करनी चाहियें; जल्दी जल्दी करने से कोई फ़ायदा नहीं। कसरत करते हुए लम्बे साँस भी लेते जाओ। पहले दिन दोनों प्रकार की दो दो कसरतें करना काफ़ी है; दूसरे दिन एक बढ़ा दो। इन दोनों कसरतों से भुजा की पेशियाँ मज़बूत होती हैं; गरदन घुमाने से गरदन की पेशियों पर भी ज़ोर पड़ता है; मुट्ठी बंद करने और खोलने से हाथ की पेशियों और प्रकोष्ठ की पेशियों पर भी कुछ ज़ोर पड़ता है।

ऊर्ध्व शाखा की कसरत २. (चित्र ३४९)

चित्र ३४९ चित्र ३५०
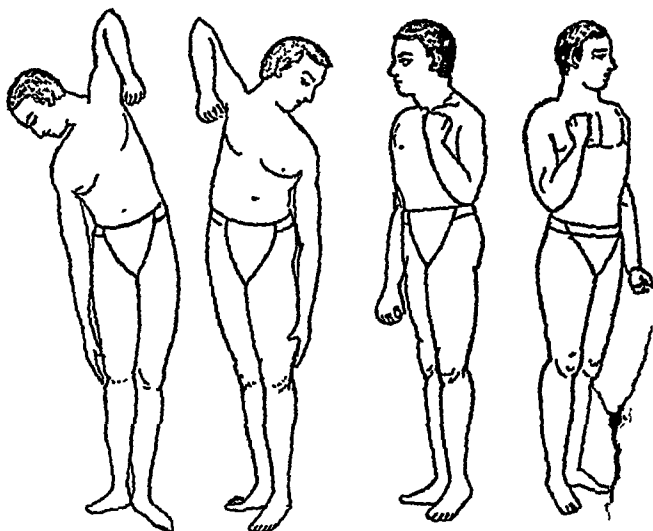
१. स्थिति १ में खड़े हो जाओ।

२. हाथ नीचे धड़ के पास लटके रहने दो।

३. दाहिनी बाहु धड़ के पास लगी रहे, कुहनी मोड़ो; जब प्रकोष्ठ ऊपर आवे तो मुट्ठी बंद करलो।

४. अब दाहिने प्रकोष्ठ को नीचे लाओ और बाईं कुहनी को मोड़ कर प्रकोष्ठ को ऊपर ले जाओ।

ऊर्ध्व शाखा की कसरत ४. (चित्र ३५०)

१. स्थिति १ में खड़े हो जाओ।

२. दाहिनी मुट्ठी बंद करो और कुहनी मोड़ते हुए मुट्ठी को दाहिनी बग़ल तक ले जाओ और धड़ को बाईं ओर को झुका दो और बायां हाथ घुटने की ओर ले जाओ।

३. अब शरीर सीधा करो और मुट्ठी खोल कर कुहनी को सीधा करो और धड़ को झुका कर हाथ दाहिने घुटने की ओर ले जाओ। साथ साथ बायीं कुहनी मोड़ो और मुट्ठी को बाईं बग़ल की ओर ले जाओ। इस तरह एक मुट्ठी ऊपर जाती है और दूसरा हाथ नीचे आता है। धड़ कभी एक ओर को झुकता है कभी दूसरी ओर को।

इन कसरतों से धड़ की पेशियों पर, प्रकोष्ठ और हाथ की पेशियों पर ज़ोर पड़ता है।

ऊर्ध्व शाखा की कसरत ५

ये कसरतें उसी प्रकार होती हैं जिस प्रकार ३,४; धड़ एक ओर को झुकाया जाता है। भेद इतना है कि मुट्ठी बंद नहीं की जाती।

चित्र २५१
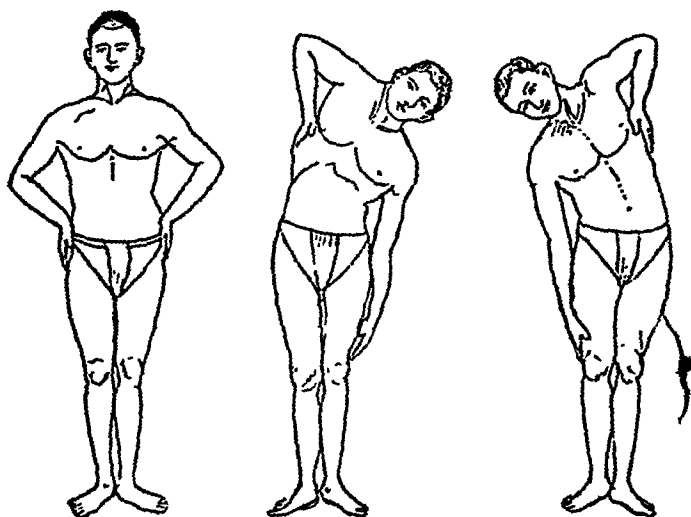
ऊर्ध्व शाखा की कसरत ६

१. स्थिति १ में खड़े हो जाओ।

२. दोनों भुजाएँ ऊपर चक्कर काट कर सिर के दाहिने बाएँ ले जाओ।

३. फिर उसी प्रकार चक्कर काट कर पहली स्थिति में ले जाओ। ऊपर ले जाते हुए गहरी साँस लो, नीचे लाते हुए साँस निकालो।

धड़, रीढ़ की कसरतें (चित्र २५२)

१. स्थिति १ में खड़े हो जाओ।

चित्र ३५२
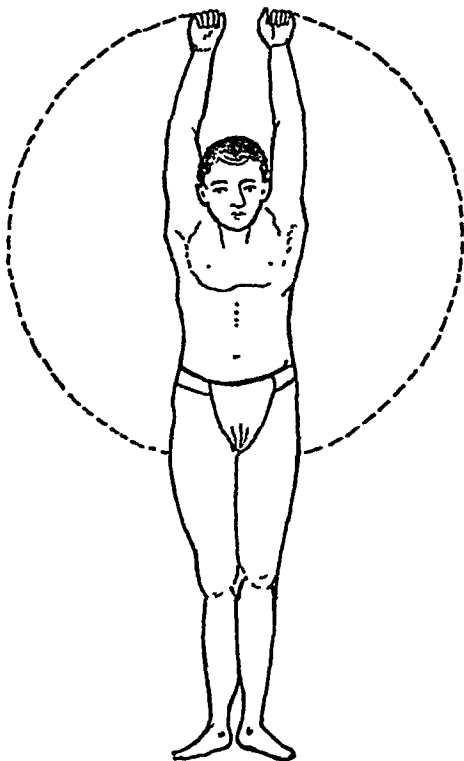
२. दोनों हाथ ऊपर सिर के बराबर ले जाओ और एक दूसरे को पकड़ लो ।

३. अब धड़ को कूल्हे पर से बाईं ओर मोड़ो ।

४. फिर पीछे को ।

५. फिर दाहिनी ओर ।

६. फिर सामने को ।

चित्र ३५२
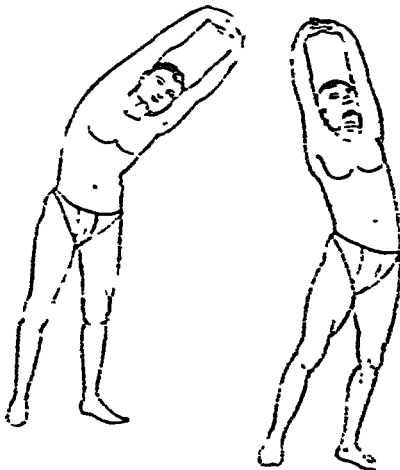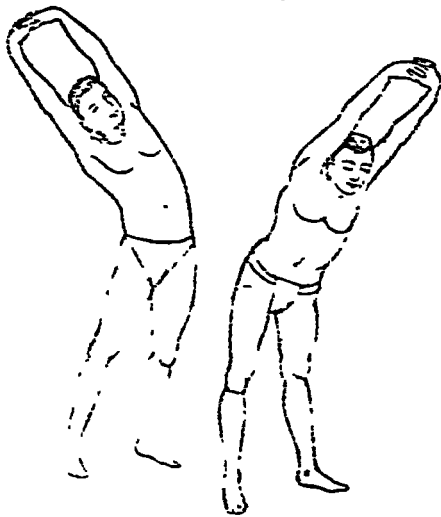
७. ३,४,५,६ सब एक दूसरे के पीछे इस प्रकार करो कि एक घेरा बन जावे। कमर न झुकनी चाहिये अर्थात् धड़ एक जैसा रहना चाहिये।

कन्धों और छाती की कसरतें (चित्र ३५४)

दो व्यक्ति चाहिऐं।

१. दोनों व्यक्ति आमने सामने खड़े हों।

२. दोनों व्यक्ति एक दूसरे के कन्धों पर अपने हाथ रक्खें।
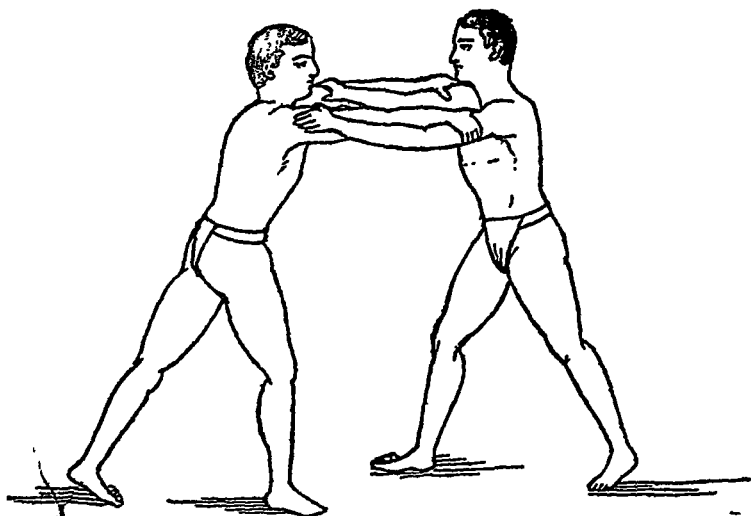
चित्र ३५४

३. अपना पूरा बल लगा कर एक दूसरे को पीछे को हटाने की कोशिश करो।

ऊर्ध्व शाखाओं और छाती की पेशियों की कसरत। एक पन्थ दो काज (चित्र ३५५)

हाथ की चक्की का पिसा आटा उत्तम होता है। अपना काम अपने आप करने में कोई शर्म न होनी चाहिये। खड़े हो कर चक्की पीसने में बैठ कर पीसने से अधिक कसरत होती है। चक्की कुछ देर

चित्र ३५५
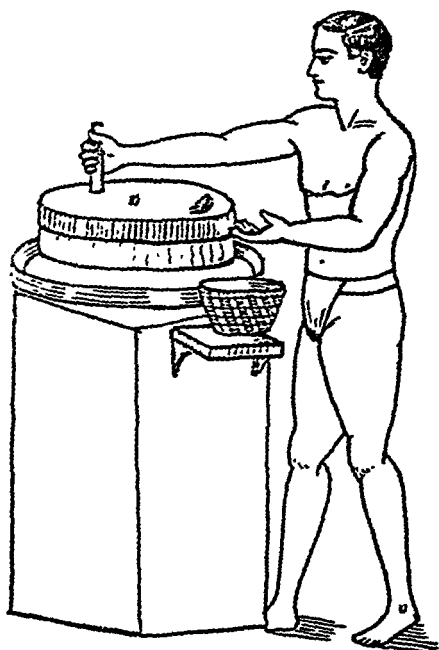
दाहिने हाथ से चलाओ, कुछ देर बाएँ हाथ से और कुछ देर दोनों हाथों से।

सीने और पेट की कसरतें

१. सीधे खड़े हो, हाथ कमर पर रक्खो और धड़ को दाहिनी ओर मोड़ो और फिर बाईं ओर मोड़ो। (चित्र ३५६)

२. (१) पैर अलग अलग रख कर खड़े होओ।
 (२) हाथ ऊपर सर के इधर उधर ले जाओ।
 (३) अब धीरे धीरे आगे को सम कोण बना कर झुको।
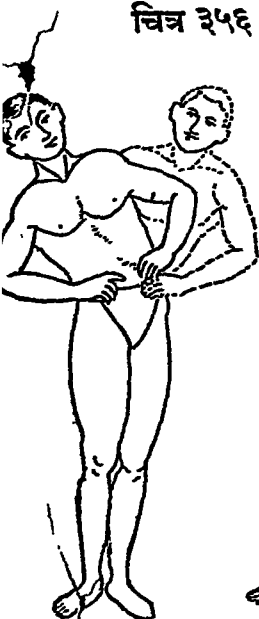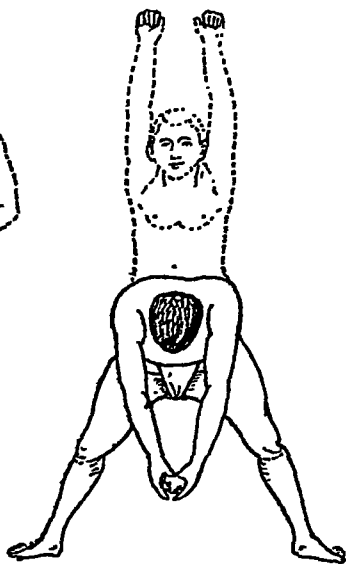
चित्र ३५६ चित्र ३५७ चित्र ३५८
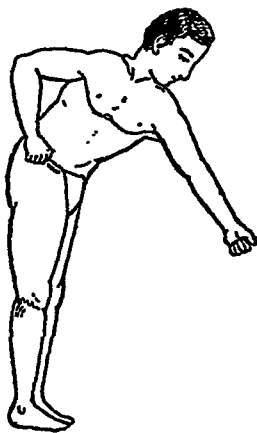
 (४) फिर धीरे धीरे सीधे खड़े हो जाओ। (चित्र ३५७)

३. (१) सीधे खड़े होओ।

(२) आगे को झुको और साथ साथ बायाँ हाथ आगे को ले जाओ मानो किसी को धक्का दे रहे हो।

(३) सीधे हो कर पहली स्थिति पर आ जाओ।

(४) फिर आगे को झुको, अब दाहिना हाथ आगे को ले जाओ। (चित्र ३५८)

डंड (चित्र ३५९)

चित्र ३५९
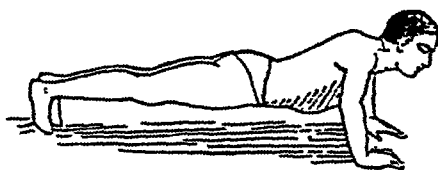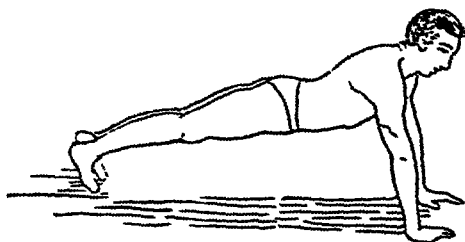
उचित विधि से करने से समस्त पेशियों पर ज़ोर पड़ता है। न करनी चाहिये; शरीर को धीरे धीरे नीचे लाना चाहिये।

१. भुजाओं के बल अपने शरीर को पृथिवी के समनांतर रक्खो।

२. शिर, धड़ और टाँगों को जहाँ तक हो सके एक लाइन में रक्खो।

३. अब कन्धों को और कुहनी को झुका कर समस्त शरीर को विना उस को कहीं से मोड़े पृथिवी के निकट लाओ।

४. फिर धीरे धीरे शरीर को, ऊपर उठाओ और फिर भुजा के बल सहारो। ठीक तौर से डंड करना कठिन काम है; इस लिये पहले पहले एक सहायक की आवश्यकता है।

पेट की और अधर शाखा की पेशियों की कसरतें

(१) चित्र ३६०

चित्र ३६०
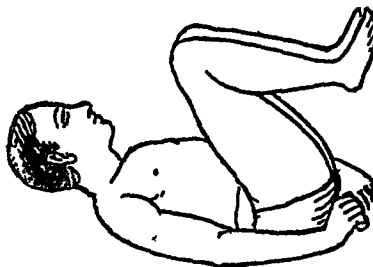
तख़्त पर या फर्श पर जिस पर दरी या चटाई बिछी हो चित लेट जाओ।

१. अपने हाथ या तो चूतड़ों के नीचे रख लो या जाँघों के पास।

२. टांग को मोड़ो और फिर जांघ को मोड़ कर पेट पर झुकाओ।

३. फिर झटके से समस्त अधर शाखा को सीधा करो।

४. इसी प्रकार दूसरी अधर शाखा से करो।

५. फिर दोनों अधः शाखाओं को इकट्ठा मोड़ो और फैलाओ (चित्र ३५५)

चित्र ३६१
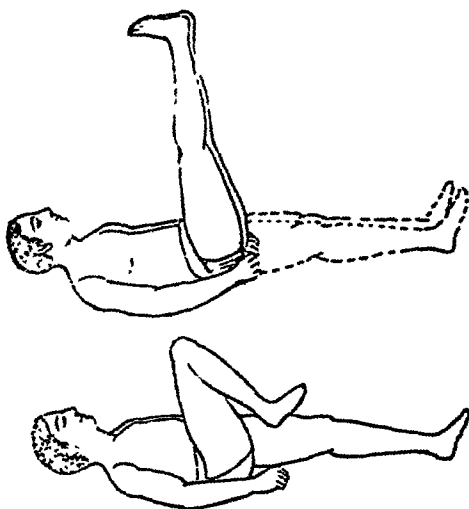
(२) चित्र ३६१

१. चित लेट जाओ।

२. दोनों अधः शाखाओं को ऊपर उठाओ और पेट के पास तक ला सको लाओ।

३. साथ साथ पेट की पेशियों को भी अकड़ाओ।

४. फिर दोनों शाखाओं को धीरे धीरे पहली अवस्था आओ। झटका मत दो और टाँगों को एक दम न गिराओ।

पेट की कसरतें (३) (चित्र ३६२)

चित्र ३६२
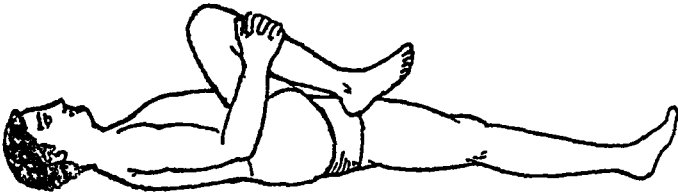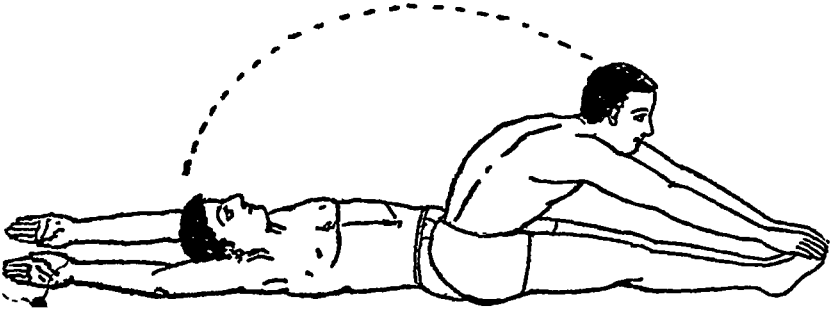
चित्र ३६३

१. ज़मीन या फर्श पर चित लेटो और हाथों को सिर के दाएं बाएं सीधा फैलाओ।

२. अब धड़ को सीधा रखते हुए उठो और हाथों से पैर की अंगुलियाँ पकड़ने की कोशिश करो।

३. जब उठो तो हाथ सर के साथ साथ सामने आने चाहियें।

४. यह कसरत कठिन है; इस लिये आरंभ में दूसरे व्यक्ति से सहाता लो।

पेट की कसरत (चित्र ३६३)

१. चित लेट जाओ और हाथ सीने में दाएं बाएं रक्खो।

२. दाहिना घुटना मोड़ो और फिर जाँघ को मोड़ कर पेट पर लाओ और उससे पेट को दबाओ।

३. दाहिनी टांग सीधी करो और फिर बायाँ घुटना मोड़ो और बाईं जाँघ को पेट पर लगाओ।

पेट और रीढ़ की कसरत (चित्र ३६४)

चित्र ३६४ चित्र ३६५ चित्र ३६६
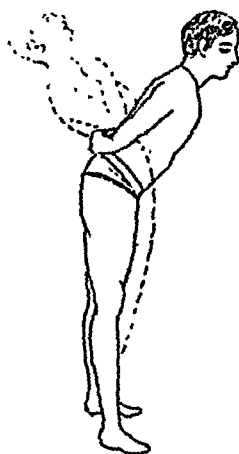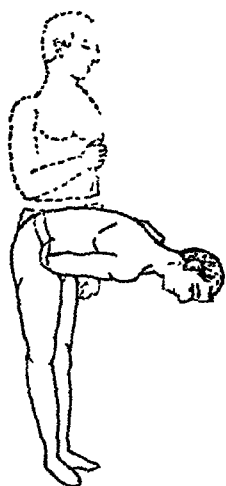
१. स्थिति १ में खड़े होओ।

२. आगे को समकोण बनाकर झुक जाओ।

३. अब पेट पर ऊपर से नीचे को और दाहिनी ओर से बाईं ओर को हाथ फेरो और पेशियों को मलो।

४. सीधे खड़े हो जाओ।

५. पीछे को झुको और सीने पर हाथ फेरो।

६. जब आगे को झुको तो कमर टेढ़ी न करो; धड़ कहीं से मुड़ना न चाहिये। सिर ऊपर को उठा लो।

पेट की कसरत (चित्र ३६५)

१. स्थिति १ में खड़े हो; पैर ज़रा अलग अलग रक्खो।

२. हाथ कूल्हों पर रक्खो।

३. आगे को झुको और फिर शीघ्र पीछे को झुको।

४. एक स्वांस में कोई तीन चार बार आगे झुको। और तीन चार बार पीछे झुको।

५. जब आगे झुको, कमर, कूल्हों पर हाथ पटकाओ और जब पीछे झुको सीने पर हाथ पटकाओ।

पेट की कसरत (चित्र ३६६)

यह एक प्रकार की बैठक है।

१. पैर ज़रा अलग अलग करके खड़े हो जाओ।

२. हाथ कमर पर रक्खो।

३. धीरे धीरे बैठो।

४. धीरे धीरे खड़े हो।

कसरतों के विषय में आवश्यक बातें

जितनी कसरतें ऊपर बतलाई गई हैं वे सब ध्यान लगाकर और

इच्छा बल की सहायता से करनी चाहियें। बिना ध्यान के वे ठीक न होंगी और बिना इच्छा बल के पेशियाँ उतनी मज़बूत न होंगी जितनी होनी चाहियें। आरंभ में ५ मिनट कसरत करो, धीरे धीरे बढ़ाओ। १५-२० मिनट कसरत करना स्वस्थ रहने के लिये काफ़ी है कसरत करते समय गहरी साँस लो; यदि हंपनी आने लगे तो बस करो। एक प्रकार की कसरत करके उस भाग को हाथों से ख़ूब रगड़ डालो। पेट और सीने की पेशियों को मज़बूत बनाने वाली कसरत जहाँ तक हो सके प्रति दिन करनी चाहिये (चित्र ३६० से ३६३ तक); पेट की कसरतें कब्ज़ को दूर करती हैं और हाज़मा ठीक रखती हैं।

उपरोक्त जितनी कसरतें हैं उनको स्त्री पुरुष दोनों ही कर सकते हैं; गर्भवती स्त्री को पेट की कसरतें और वह कसरतें जिन से पेट पर ज़ोर पड़े न करनी चाहियें।

चलना, दौड़ना

चलना भी एक कसरत है; यदि क़दम जमाकर और पैरों की पेशियों को सिकोड़ कर अर्थात् इच्छा बल लगा कर चला जावे तो चलना भी बहुत लाभदायक है। यदि आप का ध्यान चलने में न लगे तो आप बहुत देर बिना थके और पूरा लाभ उठाये चल सकते हैं; यदि ध्यानपूर्वक कसरत करने की नियत से चलें तो एक फर्लाङ्ग ही काफ़ी है।

दौड़ना अच्छी कसरत है; इसमें सभी अंगों पर ज़ोर पड़ता है। जिनको मोटा होने का रुझान है उनके लिये बहुत लाभदायक है।

कुश्ती

बहुत अच्छी कसरत है; दोष यह है कि इसमें दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता है।

तैरना; नाव खेना

दोनों बहुत अच्छी कसरतें हैं।

हठयोग; सूर्य्य नमस्कार

जो कुछ हमें हठयोग के विषय में मालूम है उससे हम कहने को तैयार हैं कि यह अच्छी चीज़ें हैं परन्तु इसकी साधना बिना अच्छे गुरु के न करनी चाहिये। केवल पुस्तक पढ़ने ही से काम नहीं चल सकता। जिनको शौक़ हो वे स्वामी कुवल्यानंद से पत्र व्यवहार करें। सूर्य्य नमस्कार की कसरतें भी लाभदायक हैं।

एक पन्थ दो काज वाली कसरतें

जिस परिश्रम से अपने आप को लाभ पहुँचे उसके करने में किसी को किंचित मात्र भी शर्म न करनी चाहिये। भारत की दुर्दशा का एक बड़ा कारण परिश्रम (मेहनत) को नीचों का काम समझना है; यह बड़ी भूल है और जब तक यह त्रुटि हमारे प्रतिदिन के व्यवहार से न निकल जावेगी स्वराज कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता।

कुएँ से पानी खींचना; अपने लिये आटा अपने आप पीसना; लकड़ी चीरना, बग़ीचे में फल फूल तरकारी बोने के लिये भूमि खोदना ये सब ऐसे काम हैं जिनके करने में किसी भी शिक्षित पुरुष स्त्री को ज़रा सी भी शर्म न आनी चाहिये।

स्त्रियों के घरेलू काम

आजकल की स्त्रियों की दशा बड़ी खराब है। बहुत पढ़ी लिखी स्त्रियाँ तो न इधर की न उधर की अर्थात् न वह बालक जनने के

काम की, न घर के काम करने के लायक। कुशिक्षा और स्वास्थ्य खराब होने के कारण अधिक शिक्षित स्त्रियों के हमल पूरे दिनों से पहले गि पड़ते हैं; घर का काम करने में शर्म आती है। नाविलों के पढ़ने से

चित्र २६७ घरेलू काम काज

चित्त चंचल हो जाता है; विना अनेक प्रकार से धन बरबाद किये इनको जीवन काटना कठिन हो जाता है।

यदि स्त्रियाँ घर ही का काम ध्यान से करें तो उनका स्वास्थ्य भी ठीक रहे और स्वराज भी शीघ्र मिले। मामूली काम जिनके करने में स्त्रियों को शर्म नहीं आनी चाहिये चित्र में दर्शाये गये हैं। इन कामों से उतनी कसरत तो नहीं होती जितनी होनी चाहिये फिर भी न होने से अच्छा है। चक्की पीसने से आटा खाद्योज सहित प्राप्त होगा और शरीर भी मज़बूत बनेगा; धान या कोई और चीज कूटना या छाटना, दाल पीसना, आटा गूँदना इन सभों में थोड़ी बहुत कसरत होती है। चरखा कातने में अधिक कसरत नहीं होती, वृद्धों के लिये अच्छा है।

नाच

असभ्य और सभ्य सभी क़ौमों में नाच का रिवाज रहा है और है। ईसाई सभ्यता में बहुत कम व्यक्ति, पुरुष हों या स्त्री, ऐसे होते हैं जिनको नाचना न आता हो। भारतवर्ष में भी पहले नाचने गाने का रिवाज बहुत था परन्तु यहाँ नाचना केवल स्त्रियों ही का काम समझा गया है, यहाँ पर नाटक, नौटंकी को छोड़कर पुरुष कभी नहीं नाचते। नाचना एक प्रकार की कसरत है इसमें कोई सन्देह नहीं; कसरत के साथ मनोरंजन भी इसमें मिला हुआ है। प्राचीन यूनान और रोम वाले भी नाचा करते थे। आजकल की असभ्य जातियाँ भी नाचती हैं (चित्र ३६९)। हमारे मत में स्त्रियों को और हो सके तो पुरुषों को भी नाचने की शिक्षा मिलनी चाहिये। क्यों नाचना व्यभिचार को बढ़ाता है ? हमारी सम्मति में यह आवश्यक नहीं। यदि व्यभिचार के लिये नाचा जावे तो व्यभिचार बढ़ेगा, यदि व्यायाम के लिये नाचा जावे तो व्यभिचार बढ़ने की कोई वजह

चित्र ३३८ प्राचीन (यूनान) नाच: ज़रा पोशाक पर ध्यान दीजिये

From a painting

चित्र ३६९ असभ्यों का (आजकल का) नाच

नहीं मालूम होती। यदि स्त्रियाँ पुरुषों के साथ न नाचें तो व्यभिचार का कोई डर ही नहीं।

सौन्दर्य (चित्र ३७०, ३७१)

असली सौन्दर्य उस समय आता है कि जब शरीर के सब अंग ठीक ठीक बनें ; यह न हो कि व्यक्ति लम्बा तो बहुत हो परन्तु हाथ पैर सींक जैसे पतले हों, कपड़े पहने तो मालूम हो जैसे कपड़े खूंटी पर टंगे हैं; चेहरा छोटा हो परन्तु नाक लम्बी हो; या चेहरा लम्बा हो और नाक बैठी हो; बड़ा शिर हो और आँखें छोटी सी, मालूम हो कि अंदर को घुसी जा रही हैं; क़द ठिगना हो और थोंद आगे को निकली हो मालूम हो कि वह सब घर का माल पेट में रक्खे फिरता है। जैसी लम्बाई हो वैसी ही मोटाई भी होनी चाहिये ; छाती (सीना) पेट (उदर) से कुछ उभरी होनी चाहिये। पेट फूला हुआ अर्थात् थोंद निकलना अस्वस्थता का चिह्न है। शरीर लम्बा है तो हाथ पैर भी मज़बूत होने चाहियें। कान, नाक, आँख, होठ इत्यादि शिर के आकार और परिमाण के अनुसार होने चाहियें। आम तौर से रूप (शकल, सूरत) का सम्बन्ध परंपरा से है अर्थात् स्वरूप और सुन्दर माता पिता की सन्तान आमतौर से स्वरूप और सुन्दर होती है। फिर भी कुछ हद तक हम उचित व्यायाम से और उचित शारीरिक स्थिति से अपने सौन्दर्य को बढ़ा सकते हैं। थोंदल बनना या न बनना या थोंद को कम करना हमारे बस में रहता है ; छाती को चौड़ा बनाना यह भी हमारे बस में है; उचित मालिश और व्यायाम से मुखड़ा भी सुन्दर बनाया जा सकता है। नकली सौन्दर्य वस्त्र धारण करने से और आभूषण पहनने से आता है परन्तु नक़ली चीज़ नक़ली ही है, आप इस प्रकार दूसरों

को धोखा दे सकते हैं सो भी हमेशा नहीं परन्तु स्वास्थ्य नहीं सँभाल सकते। असली सौन्दर्य्य का सम्बन्ध स्वास्थ्य से भी है।

सभ्य संसार में पुरुष स्त्री पर हावी रहता है; पुरुषों ने इस प्रकार के क़ानून बनाये हैं कि जिस से स्त्री नीची गिनी जाती है; स्त्री ने भी नीचा गिना जाना स्वयं ख़ुशी से स्वीकार किया है क्योंकि ऐसी अवस्था में उस को सब प्रकार के सुख बिना अधिक शारीरिक परिश्रम किये घर बैठे प्राप्त हो जाते हैं। पुरुष चाहे जितना कुरूप हो वह अपने लिये सुन्दर स्त्री ही ढूँढता है; स्त्री अपना सौन्दर्य्य बढ़ाने के लिये अनेक यत्न करती है; तरह तरह के वस्त्र धारण करती है और सोने चाँदी, मोतियों और भाँति भाँति के पत्थरों से बने आभूषण धारण करती है; इन चीज़ों से उस की सुन्दरता बढ़ती है और उसके शारीरिक दोष और कुरूपापन छिप जाते हैं; परिणाम यह होता है कि स्त्रियों को अपना असली सौंदर्य्य बढ़ाने का या उसको ठीक रखने की बहुत ज़रूरत नहीं मालूम होती है; उस को यह आवश्यक ही नहीं मालूम होता कि व्यायाम और अच्छा भोजन उस के लिये उतना ही आवश्यक है जितना पुरुष के लिये। असली सौंदर्य्य वह है जो नंगे शरीर को देखने से मालूम हो। केवल गोरे चमड़े पर ही सौंदर्य्य निर्भर नहीं है, यूरोप वाले गोरे होते हैं परन्तु लाखों स्त्रियाँ कुरूपा हैं; हबशी काले होते हैं परन्तु वहाँ सैकड़ों स्त्रियाँ सुन्दर मिलेंगी। रंग के अतिरिक्त सुडौलपन आवश्यक है, यदि शरीर सुडौल है अर्थात् सब अंग यथा परिमाण हैं तो काला व्यक्ति भी सुन्दरता में गोरे व्यक्ति से बाज़ी मार ले जायगा। प्राचीन ग्रीस (यूनान) निवासियों से ज़्यादा सुन्दरता की जाँच पड़ताल किसी और क़ौम ने नहीं की। ग्रीस और इटली के अजायबघरों में हज़ारों संगमरमर की मूर्तियाँ हैं जिस से ग्रीस वालों के विचार सुन्दरता के विषय में स्पष्ट रूप से मालूम होते हैं। उन के

हिसाब से स्त्री की सुन्दरता शरीर के अंगों के इस परिमाण में बनने से अत्यंत होती है (देखो चित्र ३७१):—

"यदि ऊँचाई ५ फुट ५ इंच हो तो भार १३८ पौंड हो। जब स्त्री ऊर्ध्व शाखा फैलाकर खड़ी हो तो दाहिनी मध्यमा अंगुली की नोक से बाईं मध्यमा अंगुली तक का नाप ५ फुट ५ इंच (अर्थात ऊँचाई के बराबर) होना चाहिये। हाथ की लम्बाई ऊँचाई के दसवें भाग के बराबर, पैर की लम्बाई ऊँचाई के सातवें भाग के बराबर और सीने की चौड़ाई ऊँचाई के पाँचवें भाग के बराबर होनी चाहिये सिर की चोटी से श्रोणि आधार (भग तक) तक का माप भग से पृथिवी तक (पैरों तक) के माप के बराबर होना चाहिये। घुटने ऐड़ी और भग के बीच में रहने चाहियें। कुहनी से कनिष्ठा अंगुली की नोक तक का माप कुहनी और छाती के मध्य तक के माप के बराबर होना चाहिये। सिर की चोटी से ठुड्डी तक का माप पैर की लम्बाई के बराबर होना चाहिये; और बग़ल और ठुड्डी में भी इतना ही अंतर रहना चाहिये। ५′ ५″ ऊँची स्त्री की कमर २९ इंच की होनी चाहिये सीने की परिधि यदि बाहु के नीचे से मापी जावे तो ३४ इंच, और यदि बाहु के ऊपर से मापी जावे तो ४२ इंच होनी चाहिये। बाहु की मोटाई १३ इंच और पहुँचे की मोटाई ६ इंच होनी चाहिये पिंडली १४½ इंच, जाँघ २५ इंच और टखना ८ इंच का होना चाहिये।"* (चित्र ३७१)

सुन्दरता कैसे प्राप्त हो सकती है

१. परंपरा से

*Galbraith's Personal Hygiene and Physical Training for Women.

२. बचपन में ठीक वर्धन होने से

३. यथोचित व्यायाम से

४. प्रसन्न चित्त रहने से

५. नियमानुसार स्वस्थतादायक भोजन खाने से

६. ठीक समय पर सोने से

७. कुस्थिति में न चलने और न बैठने से

उपरोक्त सब बातों से असली सुन्दरता प्राप्त होती है। वस्त्र और आभूषण सुन्दरता को बढ़ा सकते हैं और दोषों को थोड़े समय के लिये छिपा सकते हैं।

आभूषण

जिसे सूरत खुदा ने दी उसे क्या दरकार ज़ेवर की

जिस के पास धन है वह अपनी शोभा और सुन्दरता भाँति भाँति के आभूषण पहन कर बढ़ा सकता है। ये आभूषण हलके होने चाहियें। भारी आभूषण जैसे कि बहुत सी स्त्रियाँ पहना करती हैं अत्यंत हानिकारक हैं; वे कैदियों की बेड़ियों और हथकड़ियों के समान हैं। संभव है पुरुषों ने स्त्रियों को अपने बस में रखने के लिये ही भारी आभूषणों का रिवाज निकाला है; जिस ज़माने में रेल, मोटर, हवाई जहाज़ न थे उस ज़माने में वे भारी आभूषण स्त्रियों को चोरी छिपे से अपने पति को छोड़ कर भाग जाने में रोकते होंगे; आजकल ये कोई रुकावट नहीं डाल सकते, स्त्री चाहे झट रेल द्वारा कहीं भाग जा सकती है। आजकल भारी आभूषणों की आवश्यकता नहीं है। चित्र ३७९ में ३,४ से विदित है कि पैरों के भारी कड़े और रमझोल इत्यादि और कैदियों की बेड़ी और जंज़ीर में कोई विशेष भेद नहीं, एक चीज़ चाँदी (या बड़े धनियों में सोने की) की है दूसरी लोहे की। इस
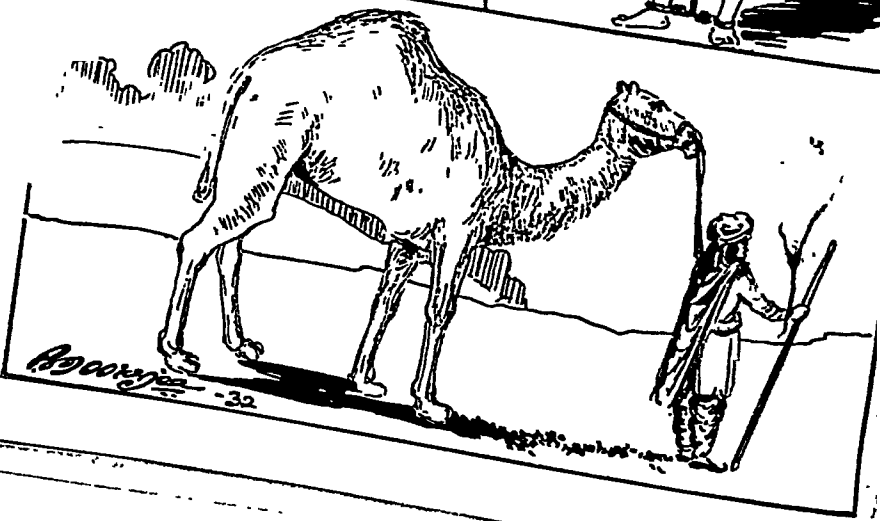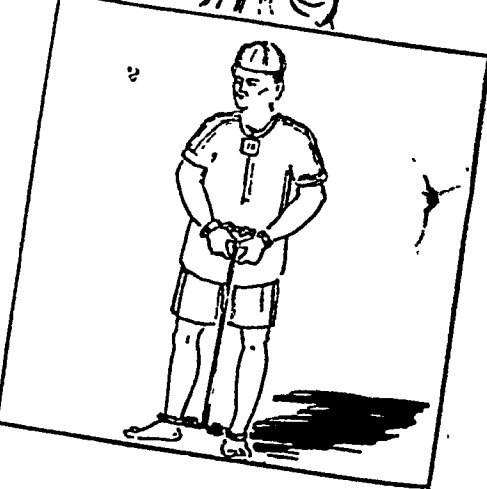
प्रकार पहुँचे पर पहने जाने वाले कड़ों और चूड़ियों और कैदी की हथकड़ियों में कोई विशेष भेद नहीं। कैदियों के गले में पहले लोहे का तौक़ था हँसली डाली जाती थी—इस में और स्त्रियों की हँसली में क्या भेद है? स्त्रियाँ तो कैदियों से भी बढ़ गईं—नाक में नथ पहनती हैं, कानों को विंधवाकर बदसूरत बनाती हैं और उन में बाली, वाले, कर्णफूल लटकाकर उन की बदसूरती मिटाने का यत्न करती हैं। हमारी राय में औरतों की नथ तो ऊँट की नकेल की भाँति है। नकेल से ऊँट क़ाबू में रहता है। संभव है स्त्री को क़ाबू में रखने के लिये ही पुरुषों ने उनके नाक बींधने और उसमें नथ पहनाने की तरकीब निकाली है। (चित्र ३७२ में ५) याद रखने की बात यह है "जिसे सूरत खुदा ने दी, उसे नहीं दर्कार ज़ेवर की।" मैं मानता हूँ कि आभूषण धन को अपने पास रखने की एक विधि है; आप शौक़ से रखिये परन्तु अंगों को न बिगाड़िये। क्या आप को विंधे हुए कान, विंधी हुई नाक बिना विंधे हुए कान, नाक से अच्छे लगते हैं? यदि लगते हैं तो क्षमा कीजिये आप को यही नहीं मालूम कि सुन्दरता कहते किसे हैं। यदि शोभा बढ़ाने के लिये आभूषण पहनने हों तो सोने और जवाहरात के आभूषण जो हलके होते हैं पहनो, क्या दो सेर चार सेर चाँदी पैरों पर लादे बिना आपकी शोभा नहीं बढ़ सकती?

घूँघट, बुर्का और परदा (चित्र ३७२ में १,२)

विरोधी लिंग वाले व्यक्ति एक दूसरे से मिलना चाहते हैं यह एक प्राकृतिक नियम है। प्रेम अर्थात् विरोधी लिंग वाले व्यक्ति को अपने वश में करने और उससे आनंद भोगने की चेष्टा अधिकतर मुख देख कर ही पैदा होती है। मुख ही ऐसा भाग है जिसको आँख, नाक,

कान, मुँह के कारण कोई व्यक्ति उस तरह नहीं ढक सकता जिस तरह पैरों या पेट या छाती या जननेन्द्रियों को ढक लेना है। कुमारियाँ घूँघट नहीं निकालतीं, इससे विदित है कि घूँघट का मुख्य अभिप्राय यह है कि विवाहित स्त्री को दूसरा पुरुष न हथियाले। हमारी राय में अभी तक कोई प्रमाण इस बात का नहीं है कि केवल घूँघट के कारण घूँघट करने वाली जातियों में लैंगिक व्यवहार घूँघट नहीं निकालने वाली जातियों की अपेक्षा अधिक पवित्र होता हो। यदि यह बात ठीक है तो घूँघट निकालने की कोई आवश्यकता नहीं। याद रक्खो कि ज्ञानेन्द्रियां बिना आत्मरक्षा भली प्रकार नहीं हो सकती, जब आँखें ढकी हैं घोड़े की तरह जिधर हाँकने वाला चलावेगा उधर चलना पड़ेगा। इस तरह के लिये मानो कि पुरुषों को स्त्रियों पर नज़र टपकाने का अवसर नहीं मिलता, स्त्री थोड़ा बहुत तो पुरुषों की ओर देख ही सकती है, यदि वह किसी व्यक्ति को पसंद करेगी तो उसको कौन रोक सकता है? इस बात का तात्पर्य यह है कि जिस मतलब के लिये घूँघट काढा जाता है वह मतलब उससे पूरा नहीं हो सकता। अच्छी शिक्षा द्वारा आत्मिक और इच्छा बल बढ़ाना ही पति पत्नी के स्थायी प्रेम का एक मात्र इलाज है। यदि स्त्री को यह शिक्षा मिली है कि वह पर पुरुष से मेल न करे तो दूसरा पुरुष उसको किसी प्रकार भी नहीं बहका सकता; यदि उसकी शिक्षा अधूरी है और उसका इच्छा-बल कमज़ोर है तो चाहे जितने लम्बे घूँघट निकालिये सब व्यर्थ है।

जो कुछ हमने घूँघट के विषय में लिखा है वह बुर्के के विषय में भी घटता है। वास्तव में बात तो यह है कि जिस चीज़ को नहीं देखा या जो कम दिखाई देती है उसको देखने और प्राप्त करने की इच्छा हुआ करती है। जिस चीज़ को देख लिया और यह समझ गये कि यह हमको नहीं मिल सकती चाहे वह कितनी ही लुभावनी हो, उस

की ओर से ध्यान शीघ्र हट जाता है; आँखें ज़रा देर के लिये तर हो जाती हैं। यदि सभी विवाहित स्त्रियाँ विना घूँघट या बुर्क़े के चलें तो पुरुष किस किस पर नज़र डालेंगे; जो कुछ आप दूसरे की औरत से करना चाहते हैं वही दूसरे आप की औरत से करना चाहेंगे। यूरोप में न परदा है न घूँघट। सुन्दर स्त्रियाँ अपना रूप दिखा कर आपको प्रसन्न करती हैं; क्या आप हर एक सुन्दर विवाहित स्त्री के पीछे फिरते हैं या फिर सकते हैं? हमारी राय में घूँघट और बुर्क़े से व्यभि-चार में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, और इस कारण यह चीज़ें त्यागने योग्य हैं। टर्की से घूँघट और बुर्क़ा उड़ गया, क्या ये स्त्रियाँ अब व्यभिचारीणी हो गयीं? जिस स्त्री का पातिव्रत ज़रा से कपड़े के टुकड़े के होने से कायम रह सकता है और उसके न रहने से उसके टूटने की संभावना है मान लो कि उसका पातिव्रत कोई बढ़िया चीज़ नहीं है। कहाँ इच्छाबल और कहाँ ज़रा सा कपड़ा।

परदा भी बुरी चीज़ है; इससे स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। जब स्त्री मकान में बंद रहेगी वह इस संसार की बातों को क्या समझ सकती है। वह इस संग्राम-भूमि में प्रति दिन हार खावेगी। जो माता खुद संग्राम के ऊँच नीच नहीं समझती वह युद्ध करने योग्य सन्तान पैदा ही नहीं कर सकती। क्या सभी परदे में रहने वाली स्त्रियों का जीवन पवित्र है? नहीं। यहाँ भी आत्मिक बल का प्रश्न उठता है। घर में बंद रहने से स्वास्थ्य बिगड़ता है इस में कोई सन्देह ही नहीं।

अध्याय २६

मस्तिष्क सम्बन्धी कुछ आवश्यक ज्ञान

मस्तिष्क शरीर रूपी राज्य का राजा है और सभी अंग उसके आधीन हैं परन्तु जैसे और राजा अपनी रैयत की सहकारिता बिना राज्य नहीं कर सकते वह भी और अंगों की सहकारिता बिना ठीक ठीक राज्य नहीं कर सकता; इसी से यह होता है कि जब पाचन शक्ति बिगड़ जाती है, जब यकृत ठीक काम नहीं करता, जब कब्ज़ रहता है और आँतों में मल के सड़ने से अनेक प्रकार के विषैले पदार्थ बनते हैं; जब वृक्क और त्वचा और फुप्फुसों के रोगों के कारण रक्त अशुद्ध रहता है; जब हृदय कमज़ोरी के कारण ठीक समय पर रक्त की उचित मात्रा मस्तिष्क को नहीं दे सकता; या जब गर्भावस्था में माता का स्वास्थ्य खराब होता है तो मस्तिष्क का वर्द्धन ठीक नहीं होता और वह ठीक ठीक काम नहीं कर सकता।

जन्म के पश्चात् मस्तिष्क धीरे धीरे बढ़ता है और बड़ा होता जाता है। जिस प्रकार अच्छे राज्य में राज्य का सब काम विविध महकमों में बाँट दिया जाता है, इसी प्रकार मस्तिष्क के विविध भाग अलग अलग काम करते हैं। किसी भाग का सम्बन्ध दृष्टि से है; किसी

का श्रवण शक्ति से, किसी का दुख पीड़ा, गर्मी, सर्दी के ज्ञान से, किसी का काम पेशियों को गति देना है। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के केन्द्रों के अतिरिक्त मस्तिष्क में और बहुत सी बातों के केन्द्र हैं। मस्तिष्क मन का स्थान है। मन सम्बन्धी जितनी बातें हैं वे सब मस्तिष्क द्वारा होती हैं। विचार, अनुभव, निरीक्षण, ध्यान,

चित्र ३७२ मस्तिष्क के केन्द्र
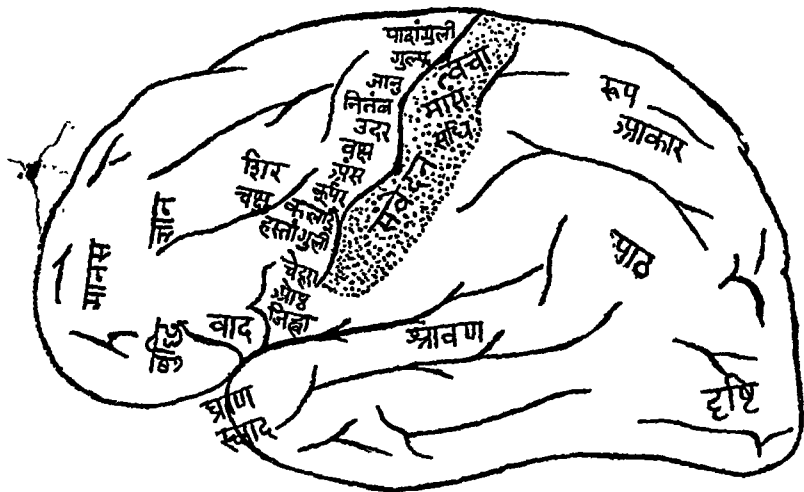
स्मृति, बुद्धि, ज्ञान, तर्क या विवेक ये सब मन के गुण हैं। अभी तक हम को मस्तिष्क के सब केन्द्रों का पता ठीक ठीक नहीं लगा और यह काम इतना कठिन है कि शायद कभी भी पूरा पता न लग सके; फिर भी अनेक विधियों से और रोगों में मस्तिष्क के विविध भागों के बिगड़ते हुए देखने से हम को मस्तिष्क के केन्द्रों के विषय में थोड़ा बहुत ज्ञान हो ही गया है। चित्र ३७२ में कुछ केन्द्र दिखाये गये हैं।

चित्र ३७४ स्वस्थ मनुष्य का मस्तिष्क

१=ललाट खंड, २=पार्श्विक खंड, ३=पश्चात् खंड, ४=शंख खंड

चित्र ३७४ एक स्वस्थ मनुष्य के मस्तिष्क का फोटो है। मस्तिष्क का अगला भाग अर्थात् वह भाग जो माथे में है ललाट खंड कहलाता है; (चित्र ३७४ में १) उसके पीछे पार्श्विक खंड है (चित्र ३७४ में २) और सब से पीछे पश्चात् खंड (चित्र ३७४ में ३) पार्श्विक खंड के नीचे शंख खंड (चित्र ३७४ में ४) है, यह भाग कानों के पास है।

चित्र ३७५ मूर्ख की खोपड़ी देखो ललाट; चित्र ३७६ से मुक़ाबला करो
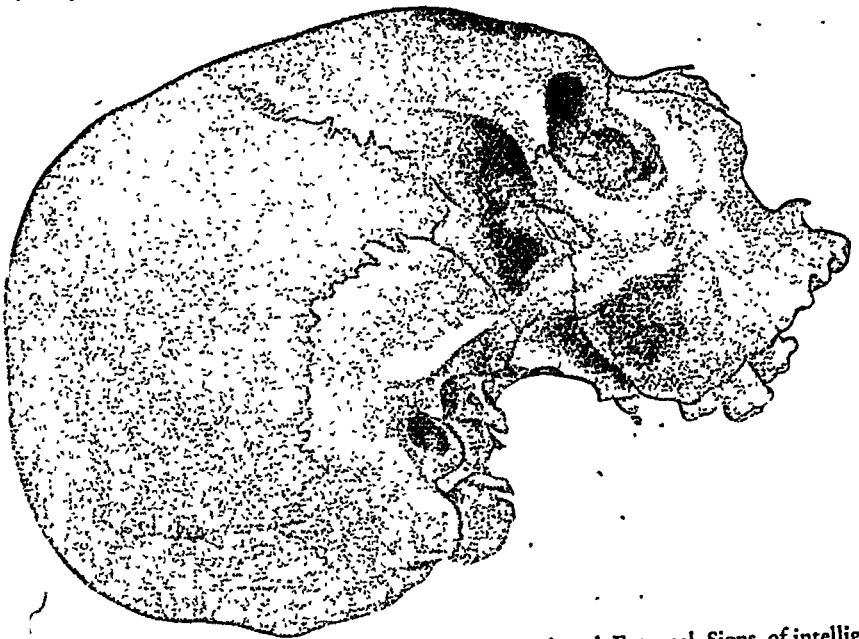
courtesy of Dr. Hollander from his "Brain, Mind and External Signs of intelligence

चित्र ३७६ स्वस्थ मनुष्य की खोपड़ी

संधि

पार्श्विकास्थि

संधि

संधि

पश्चात्‌ ...स्थि

शङ्खास्थि

गोस्तनक प्रवर्द्धन

कर्णवहिद्वार

गंडास्थि

ललाटास्थि

जतूकास्थि

नासास्थि

अश्रवस्थि

ऊर्ध्वहनु
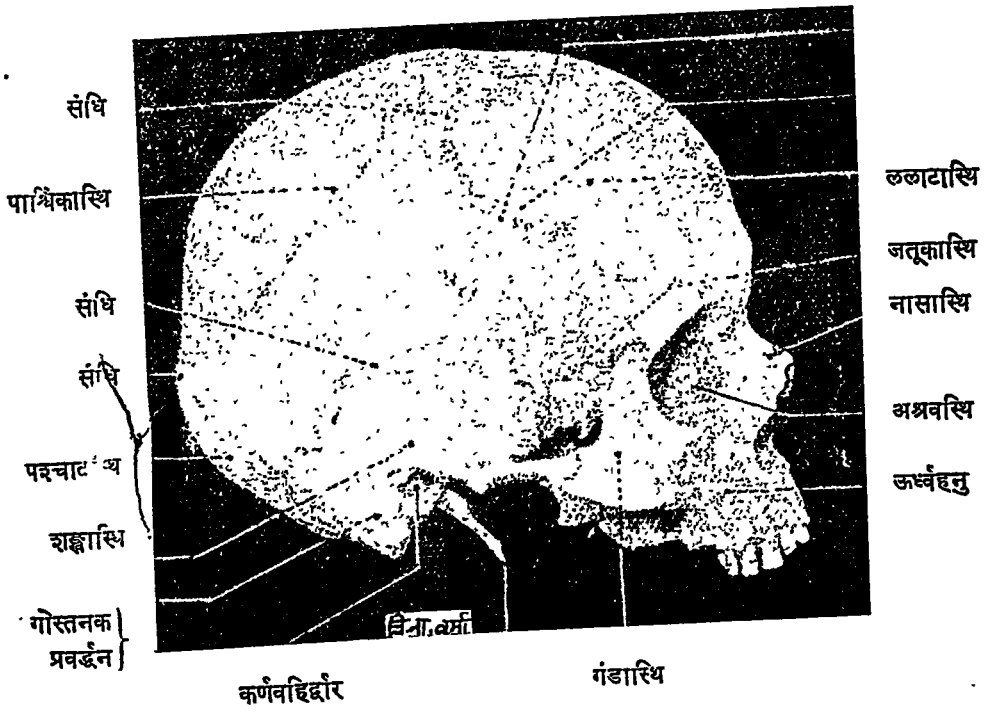
ललाट खंड (चित्र ३११)

अर्थात् मस्तिष्क का अगला भाग बुद्धि, स्मृति, विवेक, निरीक्षण, ध्यान, विचार का स्थान है। यही कारण है कि बड़े बड़े ज्ञानी और बुद्धिमान मनुष्यों का ललाट चौड़ा और ऊँचा होता है। बुद्धि, विचार, ज्ञान द्वारा ही हम अपने कामों पर कब्ज़ा रखते हैं अर्थात् जिस काम को हम ठीक समझते हैं उस को करते हैं, जिस को बुरा समझते हैं उस को नहीं करते; जब ललाट खंड में रोग उत्पन्न होता है तो बुरे भले का ज्ञान नहीं रहता। कभी कभी पैदायशी तौर से ललाट खंड भली प्रकार नहीं बनता, ऐसे व्यक्ति मूर्ख होते हैं (चित्र ३७५,३७७)

चित्र ३७७ मूर्ख का मस्तिष्क; देखो ललाट खंड

y courtesy of Dr. Hollander from his "Brain, Mind and external signs of intelligence"

माथा कम चौड़ा और नीचा और खोपड़ी का अगला भाग दबा हुआ होता है। (चित्र ३७५) जब ललाट खंड खूब बड़े होते हैं तो ऐसे व्यक्ति में दम और इन्द्रियजय भी बहुत होता है और वे अधिक आत्मिक बल रखते हैं और धर्मात्मा और पवित्र जीवन वाले होते हैं।

पार्श्विक खंड

का अनैच्छिक नाड़ी मंडल से सम्बन्ध है (ललाट खंड का ऐच्छिक नाड़ी मंडल से सम्बन्ध है); संवेदन के केन्द्र इसी भाग में हैं। इस खंड का भय से भी सम्बन्ध है। पार्श्विक खंड के रोग में व्यक्ति वहमी और चिंताशील हो जाता है; उस की तबियत गिरी रहती है, जीवन भारी मालूम होता है, और कई प्रकार के भ्रम सताते हैं। ऐसे रोगी आत्म-हत्या भी कर लेते हैं।

शंख खंड

का क्रोध और कोप से सम्बन्ध मालूम होता है। इस खंड के रोगों में व्यक्ति क्रोध में आकर बकवास करने लगता है और परहत्या भी कर डालता है। शंख खंड और पार्श्विक खंड का शंका से भी सम्बन्ध है। रोगी को कई प्रकार के भ्रम भी सताते हैं।

पश्चात् खंड

पश्चात् खंड का दृष्टि से सम्बन्ध रहने के अतिरिक्त प्यार, मुहब्बत से भी सम्बन्ध है। यह खंड स्त्रियों में पुरुषों से बड़ा होता है, इसी कारण उनमें प्रेम, दया अधिक होती है।

खोपड़ी की बनावट का मस्तिष्क की रचना से सम्बन्ध

खोपड़ी मस्तिष्क की रक्षा के लिये एक डिब्बा है। उसकी आकृति मस्तिष्क की आकृति के अनुसार ही होती है, इसलिये खोपड़ी को

चित्र ३७८ आत्म हत्या

इस व्यक्ति ने अपना गला काट कर आत्म-हत्या करनी चाही।
हम ने नली द्वारा दूध पिला कर उस की जान बचाई

देखकर बहुत कुछ इस बात का पता लग सकता है कि उसके अन्दर रहने वाला मस्तिष्क किस प्रकार का है अर्थात् उसके किस खंड का वर्धन कम है और किस का अधिक। यदि छानबीन भली प्रकार की जावे

तो व्यक्ति की बुद्धि, प्रकृति और चाल चलन का कुछ अनुमान किया जा सकता है। (चित्र ३७५, ३७६, ३७७)

मस्तिष्क और खोपड़ी का परिमाण

मस्तिष्क का सामान्य भार पुरुषों में १३६३ माशे और स्त्रियों में १२६० माशे होता है। मस्तिष्क का भार व्यक्ति की समस्त मन शक्ति को वतलाता है; उसका बुद्धि से विशेष सम्वन्ध नहीं है क्योंकि वहुत वड़े वड़े बुद्धिमानों के मस्तिष्क का भार कभी कभी सामान्य से भी कम पाया गया है और वेवकूफों और पागलों के मस्तिष्क का भार सामान्य से अधिक। यह हो सकता है कि मस्तिष्क का भार कम न हो और फिर भी व्यक्ति बुद्धिहीन हो क्योंकि बुद्धि का सम्वन्ध तो ललाट खंडों से है; और सव भाग अच्छे हों केवल ललाट खंड अच्छे न हों। इसी प्रकार छोटे मस्तिष्क वाला भी वहुत बुद्धिमान हो सकता है यदि उसके ललाट खंड का वर्धन अच्छा हुआ हो; ऐसे व्यक्ति में शेष भाग भली प्रकार न वने होंगे इस कारण मस्तिष्क छोटा रह जाता है। दूसरी वात यह है कि मस्तिष्क की सूक्ष्म रचना पर भी बुद्धिका दारोमदार है; जिस मस्तिष्क में खाइयां (सीताएँ) गहरी होंगी उसमें अधिक सैलें भी होंगी और जितनी अधिक सैलें होंगी उतनी ही अधिक बुद्धि इत्यादि गुण भी उस मस्तिष्क वाले में होंगे। खोपड़ी (सिर) का घेरा सामान्यतः पुरुषों में २२½ इंच और स्त्रियों में २१½ इंच होता है। नाक की जड़ से गुद्दी के उभार तक चोटी के ऊपर होकर खोपड़ी का माप सामान्यतः १४ इंच होता है। यदि माप इनसे वहुत कम हो तो मस्तिष्क की रचना में कुछ न कुछ कमी अवश्य है।

यदि शिर की परिधि १८—१८½ इंच हो तो व्यक्ति में मामूली
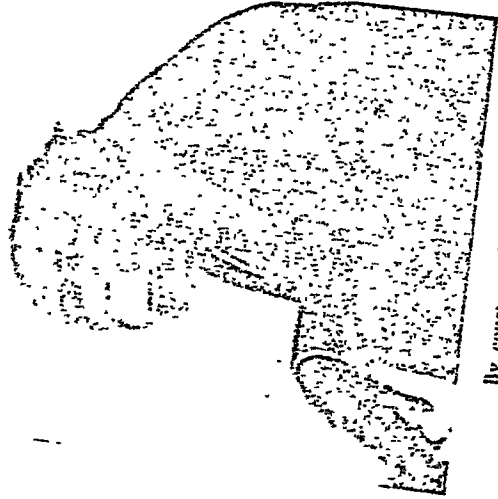
बुद्धि हो सकती है परन्तु उसके चरित्र में बहुत सी त्रुटियाँ मिलने की संभावना है।

जब परिधि १४–१७ इंच के लगभग हो और लम्बाई (नाक से गुद्दी तक) ११–१२ इंच हो और वैसे आकृति में कोई दोष न हो अर्थात् सब

चित्र ३८१ शाहदौला का चूहा (मूर्ख)
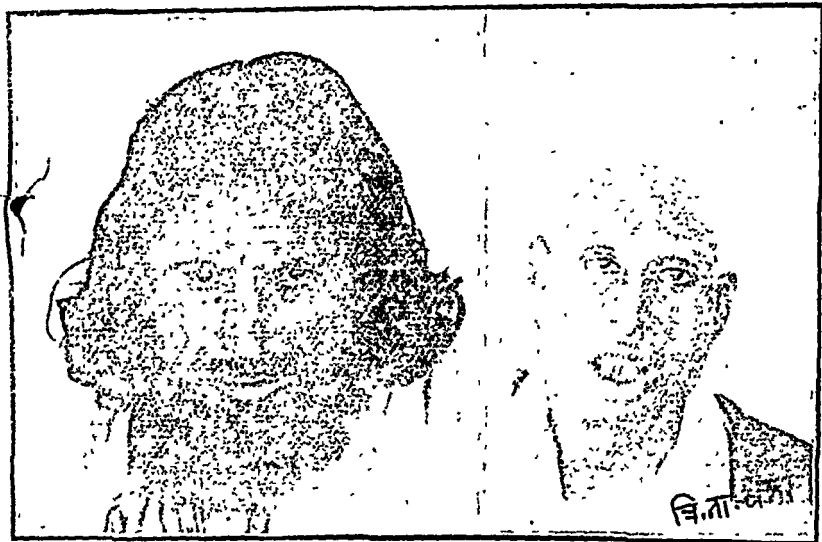
पंजाब में एक जगह है जहाँ इस प्रकार के छोटे सिर वाले व्यक्ति रहते हैं। बाएं हाथ उसके संरक्षक का चित्र है। जिस प्रकार रीछ वाला या बंदर वाला रीछ या बंदर द्वारा अपनी जीविका कमाता है उसी प्रकार यह धूर्त इस मूर्ख को नगर नगर में ले जाकर पैसा कमाता है। इस मूर्ख को बोलना भी अच्छी तरह नहीं आता; वह कुछ इशारे समझता है। पंजाब में ये लोग शाहदौला के चूहे कहलाते हैं।

भाग बराबर ही छोटे हों तो जितना छोटा मस्तिष्क है उसी हिसाब से उसमें बुद्धि भी कम होगी और मन की अन्य शक्तियाँ भी कम होंगी।

११-१२ इंच की परिधि और ८-९ इंच की लम्बाई वाले सिर में केवल अत्यंत मूर्खों का ही मस्तिष्क समा सकता है।

मस्तिष्क और स्वभाव

मस्तिष्क के विविध भागों के कार्य्य भिन्न भिन्न हैं। सब व्यक्तियों में सब भाग एक ही जैसे नहीं होते हैं; यह हो सकता है और होता है कि किसी व्यक्ति में कोई खंड विशेष तौर से अधिक बड़ा और सामान्य से अधिक विचित्र रचना वाला हो और दूसरे व्यक्ति में दूसरा भाग। किसी व्यक्ति में ललाट खंड बड़ा होता है और इसके बड़े होने से सिर का अगला भाग अर्थात् कानों के सामने का भाग अधिक विशाल और उभरा रहता है। किसी में पाश्चात्य खंड बड़ा होता है और सिर का पिछला भाग बड़ा होता है जैसे स्त्रियों में। किसी में शंख खंड बड़े होते हैं और सिर का वह भाग जो कान के ऊपर है बड़ा और उभरा हुआ होता है। कभी कभी पार्श्व खंड बड़े होते हैं और कानों के ऊपर का भाग उभरा होता है। मस्तिष्क की बनावट और उसके विविध भागों के छोटे और बड़े होने से मनुष्य के चारित्र्य और स्वभाव भी भिन्न भिन्न होते हैं। ललाट खंड का बुद्धि, पाश्चात्य खंड का प्रेम, पार्श्विक खंड का भय और शंख खंड का क्रोध से सम्बन्ध है। ललाट खंड के बिगड़ने से बकवासी पागलपन और मूर्खपन, पार्श्विक खंड के बिगड़ने से वहम और चिंताशीलता, शंख खंड के बिगड़ने से उन्माद (पागलपन Acute Mania जब रोगी बकता झकता है और तोड़ फोड़ करता है और मारने पीटने को तैयार हो जाता है)।

जो खंड किसी में अधिक बड़ा है उसी के हिसाब से व्यक्ति का स्वभाव बनता है।

शिक्षा, संगत, चोट और रोगों का मस्तिष्क पर प्रभाव

जन्म के पश्चात् ज्यों ज्यों शिशु बढ़ता है और बातें सीखता है त्यों त्यों उस का मस्तिष्क बड़ा होता जाता है। यदि शिक्षा ठीक ठीक न हो तो मस्तिष्क के बहुत से केन्द्र बढ़ ही नहीं पाते। वैज्ञानिकों का विचार है कि मस्तिष्क ४० वर्ष की आयु तक बढ़ता रहता है। जैसी संगत में मनुष्य रहता है उसी प्रकार के प्रभाव उसके मस्तिष्क पर पड़ते हैं। परंपरा का भी मस्तिष्क की बनावट पर बहुत असर पड़ता है। सामान्यतः हर एक व्यक्ति के मस्तिष्क में सभी प्रकार के केन्द्र होते हैं। अच्छी शिक्षा से किसी में इनका वर्द्धन भली प्रकार होता है; कुशिक्षा से या शिक्षा के अभाव से ये छोटे ही रह जाते हैं। संसार में देखा जाता है कि कभी कभी मामूली या नीचे खानदान में अत्यंत विचार शाली और बुद्धिमान व्यक्ति भी पैदा हो जाते हैं। संसार के सब बड़े मनुष्य धनी और शिक्षित खानदानों में पैदा नहीं होते। इसका कारण यह है कि मस्तिष्क के बढ़ने की शक्ति सभी व्यक्ति में कुछ न कुछ रहती है, जिसको अवसर मिलता है वह बढ़ जाता है, जिसको अवसर नहीं मिलता वह नहीं बढ़ पाता। बहुत से अशिक्षित मनुष्य ऐसे देखने में आते हैं कि वे बड़े बड़े काम कर डालते हैं, इनके मस्तिष्क में केन्द्र हैं; यदि इन लोगों को उचित शिक्षा मिलती तो ये लोग और भी बड़े बड़े काम करते। इस सब का तात्पर्य्य यह है कि भारतवर्ष में शिक्षा सब को मिलनी चाहिये; कोई मनुष्य पैदायशी नीच नहीं है; हर एक मस्तिष्क में सब प्रकार की शक्तियाँ कुछ न कुछ मौजूद हैं।

संगत का असर मस्तिष्क के वर्द्धन पर बहुत पड़ता है यह सभी जानते हैं। शिक्षित खानदान में थोड़ी ही आयु में बालक को बहुत सी बातों का वह ज्ञान हो जाता है जो कम शिक्षित खानदानों में कई वर्ष अधिक आयु में होता है। जिस घर में केवल पिता ही शिक्षित है और माता नहीं वहाँ बालक का ज्ञान उतनी शीघ्रता से नहीं बढ़ता जितना कि उस घर में जहाँ दोनों (माता पिता) शिक्षित हैं; इस लिए मस्तिष्क के वर्द्धन के लिये यह अच्छा है कि माता पिता दोनों ही शिक्षित हों। भारत की दुर्दशा का एक कारण माताओं का अशिक्षित और अज्ञानी होना है।

चित्र ३८२ महाशय शनिश्चर का है। इस बालक को भेड़िया उठा ले गया। यह बालक बहुत वर्षों तक भेड़िये की ग़ार में पला। इसको

चित्र ३८२ संगत का प्रभाव
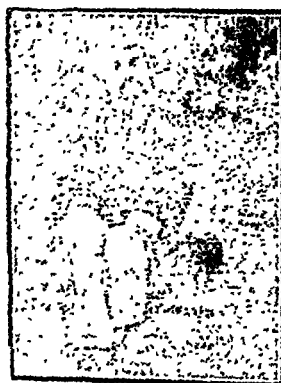
Photo by Prof. Culverwell of Dublin

यह मनुष्य भेड़िये की ग़ार में पला था इसका नाम 'शनिश्चर' था

बोलना चालना कुछ न आता था। मनुष्य तो जैसा देखता है वैसा ही करता है। इस व्यक्ति की शकल से मूर्खता टपकती है। इसके मस्तिष्क का ठीक तौर से वर्द्धन ही नहीं हुआ।

रोगों का भी मस्तिष्क की बढ़ौत पर बहुत असर पड़ता है; बालकपन में मस्तिष्क के प्रदाह से कई भागों का वर्द्धन रुक जाता है। ज्वरों के बाद या चोट लगने से मस्तिष्क को हानि पहुँच सकती है; स्त्रियों को कभी कभी बच्चा जनने के समय पागलपन हो जाता है। कभी कभी विशेप स्थान पर चोट लगने से विशेप शक्तियाँ जाती रहती हैं, चित्त वृत्तियाँ बदल जाती हैं। जो आदमी पहले अच्छा भला था वह अब वहमी हो जाता है चाल-चलन बदल जाता है; जो पहले सत्यवादी था वह फिर मक्कार और झूठा हो जाता है।

चोर, उचक्के, डाकू, आत्महत्या करने वाले, परहत्या करने वाले, झूठ बोलने वाले व अन्य और प्रकारों के अपराधी यदि ठीक जाँच की जावे तो पता लगेगा कि इनके मस्तिष्क में रोग है या पैदायशी बनावट ही असामान्य है। यही कारण है कि बाज़ा अपराधी १० बार जेलखाने में जाने के बाद भी वही अपराध फिर करता है। उसके मस्तिष्क में दोप है; वह लाचार है; उसमें बुद्धि ही नहीं; वह बुरे और भले कामों में पहचान ही नहीं कर सकता। आजकल बहुत से काम "जिसकी लाठी उसकी भैंस" के वसूल पर किये जाते हैं। यदि बजाये जेलखाने में भेजे जाने के इन अपराधियों का इलाज किया जाता तो अच्छा होता क्योंकि सत्य तो यह है कि कुछ अपराधियों को छोड़ कर अधिक अपराधियों के मस्तिष्क में रोग होता है या उनके मस्तिष्क की बनावट ही खराब है।

मस्तिष्क का [illegible] वर्द्धन कैसे हो सकता है

१. माता पिता [illegible], स्वास्थ्य से।

२. उत्तम शिक्षा [illegible]।

३. मदिरा, भंग, [illegible] का प्रयोग न करने से।

४. रक्त को [illegible] से

५. आवश्यक [illegible],

६. बचपन के [illegible] उचित चिकित्सा करने से।

मस्तिष्क के रोग

इन रोगों का [illegible] साधारण के लिये जिनके लिये यह पुस्तक लिखी गई है कठिन है इसलिये हम इनका वर्णन न करेंगे। दो चार [illegible] इस विषय को समाप्त करेंगे।

१. [illegible] मूर्खता—चुल्लिका ग्रन्थि के अभाव से या कम रस बनाने से उत्पन्न होती है। (देखो पीछे)

२. पागलपन—अलकोहल, भंग, कोकीन वा अन्य नशों का पागलपन से घनिष्ट सम्बन्ध है। पागलपन पैदायशी तौर पर मस्तिष्क की बनावट में दोष होने से, या अन्य रोगों के विषों के प्रभाव से (तेज़ ज्वर, आतशक, निद्रालु, मस्तिष्क प्रदाह, इन्फ्लुएंज़ा, अतिनिद्रा रोग, प्रसूत रोग) या मस्तिष्क पर चोट लगने से भी होता है।

३. वहम—अधिक मानसिक परिश्रम, रंज और फिक्र और कृमिका, बदहज़मी जिससे आंतों में विष बनें, और मज़हब इसके मुख्य कारण हैं।

४. हिस्टीरिया—यह स्त्रियों का रोग है; पुरुषों को बहुत कम

होता है। मस्तिष्क की रचना में दोष होता है जो कुशिक्षा से बढ़ जाता है। यह एक विचित्र रोग है, अनेक प्रकार के लक्षण दिखाई देते हैं। यह वही रोग है जिसे भूत चुड़ैल सिर आना कहते हैं। कभी रोगी बिना कारण के हँसने लगता है; कभी रोने लगता है; कभी बेहोश हो जाता है; कभी बोलना बंद हो जाता है; कभी ऐसा होता है कि भोजन नहीं निगला जाता, या अंगों की गति जाती रहती है, रोगी का हाथ नहीं उठता या पैर नहीं उठता। कभी पेट में गोला सा उठता है। जब बेहोशी होती है तो रोगी घंटों अचेत पड़ा रहता है और फिर अपने आप होश में आजाता है; कभी हिचकी आती है और घन्टों तक आती रहती है। पहले समझा जाता था कि शायद गर्भाशय की खराबी से यह रोग होता हो; यह अकसर देखा गया है कि बालक होने के बाद रोग जाता रहता है; विपरीत इस के रोग कभी कभी बालक होने के बाद आरंभ होता है। कभी कभी रोग, ४०-४५ वर्ष की स्त्रियों को भी होता है। इस रोग में अनेक प्रकार के दर्द भी हुआ करते हैं। मामूली दर्द औषधियों से अच्छे हो जाते हैं, हिस्टीरिया के दर्द नहीं अच्छे होते और जब अच्छे होते हैं तो आनन फानन में ज़रा सी दवा से या केवल हाथ फेर देने से या केवल बातचीत करने से ही अच्छे हो जाते हैं।

चिकित्सा—औषधियों द्वारा इस रोग की चिकित्सा नहीं हो सकती। इस की चिकित्सा विशेष प्रकार की परिचर्या से की जाती है। कुछ विधियाँ हैं जिन से मस्तिष्क पर प्रभाव डाला जा सकता है— अंगरेज़ी में इस को साइको अनेलिसिस (Psycho-analysis) कहते हैं। हिपनोटिज़्म (Hypnotism) से भी रोग अच्छा हो सकता है। कुशिक्षा को दूर करने की और ठीक शिक्षा देने की भी आवश्यकता है।

५. पक्षाघात—मस्तिष्क का सम्बन्ध अन्य अंगों से (जैसे त्वचा,

मांस से) नाड़ियों द्वारा है। नाड़ियां शरीर में वही काम करती हैं जैसे बिजली के तार। नाड़ियों द्वारा मस्तिष्क को परिस्थिति का ज्ञान होता है; नाड़ियों द्वारा मस्तिष्क शरीर के विविध भागों को आज्ञा देता है। जब हम हाथ उठाना चाहते हैं तो पेशियों को मस्तिष्क की आज्ञा नाड़ियों द्वारा ही आती है; जब हमारी त्वचा में सुई चुभती है तो इस की सूचना (दर्द रूप में) मस्तिष्क को नाड़ियों द्वारा ही पहुँचती है। रोगों द्वारा मस्तिष्क खुद बिगड़ सकता है जिस के कारण वह न आज्ञा दे सके न सूचना ग्रहण कर सके; यह हो सकता है कि मस्तिष्क ठीक हो और नाड़ियां बिगड़ जावें जिससे यह होगा की सूचना न पहुँच सके या मस्तिष्क की आज्ञा विशेष अंग तक न जा सके। मस्तिष्क में रक्त वाहिनियों के फट जाने से या रक्त जम जाने से या किसी प्रकार रक्त का बहाव बंद हो जाने से मस्तिष्क का वह भाग खराब हो जाता है या नाड़ियों के सूत्र टूट जाते हैं; तब यह होता है कि वह अंग जिस का सम्बन्ध मस्तिष्क से टूट गया है मुर्दा सा हो जाता है; उस में इच्छानुसार गति नहीं होती; उसके द्वारा गर्मी सर्दी का ज्ञान भी नहीं हो पाता। कभी कभी आधा धड़ बेकाम हो जाता है; आधा चेहरा काम नहीं करता, एक हाथ और एक पैर बे हिस और हरकत हो जाता है। इसे अर्द्धाङ्ग या पक्षाघात कहते हैं। कभी कभी केवल मुख पर या एक हाथ पर या एक पैर पर या दोनों पैरों पर असर पड़ता है। अपनी इच्छा से हम उस मारे हुए अंग की पेशियों को संकोच नहीं कर सकते। इसी को फालिज पड़ना कहते हैं। फालिज का असर मस्तिष्क के किसी भाग पर पड़ सकता है; मस्तिष्क के बाएँ भाग में बोलने का केन्द्र है; यदि बाएँ भाग पर असर पड़े तो व्यक्ति बात चीत नहीं कर सकता। फालिज का असर ऐसा भी हो सकता है कि मनुष्य आपा भूल जावे। हम ने देखा है

कि जो लोग तीन तीन भाषाएँ जानते हैं वे फालिज पड़ने के बाद सब कुछ भूल गये मालूम होता था कि उन्होंने कभी कुछ पढ़ा ही नहीं। नये सिरे से "अ आ" सिखाना पड़ा। फालिज से कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है।

चित्र ३८३ लकवा

चित्र ३८४ लकवा
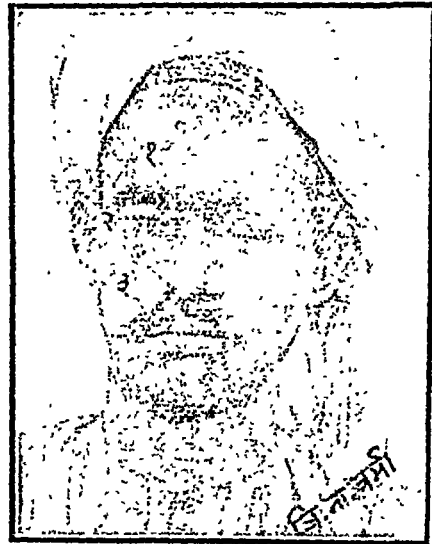
यह चित्र मस्तिष्क की सप्तमी नाड़ी के आघात का है। यही नाड़ी चेहरे की गतियों से सम्बन्ध रखती है। दाहिनी ओर फालिज पड़ा है। जब यह रोगी तेवड़ी चढ़ाना चाहता है तो बाईं ओर माथे में झुर्रियां पड़ती हैं दाहिनी ओर नहीं पड़तीं; जब यह आँख बंद करता है तो दाहिनी आँख कुछ खुली रहती है; जब यह भोजन चबाता है तो दाहिने गाल में भोजन रुका रह जाता है; जब वह सीटी बजाता है तो दाहिनी ओर का गाल संकोच करता है बाईं ओर का नहीं।

कभी कभी केवल नाड़ियाँ ही बिगड़ जाती हैं। चेहरे की जो नाड़ी है उसके बिगड़ जाने से आधे चेहरे की गतियाँ जाती रहती हैं (देखो चित्र ३८३, ३८४)

चित्र ३८५ देखें दाहिनी बाहु (अंग आघात)
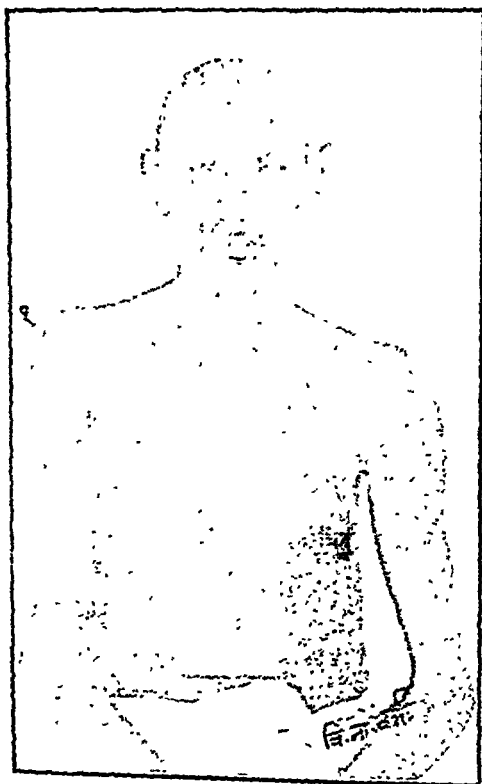
नाड़ी आघात से दाहिनी बाहु पतली पड़ गई है

पक्षाघात या नाड़ी आघात के बाद पेशियाँ पतली पड़ जाती हैं और वह अंग दुबला हो जाता है। जब पक्षाघात बचपन में होता है तो उसका असर (जैसे अंग का पतला पड़ जाना) उम्र भर रहता है (देखो चित्र २८५)

पक्षाघात और अंग आघात के कारण

पक्षाघात का एक बड़ा कारण आतशक है; हृदय और वृक्क के रोगों से भी पक्षाघात हो जाता है। अधिक रक्त भार से मस्तिष्क की सूक्ष्म रक्तवाहिनियाँ फट जाती हैं। बचपन में एक विशेष प्रकार का रोगाणुजनक पक्षाघात होता है। अनेक प्रकार के विष जैसे अल-कोहल, सीसा, संखिया नाड़ियों को बिगाड़ते हैं। नाड़ियों में चोट लगने या उनके कट जाने से भी अंगाघात हो जाते हैं।

मस्तिष्क, भ्रम, मज़हब (मत)

मज़हब ही सिखाता है आपस में वैर रखना
बुद्धिमान हैं वह लोग जो मज़हब नहीं रखते

निरीक्षण, विवेक, बोध, ध्यान इत्यादि ये मन के गुण हैं; इन्हीं सब के एकत्रित होने से बुद्धि बनती है। जो बात जैसी है उसको वैसा न समझना या उसको ग़लत समझना बुद्धिहीनता का लक्षण है जो ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त होता है उसको ठीक तौर पर अनुभव करना मस्तिष्क का काम है; जब मस्तिष्क ठीक तौर पर अनुभव नहीं करता तो मस्तिष्क में कोई दोष अवश्य है। रस्सी को साँप समझना, कपड़े टँगे हों और यह समझना कि आदमी खड़ा है; गाने बजाने वाला और बाजा कोई न हो और आप को अनेक प्रकार के गाने सुनाई दें; आप के सामने कोई न खड़ा हो फिर भी आप व्यक्ति

को देखें और उससे बात करें; आप किसी व्यक्ति की अनुपस्थिति में यह देखें और समझें कि कोई आप पर आक्रमण कर रहा है और यह देख कर रोने, चिल्लाने लगें और ढेले और ईंट उठा कर इधर उधर फेंकने लगें—जब कोई व्यक्ति ऐसी ऐसी बातें करता है या अनुभव करता है तो कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति का दिमाग़ बिगड़ गया है अर्थात् वह व्यक्ति पागल है और उसको भ्रम हो गया है। चाँद के सामने अँगुली की और आप और आप के चेले समझने लगे कि चाँद के दो टुकड़े हो गये; बच्चे ने मुँह खोला और आप को समस्त ब्रह्माण्ड नज़र आया। आप के पास एक पैसा नहीं, फिर भी आप अपने आप को करोड़पति समझें; दरिद्र होते हुए भी व्यक्ति अपने आप को चक्रवर्ती राजा समझे; जो बातें प्राकृतिक नियमों के अनुसार असंभव हैं उन को आप संभव समझें; मनुष्य की लिखी पुस्तकों को खुदा या ईश्वर का वाक्य समझें और जो कुछ उन में लिखा हो उस को बिना निरीक्षण और विवेक के सत्य मानें चाहे उन में ऐसी बातें हों जो प्रकृति के विरुद्ध हैं—ये और इसी प्रकार की और बातें मस्तिष्क के दोषों के लक्षण हैं। इस प्रकार के दोष कुशिक्षा, अल्प ज्ञान या अज्ञान से उत्पन्न होते हैं; मस्तिष्क के रोगों से या मस्तिष्क की कुरचना से भी हो जाते हैं; नशीली चीज़ों जैसे अलकोहल, भंग, गाँजा, धतूरा से भी हो सकते हैं; हिपनॉटिज़्म के प्रभाव से भी इस प्रकार की कुछ बातें हो सकती हैं।

इस संसार में मनुष्य को अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं; भाँति भाँति के क्लेशों और कष्टों का ठीक कारण न समझ कर लोग उन से बचने के उपाय सोचते चले आये हैं; सृष्टि के आरंभ से अनेक सिद्धान्त निकाले गये। समय समय पर इन सिद्धांतों के खंडन और मंडन होते चले आये हैं। मज़हबों की उत्पत्ति ऐसे ही हुई। विज्ञान की दृष्टि से जाँच पड़ताल की जाती है तो मज़हबों में बहुत सी बातें ऐसी मिलती

हैं जैसी कि हम ऊपर बतला आये हैं—बिना बाप के (बिना मैथुन) गर्भ ठहरना; मुर्दों का आक़बत के वक्त ज़िन्दा हो जाना; चाँद के दो टुकड़े हो जाना; ज़रा सी देर में बहिश्त की सैर कर आना; किसी व्यक्ति या शक्ति की उपासना और पूजन से दुखों का दूर हो जाना और पैदा होने और मरने के झंझटों से छूट कर मुक्ति प्राप्त कर लेना; मिट्टी या पत्थर या धातु की मूर्ति को ईश्वर मान लेना; किसी व्यक्ति को परमात्मा का दूत, या एकलौता पुत्र समझ बैठना और जो कुछ वह कहे या करे उस को सोलह आने सत्य समझना—इस प्रकार की बातों को कोई व्यक्ति जिस के मस्तिष्क में रोग नहीं है मानने को तैयार नहीं हो सकता यदि वह अपनी मन की समस्त शक्तियों से काम ले।

क्या मज़हब भी मस्तिष्क का एक रोग है?

हाँ, मज़हब भी मस्तिष्क का एक रोग हो सकता है जब उस में ऐसी बातें हों कि जो निरीक्षण, विवेक इत्यादि मन की शक्तियों से असत्य मालूम हों और जो आत्म-रक्षा और स्वजाति-रक्षा में बाधा डालें। अब तक जितने मज़हब चलाये गये हैं उन सभों में इस प्रकार की बातें हैं; इस कारण मज़हब एक प्रकार का रोग है। जैसे प्लेग, हैज़ा, इन्फ्लुएँज़ा इत्यादि रोगों की वबा फैलती है वैसे मज़हब की भी वबा फैलती है। वबा से लाखों व्यक्ति मर जाते हैं; क्या इतिहास साक्षी नहीं है कि जब कभी नये मज़हब की वबा फैली लाखों व्यक्तियों को दुख हुआ या मारे गये। क्या आजकल मज़हब नामक रोग से सैकड़ों हिन्दू मुसलमान नहीं मरते। जिस प्रकार वबा कभी कभी ज़ोर करती है और फिर कुछ समय के लिये शांत हो जाती है; उसी प्रकार मज़हब की वबा भी कभी कभी ज़ोर करती है (जैसे मुहर्रम, दशहरा, ईद इत्यादि के अवसरों पर)।

क्या हम पैदा होते समय मज़हब को अपने साथ लाते हैं ?

नहीं। यदि ईसाई का नवजात बच्चा हिन्दू के घर में पले तो वह ईसाई न बनेगा; वह हिन्दू रहेगा। इसी प्रकार यदि हिन्दू का नवजात बालक मुसलमान के घर में पले तो वह मुसलमान बनेगा; मुसलमान का बालक हिन्दू के घर में पलने से हिन्दू ही रहेगा। इस से यह बात स्पष्ट है कि हम मज़हब को अपने साथ नहीं लाते; मज़हब शिक्षा और परिस्थित से उत्पन्न होता है; यदि यह बात न होती तो हिन्दू से मुसलमान और मुसलमान से ईसाई कैसे कोई बन सकता। मुसलमान का बच्चा मुसलमान बनता है क्योंकि उस के माता पिता बचपन ही से उस को विशेष प्रकार की शिक्षा देते हैं; हिन्दू का बच्चा हिन्दू होता है क्योंकि उस के माता पिता उस को विशेष प्रकार की शिक्षा देते हैं।

मज़हब रोग की चिकित्सा

मनन शक्ति से काम लो; प्रत्येक बात का निरीक्षण करो; जो बात निरीक्षण, विवेक, अनुभव से ठीक मालूम हो उस ही को सत्य जानो; जिस बात को ज्ञानेन्द्रियाँ ठीक समझें उस को करो; जो बातें आत्म-रक्षा और स्वजाति रक्षा में सहायक हों उन को करो; लकीर के फकीर न बनो; भ्रमजाल में न फँसो; ज्ञान बढ़ाओ; विज्ञान से काम लो।

मज़हब और स्वास्थ्य

जब मज़हब स्वास्थ्य रक्षा में बाधा डाले तो समझ लेना चाहिये कि वह सत्य नहीं है और इस लिये त्याज्य है। मक्खी, मच्छर, पिस्सु, खटमल, जुएँ, फुदक्क, सर्प, बिच्छू, इत्यादि को मार कर या अन्य विधियों

से कम करने को जो मज़हब पाप समझे वह स्वास्थ्य के लिये सर्वथा हानिकारक है; रंडी बाज़ी, कुमार बाज़ी, पर स्त्री गमन, पर हत्या, शराब खोरी, भंग, गांजा, चरस इत्यादि का सेवन, पशु हत्या (कुर्बानी) को जब मज़हब न रोके या खुल्लम खुला इन के होने में सहायता दे तो मज़हब त्याज्य है। बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बहु विवाह, मुर्दा पूजन, पर्दा, घूँघट और बुर्का, खान पान सम्बन्धी पाखंड, जाति का ऊँच नीच केवल जन्म से मानना और कर्म, आचरण, चारित्र्य पर ध्यान न देना, ये और ऐसी ऐसी और बातें स्वास्थ्य को बिगाड़ती हैं और इस लिये वह मज़हब जो इन को नहीं रोकता या इन के होने में सहायता देता है त्याज्य है।

अध्याय २७

मनुष्य के कुछ बड़े शत्रु

१. पागल कुत्ता

पागल जानवरों के काटने से (कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, लोमड़ी, बिल्ली इत्यादि) मनुष्य को एक रोग हो जाता है जिसे जल संत्रास कहते हैं जिस के मुख्य लक्षण ये हैं:—पागल कुत्ते (या और जानवर) के काटने के कोई ८ सप्ताह पीछे (कभी कभी २ सप्ताह ही पीछे और कभी कभी २ वर्ष पीछे) जिस जगह कुत्ते ने काटा था वहाँ कुछ जलन सी मालूम होने लगती है; हलका सा ज्वर आता है; रोगी की तबियत गिरी सी मालूम होती है और उस को भय लगता है; और वह आवाज़ और प्रकाश को बहुत नहीं सह सकता अर्थात् वह चौंक जाता है; पानी पीने में उस के गले की पेशियाँ एक दम संकोच करने लगती हैं जिस से उस को दुख होता है; पानी देखते ही यह संकोच आरम्भ हो जाता है (इसी से यह रोग जल संत्रास कहलाता है); साँस लेने में कष्ट होने लगता है और रोगी पागल हो जाता है, ज्वर बढ़ जाता है; २-४ दिन पीछे बेहोशी और पक्षाघात हो जाता है और हृदय के जवाब देने से मृत्यु हो जाती है। ये सब बातें कोई एक सप्ताह रहती हैं।

रोग से कैसे बच सकते हैं

रोग का कोई इलाज नहीं परन्तु एक अत्यंत उपयोगी टीका है जिसके यथा समय लगाने से रोग के उत्पन्न होने की संभावना बहुत कम होती है। पागल जानवर के काटने पर यह करना चाहिये :—

१. ज़ख़म या खराश को तुरंत गर्म लोहे से या कार्बोलिक एसिड से जलवाओ।

२. कुत्ते को बाँध कर रक्खो और देखते रहो कि उसका क्या हाल है। पागल कुत्ता आम तौर से दस दिन के अंदर अवश्य मर जाता है।

३. यदि कुत्ता इस समय में भी नहीं मरा तो कोई चिन्ता नहीं; आप को टीका लगवाने की आवश्यकता नहीं।

४. यदि कुत्ता मर गया तो आपको तुरंत टीका लगवाना चाहिये। यदि ज़ख़म शरीर के ऊपर के भाग में है और गहरा है तो 'कासौली पहाड़'* पर जाना चाहिये। यदि ज़ख़म बहुत हलका है या केवल खराश है और शरीर के नीचे के भाग जैसे पैर पर है तो उस का इलाज बनारस, इलाहाबाद, लखनऊ वा अन्य कई और बड़े शहरों में भी होता है। ग़रीबों को सर्कार रेल का किराया भी देती है; सर्कारी मुलाज़िमों को छुट्टी मिलने का विशेष प्रबन्ध है।

२. बिच्छू

बिच्छू डंक मारता है; डंक उसकी पूँछ के अंतिम भाग में होता है। डंक का सम्बन्ध एक ज़हर की ग्रन्थि से है। यह ज़हर अम्ल होता है और अत्यंत जलन पैदा करता है; छोटे बच्चों की कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है।

*Pasteur Institute, Kasauli.

चित्र ३८६
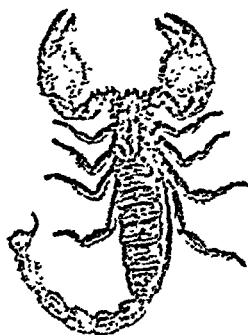
From Patton and Evans' "Insects, Mites, Ticks and other venomous animals"

चिकित्सा

ज़हर अम्ल है और अम्ल क्षार से मरता है। सब से अच्छा इलाज तो यह है कि डाक्टर उस स्थान पर कोकीन या नोवोकेन का इंजेक्शन दे, दर्द और जलन आनन फानन में जाती रहती है। यह न हो सके तो इस प्रकार चिकित्सा करो :—

१. बुझा हुआ चूना और नौसादर बराबर बराबर ले कर बारीक पीसो और ज़रा सा पानी मिला कर डंक मारे स्थान पर लगा दो; एक दम ठंड पड़ने लगेगी।

२. दाल चीनी का तेल (Cinnammon oil) लगाना भी फायदा करता है।

३. खाने के नमक को गर्म जल में घोलो, इतना नमक डालो कि कुछ नमक घुलने से रह जावे अर्थात् जितना गाढ़ा घोल बन सके उतना बनाओ। अब इस घोल में कपड़े की गद्दी भिगो कर डंक मारे स्थान पर रक्खो।

४. तेज़ अमोनिया (Liquor ammonia fort) लगाना भी फायदा करता है।

३. कनखजूरा (काँतर)

कनखजूरे की सब से अगली टाँगों में डंक होता है। जब कनखजूरा अपने शिकार में इन टाँगों के सिरों को चुभा देता है तो उस ज़हर से वह शिकार मर जाता है। कभी कभी मनुष्य को भी डंक मारता है (इसी को काटना कहते हैं); यह ज़हर भी अम्ल होता है। चिकित्सा:—क्षार जैसे "लिकर अमोनिया फोर्ट"* लगाने से जलन जाती रहती है। कभी कभी उस स्थान में फोड़ा भी बन जाता है या वह स्थान सड़ जाता है।

४. बर, ततैया, शहद की मक्खी

इन का डंक इनके शरीर के पिछले भाग में रहता है। वहाँ एक सुई जैसा बारीक भाग होता है; इसके चुभने से ज़हर त्वचा में पहुँच जाता है। यह ज़हर भी अम्ल होता है और अत्यंत जलन पैदा करता है और स्थान सूज जाता है और कभी कभी पक भी जाता है। सब से अच्छी औषधि 'लिकर अमोनिया फोर्ट' है; तुरंत फुरेरी से चुपड़

---

*यह चीज़ आँख में नहीं पड़नी चाहिए

दी जावे तो सूजन नहीं आती; यह न मिले तो चूना लगाना भी फायदा करता है; और कुछ न मिले तो खाने वाले सोडे का घोल

चित्र ३८७
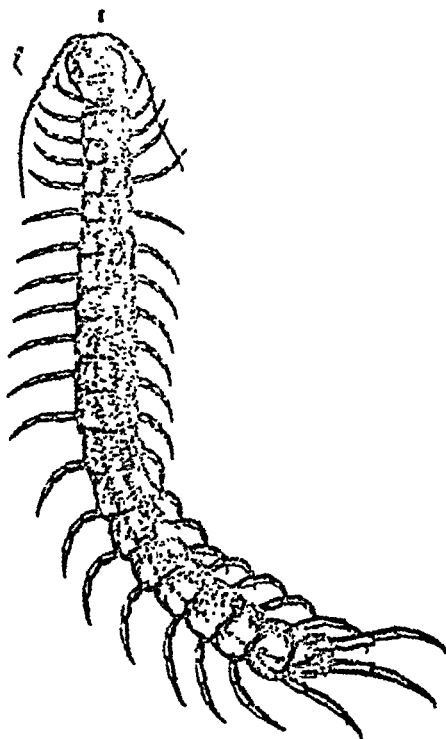
From Patton and Evans' Insects, Mites and Ticks and other venomous animals.

लगाया जावे, साफ कपड़े की गद्दी सोडे के घोल में भिगोकर वहाँ रख दी जावे। कभी कभी डंक रह जाता है, उसको दबा कर निकाल देना चाहिये; यदि वह न निकाला जावेगा तो स्थान पक जावेगा।

५ मकड़ी

चित्र ३८८ मकड़ी
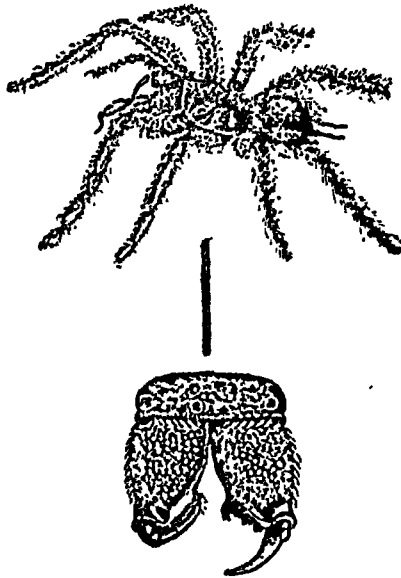
जहर वाले पंजे या जाबड़े

From Patton and Evans' Insects, Mites and Ticks and other venomous animals.

मकड़ी के जबड़ों में ज़हर होता है; इस ज़हर से वह अपने शिकार को मारती है। जिसे लोग मकड़ी फलना कहते हैं वह वास्तव में एक विशेष रोग होता है (देखो हर्पीज़) और उसका मकड़ी से कोई सम्बन्ध नहीं। इसके ज़हर से जलन मारती है; सोडा या "लिकर अमोनिया फोर्ट" लगाना चाहिये।

६. चींटी, चींटे, बरसाती कीड़े

चींटी, चींटों के काटने से जो जलन पड़ती है वह चूना या सोडा

लगाने से जाती रहती है। कुछ बरसाती कीड़ों के ज़हर से छाले भी पड़ जाते हैं। जहाँ तक हो सके छाले को अपने आप सूख जाने दो; यदि फूट जावे तो ज़रा सा घी या जस्ते की मरहम या बोरिक की मरहम लगाओ।

७. सर्प

जहाँ तक विष का सम्बन्ध है सर्प दो प्रकार के होते हैं:—१ जैसे फन वाला काला साँप या नाग (कोबरा*); और गंडे दार क्रेत † २. वाइपर ‡ जिस का सिर चौड़ा और गर्दन पतली होती है। पहली प्रकार के साँपों में ज़हर के दाँतों में एक नाली बनी होती है, ज़हर इस नाली द्वारा व्यक्ति के शरीर में पहुँचता है; दूसरे प्रकार के साँपों के दाँत भीतर से खोखले होते हैं अर्थात नाली बंद नाली (नली) होती है खुली नहीं।

कोबरा और क्रेत जैसे साँपों के विष का असर

विष का असर विशेष कर वात मण्डल (मस्तिष्क, नाड़ियाँ) पर पड़ता है; रक्त और रक्तवाहक संस्थान पर कम। मृत्यु श्वास बंद होने से होती है। लक्षण १० मिनट से दो घन्टे में मालूम होने लगते हैं। जहाँ दाँत धुसे हैं वहाँ जलन और झनझनाहट मालूम होती है और वह भाग ठिठुर सा जाता है और वहाँ थोड़ा बहुत वर्म आ जाता है और कभी कभी वहाँ से खूनी तरल निकलता है। व्यक्ति को सुस्ती आती है, और वह बहुत कमज़ोर हो जाता है और सीधा खड़ा नहीं हो सकता। रोगी लेट जाता है और चलना, बोलना, निगलना कठिन हो जाता है; मुँह से बहुत थूक निकलता है; पुतलियाँ सिकुड़ जाती

*Cobra †Krait ‡Viper.

है; कभी कभी मतली और क़ै होती है। धीरे धीरे श्वास बहुत धीरे धीरे और आवाज़ करके आने लगता है और बेहोशी बढ़ जाती है। ५-१२ घन्टों के बीच में कभी कभी एक ही घन्टे में और कभी कभी दो दिन पीछे मृत्यु हो जाती है। रोगी अच्छे भी हो जाते हैं।

वाइपर जाति के साँपों के विष का असर

इस विष का विशेष असर रक्त और रक्तवाहक संस्थान (हृदय) पर पड़ता है। ज़ख़्म में बहुत दर्द होता है और वहाँ सूजन आ जाती है और ख़ून बहता है। ठंढा पसीना आता है, मतली और क़ै होती है, पुतली फैल जाती हैं; व्यक्ति निढाल हो जाता है और उसका हृदय बैठता मालूम होता है और हृदय के न काम करने से मृत्यु हो जाती है। यदि रोगी जीता रहे तो मुँह से, नाक से या पेशाब में ख़ून आने लगता है। जिस जगह काटा है वह जगह सड़ भी जाती है और ज़हर-बाद हो जाता है जिससे फिर मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा

१. याद रक्खो कि सब सर्प ज़हरीले नहीं होते; दूसरी बात यह है कि यह नहीं होता कि सर्प विष की घातक मात्रा अवश्य ही पहुँचा सके; कभी कभी उसका दाँत काफ़ी गहरा नहीं लगता; कभी कभी दूसरे व्यक्ति या जानवर को काटने के कारण उसके पास बहुत विष नहीं होता। पहला काम आपका यह है कि देखें कि वास्तव में दो दाँतों के निशान हैं या नहीं; इन दो छिद्रों के बीच में कोई $\frac{1}{2}$ इंच का अंतर होता है। यदि दाँत नहीं लगे हैं तो उस व्यक्ति का साहस बढ़ाओ और उसका भय दूर करो।

२. यदि दाँत लगे हैं (और न भी लगे हों या आपको दुबधा हो)

तो ज़ख़्म से ठीक ऊपर एक बंध बाँध दो। आमतौर से साँप पैर या हाथ की अंगुलियों में काटता है। अंगुली में उसकी जड़ के पास बंध लगा दो; यह बंध कस कर लगाओ जिससे विष ऊपर न चढ़ने पावे। यह बंध लगा कर दूसरा बंध ऊपर चल कर लगाना चाहिये; हाथ में कुहनी के ऊपर, पैर में घुटने के ऊपर। अंगुली में पतली चीज़ से बंध लगाया जा सकता है (डोरा, पट्टी, धोती की किनारी); ऊपर किसी चौड़ी चीज़ से जैसे रूमाल या पट्टी से।

३. बंध लगा कर चाकू से साँप के काटे हुए स्थान पर चीरा दो; इतना गहरा हो कि खून टपकने लगे। अँगुलियों में बहुत गहरा चीरा देने से भी अधिक हानि नहीं हो सकती; यदि शरीर में ऊँचे भाग में सर्प काटे तो चीरा ज़रा सावधानी से लगाना चाहिये ताकि कोई बड़ी रक्तवाहिनी न कट जावे। चाकू को आग से या दियासलाई की लौ में तपा लेना चाहिये; रेक्टीफाइड स्पिरिट पास हो तो उसमें डुबोना काफी है।

४. चीरा लगा कर कटे स्थान को पोटाश परमंगनेट के गहरे घोल से धो डालो; दाने भर देने की कोई आवश्यकता नहीं।

५. साथ साथ रोगी को सोने न दो; मुँह पर ठंडा जल छिड़को।

६. उपरोक्त सब काम आनन फानन में होने चाहियें। अब यत्न करो कि रोगी के शरीर में सर्पविषनाशक सीरम पहुँचाया जावे। यह सीरम सरकारी अस्पतालों में रहता है। सब से अच्छा यह है कि रोगी को एक दम तेज़ से तेज़ सवारी में बिठा कर अस्पताल में पहुँचाया जावे। शेष आवश्यक चिकित्सा और परिचर्या डाक्टर ही कर सकता है।

८. डंगर ढोर

गाय बैल के सींग मारने से मनुष्य को अत्यंत हानि पहुँच जाती।

है; कभी कभी पेट फट जाता है और आँतें या आमाशय बाहर निकल आते हैं; यकृत और प्लीहा भी फट जाती हैं।

चित्र ३८९

बैल ने सींघ मारा, आमाशय बाहर निकल आया
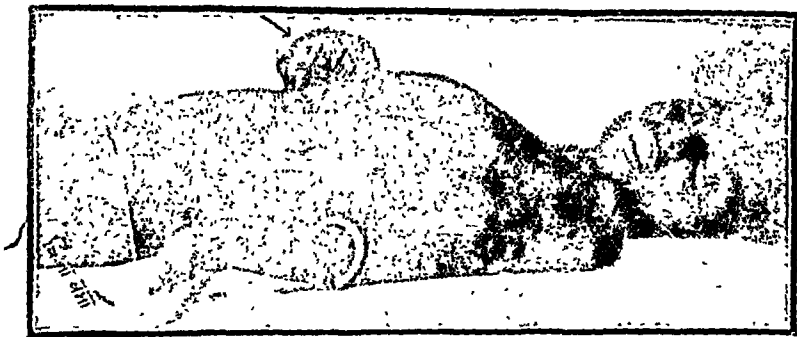
चिकित्सा

ज़ख़्म पर उबाल कर साफ किया हुआ कपड़ा ढक दो और तुरन्त आहत को अस्पताल में पहुँचाओ, संभव है औपरेशन की आवश्यकता हो।

अल्पज्ञान और अज्ञान

असली वैराग्य और चीज़ है और जटा रख कर साधु बनना और बात है। इस कच्चे साधु (चित्र ३९०) ने अपनी कामेच्छा को बस में करने के लिये शिश्न के ऊपर एक मोटे लोहे का छल्ला चढ़ा लिया। परिणाम चित्र से विदित है; शिश्न का अगला भाग फूल गया है। छल्ला मोटे लोहे का था, उससे शिश्न पर ज़ख़्म हो गया; जब कष्ट के मारे न रहा गया और पेशाब करने में भी कष्ट होने लगा तो साधु

महाराज अस्पताल में आये; बड़ी कठिनाई से आरी द्वारा छल्ला काटा

चित्र ३९० अज्ञानी साधु
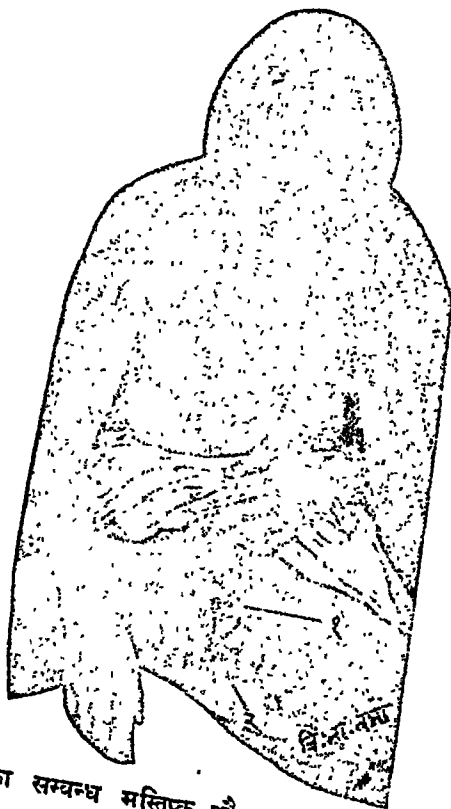
गया। काम का सम्बन्ध मस्तिष्क और इच्छा बल से है; शिश्न का कोई दोष नहीं। हमने इस प्रकार के कई रोगी देखे हैं; बच्चे भी कभी

कोष (हिन्दी-अंग्रेज़ी)

पृष्ट	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्यार्थ
१	शाखाएं	Extremities
,,	तुलना	Comparison
,,	स्पर्श	Touch
,,	मैथुन	Copulation
२	असभ्य	Uncivilised
,,	तुल्य	Similar
,,	चिम्पानज़ी	Chimpanzee
,,	गोरिल्ला	Gorilla
,,	उरांगऊटांग	Orang-outang
,,	मात्रा	Degree
,,	परिस्थिति	Environments
,,	प्रकार	Quality
३	प्राचीन	Ancient
,,	पुर्खा	Ancestors
,,	गिब्बन	Gibbon
४	विचित्र	Complicated

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्यार्थ
९	केन्द्र	Centres
,,	प्राणियों	Animals
,,	वाद विवाद	Discussion
,,	चित्तवृत्तियाँ	Propensities, Emotions, Tendencies
८	राज शासन	Government
,,	व्यवस्था	Management; arrangement
९	लघु मस्तिष्क	Cerebellum
,,	सुषुम्ना शीर्षक	Spinal cord
,,	घ्राण पिंड	Olfactory lobe
,,	ललाट ध्रुव	Frontal pole
१२	पाश्चात्य ध्रुव	Occipital pole
१५	आत्म रक्षा	Selfprotection
,,	स्वजाति रक्षा	Race preservation
२१	प्रत्युत	But also
२९	फ्रेंच रिवोल्युशन	French revolution
३८	सुकरात	Socrates
४०	रोमन कैथोलिक	Roman Catholic sect of Christianity
,,	प्रोटेस्टेंट	Protestant sect of Christianity
४६	इच्छा बल	Will power

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्यार्थ
६४	कर्म	Action
६५	अलकोहल	Alcohol
,,	ईथर	Ether
,,	तरल	Fluid
,,	वायव्य	Gaseous
,,	प्रयोग	Experiment
,,	मात्रा	Matter
६६	मौलिक	Element
,,	अणु	Molecule
,,	परमाणु	Atom
,,	शक्तिकण	Corpuscle
,,	शक्त्यणु	Electron
,,	रूप	Form
,,	यौगिक	Compound
६७	प्रकृति	Nature
,,	रसकपूर	Per-chloride of mercury
,,	कैलोमेल	Calomel
६८	रूपांतर	Difference of form
,,	गुणांतर	Difference of quality
	भ्रम	Delusion
	भूगर्भ	Interior of earth
	विकास	Evolution

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेज़ी तुल्यार्थ
७५	जैविक	Animal
"	एक सेलयुक्त	Unicellular
"	वहु सेलयुक्त	Multicellular
"	जीव विद्या	Biology
"	आन्दोलन	Sudden change; revolution; Catastrophe
"	असीरिया	Assyria
"	वविलोन	Babylon
"	सुमर	Summerian
"	मिश्र	Egypt
"	यूनान	Greek
"	रोम	Roman
७७	प्रतीपगमन	Retrogression
"	विपरीतगति	Retrogression
"	पिरेमिड	Pyramid
"	परंपरा	Heredity
७८	परंप्राप्त	Hereditary
"	पारंपरिक	Hereditary
"	उकौता	Eczema
"	चंचलपन	Fickleminddedness
"	दायभाग	Inheritance
८०	जीवन संग्राम	Struggle for existence

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेज़ी तुल्यार्थ
८०	शुक्रकीट	Spermatozoon
,,	डिम्ब	Ovum
८१	डिम्ब प्रनाली	Fallopion tube, oviduct
,,	अदृश्य	Invisible
,,	अति-अणुवीक्ष्य	Ultra-microscopic
,,	अणुवीक्ष्य	Microscopic
,,	रोगाणु	Germs of disease
८२	जून	Roundworms
,,	पट्टिका	Tapeworm
,,	अंकुशा	Ankylostoma duodenalis
,,	पराश्रयी	Parasite
,,	चिचली	Tick
८५	सुस्थता	Health
,,	स्वस्थ	Healthy
,,	सुस्थ	Healthy
,,	विरसा	Inheritance
,,	पारंपरिक	Hereditary
,,	परंपरीण	Hereditary
,,	आकृति	Form
	कीटाणु	Bacteria
	बक्टीरिया	Bacteria
	वनस्पति वर्ग	A vegetable kingdom

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेज़ी तुल्यार्थ
८८	आदि प्राणि	Protozoa
८९	वहुसेलयुक्त	Multicellular
,,	कृमि	Worm
,,	फीलपा	Elephantiasis
,,	श्लीपद	Elephantiasis
,,	आकस्मानिक घटना	Accident
,,	रिकेट्स	Rickets
,,	मोतिया विंद	Cataract
९०	प्रनाली विहीन ग्रन्थि	Ductless gland
,,	नपुंसकता	Impotence
,,	मूढ़ता	Idiocy
,,	देवपन	Giantism
,,	खाद्योज	Vitamine
,,	स्कर्वी	Scurvy
,,	वेरीवेरी	Beri-beri
,,	पेलाग्रा	Pellagra
,,	कम्हेड़ा	Convulsions (infantile)
,,	घेघा	Goitre
,,	जीवाणु	Microbes
९१	प्राणिवर्ग	Animal Kingdom
,,	पनीर	Cheese
,,	मद्यसार	Alcohol

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेज़ी तुल्यार्थ
९१	खमीर	Yeast
,,	अंततः	Ultimately
९३	मालाणु	Streptococcus
,,	गुच्छाणु	Staphyllococcus
,,	युगल-शलाकाणु	Diplo-bacillus
,,	मस्तिष्क वेष्ट	Meninges
,,	चिन्द्वाणु	Coccus
,,	क्षयाणु	Tubercle bacillus
,,	कुष्ठाणु	B. leprae
,,	हनुस्थंभ	Lock-jaw
,,	डिफथिरिया	Diphtheria
,,	विपूचिकाणु	Cholera vibrio
,,	चन्द्राणु	Comma bacillus
,,	महामारियाणु	Bacillus pestis
,,	चक्राणु	Spirillum
,,	सूत्राणु	Filaments
,,	शाखी	Branched
९५	शलाकाणु	Bacillus
--	युगलाणु	Diplococcus
	चतुष्काणु	Tetrad
	कर्पण्याकार	Spirillum; Spirochaete
	फिरंगाणु	Treponema pallidum

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्यार्थ
९६	मालटाणु	Micrococcus melitensis
,,	स्पोर	Spore
,,	टिटेनस	Tetanus
,,	एंथ्रेक्स	Anthrax
,,	चल	Motile
९७	खेती	Culture
,,	कृषि-माध्यम	Culture medium
,,	ओषजन ग्राही	Aerobic
,,	ओषजन त्यागी	Anaerobic
९८	शतांश	Centigrade
९९	विष	Toxin
१००	आमातिसार	Dysentery
,,	प्रतिश्याय	Cold in the head
१०१	श्लैष्मिक झिल्ली	Mucous membrane
१०३	प्रसव काल	Parturition; childbirth
१०४	रोगनाशक शक्ति	Power of resistance against disease
,,	स्वाभाविक	Natural
१०५	अस्थि भंग	Fracture of bone
,,	पीला ज्वर	Yellow fever
१०६	अति निद्रा रोग	Sleeping sickness
,,	जल संत्रास	Hydrophobia

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेज़ी तुल्यार्थ
१०८	ग्लैंडर्स	Glanders
"	जननेन्द्रिय	Genitals
११२	तंतु	Tissues
"	कण	Corpuscles
"	श्वेताणु	Leucocytes
"	जीवाणु	Micro-organisms
"	भक्षकाणु	Phagocytes
११३	ज़हरबाद	Blood poisoning
"	विषघ्न	Toxic
"	रोगक्षमता	Immunity
"	कृत्रिम	Artificial
१४	सोद्योग	Active
"	सुर्खबादा	Erysipelas
"	असहयोग	Passive
११५	अवधि	Period
"	प्रवेश काल	Incubation period
११७	श्वासमार्ग	Respiratory path
११८	रोगाणुवाहक	Carriers of disease germs
१२१	आत्मिक बल	Will power
	पोटाश परमंगनेट	Potash permanganate
	वेश्यागमन	Prostitution
	प्रत्यय	Suffix

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्यार्थ
१२५	प्रदाह	Inflammation
१२७	परिफुप्फुसीयाकला	Pleura
,,	आमाशय	Stomach
,,	क्षुद्रांत्र	Small intestine
,,	वृहत् अंत्र	Large intestine
,,	मूत्राशय	Urinary bladder
,,	उपांत्र	Vermiform appendix
,,	अंत्रपुट	Caecum
,,	जघनास्थि	Ilium (bone)
,,	पित्ताशय	Gall-bladder
१२९	पूयहा	Pyorrhoea
,,	कर्ण पूयहा	Otorrhoea
,,	मध्य कर्ण पूयहा	Suppurative otitis media
,,	शुक्रहा	Spermatorrhoea
,,	मूत्रशुक्रहा	Semen in urine
,,	मूत्ररक्तहा	Haematuria
,,	मूत्रपूयहा	Pyuria
,,	मूत्रश्वेतजहा	Albuminuria
,,	मूत्रद्राक्षौजहा	Glycosuria
,,	दंतोलूखलपूयहा	Pyorrhoea alveolaris
,,	नासिकाहा	Rhinitis
,,	दंतशूल	Dental pain

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेज़ी तुल्यार्थ
१२९	नाड़ीशूल	Neuralgia
"	हृदयशूल	Cardiac pain
"	परिफुप्फुसीयाशूल	Pleural pain
"	पित्तशूल	Gall or biliary colic
"	वृक्कशूल	Reual colic
"	शीतज्वर	Malaria
"	तृतीयक ज्वर	Tertian fever
"	काला अज़ार	Kala Azar
"	अतिनिद्रा रोग	Sleeping sickness
"	हेर फेर का ज्वर	Relapsing fever
१३०	धनुष्का	Tetanus
"	माल्टा ज्वर	Malta fever
"	मदूरा पद	Madura foot
१३२	खाद्य	Food
"	खनिज	Mineral
"	नोपजन	Nitrogen
"	नत्रजन	Nitrogen
"	प्रोटीन	Protein
--	फोस्फोरस	Phosphorus
	आयोडीन	Iodine
	वसा	Fat
	कर्बोज	Carbohydrate

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्यार्थ
१३३	श्वेतसार	Starch
१३४	हाथीचक	Artichoke
,,	चमकाया हुआ	Polished
,,	सहन शीलता	Endurance
१३५	मौलिक	Elements
,,	कैलशियम	Calcium
,,	पोटेशियम	Potassuim
,,	सोडियम	Sodium
,,	मगनेस्यिम	Magnesium
,,	मंगनिस	Manganese
,,	जस्ता	Zinc
,,	ताम्र	Copper
,,	लिथियम	Lithium
,,	वेरियम	Barium
,,	क्लोरिन	Chlorine
,,	सिलिकोन	Silicon
,,	फ्लोरिन	Fluorine
,,	क्षार जनक	Alkali or base forming
,,	अम्ल जनक	Acid forming
१३६	टपियोका	Tapioca
१३७	कंद	Tubers
,,	मूलें	Root vegetables

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्तार्थ
१३८	साधारण नमक	Common salt
"	आमाशयिक रस	Gastric juice
"	सलारी	Celery
"	लेट्टूस	Lettuce
"	पलाकी	Spinach
१४१	काष्ठोज	Cellulose
१४२	खाद्योज १	Vitamine A
१४३	वानस्पतिक मारजरोन	Vegetable margarine
"	कोकोजम	Cocogem
१४४	बेरी बेरी	Beri beri
"	वात ग्रस्त	Paralysed
१४६	खाद्योज २	Vitamine B
"	खाद्योज ३	Vitamine C
१४९	खाद्योज ४	Vitamine D
"	ऑस्टियो मलेशिया	Osteomalacia
१५०	अल्ट्रावायोलेट	Ultra-violet
"	खाद्योज ५	Vitamine E
"	निष्फलता	Sterility
१५२	पेलाग्रा	Pellagra
"	वंध्यता	Sterility
१५७	अलब्युमेन	Albumen
"	डिम्बज	Albumen

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्यार्थ
१५७	उष्णता	Heat
”	उष्णांक	Heat unit
”	ग्राम	Gramme
१५८	आचूषण	Absorption
१६२	जूस	Soup
१६९	दुग्धशर्करा	Lactose
”	दुधिज	Casein
”	बटर मिल्क	Butter milk
”	उपराइ	Cream
”	क्रीम	Cream
”	स्किम्ड मिल्क	Skimmed milk
१७०	लैक्टिक अम्ल	Lactic acid
”	छाना जल	Whey
”	दही का तोड़	Whey
१७१	छाना	Cheese
”	पनीर	Cheese
१७४	जान्तविक वसा	Animal fat
१७५	ज़ैतून	Olive
१७६	ओट मील	Oat meal
१७८	लीक्स	Leeks
”	पार्सनिप्स	Parsnips
१८०	एसपेरेगस	Asparagus

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेज़ी तुल्यार्थ
१८२	मार्मलेड	Marmalade
"	काफी	Coffee
१८४	वाष्प	Watery vapour
"	सतही जल	Surface water
१८५	भूमिजल	Ground water
"	कोमलजल	Soft water
"	बजरी	Gravel
१८६	उथला	Shallow
"	निरंगा	Colourless
१८७	कठोरपन	Hardness
"	कोमलपन	Softness
"	कठोर	Hard
"	कैलशियम	Calcium
"	मगनेशियम	Magnesium
"	अनस्थायी	Temporary
"	घुलनशील	Soluble
"	कैलशियम बाइकार्बोनेट	Calcium bicarbonate
"	कैलशियम कार्बोनेट	Calcium carbonate
१८८	क्लोराइड्स	Chlorides
"	सलफेट्स	Sulphates
	बुझा हुआ	Slaked
	सोडियम कार्बोनेट	Sodium carbonate

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेज़ी तुल्यार्थ
१८८	प्रतिक्रिया	Reaction
,,	सोडियम क्लोराइड	Sodium chloride
,,	कैलशियम क्लोराइड	Calcium chloride
,,	मगनेशियम क्लोराइड	Magnesium chloride
१८९	जान्तविक पदार्थ	Organic matter
,,	अमोनिया	Ammonia
,,	नोषित	Nitrites
,,	कोलन बैसिलस	Colon bacillus
१९०		
,,	वेग	Force
,,	क्लोरीन	Chlorine
२००	हैंड पम्प	Handpump
२०३	रेक्टीफाइड स्पिरिट्स	Rectified spirits
,,	ब्रांडी	Brandy
,,	रम	Rum
,,	जिन	Gin
,,	विस्की	Whisky
,,	पोर्ट	Port
,,	शेरी	Sherry
,,	क्लारेट	Claret
,,	शेम्पेन	Champagne
,,	बीअर	Beer
,,	स्टौट	Stout

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्यार्थ
२०५	स्वावलम्ब	Self reliance
,,	दुर्वासनायें	Bad desires
,,	अंग व्यवहार विद्या	Physiology
,,	सहनशीलता	Endurance
,,	कोकीन	Cocaine
,,	निकोटीन	Nicotine
,,	कोको	Cocoa
२०६	कैन्सर	Cancer
,,	टैनिन	Tannin
२०८	लाल ज्वर	Scarlet fever
,,	गल प्रदाह	Sore throat
,,	यर्का	Jaundice
,,	गो पट्टिका	Taenia saginata
,,	शूकर पट्टिका	Taenia solium
,,	मत्स्य पट्टिका	Dibothriocephalus latus
,,	कुक्कुर पट्टिका	Taenia echinococcus
२०९	घरेलू मक्खी	Housefly
२११	अक्षिकला	Conjunctiva
,,	चेचकाणु	Smallpox germs
२१२	लहर्वा	Larva
२१३	कुप्पा	Pupa
,,	डिंभ	Imago; newbornfly or insect

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्यार्थ
२२१	रेंडी का तेल	Castor oil
,,	अलसी का तेल	Linseed oil
,,	फुव्वारा	Sprayer
२२५	विषूचिका	Cholera
२२६	विषूचिकाणु	Choleragerm
२२७	केओलीन	Kaolin
२२९	आमातिसार	Dysentery
,,	आम	Mucus
२३०	शलाकाणु जनक	Bacillary
,,	इमेटीन	Emetine
२३१	मोती झरा	Typhoid
२३२	रोगक्षमता	Immunity
२३९	अंकुपा	Ancylostoma
,,	कृमि रोग	Worms
२५०	केंचवा	Round worm
२५३	चुन्ने	Threadworm
२५६	नाहरवा	Guinea-worm
२५९	नोपजन	Nitrogen
,,	ओषजन	Oxygen
,,	कर्बन द्विओषिद्	Carbondioxide
२६०	आर्गन	Argon
२६३	नोषित	Nitrite

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेज़ी तुल्यार्थ
२६३	नोपेत	Nitrate
"	नोपजनीय	Nitrogenous
२६४	वात संस्थान	Nervous system
२८५	वरांडा	Verandah
२९६	स्नानागार	Bathroom
३०१	नीललोहित	Violet
"	नीला	Blue
"	ऊदानीला	Indigo
"	हरा	Green
"	पीला	Yellow
"	नारंगी	Orange
"	लाल	Red
"	उप-नीललोहित	Ultra-violet
३०२	उप-रक्त	Infra-red
"	रासायनिक	Chemical
३०३	निरक्ष देश	Equatorial region
"	जल-वायु	Climate
३०४	समशीतोष्ण	Temperate
"	शीत प्रधान	Cold
"	पर्वतीय	Hill
"	सामुद्रिक	Sea
३०५	वायु प्रवेश	Entry of air

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेज़ी तुल्यार्थ
२०५	वायु स्थान	Air space
२०६	वायु व्याप्ति	Ventilation
२१०	क्षय रोग	Phthisis
,,	सहायक कारण	Accessory causes
२११	मूल कारण	Chief cause
२१३	क्षयाणु	Tubercle bacillus
२१६	कंठ माला	Scrofula, cervical adenitis
२१९	व्यापकता	Prevalence
२२६	चेचक	Smallpox
२३२	टीका	Vaccination
२३३	खसरा	Measles
२३६	मोतिया	Chicken-pox
२३९	हर्पीज़	Herpes
२४१	काली खांसी	Whooping cough
,,	कुक्कुर खांसी	Whooping cough
,,	जुकाम	Cold
२४२	डिफथीरिया	Diphtheria
२५४	स्वास्थ्याध्यक्ष	Health officer
२५८	ग्रामीण दृश्य	Country scene
२६६	कम्हेड़ा	Convulsions
२६७	द्विपत्रा	Diptera
,,	षष्ठ पदा	Hexapod
२६८	बोधनी	Palpi

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्यार्थ
३६८	स्पर्शनी	Antenna
”	भेदनी	Proboscis
३६९	क्युलेक्स	Culex
३७०	अनोफेलिस	Anopheles
३७२	नौकाकार	Boatshaped
”	लहर्वा	Larva
३७३	एडिस (स्टीगोमाया)	(Aēdes) Stegomyia
३७७	श्लीपद	Elephantiasis
३८५	मसहरी	Mosquito curtain
३८७	मलेरियाणु	Malaria parasite
३८९	अंतरा	Periodical
”	तृतीयक	Tertian
”	सरसाम	Delirium
”	संकटमय	Malignant
३९४	दैनिक	Quotidian
३९६	चतुर्थक	Quartan
३९८	मिश्रित ज्वर	Mixed infection fever
”	मैथुनी चक्र	Sexual cycle
४००	मलेरिया बीजाणु	Sporozoit
”	नगदार अंगूठी	Signet ring
”	अमीबावत्	Amoeboid
”	क्रोमेटीन	Chromatin
४०१	स्पोर	Spore

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्यार्थ
२०१	नरलिंगज	Male gametocyte
,,	नारी लिंगज	Female gametocyte
,,	लिंगजाणु	Microgamete
,,	तर्कांकार	Spindleshaped
२०२	मच्छर चक्र	Mosquito cycle
२०३	[illegible]	Crescentic
२०६	अनोफ़िलीज स्टिफेन्साई	Anopheles stephensi
२०७	अनोफ़िलीज क्युलिसिफेशीज	Anopheles culicifacies
२१०	डेंगू	Dengue
,,	हड्डी तोड़ ज्वर	Breakbone fever
२२२	जल पर्य्याण्डिका	Hydrocele
,,	रस पर्य्याण्डिका	Chylocele
२२३	रक्त पर्य्याण्डिका	Haematocele
२२४	पिस्सू	Sandfly
२२९	यूरियास्टिबेमीन	Urea stibamine
,,	न्युस्टीबोसान	Neostibosan
,,	बर्बेरीन सलफेट	Berberine sulphate
२३०	सैंडफ्लाई फीवर	Sandfly fever
२३१	काला अज़ार	Kala Azar
२३६	चूहा	Rat
२३७	चुहिया	Mouse
२४१	बेरियम कार्बोनेट	Barium carbonate

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेज़ी तुल्यार्थ
४४२	फुदक्कु	Flea
४४५	पोटाश क्लोरस	Potash chloras
,,	पोटाश नाइट्रास	Potash nitras
४४६	प्लेग	Plague
,,	प्लेगाणु	Plague germ
४४८	गिल्टी	Bubo
४४९	न्युमोनिया	Pneumonia
४५१	चूहे काटे का ज्वर	Ratbite fever
,,	यर्कां	Jaundice
,,	पांडुर	Jaundice
४५७	किलनी	Tick
,,	चिंचली	Tick
,,	चिपट्टु	Tick
४५९	हेर फेर का ज्वर	Relapsing fever
४६१	टाइफस ज्वर	Typhus fever
४६२	खुजली	Scabies
४६५	सुरंग	Tunnel
४६६	कुष्ठ	Leprosy
४६७	त्वगीया कुष्ठ	Skin leprosy
४६८	मिश्रितकुष्ठ	Mixed leprosy
४६९	नाड़ी कुष्ठ	Nerve leprosy
४७८	श्वेत चर्मा	Leucoderma

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्यार्थ
५२६	विधवा	Widow
”	काम	Sexual desire; libido
५२८	योनिद्वार	Vaginal orifice
”	डिम्ब ग्रन्थि	Ovary
”	डिम्ब प्रनाली	Oviduct
”	गर्भाशय	Uterus
”	योनि	Vagina
”	शिश्न	Penis
”	अंड	Testicle
”	शुक्र प्रनाली	Ductus deferens
”	यौवनारंभ	Puberty
”	कुमार	Youth
५३०	विरोधी लिंग	Opposite sex
५३३	कामदेव	Sexual desire
५३९	बाल विवाह	Child marriage
”	समाज	Society
५४४	अनमेल विवाह	Disparity in marriage
५४६	मज़हबी ढकोसले	Religious dogmas
५५०	वेश्या गमन	Prostitution
५५२	पैदायशी रोग	Congenital or connatal diseases
५५३	शुक्राणु	Spermatozoon

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्यार्थ
५५२	सैल विभाजन	Cell division
"	क्रोमोसोम	Chromosome
५५५	कर्माणु	Chromosome
५५६	बहुसन्तान	Multiple children
५६०	अद्भुत	Monstre
५६३	कटा हुआ होंठ	Hare lip
५६९	अपूर्ण	Incomplete
५८३	जल शीर्षक	Hydrocephalus
५८६	रसौली	Tumour
"	ग्रन्थि	Tumour
"	अर्बुद	Tumour
५८८	वसामया	Lipoma
५९०	सूत्रमया	Fibroma
५९२	बहुसूत्रमया	Fibroma Molluscum
६०१	सारकोमा	Sarcoma
६१२	चुल्लिका ग्रन्थि	Thyroid gland
६१५	मूढ़ता	Idiocy
६१७	मूढ़	Idiot; cretin
६२०	पिट्यूटरी	Pituitary
६२३	क्लोम	Pancreas
"	उपवृक्क	Adrenal
६२४	ज्ञानेन्द्रिय	Sense organ

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेज़ी तुल्यार्थ
६४५	स्नानागार	Bathroom
६५२	विटप देश	Pubic region
"	कामाद्रि	Mons veneris
६५३	शोला टोपी	Shola hat
६६४	स्वरयंत्र	Larynx
"	टेंटवा	Trachea
६७०	गंठीली शिराएं	Varicose Veins
६७९	कनीनिका	Cornea
६८६	रोहे	Trachoma; Granular lids
६९२	नासाह	Rhinitis
६९३	नकसीर	Epistaxis
६९४	कंठ	Throat
६९५	ऐडिनौयड्स	Adenoids
६९८	अनस्थायी	Temporary
"	स्थायी	Permanent
७०५	दाँतों का सड़ना	Caries of tooth
"	दाँतों में कीड़ा लगना	Caries of tooth
"	दंतोलूखल पूयाह	Pyorrhoea alveolaris
७०७	कैन्सर	Cancer
७११	अध्ययन	Study
७१९	उपवास	Fasting
७२२	फुप्फुस	Lung

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्यार्थ
७२७	जलोदर	Ascites
७२९	रक्तभार	Blood pressure
७३०	संकोच रक्तभार	Systolic blood pressure
,,	प्रसार रक्तभार	Diastolic blood pressure
७३५	व्यायाम	Exercise
७४३	मानसिक परिश्रम	Mental labour
७४८	मांसल	Muscular
७५०	प्रकोष्ठ	Forearm
७५१	ऊर्ध्व शाखा	Upper extremity
७६१	अधर शाखा	Lower extremity
७७२	सौन्दर्य	Beauty
७७६	बुर्क़ा	Veil
७८१	केन्द्र	Centre
७८२	ललाट खंड	Frontal lobe
,,	पार्श्विक खंड	Parietal lobe
,,	पश्चात् खंड	Occipital lobe
,,	शंख खंड	Temporal lobe
७८३	जतूकास्थि	Sphenoid bone
,,	अश्रवस्थि	Lachrymal bone
,,	कर्ण बहिर्द्वार	External auditory m
७८६	आत्म हत्या	Suicide
७८७	सीता	Furrow; Sulcus

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेज़ी तुल्यार्थ
७८७	परिधि	Circumference
७९०	स्वभाव	Behaviour; conduct
”	चिंताशीलता	Worry; anxiety
७९१	संगत	Society
७९४	पैदायशी मूर्खता	Cretinism
”	वहम	Neurasthenia
”	हिस्टीरिया	Hysteria
७९५	पक्षाघात	Paralysis; hemiplegia
७९६	अर्द्धाङ्ग	Hemiplegia
७९७	लक़वा	Paralysis
७९८	अंग आघात	Paralysis of a part
७९९	भ्रम	Illusion
”	निरीक्षण	Observation
”	विवेक	Logic
”	बोध	Knowledge
”	ध्यान	Attention
८००	प्राकृतिक	Natural
८१०	कोबरा	Cobra Snake
”	क्रेत	Krait Snake
	वाइपर	Viper Snake
८१२	सर्पविषनाशक सीरम	Antivenomous serum
८१३	अल्पज्ञान	Insufficient knowledge

पृष्ठ	हिन्दी	अंग्रेजी तुल्यार्थ
८१३	अज्ञान	Ignorance
८१६	मैथुन	Copulation
८१७	मूत्राशय	Urinary bladder
८२५	शिश्न प्रहर्ष	Erection of penis
,,	शिथिलितावस्था	Relaxed condition
८३०	कामुक स्थान	Erotic zone
,,	स्तनवृंत	Nipple
८३२	अक्षत योनि	Hymen intacta
,,	क्षत योनि	Ruptured hymen
,,	कामाद्रि	Mons veneris
,,	वाहरी	Labium majus
,,	भगनासा	Clitoris
,,	भगनासामुण्ड	Glans clitoris
,,	योनिच्छद	Hymen
८३३	योनि संकोचनी पेशी	Sphincter vaginae muscle
८३५	उद्योग	Effort
८३६	गर्भस्थिति	Pregnancy
८३७	कामेच्छा	Sexual desire
८३८	नपुंसकता	Impotence
८४३	बाग़े अदन	Garden of Eden
८४५	वंध्यता	Sterility
,,	ऊसरता	Sterility

[illegible]	[illegible]	अंग्रेजी तुल्यार्थ
८२५	बांझपन	Sterility
८२६	उर्वरता	Fertility
८२७	पुरुष निष्फलत्व	Sterility in man
,,	आसन	Posture
८२८	शय्या	Bed
८२९	पिधान	Sheath; condom
८३०	नवजात शिशु	Newborn baby

पुस्तक मिलने के पते

प्रयाग

साहित्य भवन लिमिटेड

इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस

लखनऊ

गंगा-पुस्तक माला कार्यालय

कलकत्ता

मैनेजर, हिन्दी पुस्तक एजेंसी, १२३ हैरिसन रोड

लाहौर

मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, संस्कृत पुस्तकालय सैद मिट्ठा बाज़ार

मोतीलाल बनारसीदास, संस्कृत बुकडिपो

Printed by M. N. Pandey at the Allahabad Law Journal Press, Allahab

Published by Dr. [illegible] Varma, Civil Surgeon, Jaunpur